इस 'पुस्तक' में जो विषय वर्णन किया गया है, वह वास्तवमें
योगी, अत्यावश्यक और सामयिक ज्ञानानुकूल ही है। इस ग्रन्थमे
गुणधर्म विवेचन चरक आदि आर्ष ग्रन्थोंके अनुकूल है। आर्ष सि
अक्षुण्ण और प्रधान रखते हुए आधुनिक एलोपैथी मतानुसार पद
उसे सरलतया समझानेका पूर्ण प्रयत्न किया है। अमुक औषधि श
अमुक स्थानमे प्रवेश कर अमुक रीत्या अमुक अग-प्रत्यग पर अमुक
प्रकाशित करती है, इत्यादि विवेचन इस ग्रन्थमे जैसा स्पष्ट
समझाया गया है, वैसा वर्त्तमानके किसी भी हिन्दी ग्रन्थमे नह
जाता। सक्षेपमे लेखकने औषध गुणधर्म और चिकित्सा सम्बन्धी व
भेद सरलता पूर्वक सुबोध शैली द्वारा समझानेका सफल प्रयत्न कि

मुझे दृढ विश्वास है कि, यह ग्रन्थ चिकित्सा विज्ञानके रहस्य
जाननेवाले पाठकोके मानस मन्दिरमे अवश्यमेव प्रकाशदायक सिद्ध
जिन्होने स्वामीजी महाराज लिखित 'रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसग्रह
'चिकित्सातत्वप्रदीप' ग्रन्थोका स्वाध्याय किया है, वे महानुभाव इस
गुणधर्म विवेचन' को पाकर स्वामीजी की लेखनी और ज्ञानकी प्रखर
सम्पन्नताका पुन अनुभव करेगे और इससे लाभान्वित होगे।

अजमेर
ता० १-११-४९

रसवैद्य वैद्यरत्न
कविराज वंशीधर शर्मा आयुर्वेदा

With best compliments:

From -
Krishna Gopal Ayurved Bhawan
(Dharmarth Trust), Kalera,
(Distt. Ajmer)

इस पुस्तककी मॉग होनेसे यह नया संस्करण फिर ग्रामीण एवं आ
वेंदके ज्ञानसे पूरी तरह जानकारी न रखने वाले रुग्णोकी सेवार्थ प्रकाशि
किया जाता है।

व्यवस्थापक

कृष्णगोपाल आयुर्वेद भ
कालेड़ा-कृष्णगोपाल

दि० १ सितम्बर १९८७

अनुक्रमणिका

औषध गुण विवेचन

चरक-सुश्रुत कथित गण कषाय

॥ ॐ ॥

धन्वन्तरये नमः

औषध गुण-धर्म विवेचन
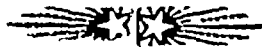
आयुर्वेद प्रयोजन

हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम् ।
मानं च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते ॥

जिस शास्त्रमे हितमय (सदाचार आदि गुणयुक्त) आयु, अहित मय (दुराचार आदि दोषयुक्त) आयु, सुखमय (आरोग्य) आयु, दु खमय (व्याधियुक्त) आयु, आयुके लिये हितकर और अहितकर द्रव्य (आहार-औषध), गुण और कर्म, आयुप्रमाण तथा आयुका लक्षण द्वारा वर्णन हो, उस शास्त्र को 'आयुर्वेद' कहते है ।

इस तरह आयुर्वेद से आयु (जीवन) सम्बन्धी पूर्ण बोध मिलता है । अतः इसे जीवनविज्ञान (Science of life) ही कहा जायगा । यह शास्त्र अनादि और शाश्वत है । इस आयुर्वेदका प्रयोजन "स्वास्थस्य स्वास्थ्यरक्षणमातुरस्य विकारप्रशमनं च" अर्थात् मुख्य प्रयोजन स्वस्थ मनुष्यके स्वास्थ्यका संरक्षण और गौण प्रयोजन आतुरोके उत्पन्न रोगोको नष्ट कर पुनः स्वास्थ्यकी प्राप्ति कराना है ।

इस अनन्त पार (सीमारहित) आयुर्वेद को भगवान् आत्रेय ने "हेतुलिङ्गौषधज्ञानं स्वस्थातुरपरायणम् ।" इस वचनसे निम्नानुसार त्रिसूत्रात्मक (त्रिस्कन्धात्मक) कहा है ।

१ रोग हेतु (Causes-Etiology)

२ स्वस्थता और रोगके लक्षण चिन्ह (Symptoms & Signs)

३ औषध ज्ञान अर्थात् स्वस्थ रहनेके लिये औषध, पथ्य, चिकित्सा आदि (Treatment)

आयुर्वेदके ये तीन स्कंध है । प्रथम स्कंधमें विविध व्याधियोके कारणो की मीमांसाकी है । द्वितीय स्कंधमे स्वास्थ्य संरक्षणके लिये नाना प्रकारके नियम, स्वास्थ्य लक्षण और व्याधियोके लक्षणों और चिन्होंका बोध विविध

युक्तियों द्वारा कराया है, तथा तृतीय स्कधमें रोगोंको दूर करनेके लिये देहपर परिणाम उत्पन्न करने वाली विविध औषधियोका उपयोग भिन्न भिन्न प्रकृति वालोके लिये कितनी मात्रामे, किस औषधिके साथ, कैसे और कब करना चाहिये, इस विषयकी समालोचनाकी गई है।

इस तृतीय स्कंधमे औषधियोके गुण धर्मकी ही मीमांसा प्रमुख रूपसे की गई और औषध गुणधर्मका ही विचार इस ग्रन्थमें किया गया है। अतः इस ग्रन्थको भी आयुर्वेदके तृतीय स्कधका प्राथमिक प्रकरण रूप कहना चाहिये।

भगवान् आत्रेयके "धातुसाम्यक्रिया प्रोक्ता तन्त्रस्यास्य प्रयोजनम्।" इस वचनके अनुसार धातुसाम्य प्रस्थापित करना अर्थात् (वात, पित्त और कफ इन तीनो धातुओं तथा रस-रक्त आदि सातों धातुओंको समावस्थामें रखना), यह आयुर्वेदका प्रयोजन है। इस प्रयोजनकी सिद्धि धातुवैषम्यता को दूर करनेसे ही होती है। इस धातु-वैषम्यके निवारणमे औषध गुणधर्म विचार सहायक होता है। अत. यह ग्रन्थ भी परम्परा रूप आयुर्वेदके मुख्य प्रयोजनकी सिद्धिमे अर्थात् स्वास्थ्य संरक्षणके ज्ञानवर्द्धनमें उपकारक है।

धातु वैषम्य-निवारक अर्थात् रोगोपचारका मुख्य साधन औषध है। इस औषधकी परीक्षा, गुण, मात्रा और उपयोग सम्बन्धी सम्यक् ज्ञान कराना, यह औषध गुणधर्म शास्त्रका विषय है। अमुक औषध कितनी मात्रामे, किस रोगकी किस अवस्थामें, किसके साथ देना चाहिये? इस वातका वोध होनेपर ही रोगोपचार संतोषजनक हो सकता है। इन विषयोमेसे इस प्रकरण ग्रन्थमे औषध गुणधर्म शामक, उत्तेजक, दीपन, पाचन आदिका मुख्य विचार तथा शेष वातोका गौण विचार किया गया है।

आयुर्वेद, यूनानी, एलौपैथी होमियोपैथी आदि विविध वैद्यक ग्रन्थोमें रोगस्वरूप सम्वन्धी विचारणा पृथक्-पृथक् उत्पत्ति अनुसारकी है। फिर इसके आधारपर व्याधि विनाशक उपायोकी योजना भिन्न भिन्न हुई है। इस तरह विचारशैली भेदवती हो जानेसे चिकित्सामें भी विविधताकी सृष्टि हुई है।

नीरोगी देहमें किस तरह सम्यक् प्रकारसे विविध व्यापार चलते रहते हैं? और इनमे विकृति क्यो और कैसे होती है? इन दो स्थितियोका योग्य वोध होनेपर व्याधिविषयक सम्यक् कल्पना सरलता पूर्वक हो सकती है। परन्तु यह कल्पना भिन्न भिन्न दृष्टिसे विचार करने वाले विद्वानोने भिन्न भिन्न प्रकारसेकी है। आयुर्वेद और एलौपैथीमे इसी कल्पनाभेदसे औषध गुण विचारकी व्याख्या भी पृथक् पृथक् दृष्टिसे हुई है। इस ग्रन्थमे व्याख्या मुख्यतया प्राचीन शैली अनुसार ही की है; तथा स्थान-स्थानपर नव्य मत का भी बोध कराया गया है।

'धारणाद् धातवः ।', 'दूषणस्वभावाद् दोषा ।' और 'मलिनी-करणान मलाः' । इस व्युत्पत्तिके अनुसार आयुर्वेदमे वात-पित्त-कफ (त्रिधातु-त्रिदोष) की मीमांसाके आधार पर जीवन-विज्ञान लिखा गया है ।

आयुर्वेदके सिद्धान्तानुसार ये त्रिधातु ही संसार और शरीरके धारण करने वाले हैं । इस सम्बन्धमें भगवान् धन्वन्तरिजीने लिखा है कि—

विसर्गादानविक्षेपै सोमसूर्यानिला यथा ।
धारयन्ति जगद्देहं कफापित्तानिलास्तथा ॥ सु सू अ २१-८

विसर्ग (पोषण), आदान (शोषण), विक्षेप (उत्सर्जन), इन त्रिविध क्रिया द्वारा सोम, सूर्य और वायु जिस तरह जगत्को धारण करते है, उसी तरह इन्ही क्रियाओ द्वारा कफ, पित्त और वात देहको धारण करते हैं ।

ये त्रिधातु सूक्ष्मातिसूक्ष्म और स्थूल भेदसे त्रिविध है । ये देहमे सर्व-व्यापी होनेसे प्रत्येक अवयवके घटक और जीवित परमाणुओके अन्दर-बाहर व्याप्त है । ये वात, पित्त, कफ जीवित देहमे प्रति दिन पञ्चभूतात्मक भोजन के परिपाकसे उत्पन्न होते है । अर्थात् सात्म्य भोजनसे धातु रूप और असात्म्य भोजनसे दोष रूप उत्पन्न होते है । इनसे रक्त, मास आदि पोष्य धातुओका पोषण यथा नियम होता रहता है और इसी हेतुसे इनसे शुक्र और ओज पर्यन्त धातुपोषण क्रम क्रमशः चलता रहता है । वात, पित्त, कफ सर्व शरीरमे व्यापक होते हुए भी, इन तीनोके कार्य पृथक्-पृथक् स्थानसे अधिकतया होते हैं । अत इन अधिक कार्यवाले अवयवोंको ही उनके मुख्य स्थान कहे है ।

इन वात, पित्त, कफके जो स्थूल रूप है, वे क्रिया द्वारा प्रत्यक्ष है । सूक्ष्म स्वरूप यन्त्र आदि साधनों द्वारा प्रत्यक्ष होते है और सूक्ष्मतम स्वरूप केवल अनुमानगम्य माने गये है, किन्तु ये सूक्ष्मतम स्वरूप ही विशेष प्रभवोत्पादक है ।

इन त्रिधातुओकी साम्यावस्था नष्ट होकर वैषम्य होने पर व्याधिकी उत्पत्ति होती है । (रोगस्तु दोषवैषम्य दोषसाम्यमरोगता ।) प्रारम्भमे बहुधा सूक्ष्मतम स्वरूपमे धातुवैषम्यकी प्रगति होती है । फिर उससे रस, रक्त आदि स्थूल धातुओंमे जो विकृत अवस्था उत्पन्न होती है, वे दोष कहलाते है । जब वे रूपान्तरित होकर अधिक हानिकर रूप धारण करते है, तब वे मल कहलाते हैं और वे ही विविध रोगसृष्टिका सर्जन करते है (दोषा एव हि सर्वेषां रोगाणामेक कारणम्) इस तरह आयुर्वेदने त्रिधातु, त्रिदोष और मलमे भेद कहा है ।

इस शरीरमे त्रिधातु-त्रिदोष ही स्वास्थ्यका संरक्षण करते है और ये विविध व्यापार होनेमे सहायक होते है । यह कार्य इन धातुओंमे रहे हुए विविध गुणों (रूक्ष, शीत, तीक्ष्ण, उष्ण, स्निग्ध आदि) के हेतुसे होता है । इन

गुणोमे वैषम्य होने पर ही रोग उत्पन्न होता है। परन्तु यह वैषम्य तीनो दोषो तथा सब गुणोमे एक साथ नही होता। एक या एकाधिक गुणोमे होता है। इस विकृतिके होनेपर गुणोके वृद्धि-क्षय (अधिकता या न्यूनता) की प्राप्ति होती है। फिर इस दोषवैषम्यको नष्ट कर धातुसाम्य प्रस्थापित करनेका औषध द्वारा प्रयत्न किया जाता है। बढ़े हुए दोषोके दुष्ट गुणोका नाश करना, और घटे हुए दोषोके गुणोको बढाना-अर्थात् रोगके लक्षणोंका उपशम रूप धातुसाम्य स्थापित करनेके लिये अविकृत त्रिधातु जीवनीय शक्ति की सहायता करना, यह औषधिका मुख्य कार्य है।

शरीर यन्त्रमे विविध व्यापार सतत होते रहनेसे त्रिधातु-त्रिदोषमे ह्रास, रूपान्तर और क्षय होते रहते हैं। इस न्यूनताकी पूर्त्ति अन्न-जलादि द्वारा होती है। इस परसे विदित होता है कि, जिस तरह यह शरीर वात, पित्त, कफ (त्रिधातु) से बना है, उस तरह इस संसारके समग्र पदार्थ भी इन धातुओसे ही उत्पन्न हुए है। एवं सत्वगुण रजोगुण, तमोगुणात्मक त्रिदोष द्वारा ही सकल पदार्थ एव सृष्टि-क्रमका संचालन होता है। इस संसारके मूलतत्व पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश, ये पञ्च महाभूत कहे है। इन पञ्चभूतात्मक अन्न जल आदि द्रव्योका देहमे जो रूपान्तर होता है और देहको धारण करते है, उनको सरलतासे समझानेके लिये त्रिवृतकरण (छादोग्य श्रुतिके अनुरूप) करके कफ पित्त, वात संज्ञा दी है। अत- ये त्रिधातु पञ्चभूतसे पृथक् नही है।'

इन पञ्च महाभूतोमे (चेननाधिष्ठित महाभूतोसे) २ प्रकारके (चेतन-अचेतन) द्रव्योकी सृष्टि हुई है। इन्द्रिय युक्तको चेतन तथा निरिन्द्रियको अचेतन कहा है। मनुष्यादि प्राणियोके शरीर और वनस्पति सेन्द्रिय द्रव्य (चेतन) तथा इनमे इतर खनिज-धातु उपधातु आदि निरिन्द्रय (अचेतन)है।

पुनः समझानेकी सुविधाके लिये इन द्रव्योके ३ वर्ग बनाये हैं। १जङ्गम-(मनुष्य, पशु, पक्षी आदि), २—उद्भिज (वनस्पति), ३—पार्थिव (पृथ्वी मे उत्पन्न)।

जङ्गम द्रव्योके ४ प्रकार हैं। जरायुज, अण्डज, स्वेदज, उद्भिज। जो जीव जरायुसे आवृत होकर उत्पन्न होते है वे जरायुज जैसे—मनुष्य, गौ, भैस आदि, अण्डेसे उत्पन्न होने वाले अण्डज—पक्षी, सर्प आदि। स्वेद से उत्पन्न होनेवाले स्वेदज—जूं आदि और पृथ्वीका भेदनकर निकलें वे उद्भिज्ज कहलाते है—जैसे वीरबहूटी, मेढक आदि।

इस जंगमवर्गमेसे अनेक पशु पक्षियोका मांस अण्डे सर्प-विष, पित्त, कीट आदिका उपयोग विविध रोग और विष चिकित्सामे होता है। इस हेतुसे इसका उल्लेख किया गया है।

उद्भिद द्रव्योमे ४ उप प्रकार हैं। १—वनस्पति (अपुष्पा, अदृश्य पुष्पा,

बड़, गूलर आदि), २–वृक्ष (पुष्प और फलयुक्त) इसे चरकसंहिताकारने वानस्पत्य संज्ञा दी है। ३–ओषधि (फलके पकनेपर स्वय सूखकर गिर पड़े जैसे—अपामार्ग, तिल, गेहूँ आदि), ४–वीरुध (प्रतान जिनमे निकलते हो, लता और गुल्मोंका अन्तर्भाव इसी प्रकारमे किया है।) इसका विशेष विचार 'वनौषध संग्रह' ग्रन्थमे किया है जो सुविधापर छपाया जायगा।

पार्थिव द्रव्योमे सुवर्ण आदि धातु उपधातु, पारद, विविध पत्थर, लवण, गेरु, सोमल, हरताल आदि विष, विविध रत्न-उपरत्न और शिलाजतु आदि का समावेश होता है।

इनमेंसे कतिपय द्रव्य मानव शरीरके लिये सात्म्य होते है, और कतिपय नही होते। जो सात्म्य होते है, उनसे देहका पोषण होता है। परन्तु उनके भी प्रमाणाधिक्य व्यवहार या प्रकृति, आयु, सत्व, देश, काल, बल, संयोग आदिके भेदसे (विरुद्ध उपयोगसे) इष्टके स्थानपर अनिष्ट परिणाम हो जाता है। अर्थात् मात्रा अधिक होने या प्रकृति-विरुद्ध, ऋतु विरुद्ध, काल विरुद्ध होने इत्यादि कारणोसे त्रिधातुकी साम्यावस्था भग होकर विविध व्याधियोंकी उत्पत्ति होती है। परन्तु इनके निवारणार्थ परमात्मा ने संसारके पदार्थोंमे विभिन्न रस-गुणोका सयोग कराया है, अर्थात् दूसरी ओर निसर्गने समस्त पदार्थोमे ६ रस और २० गुणोकी सृष्टि की है। ये रस और गुण सब औषधियोमे असम भिन्न-भिन्न जातिमे भिन्न-भिन्न रूपसे रहते है। एवं अनेक औषधियोमे रसकी समानता होनेपर भी गुणमे विषमता होती है। जैसे सोठ, मिर्च, पीपल, लौग आदि औषधियाँ सब चरपरी है, किन्तु इन सबमे पृथक्-पृथक् गुण रहते है।

इन औषधियोके गुण और परिणाम समझानेके लिये आचार्योंने सब औषधियोके ५ वर्ग (पदार्थ-कर्म-समूह) दिखाये है। (१) रस, (२) गुण, (३) वीर्य, (४) विपाक और (५) प्रभाव।

(१) रस।

औषधि जिह्वापर डालनेसे स्वादद्वारा जिन गुणोका बोध होता है, उनको 'रस' कहा है। क्वचित् यह रसज्ञान जिह्वासे नही होता, क्योंकि, सब द्रव्य द्रवावस्था (Liquid state) को प्राप्त नही होते, जो द्रव्य सर्वांशमे अद्राव्य (Insoluble) हो, उनका जिह्वा स्पर्श होनेपर भी रस प्रतीति नही होती। उन औषधियोके परिणामके आधारसे रसका निश्चय किया जाता है।* जैसे सुवर्ण, रौप्य, लोह, अभ्रक आदि धातु-उपधातुओमे जो रस (शास्त्र-कथित रस) रहते है, उनका बोध जिह्वा द्वारा नही हो

* १ रसनाऽर्थो रस । (चरक)
२. रसनेन्द्रिय ग्राह्यो योऽर्थ, स रस । (चक्रपाणिदत्त)

सकता। इन रसोंका ज्ञान मस्तिष्क, हृदय, वात वाहिनियाँ, रक्त, मांस संस्था आदिपर विशेष कार्य होनेसे उपलब्ध होता है।

इस रसके कार्यकी प्रतीति औषध या भोजनका पचन (रूपान्तर-वियोजन) होनेपर होती है। यह रस सुवर्ण आदि धातुओमे मिर्च, मिश्री आदि के समान ही रहता है, परन्तु उन धातुस्थ रसोंका वियोजन होनेमें अधिक काल लगता है। अत शीघ्र बोध नही हो सकता।

संसारकी समस्त औषधियोमे रहने वाले रस ६ प्रकारके हैं। मधुर, अम्ल, लवण, तिक्त (कडुवा), कटु (चरपरा) और कषाय।+ ये सब रस न्यूनाधिक मात्रामे सम्मिलित रहते हैं। इनमेसे जो रस जिस द्रव्यमे विशेष परिमाणमे हो, उनका निर्देश किया जाता है। प्राचीन आचार्यों ने कहा है कि :—द्रव्यमेकरस नास्ति न रोगोप्येकदोषजः।

योऽधिकस्तेन निर्देश क्रियते रसदोषयोः॥

यह ससार पाँच भूतोमेसे वना है। इस हेतुसे संसारके किसी भी द्रव्य (औषधि) मे केवल एक ही रस हो, ऐसा नही है। सब रस मिले हुए ही रहते हैं। एव कोई भी रोग वात, पित्त, कफमेसे किसी एक ही दोषसे उत्पन्न होता हो, ऐसा नही है। जो रस या दोष अधिकाशमें हो, उसका निर्देश किया जाता है। इन षड् रसोमे वहुधा निम्नानुसार गुणोकी प्रधानता रहती है।

सव द्रव्य पञ्च महाभूतात्मक होनेसे ६ रस भी इन भूतोके ही गुण या रूपान्तर हे। भूतोके विविध प्रकारके संमिलनसे रस भेद हो जाता है। इन रसोमे प्रधानता निम्नानुसार रहती है।

---

३. रसनेन्द्रियग्राह्यवृत्तिगुणत्वावान्तरजातिमत्वं रसत्वम्।

यदि नैयायिकोकी परिभाषाके अनुसार विचार किया जाय, तो पहिले और दूसरे सूत्रमे कहे हुए लक्षणोका रसाभावमे प्रवेश हो जानेसे अतिव्याप्ति दोष और अतीन्द्रिय रसमे प्रवेश न होनेसे अव्याप्ति दोष भी होता है। इस हेतुसे रसका लक्षण शिवदाससेनने पृथक्-रीतिसे अतिव्याप्ति, अव्याप्ति और असंभव, तीनो दोषोसे रहित शुद्ध लिखा है।

+ आयुर्वेदने रसके ६ प्रकार माने हैं, जो सामान्यत अनुभवमें आते हैं। आधुनिक इन्द्रिय विज्ञानशास्त्रियो (Physiologists) ने मधुर, अम्ल, लवण और तिक्त इन चार रसोको मुख्य माना है। उनके मतानुसार कटु और कषाय गौण रस है। मुख्य रसोका असर जिह्वापर स्थिर स्वादांकुर (Tastebuds) और स्वाद ग्राही नाड़ी तन्तुओपर होता है। फिर हम स्वादका बोध होता है। कषाय और कटु रसका प्रभाव स्वाद ग्राही नाड़ियोके अतिरिक्त संवेदनाप्रद नाड़ियोके (Sensory nerves) के ऊपर भी होता है। इस हेतुसे उनको गौण मानते हैं।

१. मधुर रस—पृथ्वी, जल । ४. तिक्त रस—वायु, आकाश ।
२. अम्ल रस—पृथ्वी, अग्नि । ५. कटु रस—वायु, अग्नि ।
३. लवण रस—जल, अग्नि । ६. कषाय रस—पृथ्वी, वायु ।

इन सबमे दो दो भूत प्रधान और शेष भूत गौण है । यर्थार्थमे सब रसोंके भीतर पाँचो भूत रहते है । गौण भूत सूक्ष्म भावसे रहनेके हेतुसे उसका स्पष्ट अनुभव नही होता ।

किसी किसी द्रव्यमें अवस्थाभेदसे रसभेदकी प्रतीति होती है । जैसे आम्र प्रथमावस्थामे कषाय रसयुक्त, द्वितीयावस्थामें अम्ल रसयुक्त और तृतीयावस्थामे मधुर रस युक्त बन जाता है । मधुरता आनेमे पहिलेके रसों का रूपान्तर होता है और कुछ अशमें पहिलेका रस भी शेष रह जाता है । उसका अनुभव पृथक्करण द्वारा हो सकता है । इस अदृश्य रसको अव्यक्त रस संज्ञा दी है ।

मधुर रस ।

मधुर रस (Sweet) कफवर्द्धक, वात-पित्त नाशक, शीतल और पौष्टिक है । यह रस शरीर और मनमे प्रसन्नता लाता है । सतोष देता है । तृप्ति कराता है । प्राणोंको धारण करता है । मुखके भीतर श्लेष्मा या चिपचिपे रसका आच्छादन करता तथा श्लेष्म धातुकी वृद्धि कराता है । योग्य पचन होनेपर देहको मृदु बनाता है, पुष्ट करता है तथा वीर्यकी वृद्धि कराता है।

चरक सहिताकार ने लिखा है कि मधुर रस शरीरको सात्म्य होनेपर रस, रक्त, मास, मेद, अस्थि, मज्जा, वीर्य और ओज, इन सबको पुष्ट बनाता है और आयु बढाता है । श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, घ्राण, इन पाँच ज्ञानेन्द्रिय तथा मनका प्रसादन करता है । बल, वर्ण की वृद्धि कराता है । पित्तप्रकोप, विष, वृद्ध वायु और तृषाका शमन कराता है । त्वचा, केश, कण्ठ (आवाज) को सुन्दर बनाता है । यह रस प्रीतिवर्द्धक, जीवन शक्तिवर्द्धक, तृप्तिकर, बृहण, देहको दृढ बनाने वाला, क्षीणता नाशक, क्षत संधानक (उरःक्षतको दूर करने वाला), नासिका, मुख, कण्ठ, ओष्ठ, जिह्वा, इन सबको सुख देने वाला, दाह और मूर्च्छाका शामक, भौरे और चिऊँटियोको अति प्रिय, स्निग्ध, शीतल और गुरु है ।

यदि इसका सेवन अत्यधिक किया जाय, तो स्थूलता, मासपेशियोमे मृदुता, आलस्य, अति निद्रा, देहसे भारीपन, भोजन करनेमे अनिच्छा, अग्निमाद्य, मुख और कण्ठके मासकी अतिवृद्धि, श्वास, कास, प्रतिश्याय, अलसक (विसूचिका भेद), शीतज्वर, आनाह (मलावरोध और उदरवात का अवरोध), मुँहमे मीठापन, वान्ति, सज्ञानाश (वेहोशी), आवाजमे भारीपन, गलगण्ड, गण्डमाला, श्लीपद, कण्ठशोथ, वस्ति, धमनी (वात-नाडियाँ) और ग्रन्थियोपर श्लेष्माका आच्छादन, विविध नेत्ररोग, अभि-

ष्यन्द (मुख, नाक, नेत्र आदिसे स्राव होना) आदि कफप्रधान रोगोंकी उत्पत्ति होती है।

अष्टाङ्गसंग्रहकारने अतियोग जन्य हानिके सम्बन्धमें लिखा है कि—

एवंगुणोऽपि स सदाऽत्युपयुज्यमानः
स्थौल्याग्निसाद-गुरुतालसकाति निद्राः।
श्वास-प्रमेह - गलरोग विसंज्ञताऽस्य-
माधुर्य - लोचन - गलार्बुद-गण्डमालाः॥
छर्द्युदर्द - मूर्धरुक्कास - पीनस-कृमीन्।
श्लीपद - ज्वरोदरष्ठीवनानि चावहेत॥

सर्वदा मधुर रसका अति सेवन करनेपर स्थूलता, अग्निमांद्य, देहमें भारीपन, अलसक, अतिनिद्रा, श्वास, प्रमेह, गलरोग, वेहोशी, मुँहमें मीठापन, नेत्रार्बुद, गलार्बुद, गण्डमाला, वमन, उदर्द (शीतपित्त), शिरोरोग, कास, पीनस, उदरकृमि, श्लीपद, ज्वर, उदररोग, मुँहमे चिंपचिंपे थूक की वृद्धि आदि विकारोकी संप्राप्ति हो जाती है।

इस रसका विपाक मधुर और वीर्य शीत है। पचनमें भारी है, स्निग्ध, शीतल, गुरु, मन्द (शमनकारी) पिच्छिल और स्थिर गुणकी वृद्धि कराता है। पित्त और वातको शमन करने वाला है, किन्तु शीतवीर्य होनेसे पित्त-युक्त वातके समान केवल वात प्रकोपकर उतना मात्र कार्यकर नहीं होता, किन्तु वातनाड़ियों तथा वातकेन्द्र आदि को शान्त और सवल भी वनाता है। इस तरह रस, रक्त, मांस आदि धातुओंको पुष्ट वनाता है तथा मल-मूत्रकी प्रवृत्तिमें भी सहायक वनता है।

यह रस वालकोके लिये अति हितकर है। इस हेतुसे श्रीहरिने वकरी और गौ के दूधकी अपेक्षा माताके दूध (स्तन्य) में अधिक शक्कर मिलायी है, जो वच्चोकी देहकी और वलकी वृद्धि सत्वर कराती है।

अधिक शारीरिक श्रम और मस्तिष्क श्रम करने वालोके लिए यह रस अति हितावह है। शारीरिक श्रम अधिक हो और मधुर रस कम मिले तो देह कृश होने लगती है और अकालमे वृद्धावस्थाकी प्राप्ति होती है। मानसिक श्रम अधिक हो और इस रसका सेवन कम हो तो स्मरण शक्तिका ह्रास, वुद्धिमान्द्य, उन्माद आदि की उत्पत्ति होती है। यदि आवश्यक मात्रा मे इसका सेवन होता रहे, तो वृद्धावस्थामे भी अधिक निर्वलता नही आती।

काल दृष्टिमे विचार किया जाय, तो हेमन्त और शिशिर ऋतुमे अर्थात् शीतकालमें वायु शीतल होनेसे जठराग्नि प्रवल वनती है। इस हेतुसे मधुर पदार्थ और गुरु अन्नका पचन सरलतासे होता है। यदि इन ऋतुओमे योग्य आहार नहीं मिलता, तो देह रूक्ष होती है और फिर 'वृद्धि समानं सर्वेषाम्' इस नियमके अनुरूप शीतकाल और रूक्ष देहके कारण वायुका प्रकोप हो जाता है।

वसन्तऋतु कफ प्रकोपकर है। अतः इस ऋतुमे मधुर और गुरु भोजन का सेवन कम किया जाता है। आचार्योने ईखका रस और शहदसे बनी हुई शराबका विधिवत् सेवन करनेकी आज्ञा की है।

ग्रीष्मऋतुमे मधुर रस विशिष्ट भोजन और मधुर शीतल पेय हितकर होता है। इनमे भी ठण्डाई रूपसे शक्करका सेवन अधिक हितकर है। मिश्रीमे विद्युत् स्वभाव सिद्ध रहती है। अंधेरेमे मिश्रीके टुकडेको तोड़ने पर वह विदित होती है। केवल मिश्री १०-२० तोले चबाकर खायी जाय, तो १-२ घण्टे बाद शारीरिक उत्ताप बढ जाता है। इस हेतुसे शक्कर मिला हुआ भोजन सम्हालपूर्वक करना चाहिये। इसके विपरीत ठण्डाई पीनेपर १ घण्टेके भीतर पेशाब साफ आ जाता है, शारीरिक उत्ताप कम हो जाता और मनमे प्रसन्नता आ जाती है।

वक्तव्य—जिनके मूत्र यन्त्रमे विकृति हो, उनको यह गुण प्रतीत नही हो सकेगा। सामान्यत. निरोगी मनुष्यको उक्त गुणका अनुभव होता है।

वर्षाऋतुमे वात आदि प्रकोप होनेसे जठराग्नि दुर्बल हो जाती है। अतः खाने-पीनेके पदार्थोमे शहद प्रधान मधुर रसका सेवन करना चाहिये। एवं अग्निका रक्षण हो, उस तरह वर्ताव करना चाहिये।

शरदऋतुमे सामान्यत पित्तका प्रकोप होता है। मधुर रस पित्तशामक है, किन्तु तिक्त रस सहित मधुर रसका सेवन करना चाहिये। कारण पित्त प्रकुपित होकर आम विषकी वृद्धि तथा अग्नि मन्द कराता है। इस आम विषको जलानेके लिये तिक्त रसकी आवश्यकता है।

देहके भीतर उग्रता पहुँचकर श्लैष्मिक कला फट गई हो और बारम्बार फटती हो या कैशिकाएँ टूटती रहती हो फिर नासिका, मुख, गुदा आदिसे रक्तस्राव होता हो, तो उसे दूर करनेके लिये मधुर रस प्रधान औषधिया दूध, घृत, मक्खन, मुक्ता, प्रवाल, मुलहठी, शतावरी, पिण्डखजूर, मुनक्का, गूलरके फल, कुष्माण्ड आदिका सेवन कराया जाता है। उर क्षत मे भी मधुर रसका सधान कार्य प्रतीत होता हे।

रक्तस्राव, अधिक परिश्रम, प्रवल रोग, स्तन्य दान, मानसिक चिन्ता आदि कारणोसे देह क्षीण हुई हो, तव मूल हेतुको दूर करके मधुर रसका विधिवत् सेवन कराया जाय, तो शरीर सवल वन जाता है। देहकी कान्ति नष्ट हुई हो, वह पुन प्राप्त होती है। अस्वाभाविक क्रोध आदि वढ गया हो, वह शान्त हो जाता है। वालोका वर्ण सुन्दर वन जाता है। स्तन्यकी उत्पत्तिमे न्यूनता हुई हो या अस्थिमे निर्वलता आई हो वह प्रवाल, मुक्ता और दुग्धादि मधुर द्रव्यके सेवनसे दूर हो जाती है।

अस्थिभंग पीडित, अधिक स्त्री-सेवी, अधिक व्याख्यान आदिसे जिनका कण्ठ वैठ गया हो उन सवके लिये मधुर रस-प्रधान औषधियाँ—दूध, क्षीर

विदारी, मुलहठी, शतावरी, मुनक्का आदि हितावह है। यदि विष सेवनसे मस्तिष्क, नेत्र और छातीमे उष्णता बनी रहती हो, तो सुवर्ण, मुक्ता, प्रवाल, दुग्ध, घृत आदि मधुर रसका सेवन करानेपर विष शमन हो जाता है। सक्षेपमे इस रसका सेवन अधिकारी मनुष्य विधिपूर्वक करता रहे, तो पूर्ण आयु भोगता है और वृद्धावस्थामे भी देह बल बना रहता है।

वक्तव्य—कोई भी वस्तु खाने मात्रसे लाभ नही पहुँचा सकती। सम्यक् पचन होनेपर ही गुण दर्शाती है।

सर्व पदार्थ अधिकारीको ही लाभ पहुँचाते हैं; अनधिकारीको नही। जैसे—मधुमेह और नूतन ज्वरमे शक्कर रोगकी वृद्धि कराती है। आमातिसारमे गोदुग्ध हानि पहुँचाता है। अर्श पीड़ितको कच्चा गोदुग्ध सेवन करानेपर रक्तस्राव होता है। उदर कृमिके रोगीको शक्कर-गुड़का सेवन विषतुल्य होता है। मेदोवृद्धि वालोको मधुर रस सेवन करानेपर स्थूलता की वृद्धि होती है।

अम्ल रस

खट्टा रस (Sour-Acid) वातहर, पित्त-कफ-वर्द्धक, उष्ण और पाचक है। इसके सेवनसे दांत आम जाते हैं। मुखमे लालास्रावकी वृद्धि होती है। भोजन करनेमे रुचि बढ़ती है। अम्लता अधिक होनेपर रोगटे खडे होते हैं। नेत्र और भ्रूका आकुंचन कराता है। छाती और कण्ठमे विदाह कराता है।

चरक सहिताकारने लिखा है कि, यह रस देहको स्थूल बनाता है, जीवन देता है। मनको उत्साहित करता है। इन्द्रियोको दृढ बनाता है। बल बढाता है। वायुको अनुलोम करता है। हृदयको तृप्त करता है। खाये हुए अन्नकी अन्त्रमे आगे गति कराता है। भोजनमे लाला (थूक) को मिला कर तरलमय बना देता है। सूक्ष्म बना देता है। पचन कराता है और प्रसन्नता ला देता है। यह रस लघु, उष्ण और स्निग्ध है।

यदि इसका अति योग किया जाय, तो दतहर्ष (दात आम-जाना) और तृषाकी उत्पत्ति कराता है। नेत्रोको बन्द कराता है। रोगटे खड़े कराता है। श्लेष्माको पतला बनाता है। पित्तकी वृद्धि कराता है। रक्तको दूषित कराता है। मास-पेशियोको जलाता है। देहको (सांधे-सांधेको) शिथिल कर देता है। निर्बल, क्षतपीड़ित, कृश और दुर्बल मनुष्योमे शोथ ला देता है। क्षत (घाव), अभिहत) (पत्थर आदिकी चोट), दष्ट (सर्प कुत्ते आदि द्वारा काटे गये), दग्ध (अग्नि, क्षार आदिसे जला हुआ), भग्न (हड्डी टूटना), शून (शोथमय), च्युत (स्थानसे हड्डी उतर जाना), अवमूत्रित (मूत्रविषयुक्त जन्तुओके मूत्रके स्पर्शसे छोटे-छोटे फाले होना), परिसर्पित (जिन जन्तुओके शरीरपर चलने मात्रसे ही विषप्रकोप होता हो, उनके

स्पर्शसे पीड़ा होना) मर्दित (मासपेशियां आदि दबकर शून्य हो जाना), छिन्न (दो या अधिक टुकडे हो जाना), भिन्न (विदीर्ण होना), विश्लिष्ठ (चोट लगनेपर सांधे ढीले हो जाना), विद्ध (काटे, सूई आदिका चुभना), उत्पिष्ट (अङ्ग कुचल जाना) आदि पीडित स्थानोंको पका देता है। क्योंकि, यह आग्नेय स्वभाववाला हैं। एवं कण्ठ, छाती और हृदयमे जलन कराता है।

अम्ल रस पृथ्वी और अग्निप्रधान है। इस रसका विपाक अम्ल होता है। वीर्य उष्ण है। इस हेतुसे पाचन, भ्रम, तृषा, दाह आदि कराता है। पाचन, भ्रम, तृषा, दाह आदि, ये सब पित्तवृद्धि होनेपर होते है। देहके भीतर जहाँ जहाँ दाह होता है, वहाँ वहाँ पर दाहको शमन करनेके लियें श्लैष्मिक रस उत्पन्न होता रहता है। परिणाममें कुछ कफवृद्धि भी होती है।

अम्ल रसको वात-शामक कहा है; किन्तु सब प्रकारके वात रोगोंको दूर नही करता। उदरमे आफरा, शूल, वायु भरा रहना आदि विकार हों, उनको यह दूर कर देता है। वातनाड़ियोके क्षोभ (Inflammation) पक्षवध, सर्वाङ्गवध, आक्षेप आदि रोगोपर इस रसके सेवनसे योग्य लाभ नही मिलता।

जिन मनुष्योके रक्तकी प्रतिक्रिया क्षारीय हो या उदासीन हो (अम्लीय न हो), उनके लिये अम्ल रस हितकर है। रक्तकी प्रतिक्रिया अम्ल बन जानेपर मूत्रकी प्रतिक्रिया अम्ल बनती है। ऐसी अवस्थामे अम्ल पदार्थ खानेपर दंतहर्ष, साधो साधोका टूटना, नाडियोका खिंचना, अम्ल विपाक-युक्त भोजन करने (चावल खाने) पर १ घण्टे बाद उदरमे भारीपन हो जाना, स्वप्नदोष, निद्रावृद्धि, उत्साहका ह्रास आदि लक्षण उपस्थित होते है। ऐसे मनुष्य अम्ल रसका सेवन वारम्बार करते रहे, तो साधो साधोमे वेदना, श्वास, कास, आम-ज्वर आदि हो जाते है। अतः अनधिकारीको अम्ल रसका सेवन कम करना चाहिये तथा अधिकारीको भी अति सेवन नही करना चाहिये।

अम्ल रस पाचक होनेसे पित्त और रक्तकी वृद्धि कराता है। जब पित्त स्वस्थ हो उस समय यह लाभ मिलता है। विदग्धाजीर्ण, अम्ल-पित्त आदि, जिनमे आमाशयस्थ पित्त बढा हुआ रहता हे अर्थात् आमाशयिक रस (Gastric juice) में लवणाम्ल (Acid Hydrochloric) बढ जाता है, उन मे, अम्ल रस का कार्य वेसा नही हो सकता। भोजन के साथ अम्लरसका सेवन करने पर पित्तप्रकोपमें वृद्धि हो जाती है। यदि पित्त प्रकोपकी प्रथमावस्था है, भोजनके बाद ही अधिक स्राव होता है (भोजनके पहिले आमाशयमे पित्त नही रहता), तो भोजनके २०-३० मिनट पहिले परिपक्व ताजे नीबूको १०-२० तोले जलमे निचोड़, ३-४ माशे शक्कर

मिलाकर पिलाने पर अधिक पित्तस्रावका रोध होता है। प्रातः कालको आमाशयमे खट्टा पित्त संगृहीत हो गया हो, तव अम्ल रसका सेवन कराया जायगा, तो अधिक हानि पहुँचती है। ऐसी अवस्थामे तो वमन करा कर या आमाशय नालिकासे आमाशयको धोकर साफ कर देना पड़ता है और अम्ल रसका सेवन अति कम कराया जाता है। केवल आंवले आदि जैसी सौम्य खटाई दी जाती है। अम्ल पित्तके समान रक्त पित्तके कितनेक प्रकारोंमे भी अम्लरसका संकोच करना पड़ता है जव आमाशयमे पित्तस्राव कम होता हो, तव लवण रस सहित अम्ल रसका सेवन आशीर्वादके समान है। (केवल अम्ल रसका सेवन करने पर आमाशय रसस्राव कम हो जाता है) अम्लरस रक्तह्रास पर भी उपकारक है। यह सरलतासे रक्तको वढा देता है। फिर हृदयको भी सवल वना देता है।

सुश्रुत संहिता, अष्टांग संहिता आदिके ग्रन्थकारोने अम्ल रसको हृद्य कहा है। हृद्यके २ अर्थ है। हृदयके लिये हितकारक तथा मनको प्रसन्न करनेवाला। अम्ल रस इन दोनों गुणोंको दर्शाता है। मनको रुचिकर तथा दीपन-पाचन होनेसे रसधातुकी उत्पत्ति अधिक कराता है। रस धातु सवल होनेपर उनसे उत्पन्न रक्त आदि धातु भी सवल वनती हैं। हृदय मांसपेशी से वना है। व्यापक मास-धातुको वल मिलने पर हृदय भी दृढ वन जाता है। हृदयपर अम्ल रसका विशेष प्रभाव पड़ता है। इस हेतुसे भगवान् आत्रेयने हृद्य कषाय वर्गमें आम्र, अनार, इमली, वेर, विजौरा, अम्लवेत वडे वेर, अवाडा, करौंदा, वड़हल, इन १० अम्ल रसप्रधान औषधियोका ही संग्रह किया है।

अम्ल रस आग्नेय तत्त्वप्रधान होनेसे इसका मुख्य कार्य अग्नि प्रदीपन है। अग्नि प्रदीप्त होनेसे आहारका पचन सम्यक् और अधिक होता है। इसके अतिरिक्त रस, रक्त, मांस, वीर्य आदि सव धातुओंमे अग्नितत्त्वका कार्य अधिक होना है। जिससे उत्पन्न दोष, विष और आगन्तुक कीटाणुओं का नाश होता रहता है। एवं आमविष या कीटाणुविषजजन्य हानिसे देहका संरक्षण होता रहता है।

अम्लरसमे दीपनके अतिरिक्त पाचन गुण भी अवस्थित है। दीपन गुण अग्निको प्रदीप्त करता है, किन्तु दीपन गुणयुक्त द्रव्य आमका पचन नही कराता। पाचन गुण युक्त द्रव्य आमका पचन कराता है, यह इन दोनों गुणो मे प्रभेद है। अम्लरसमे ये दोनो गुण होनेसे अग्नि प्रदीपनके अतिरिक्त आमाशयके भीतर योग्य पचन कराता है तथा अन्त्रगत आहारके पचनमे भी सहायता पहुचाता है, इस तरह आमको पचानेका सम्यक् प्रकार से करता है। जिससे ज्वर आदि रोगोंकी उत्पत्तिमे प्रतिवन्ध होता है।

अम्ल रसयुक्त पदार्थसे रुचि वढ़ती है। अनेकोंको तो दर्शन मात्रसे ही

मुंहमे थूंक बढ़ने लगजाता है। इस अम्लरसके मिश्रणयुक्त भोजनमे लाला-मिश्रण अधिक होता है और अनाज अच्छी तरह चबाया जाता है। यदि अम्ल रसको लवणके साथ मिलाया है, तो आमाशयिकपित्त भी अधिक स्रवित होताहै। पश्चात् अन्त्रमे भोजन जानेपर उसीके अनुरूप सब भोजनको नमकीनबनानेके लिये यकृत्पित्तका स्राव भीअधिक होता है। फिर शोषण क्रिया भी अधिक होती है इस तरह रुचिकर भोजन देहको पुष्ट बनानेमे सहायक बनता है।

सुश्रत संहिताकारने इसे 'वहि शीत:' और अष्टाङ्ग सग्रहकारने 'शीतस्पर्श.' लिखा है। इसका शीतस्पर्श जिह्वा, त्वचा और मन द्वारा विदित होता है। गर्मीके दिनोमे इसी गुणके हेतुसे शर्बत नीबू, शर्वत सन्तरा आदि का उपयोग होता है। पजाबमे मट्ठे को काममे लेते है। इनसे थोडे समयमे पेशाब साफ आ जाता है। फिर उष्णता दूर होकर शीतलता आ जाती है।

आगे आचार्योने इसे 'पवननिग्रहणो (अनिलनिबर्हणो) ऽनुलोमन.' कहा है अर्थात् उदरवातका यह निग्रह करता है तथा मूढ वातका अनुलोमन करता है (आमाशय वायुकी ऊर्ध्वगति तथा अन्त्रस्थ वायुकी अधोगति करा बाहर निकाल देता है) उदरमे दुष्टवायुकी उत्पत्ति और स्थिति हो तो भोजनकी गति सम्यक् नही होती। फिर मलावरोध होता है, उदरमे दुर्गन्ध उत्पन्न होती है। मलमेसे प्रवाही रसका शोषण रक्तमे होनेपर रक्त-दुष्टि होती है। पश्चात् मस्तिष्कस्थ केन्द्र दूषित होते है और अनेक रोगो कीसृष्टि होती है। अम्ल रस इस हानिकी परंपराको रोक देता है।

चरक संहिताकारने 'भुक्तमयकर्षयति क्लेदयति जरयति, कहा है; अर्थात् अम्ल रस आहारको नीचे ले जाता, गलाता है और पचाता है। अम्ल रसमे पृथ्वी तत्वकी भी प्रधानता होनेसे वह आहारको नीचे ले जाता है, आहारमेसे सत्वका सम्यक् शोषण कराता है तथा शौच शुद्धिमें भी सहायता पहुंचाता है।

अम्ल रसमे स्वाद अधिक रहा है। इस हेतुसे जिह्वा लोलुप मनुष्य इसका अतियोग करते है तथा अनधिकारी मनुष्य जानते हुए भी इस रसके स्वादको छोड नही सकते। परिणाममे सधिवात, कण्डू, पाण्डू, भ्रम (चक्कर आना), शोथ, तिमिर आदि रोगसे पीडित हो जाते है। इस सम्बन्धमे अष्टाङ्ग संग्रहकार लिखते है—

जनयति शिथिलत्वं सेवित सोऽति देहे
कफविलयन कण्डू पाण्डुता दृग्विघातान्।
क्षतविहतविसर्प रक्तपित्तं पिपासां
श्वयथुमपि कृशाना तैजसत्वाद् भ्रमं च ॥

अनेक अनधिकारियोंको अम्ल रसकी अधिकतासे दूसरे ही दिन साधों

की शिथिलता, नाडियोका खिचाव, रात्रिको स्वप्नदोष, मूत्रका कुछ अंशमे अवरोध, व्याकुलता, मुखपर कुछ शोथ और ज्वर आदिकी संप्राप्ति करा देता है। जिनको पहिले सुजाक, फिरग आदि हुए हो, अथवा अन्य हेतुसे वृक्कविकार हो गया हो, उनको अम्ल रसका दुष्परिणाम सत्वर प्रतीत हो जाता है।

वहुत दिनो तक अम्ल रसका अतियोग होनेपर कफ धातुका विलयन हो जाता है। फिर पित्तधातु प्रकुपित होकर त्वचापर शुष्कता ला देती है और कण्डूकी उत्पत्ति करा देती है। किसी को विसर्पकी प्राप्ति भी हो जाती है।

निर्वल यकृत् वाले महिनो तक अम्ल रसका अतियोग करते रहे तो उनका रक्त दूषित हो जाता है, उसमेसे रक्तरंजक पदार्थ कम हो जाता है फिर मुखमण्डल और देह निस्तेज वन जाते है। पचनक्रिया सम्यक् कार्य नही करती। मलावरोध बना रहता है। मस्तिष्क अस्वस्थ बन जाता है। मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, वीर्य आदि धातुऐं दूषित हो जाती है। मज्जा दूषित होनेपर भी अम्ल रसके सेवनमे निग्रह नही होता, तो रक्तके भीतर अस्वाभाविक जीव केन्द्रयुक्त रक्ताणु और श्वेताणुओकी उपस्थिति होती है। फिर शोथ वढने लगता है और रोग अधिक दृढ वन जाता है।

तक्रको आचार्योंने कषायाम्ल कहा है। तक्र और अन्य अम्ल रस रक्त की प्रतिक्रिया अम्ल वन जाने और विग्धाजीर्ण हो जानेपर अनुकूल नही रहते फिर भी तक्र या अन्य अम्ल रसका आग्रह पूर्वक सेवन कराया जाय, तो रक्तपित्तकी सप्राप्ति हो जाती है।

कुछ वर्षो पहले एक रुग्णा इन्दौरमे संग्रहणीकी चिकित्सा करा रही थी। उसके आमाशयका पित्त अति तेज था इस हेतुसे उसे तक्र नही देना चाहिए। फिर भी चिकित्सकने कुछ भी सुनाई न करते हुए तक्र कल्प कराया। परिणाममे २५ दिन पश्चात् रूग्णा अति निर्वल वन गई। रक्तपित्त हो गया। मुँहसे रक्तस्राव होने लगा, चक्कर आने लगे। निद्रा दूर हो गई। रात्रिको थोडे थोडे समयमे पेशावके लिये उठाना पड़ता। फिर दुग्धकल्पका प्रारम्भ कराया, तव १५ दिनके वाद दुष्ट लक्षण शमन हुए थे।

जो मनुष्य अम्ल रसमे अधिक प्रीति रखते है, उनमेसे अनेकोंको नेत्र-विकार हो जाता है। अभ्राङ्क हृदयकार तिमिर रोग होनेका लिखते है। तिमिररोग पहिले, दूसरे, तीसरे, चौथे पटलमे क्रमश: गति करता है। चौथे पटलमे जानेपर उसे लिङ्गनाश (कांचविन्दु) कहते हैं। यह रोग अम्ल रस, सूर्यका ताप, अग्नि, धूम्रपान इनका अधिक सेवन करनेवालोको अधिक होता है। संसारके अन्य देशोके अपेक्षा भारतमे काच विन्दु पीड़ितोंकी

संख्या अनेक गुनी अधिक है। इसी हेतुसे अमरिका और यूरोपसे नेत्रविशेषज्ञ अपना अनुभव बढानेके लिये भारतमे आते रहते है।

जिन मनुष्योंको व्रण-विद्रधि हुआ हो, वे, अम्ल रसके सेवनमे आसक्त होते है, तो उसे कठिन और दुष्ट नाडी व्रणकी संप्राप्ति हो जाती है। अम्ल रस, रक्तको अम्ल बना देनेमे सफल हो जाय, तो शस्त्रके घाव पक जाते है। इसी हेतुसे शस्त्रका घाव लगनेपर अम्लरसका निषेध किया जाता है।

काल दृष्टिसे आचार्योंने कहा है कि, वसन्त ऋतु आनेपर कफ प्रकोप को दूर करनेके लिये वमन क्रियाका आश्रय लेना चाहिये, तथा कफ वृद्धि वालोंको 'गुर्वम्लस्निग्ध मधुर दिवास्वप्नं च वर्जयेत्' अम्लरसका सेवन कफशोधन होने तक छोड देना चाहिये।

सामान्यत. ग्रीष्मकालमे अम्ल रसके सेवनमे प्रीति न रखनी चाहिये। इस सम्बन्धमे आचार्योंने कहा है कि, 'लवणाम्लकटूष्णानि व्यायामं चात्र वर्जयेत्'। फिर भी वर्तमानमे विलासी लोग गरम गरम चाय, गर्म भोजन और खट्टे रसके सेवनमे कुछ भी सकोच नही करते। परिणाममे वे नाना प्रकारके रोगोसे पीडित होते रहते है।

वर्षा ऋतुमे वात और वर्षाके कारण अधिक शीत होनेपर, उसकी शान्ति के लिये खट्टे-नमकीन रसका सेवन करना चाहिये। आचार्योंने लिखा है कि—

व्यक्ताम्ल लवण स्नेहं वातवर्षा कुलेऽहनि।
विशेषशीते भोक्तव्य वर्षास्वनिलप्रशान्तये॥

शरद् ऋतुमे स्वाभाविक पित्त प्रकोप होता है। उसे शान्त करनेके लिये पित्तशामक तिक्तद्रव्योका सेवन हितकर तथा पित्त-कफ-वर्द्धक दधि आदिका सेवन हानिकर माना जाता है।

हेमन्त ऋतुमे जठराग्नि प्रबल होने लगती है। उस समय स्निग्ध, अम्ल लवण रसका सेवन हितकर होता है।आचार्योंने शिशिर ऋतुमे भी हेमंत निर्दिष्ट आहार-विहारके सेवनकी आज्ञा दी है।

अम्ल रस कफकी तरलताका ह्रास कराता है। इस सम्बन्धका वर्णन आगे कफघ्न गुणके साथ किया जायगा।

लवण रस।

नमकीन रस (Saltısh) मे जल और अग्नितत्वकी प्रधानता है। यह वातहर कफ-पित्त-वर्द्धक, उष्ण, वीर्य, मधुरविपाकी, पाचक, दाहक और अचक्षुष्य है।

भगवान् आत्रेयने लिखा है कि, लवण रस पाचन, क्लेदन (अन्नको गलाने वाला) दीपन, च्यावन (स्राव करनेवाला), छेदन (चिपके हुए दुष्ट कफ आदि को उखाड़ने वाला), भेदन (बद्ध मलादिका भेदन करानेवाला), तीक्ष्ण, सर

(अनुलोमन), विकाषी (संधिवन्धनोको शिथिल करनेवाला), अधःस्त्रंसी (उदरमें संगृहीत मल आदिको विना ही पकाये नीचेकी ओर गिरानेवाला), अवकाश कर (स्थानको रिक्त वनानेवाला), वातहर, स्तम्भित, वद्ध (कठोर मल) और संगृहीतमलोका नाशक, शेप सव रसोका विरोधी (भोजनोमें नमक अधिक हो जानेपर सव रसोका स्वाद मारा जाता है), मुखमे लालस्रावको वढानेवाला, कफस्रावी, मार्गशोधक, देहके सव अवयवोको मृदु करनेवाला, भोजनमे रुचि लानेवाला तथा भोजनमे सर्वदा और सर्वथा उपयोगी है। यह अति गुरु और अति स्निग्ध नही है। यह उष्ण है।

इन गुणोंसे युक्त होनेपर भी इसका अतियोग होनेपर पित्तको प्रकुपित करता है। रक्ताभिसरण क्रियाको उत्तेजित करता है। तृषा वढाता है। मूर्च्छा (चक्कर) ला देता है। संताप कराता है। हाथ-पैरोके तलोकी त्वचा फट जाती है या फूटनी कराता है। मांसपेशियोको शिथिल वनाता है। कुष्ठ गलने लगता है। सेन्द्रिय विपकी वृद्धि कराता है। शोथकी अति वृद्धिकरा उसे फाड देता है। दातोंको गिराता है। पुंसत्वक नष्ट करता है। इन्द्रियों को निर्वल वना देता है, जिससे वह अपने कार्य करनेमें असमर्थ हो जाती है। झुर्रियां पड जाना, वालोंका श्वेत हो जाना आदि वृद्धावस्थाके चिन्ह उत्पन्न कराता है तथा खालित्य (गंजापन) की प्राप्ति कराता है। एवं रक्त पित्त, अम्लपित्त, विसर्प, वातरक्त, विचर्चिका, इन्द्रलुप्त प्रभृति विकारोको उत्पन्न कराता है।

महर्षि वाग्भट्टाचार्यने अष्टाङ्गसंग्रहमे लिखा है कि—

खलति-पलित-तृष्णा-ताप- मूर्च्छा-विसर्प—
श्वयथु-किटिभ-कोठाक्षेप- रोधास्रपित्तम्।
क्षत-विप- मदवृद्धि वातरक्त करोति—
क्षपयति वलमोजः मोऽति वा सेवनेन ॥

नमकका अति सेवन करनेपर गंजापन, वालोंका श्वेत हो जाना, तृषावृद्धि, व्याकुलता, मूर्छा, विसर्प, शोथ, किटिभ, कुष्ठ, कोठ (शीतपित्त भेद), आक्षेप रोध (रक्ताभिसरण और हृदयका रोध) रक्तपित्त, क्षतवृद्धि, विपप्रकोप, मदवृद्धि (नशा-सा रहना), वातरक्त, वलक्षय, और ओजक्षय कराता है।

लवणरसमे विशेषतः लवणका ही उपयोग होता है। लवणको डाक्टरी में सोडियम क्लोराइड (Sadium Chloride) संज्ञा दी है। उसका सांकेतिक अक्षर Nacl है। अल्प मात्रामे यह अग्निप्रदीपक, वालकारक, परिवर्त्तक (Alterative) है। अधिक मात्रामें वामक, विरेचक, कृमिघ्न है। अत्यधिक मात्रामें आमाशय और अन्त्रमे प्रदाह उत्पादक है। वाह्य स्थानिक प्रयोगोंमे उग्रतासाधक तथा व्रणपाकका रोधक है। परिवर्तक मात्रा १० से ६० ग्रेन। वमन-विरेचनार्थ आधसे २ औंस तक निवाये जलके

साथ। स्नानार्थ १ गेलन जलमे ४-६ औंसके हिसाबसे। इसके अतिरिक्त नमकके जलसे कुल्ले भी कराये जाते है।

नमक ३ गुने शीतल जल और १० गुने ग्लिसरीनमे गल जाता है।

लवण, यह सर्वरसोमें राजा रूप है। बिना लवण भोजनमें स्वाद नही आ सकता। सेन्द्रिय विषको नष्ट करनेके लिये लवणकी अत्यावश्यकता है। ससारमे भी दूषित वायुके शोषणका कार्य लवण (लवणप्रधान समुद्र) ही कर रहा है। दुकान या मकानमे नमक खुला रहनेपर वायुका आकर्षण करता रहता है। इसी हेतुसे वर्षा ऋतुमे वह गीला हो जाता है।

लवणका उपयोग ससारमे सर्वत्र हो रहा है। पाश्चात्य देशोमे जिस तरह सम्हालपूर्वक रखते है, उस तरह सम्हाल भारत आदि निर्धन देशोमे नहीं होती। अपने स्वास्थ्यका सरक्षण करनेवालो को चाहिये कि, बाजारसे खरीद किये हुए समुद्र नमक और साभर नमकको शुद्ध करके उपयोगमे लेवे। समुद्रनमक और सांभरनमक बनानेके समय बहुतसा धूला, रेता और कीड़े उडकर उसमे मिल जाते है। तैयार होनेके पश्चात् उसपर चूहे मूतते रहते है, मकडी जाला बॉधती और छिपकली उसमे फिरती रहती है। छोटे छोटे जन्तु उसमे मरते रहते है, धूल गिरती रहती है और दूषित वायु आकर्पित होती रहती है। ऐसे नमकको भोजनमे मिलाना, यह अनेक रोगोको आह्वान करनेके समान है। यथार्थमे नमकको जलमें मिलाकर छान लेवे। फिर कड़ाहीमे उबालकर सुखा देनेपर चूनेके समान उज्वल बन जाता है। उसे अमृतबानमे भर लेवे और उसमेंसे उपयोग करते रहे, तो सर्व दोषोंसे बचाव हो जाता है तथा योग्य गुणकी प्राप्ति हो जाती है।

लवणरसको वातहर कहा है। यह क्रिया उष्ण, गुरू और स्निग्ध गुणके हेतुसे होती है। यह वातहरपना समस्त वात रोगोमे स्पष्ट प्रतीत नही होता, किन्तु उदरमे उत्पन्न वातपर स्पष्ट प्रतीत होता है। उदरमे अफारा वेदना, शूल या भारीपन हो, उनको वह दूर करता है। यदि यह शूल कीटाणुजन्य हो तो कीटाणुओको नष्ट करता है, विषको जलाता है और संगृहीत मलको आगे फेक देता है।

लवण पित्तवर्द्धक है, यह कार्य अग्नि रसकी प्रधानताके हेतुसे होता है। भोजनमे जितना नमक अधिक होगा, उतना ही लाला निस्सरण कम और आमाशयिक रसस्राव अधिक होता है। पुन आहार रसको आमाशयमेसे अन्त्रमे जानेपर नमकीन बनानेके लिये आमाशय रसके अनुपातमे यकृत्को पित्तस्राव करना पडता है। आमाशय रस और यकृत् इन दोनोको आयुर्वेदमे पित्त कहा गया है। इन दोनोका स्राव करानेमे नमक हेतु होता है।

इस पित्तवर्द्धक गुणके हेतुमे लवणमे अग्निप्रदीपक, पाचक, रोचक गुण

प्रतीत होते है। लवणके साथ अम्लरसका संयोग होनेपर इसका कार्य प्रवलतर वन जाता है। पाचन गुणके हेतुसे आमका सम्यक् पचन होता है। कीटाणु और विप नष्ट होते है तथा उदरमे दुर्गन्धकी उत्पत्ति नही होती। रोचक गुण होनेसे जिह्वा और मुखकी शुद्धि होती है। लालास्राव अधिक होता है, इससे भोजनमे संतोप मिलता है और देहबलकी वृद्धि होती है।

लवण रसके सेवनसे कुछ स्निग्ध गुणकी प्राप्ति होती है। यह स्नेहन कार्य सर्व पदार्थोमे सम्मिलित हो जानेके हेतुसे प्रतीत होता है। भोजन स्नेह प्रधान (घृत-तैल युक्त) हो, तो उसकी स्निग्धताको लवण चारो ओर सत्वर फैला देता है। फिर उस हेतुसे त्वचामे तेजी आ जाती है।

लवण रसमे अग्निके साथ जलतत्वकी भी प्रधानता है। इस हेतुसे लवणको कफवर्द्धक भी माना है। लवणमे गुरु स्निग्ध गुण होनेसे तथा विपाक मधुर होनेसे कफधातुकी वृद्धि होती है। सामान्यत. पित्तकी तीक्ष्णता उत्पन्न होनेपर उस स्थानमे तीक्ष्णताके शमनार्थ कफधातु (पतला कफ द्रव) उत्पन्न होती है। जो देहको मोटा वनाती है। लवण, कफ-मलकी वृद्धि तो केवल प्रदाहावस्थामे ही क्वचित् परम्परागत कराता है। सामान्यतः यह संगृहीत कफ-मलको नष्ट करनेका कार्यकर देता है।

मानव देहके भीतर लवण अन्य धातुओकी अपेक्षा रक्तमे रहता है। रक्तके भीतर रक्ताणु, श्वेताणु, रक्तचक्रिकाएँ और रक्तरस ये ४ विभाग है। इनमे रक्तरसके (Blood plrsma) के भीतर नमक रहता है। मनुष्य जो वनस्पति आहारका सेवन करता है, उस आहारमे स्वाभाविक ही नमक वर्त्तमान है। यह नमक पोटास युक्त है। इस आहारमेसे रस बनकर फिर रक्तमे प्रवेश करता है, तव इसके साथ पोटासयुक्त नमक भी रहता है। रक्तरसके भीतर जो नमक है वह सोडायुक्त है। इन दोनो नमकोंका संयोग होनेपर रासायनिक विश्लेपण होता है। पोटास क्लोराइड और सोडा कार्वोनेट या फोस्फेट निर्मित होता है, जो शारीरिक रचनामे अनावश्यक माना गया है। जिससे उसे (कार्वोनेट या फोस्फेटको) अपरिवर्तित रूपमे ही देहमे वाहर निकाल दिया जाता है। इस सम्मिलन या युद्धमें नमक (सोडा क्लोराइड) का ह्रास होता है। जिससे भोजनमे इसकी आवश्यकता रहती है।

भोजनमे जो नमक लिया जाता है, उसके विशेपांगका त्याग, पोटास क्लोराइडके रूपमे मूत्र द्वारा होता और उसका कुछ अंश मल और स्वेद द्वारा वाहर निकलता रहता है। कितनेक रोग—फुफ्फुसप्रदाह और कर्कस्फोटके नूतन तन्तुओकी वृद्धि होनेपर वृक्कप्रदाह हो, तो मूत्र द्वारा नमकका वाहर निकालना नहीं हो सकता या अति कम होता है। ऐसी अवस्थामे नमकका सेवन होता रहेगा तो रक्तके भीतर लवणका अत्यधिक

संग्रह हो जायगा। फिर अनेक रोगोका निर्माण होगा।

नमक उष्ण वीर्य होनेसे स्वेदकी वृद्धि करता है। इसी हेतुसे आचार्योंने स्नेहनके साथ स्वेदन गुण भी दर्शाया है। इस स्वेदन क्रिया द्वारा देहगत विष बाहर निकलता रहता है। यदि स्वेदका अवरोध हो जाय तो विष वृद्धि होने लगती है। अधिक नमकका सेवन होनेपर स्वेद ग्रन्थिया शोथ पीडित हो जाती है। फिर सूजन बढने लगती है।

यदि लवणका सेवन न किया जाय, तो आहारमे मिला हुआ विष देहमे रह जानेसे रक्तके भीतर लवणका अभाव हो जायगा, उससे विषका असर देह और मस्तिष्कपर होनेके पश्चात् विविध रोगोंकी उत्पत्ति होकर पचन क्रिया मन्द हो जायगी, मासपेशियोंकी शक्तिका ह्रास हो जायगा, मस्तिष्क शक्ति भी शिथिल हो जायगी और बाहरसे प्रविष्ट कीटाणुओको नष्ट करने का कार्य योग्य रूपसे नही हो सकेगा।

अत्यधिक रक्तस्राव, एवं विसूचिकाके हेतुसे रक्तमेसे रक्त रसका क्षति हो जाना क्लोरोफार्मका प्रयोग, अस्त्र.चिकित्साजनित बेहोशी, शक्तिपात, प्रबल दीर्घ स्थायी ज्वरमें नाडी अति क्षीण और शरीर शीतल हो जाना आदि अवस्थाओमे लवण जलका अन्त सेचन (Infusion) कराया जाता है। यह अन्तःसेचन गुदा मार्गसे और त्वचाके नीचेसे होता है। इसकी विधि रुग्णपरिचर्याके भीतर ६ ठवे प्रकरण उपचार पद्धतिके २५ और २७-वे भागमे दर्शायी है।

डाक्टर घोषने मेटेरिया मेडिकामे दर्शाया है कि, विसूचिकाकी चिकित्सामें लवणजलके अन्त सेचनसे बहुत अच्छा परिणाम होता है। उसके लिये निम्नलिखित मिश्रणको विशेष लाभप्रद माना है।

लवण (सोडियम क्लोराइड)	१२० ग्रेन
पोटास क्लोराइड	६ ग्रेन
केल्शियम क्लोराइड	४ ग्रेन
विशुद्ध वाष्प जल	१ पिण्ट

इस मिश्रणके भीतर सोडाबाई कार्ब ४० ग्रेन और द्राक्षशर्करा (ग्लुकोज) १४ ग्रेन मिला लेना विशेष हितावह है। यह मिश्रण लगभग ३ पिण्ट तक दिया जाता है।

मस्तिष्क शोथ और करोटिके भीतर दबाव वृद्धि होनेपर शिरा द्वारा लवण जलका सेचन किया जाता है। मस्तिष्क गत अर्बुदजन्य दबाव वृद्धि वृकसन्यास (रक्तमे मूत्रविष वृद्धि और मस्तिष्कावरण प्रदाहके तात्कालिक लक्षणोकी उपस्थिति होनेपर सामयिक शान्ति पहुँचानेके लिये अन्त.सेचन किया जाता है (२० से ३० प्रतिशत द्रावण मेसे ३० मिली मीटर अर्थात् लगभग १ औस); परन्तु मस्तिष्क चोट, मस्तिष्क दबावके प्रबल लक्षण-

समूहकी उत्पत्तिके पश्चात् और कितनेक प्रकारके सिर दर्दमें इसका समर्थन कम हुआ है।

अति रक्तस्राव, रक्तमेसे रक्तद्रवका ह्रास आदिसे उत्पन्न वेहोशी या शक्तिपात, कतिपय सेन्द्रिय विषप्रकोपमय स्थिति, कार्वन मोनोक्साइड गेसजन्य विपाक्त, अपूर्ण पोषण और क्लान्ति पीड़ितोंको शिरा या गुदा द्वारा लवणजलका अन्त सेचन किया जाता है। ९ प्रतिशत अर्थात् १ औंस विशुद्ध जलमे १८ ग्रेन नमक।

यदि रक्त सवल होगा, तो मांस, मेद आदि धातुएँ भी सबल बनेगी। रक्त मेसे लवणका ह्रास होगा, तो मांस पेशियां शुष्क और कठोर बन जायंगी। उनकी वृद्धिमे प्रतिबन्ध होगा। वायुका आक्षेप होता रहेगा और फिर विक्रियां भी होने लगेगी।

यदि लवणका सेवन अत्यधिक होगा, तो रक्तमें लवणकी मात्रा बढ़ जायगी। फिर तृषा बढेगी। जिससे जलपान अधिक करना पडेगा। वृक्कोको अधिक श्रम पहुँचेगा। पश्चात् शनै. शनै वृक्कप्रदाह, कण्डु, शोथ, रक्तपित्त, धमनीकोषकाठिन्य आदि रोग उपस्थित हो जायगे।

लवण उष्ण वीर्य होनेसे देहमे अत्यधिक मात्रा हो जाने पर मज्जा, शुक्र और ओज, जो शीत गुणभूयिष्ठ है, उनको बहुत हानि पहुँचती है। मज्जा क्षय होने पर नेत्रकी दृष्टि भी मन्द हो जाती है। हानि होते हुए भी नमकका ह्रास नही होगा तो त्वचा, मास लसिकावाहिनियो, लसिका ग्रन्थियोमे कोथ होगा। फिर वातरक्त और कुष्ठरोगकी प्राप्ति हो जायगी।

त्वचा, पर घावमे कीटाणु प्रवेश हो जानेसे वहाँ पर गलानावस्था उत्पन्न हुई हो या घावकी गलनक्षम (Septic) हो तो उसे लवण-धावनसे धोया जाता है। नमक ४ भाग, सोडा साइट्रस १ भाग और जल १२० भाग मिलाया जाता है। डाक्टरीमे इमेराइट्‌काधोवन(Wrights' solution)संज्ञा दी है।

उसका उपयोग नाडीव्रण, विद्रधि और गुदाप्रदेशको धोनेके लिये किया जाता हैं।

विषप्रकोप, आमाशयमें आमवृद्धि रौप्यक्षार (Silver Nitrate) के सेवनसे उत्पन्न विष, जलौका आमाशयमे चला जाना या नासिकासे ऊपर चढ़ जाना आदि विकारोमे लवणजलका पान कराकर वमन करायी जाती है।

यदि अन्त्रमे सूत्र जैसे कृमि (Thread worms) हो गये हो, तो गुदा मार्गसे लवणजल चढाया जाता है। परन्तु ४ औंससे ज्यादा नमक नहीं लेना चाहिये, इससे उपस्थित कृमिओको नष्ट करना और उनकी भावी उत्पत्तिको रोकना, इन दोनो कार्योंकी सिद्धि होती है।

यदि लवणजलका अन्त.सेचन अधिक होगा तो कृत्रिम मधुमेह Glycosuria, मन्द ज्वर और क्वचित् लसिकामेह (Albuminuria) की प्राप्ति

हो जाती है। कभी कभी फुस्फुसशोथ और हृदयका अत्यधिक प्रसारण होकर मृत्यु भी हो जाती है।

कण्ठमाल, गलगण्ड, कफप्रकोप, कफमय जीर्ण श्वासरोग आदि रोगोमे लवण जलसे स्नान तथा समुद्र तट पर निवास कराना हिताव माना जाता है।

पूयमय अभिष्यन्द रोगमे नेत्रोको धोनेके लिये नमक जलका उपयोग किया जाता है।

कालदृष्टिसे आचार्योने लिखा है कि, ग्रीष्मऋतुमे नमकका सेवन कमसे कम करना चाहिये। इस तरह शरद् ऋतुमे भी जब कि गर्मी अधिक पड़ती है तो उस समय भी नमक कम कर देना चाहिये।

यदि रक्त दबाव वृद्धि या धमनिकोषकाठिन्य नया रोग हो तो रक्तदबाव कम करनेके लिये कुछ समयके लिये नमकका त्याग करना पड़ता है।

तिक्त रस।

कडुवा रस (Bitter) वायु और आकाश-तत्व-प्रधान होनेसे वातवर्द्धक पित्तनाशक, कफनाशक और अग्निप-प्रदीपक है। इस रसका विपाक कटु और वीर्य शीतल है।

चरकसहितामे लिखा है कि, कडुवे रसके सेवनकी मनुष्योकी स्वभाविक रुचि नही होती, किन्तु यह अरुचिका नाशक है। यह विषहर, कृमिनाशक, मूर्च्छा, दाह, कण्डू, कुष्ठ और तृषाको शमन करनेवाला, त्वचा और मासको दृढ बनानेवाला, ज्वरघ्न, दीपन, पाचन, स्तन्यशोधक, लेखन, क्लेद (गीलापन), मेद, वसा' मज्जा, लसिका, पूय, स्वेद, मूत्र, मल, पित्त और कफ, इन सबको सुखानेवाला, रूक्ष, शीतल और लघु है।

इसका अतियोग होनेपर रौक्ष्यके हेतुसे तथा खर और विशद (क्लेदशोषक) स्वभाव होनेसे रस, रक्त, मास, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र, इन सातो धातुओको सुखाता है। स्रोतोको खुरदुरा बना देता है, बलका हरण करता, देहको कृश बनाता, क्लान्ति, बेहोशी, भ्रम (चक्कर) ला देता, मु हको सुखा देता है एव इनके अतिरिक्त इतर वातविकारो (मन्यास्तम्भ, आक्षेप, अर्दित आदि) को उत्पन्न कर देता है।

अष्टाङ्ग सग्रहकारने लिखा है कि—

> धातुबल क्षय-मूर्च्छा-ग्लानि-भ्रम-वातरोग-पुरुषत्वम्।
> खर-विशद-रौक्ष्य भावै. सोऽतिसमासेवित' कुर्यात् ॥

तिक्त रसका अधिक सेवन करने पर धातुक्षय, बलक्षय, मूर्च्छा ग्लानि, भ्रम, (चक्कर आना), वातरोग, कठोरता, खुरदुरापन, विशद (क्लेदशोषण, रुक्षता आदि उत्पन्न करता है। तिक्तरसप्रधान औषधिका सेवन करने पर जिह्वाकी वातनाड़ीके तन्तुओमे क्षणिक बधिरता आ जाती है) जिससे उस

समय ग्रहणकी हुई अन्य वस्तुका स्वाद विदित नही होता । मुँहमें बेस्वादुपन रहता हो और वह चिपचिपा रहता हो, तो यह दोष तिक्त रसके सेवनसे साफ हो जाता है । फिर भोजनमे रुचि उत्पन्न हो जाती है ।

चरक संहिताकारने तिक्त रसका गुण सबसे पहिले विषघ्न कहा है अर्थात् यह आमविष, सेन्द्रिय विष, नाना प्रकारके कीटाणुजन्य विष, पित्तप्रकोपज विष, इन सबको दूर करता है । ज्वरकी उत्पत्ति विशेषतः आमविष और कीटाणुजन्य विष (पित्त प्रकोप) से होती है । कडुवा रस आम, कीटाणु और विषको नष्टकर ज्वरको दूर कर देता है । इसी हेतुसे आचार्योंने इसे ज्वरघ्न कहा है । शरद् ऋतुमे ज्वर पित्त प्रकोपसे होता है या विषम ज्वर के कीटाणुओके विष प्रकोपसे होता है । कडुवे रसमे पित्तशामक और विष नाशक, दोनो गुण अवस्थित हैं, इस हेतुसे पितज्वर और विषम ज्वरमें सफलता पूर्वक कार्य करता है । कफ ज्वरमे भी गिलोय, कुटकी, चिरायता, सप्तपर्ण आदिका प्रयोग हितकारक है ।

दूसरा गुण कृमिघ्न दर्शाया है । सूक्ष्म कीटाओंको भी आयुर्वेदने कृमि सज्ञा दी है । रक्त और त्वचाके भीतर विविध रोगोके कीटाणु प्रवेश कर जाते हैं, सो फिर कण्डु, कुष्ठ, दाह, व्रण, विद्रधि तथा नाना प्रकारके त्वचा रोग उत्पन्न कराते हैं । वे इस रसके सेवनसे नष्ट हो जाते हैं । फिर त्वचा रक्त और मांसको सबल बना देता है । एव यह शीतवीर्य होनेसे रक्तका प्रसादन भी कर देता है ।

यह रस शीतवीर्य और पित्तशामक होनेसे तृषा और दाहका शमन करता है । शारीरिक उष्णताका ह्रास करता है ।

क्लेद शोषक गुण होनेसे व्रणोमे रहे हुए क्लेदको सुखाता है । एवं रुक्ष और लघु गुण होनेसे मेद, मज्जा और शुक्रका शोषण करता है । शुक्रमे पतलापन और उष्णता हो तो वह शीतल और गाढा बन जाता है । यदि इस रसका अतियोग किया जाय तो शुक्रकी मात्रा भी कम हो जाती है । इस रसके रुक्ष गुणका प्रभाव मल पर भी पडता है । मलमेसे स्निग्धता और द्रवताका ह्रास होता है । मल गाठदार बन जाता है । जिससे मलावरोध होता है । मलावरोध होने पर रक्तके भीतर दूषित रसका आकर्षण होता है, इस लिये मलावरोध न होनेके लिये सम्हालना चाहिये ।

देहमें पित्त, आम या कफ विकृत होने पर स्तन्य (दूध) मे भी विकृति आ जाती है । स्तन्य दूषित रहे तो सतानके स्वास्थ्य पर खराब असर पहुँचता है । अतः स्तन्य शोधनार्थ माताको तुरन्त तिक्त-रस-प्रधान गिलोय सप्तपर्ण, नीमकी अन्तरछाल, चिरायता, कुटकी आदिका सेवन कराना चाहिये ।

इस रसका मर्यादामे सेवन करने पर वातनाड़ियो पर पोषक परिणाम

होता है वातनाड़ियोंका प्रदाह दूर होता है। वात-नाड़ियां और मस्तिष्क-स्थ केन्द्र सबल बन जाते है। विचारशक्ति और स्मरणशक्तिकी वृद्धि होती है।

तिक्त रस वातवर्द्धक होनेसे कडुवे शाक, भाजी आदिका सेवन शीतकाल में कमसे कम करना चाहिये। वर्षाऋतुमें वायुका स्वाभाविक प्रकोप होता है। अत इस ऋतुमे तिक्त रसका सेवन कम करना चाहिये। शरद् ऋतुमे पित्त प्रकोप होता है अतः कडुवे रसका सेवन हितकर माना गया है।

कटु रस

चरपा रस (Sharp Acrid Pungent) वायु और अग्निकी प्रधानता युक्त है। यह वातवर्द्धक, पित्तवर्द्धक, कफनाशक, उष्णवीर्य, कटुविपाक, रूक्ष, लघु तीक्ष्ण है।

चरक संहिताकार लिखते है कि, कटु रस रसस्राव कराकर मुखको साफ करता है। अग्निको प्रदीप्त करता है। खाये हुए अन्नका विदाह करता है। नासिकासे कफस्राव कराता है। आखोंमे जल ला देता है। इन्द्रियोंको उत्तेजित करता है। अलसक, शोथ, स्थूलता, कफप्रधान शीतपित्त, अभिष्यन्द (स्रोतोमे रस भरा रहना) स्नेह, (चिकनापन) स्वेद, क्लेद (चिपचिपा रस) तथा मलोको नष्ट करता है। भोजनको रुचिकर बना देता है। कण्डूका नाश करता है। व्रणोको बैठा देता है। कृमियोका नाश करता है, मांसको सुखाता है। जमे हुए रक्तको तोड देता है। प्रतिबन्धको दूर करता है, (जकडे हुए सांधोको मुक्त करता है)। मार्गोको साफ करदेता है। श्लेष्माको दूर करता है। यह लघु, उष्ण और शुष्क है।

इस रसका अत्यधिक उपयोग किया जाय, तो कटुविपाकके प्रभावसे पुंसत्व नष्ट हो जाता है (यह शुक्रको पतला बना देता है) रस (कटु) वीर्य (उष्ण) के प्रभावसे मोह (चित्तनाश), ग्लानि, अवसाद, कृशता, मूर्च्छा, देहका टेढापन, भ्रम (चक्कर), कण्ठदाह, देहमे जलन, वल-ह्रास तथा तृषा वृद्धि करता है। वायु और अग्निके बाहुल्यसे भ्रम, मद, (हर्षक्षय), दवथु (दाह), कम्प, तोद (सुई चुभानेके समान दर्द), भेद (हाथ पैर टूटना) आदि वात प्रकोपज लक्षण चरण, बाहु, पीलु (हस्ततल), पार्श्व और पीठ आदि प्रदेशोमे उत्पन्न करता है।

अष्टाङ्ग संग्रहकारने लिखा है कि—

कुरुतेऽतिनिषेवित स तृष्णा-मद-मूर्च्छा-वमि-मोह-देहसादान्।
वल-शुक्र-गलोपशोष -कम्प-भ्रम-ताप ग्लपनाति कर्शनानि॥
कर-चरण-पार्श्व-पृष्ठ-प्रभृतिष्वनिलस्य कोपयतितीव्रम्।
सकोच-तोद-भेदैर्वाय्र्वग्नि-गुणाधिकत्वेन॥

चरपरे रसका अधिक सेवन करनेपर तृषावृद्धि, मद, मूर्छा, वान्ति,

मोह, अवसाद (शिथिलता), बलह्रास, शुक्रक्षय, कण्ठका शोष, कम्प, भ्रम, दाह, ग्लानि, अतिकृशता, हाथ और पैरोंके तल, पार्श्व, पृष्ठ भाग आदिमे वायु और अग्निका तीव्र प्रकोप होकर संकोच (खिचाव) तोद, (सुई चुभाने समान वेदना), भेद (फूटनी) आदि लक्षण प्रकाशित होते हैं।

इस रसमें अग्निकी प्रधानता होनेसे लाला आमाशय रस, यकृत्पित्त, अन्त्ररस आदिका स्राव अधिक होता है। मुखसे लेकर गुदा तक रही हुई श्लैष्मिक कलामे दाहक असर पहुँचता है। इसका विशेष कार्य दीपन पाचन है। यह आमको पचाता है और पाचन शक्तिको बढ़ाता है। कीटाणुओंको नष्ट करता है। विसूचिका, अपचन आदिके उत्पादक कीटाणुओं का नाश करदेता है।

यह यकृत्पित्तका स्राव अधिक कराता है। जिससे मलमें पीला रंग आ जाता है; यदि यकृत्पित्तका स्राव कम हो तो मल सफेद, दुर्गन्धयुक्त, आम मिश्रित और कभी कभी सूक्ष्म कृमियुक्त बन जाता है। कटु रस इस निर्बलताको दूरकर देता है। यदि यकृत्पित्तका स्राव अधिक कराया जाय, तो मल पतला गरम और लाल पीला हो जाता है। पक्वाशयका श्लैष्मिक कलामे क्षोभ उत्पन्न होता है। मूत्र थोड़ी मात्रामे और जलनसह लाल उतरता है।

यह रस सामान्यत. रुचिकर है। इसके साथ अम्ल रसका सयोग हो, तो अधिक रुचिकर बन जाता है। इसके सेवनसे मुंहका चिपचिपापन दूर होता है। लालास्राव अधिक होता है। इस हेतुसे भोजनको चबाकर मुलायम करनेमे बड़ी सुविधा मिल जाती है। अन्न जितना अधिक चबाया जाता है, उतना ही श्रम आमाशयको कम करना पड़ता है। मुँहमे चबानेके लिये श्रीहरिने दांत दिया है। यह साधन आमाशयके पास न होनेसे आमाशय को अति मथन क्रिया करनी पडती है। फिर भी कितनाक अंश नही टूट सकता उसे आगे फेंक देता है। जो अन्त्र घुमा घुमाकर मलके साथ बाहर निकाल देता है।

अम्ल रस और लवण रस जिस तरह भोजनके अणु अणुमें प्रवेश कर जाता है। उस तरह कटुरस भी भोजनमे सर्वत्र फैल जाता है। जिससे भोजनके सत्व भागके शोषणके साथ इसका भी शोषण हो ही जाता है। रक्त, मांस आदि धातुओमे यह पहुच जाता है। रक्तमे पहुँचनेसे जल या लसिकाका अधिक शोषण होता है। रक्तमे रही हुई स्निग्धताका कुछ अंशमे नाश होता है। विष जल जाता है। कितनेक प्रकारके उद्भिज कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। मांसको कुछ अंशमें सुखाता है। एव मेद, मज्जा, वीर्य आदिको उष्ण और पतला बनाता है। इस रसका सेवन मर्यादामे किया जाय और स्नेह (घृत, तेल, मक्खन, दूध, दही)का सेवन साथमे किया जाय, तो मांस आदि

धातुओंका रक्षण हो जाता है और वे सबल भी बन जाते हैं।

कटुरस दीपन, पाचन, आम, कफ और विषका नाशक होनेसे अलसक (आमाशयमे भोजन पडा पड़ा दूषित हो जाना,) कण्ठरोध (कफसे गलेमें रुकावट), वसूचिका, अपचन, उदर्द (कीटाणुसे उत्पन्न शीतपित्त), मेदोवृद्धि, स्रोतावरोध, व्रणशोथ, इन सबपर प्रयुक्त होता है।

इसका दीर्घकाल तक अति सेवन होता रहे और घृतादिका योग्य सेवन न हो तो वातनाड़िया प्रवाह-पीड़ित होती है। फिर मास पेशियोका आकुचन होता है। पेशी आक्षेप (बांयटे आना) देहके किसी भी भागमे कम्प होना, कमर जकड़ जाना, सन्धियोमे टूटनेके समान पीडा होना, कण्ठ रह जाना, स्वेदस्राव अधिक होना आदि लक्षण उपस्थित होते है।

कटु रसमे लाल और पीली मिर्चका उपयोग अधिक होता है। लालकी अपेक्षा पीली मिर्च अति दाहक है। नैपाल, बरार, सी० पी० आदि भागो मे पीली मिर्चका उपयोग होता है।

डाक्टरी मतानुसार मिर्च धमनियोके रक्ताभिसरणको उत्तेजना देने वाली और अग्नि प्रदीपक है। खानेपर श्लैष्मिककलामे उग्रता पहुँचाती है। बाहर त्वचापर या नलिका, कोष्ठ, नेत्रादिकी श्लैष्मिककलापर लगानेपर उग्रता पहुँचाती है और लाली ला देती है। स्वल्प मात्रामे सेवन करनेपर मुखमे लालास्राव कराती है। अधिक मात्रामे सेवन करनेपर हृदयको उत्तेजित करती है। हृदयके स्पन्दन सख्यामे वृद्धि करती है। नाड़ीके ठोके भी बढ जाते है। इससे अधिक मात्रामे आमाशय, अन्त्र आदिमे उग्रता दर्शाती है। यकृत् प्रदेशमे वेदना और बेचैनीका अनुभव होता है। अत्यधिक मात्रा ली जाय तो वृक्कोमे उग्रता और प्रदाह उत्पन्न होती है। फिर मूत्रकृच्छ्र होता है। मूत्रका वर्ण लाल हो जाता है। इसके अतिरिक्त जननेन्द्रियमे भी उत्तेजना उपस्थित होती है।

शीतकालमे स्वाभाविक अग्नि प्रदीप्त होती है, उस समय मधुर रसका सेवन अधिक लाभदायक होता है। कटु रसका सेवन कम हो तो मधुर रस बलवृद्धिका कार्य अधिक कर सकता है। इसलिये आचार्योने कटु तिक्त-कषाय भोजनका निषेध किया है।

वसंत ऋतुमे कफप्रकोप होता है। कफको बाहर निकालने वाला आहार हितावह माना जाता है। इस हेतुसे कटु रसका सेवन हो सकता है। ग्रीष्म-ऋतुमे स्वाभाविक स्वेद अधिक आता है। व्याकुलता और दाह होती हैं। ऐसी अवस्थामे कटु रसका सेवन हानिकर होता है। इस हेतुसे लवण, अम्ल, कटु रसका निषेध किया है।

वर्षा ऋतुमे स्वाभाविक वातप्रकोप होता है। कटु रसमे पित्त वृद्धिके साथ वातवृद्धि करानेका भी गुण है। इस हेतुसे अग्निका संरक्षण हो, इस

तरह सम्हाते हुए कटु रसका सेवन करना चाहिये।

शरद ऋतुमे पित्तप्रकोप हो जाता है। थोड़ी-सी भूल होनेपर शीत-ज्वर (मलेरिया)का आक्रमण हो जाता है। उस समय पित्त शमनार्थ तिक्त रसका सेवन हितावह है। कटु रसके सेवनसे पित्तवृद्धि होती है, अतः वह इष्ट नही है।

प्राचीन आचार्योने कटु रसका सेवन अधिक रूपसे करनेकी आज्ञा नही दी। कटु रसमे एक प्रकारका विशेष स्वाद होता है, जिससे सामान्य जनता उसे छोड़ नही सकती; यदि आचार्य अनुमति प्रदान करते, तो जनता जिह्वा (रसनेन्द्रिय) पर बिल्कुल संयम ही नही रखती।

कफ प्रकृतिवालोको मिर्च या अन्य कटु रस जितना सहन होता है, उतना पित्त प्रकृति और वात प्रकृतिवालोसे नही होता। पित्त प्रकृतिवालों के लिये तो मिर्चकी मात्रा थोड़ी सी भी बढ जायगी, तो अपना असर पहुँचाये बिना नही रहेगी। अतः जिनको शरीरके स्वास्थ्यके रक्षण और दीर्घायु भोगनेकी आकाक्षा है, उनको चाहिये कि, कटु रसका अतियोग न होने देवे।

कटु रसका उपयोग जिस तरह पचनेन्द्रिय संस्थापर होता है, उसी तरह त्वचापर बाह्य उपयोग भी होता है। सन्निपातमे शीतल स्वेद आने पर अजवायन, सोठ, राख आदिकी मालिश करायी जाती है। व्रणोका पाक जल्दी करानेके लिये पुल्टिसके साथ कटु द्रव्य मिला दिये जाते है। स्थान विशेषमे उग्रता पहुचानेके लिये प्रयोग किया जाता है। वान्तिका शमन न होनेपर हृदयाधरिक प्रदेशमे राईका प्लास्तर लगाया जाता है। स्थान विशेषमें वातप्रकोपज पीड़ा मिटानेके लिये मालिश या लेपका प्रयोग किया जाता है।

कषायरस

कसैला रस (Astringent) वायु और पृथ्वी तत्वप्रधान है। यह कफनाशक, पित्तशामक और वातवर्द्धक है। इसमे मुख्य गुणग्राही है। यह जिह्वामे विशदता, स्तब्धता और जड़ता लाता है। कण्ठको जकड़ता है। हृदयमे भी खिचाव करता है। विपाक कटु और वीर्य शीतल है।

चरक संहितामे लिखा है कि, कषाय रस संशमन, ग्राही, साधारण, पीडित (आकुंचनकारी), रोपण, शोपण, स्तम्भन, श्लेष्मा, पित्त और रक्तको शमन करनेवाला, शरीरके क्लेदका शोपण करनेवाला, रूक्ष, शीतल और गुरु है।

इसका अत्यधिक सेवन होनेपर मुखमे शोथ, हृदयमे पीडा, उदरमे आध्मान, वाणीका अवरोध, स्रोतोके मार्गोका रोध (या आकुंचन), त्वचा पर श्यामता, पुंसत्वका नाश, विष्टम्भ (अफारा) गुडगुडाहट लाकर पचन

कराना, वायु, मूत्र और मलका अवरोध, कृशता, उदासीनता, तृषावृद्धि तथा विविध स्रावोंका रोध आदि विकार उत्पन्न करता है। यह खर, विशद और रुक्ष गुणयुक्त होनेसे पक्षवध, मन्यास्तम्भ, हनुग्रह, अपतानक, अर्दित आदि वात व्याधियोंकी उत्पत्ति करता है।

अष्टाग संग्रहकार ने लिखा है कि:—

अत्यभ्यासात् सोऽपि शुक्रोपरोध तृष्णाध्मान-स्तम्भ-विष्टम्भ-कार्श्यम्।
स्रोतोबन्ध वातविण्मूत्रसङ्गं पक्षाघाताक्षेपकादींश्च कुर्यात्॥

कषाय रसका अति योग होनेपर शुक्रनाश, तृषा, आध्मान, स्तम्भ (स्रावोंको रोक देना), उदरमे गुडगुड़ाहट, कृशता, स्रोतोका सकोच, उदर वायु, मूत्र और मलका अवरोध, पक्षाघात, आक्षेप आदि विकार उत्पन्न करता है।

भोजनमे मधुर, लवण अम्ल और कटु रसका जितना उपयोग होता है, उतना तिक्त रस और कषाय रसका नही। तिक्त रसमे करेला, मेथी आदि बहुत थोडे पदार्थ है। तिक्त अनुरसवाले तिल, स्थलचावल, बालमूली, मटर (सतीन) आदि पदार्थ भी कम है। कषाय रस मुख्य हो, ऐसे पदार्थका भोजन प्राय: नही होता। अनुरस कषाययुक्त हल्के प्रकारके चावल, कुल्थी, यव, मूंग, राजमाष, तिल आदि अन्न, हरिण, शशा, खड्गि (गेडा) पारावत कपोत, गोधा (गोह), रोहितक आदि मत्स्य, कुलिङ्ग आदि प्राणियोके मास, चांगेरी, कलंबिका करीर, छत्रक आदि शाक, बालआम्र, बालबिल्व, द्राक्षा, दाडिम, केला, पनस, लवली (हरफरी), फालसा आदि फल, तथा मधु भोजन रूपसे प्रयुक्त होते है। इनमे कषाय रस अति कम होनेसे मद असर दर्शाता है। कषायरसयुक्त औषधियोमे हरड, बेहडा, आवला इनका प्रयोग भारतवर्षके प्रत्येक ग्राममे अति निर्भयतापूर्वक होता है।

हरडमे कसैला रस है और विरेचन गुण भी है। पहिले विरेचन गुणकी सप्राप्ति होती है अर्थात् मलको अन्त्रसे बाहर फेक देती है। फिर कसैले रस के ग्राही गुणकी क्रिया होती है अर्थात् शिथिल अन्त्रको आंकुचित कर देती है। जिससे वह अपनी जवाबदेहीका अच्छी तरह पालन कर सके।

कषाय रसमे ग्राही, रोपण और आकुंचन करनेका विशेष गुण है। इन गुणोके हेतुसे वह अन्त्र, रक्तवाहिनियो और स्रोतोका सकोच करता है। उस मे रहे हुए द्रव या क्लेदका शोषण करता है। फिर मल या अन्य द्रव्यको आगे जानेसे रोक भी देता है। अन्त्रगत आहार रस (मल) में से द्रव और स्निग्धताका शोषण कर लेता है तथा मलकी गति और मूत्रकी गतिको रोक देता है। यदि दूषित आम उदरमे होने पर भूलमे कषाय रसका उपयोग किया जाय तो आमविष प्रकुपित होकर आमज्वर आदिकी प्राप्ति कर देता है।

इसमें द्रवका और क्लेदका शोषण करना गुण है। इस हेतुसे इस रस का उपयोग प्रदर पर किया जाता है। बाहरसे माजूफल या टॉनिक एसिड आदिके जलका पिचकारी रूपसे उपयोग किया जाता है। एव कितनीक कषायरस प्रधान औषधियोका सेवन भी कराया जाता है।

रक्तस्राव होता हो, तब रक्तरोधनार्थ कषाय रसका उपयोग होता है। फुफ्फुसमेसे रक्तस्राव, रक्तवमन, रक्तातिसार, रक्तप्रदर, रज.स्राव अधिक होना आदि, इन सब विकारोमे कसैली औषधियोका कार्य सफल होता है।

अपचन (आमाशयप्रसेक) मे क्लेदको दूर कर पचन क्रिया सुधारनेके लिए तथा अतिसार (अन्त्रप्रदाह) मे प्रदाहको दूर कर अन्त्रके भीतर ग्राही असर पहुँचानेके लिये कषायप्रधान हरड़, आमकी गुठली, नागरमोथा, अम्बष्ठा (पाठा) मू गाका यूस आदि व्यवहृत है।

कफकास, राजयक्ष्मा, श्वास आदि रोगमे जब कफ दूषित हो जाता है, तब उसे बाहर निकालने और उत्पत्तिको रोकनेके लिये खदिर, बहेड़ा, आदि औषधियोंका प्रयोग उपकारक माना जाता है।

मसूढ़े जब शिथिल हो जाते हैं, तब उनको दृढ बनानेके लिये माजूफल, कसीस, हरड़ आदि कषायरसप्रधान औषधियोका मंजन बनाकर उपयोग मे लिया जाता है। जो क्लेदका शोषण भी करता है।

व्रणोंका आकुचन करने तथा व्रणोंके क्लेदको सुखा कर शुद्ध करनेके लिये कषायरसप्रधान औषधियोंका लेप हितकारक माना जाता है। कषाय रसवाले द्रव्योका त्वचा पर स्थानिक असर भी होता है। इस हेतुसे व्रणके अतिरिक्त अन्य स्थानो पर भी लेप रूपसे उपयोग किया जाता है।

षड्रस

उक्त रसोके सम्यक् योग और अतियोगसे ऊपर लिखे गुण-दोषोकी प्राप्ति होती है। इस लिये जिस गुणकी आवश्यकता हो, उसके अनुरूप रस प्रधान पदार्थोंका सेवन करना चाहिये, तथा जिस रसके अति सेवनसे रोगोत्पत्ति हुई हो, उसका परित्याग कर उसके विरोधी रसका उपयोग करना चाहिये।

उपर्युक्त ६ रसोमे अग्नि और वायु तत्त्वप्रधान रस प्राय. ऊर्ध्वगामी (ऊपरकी ओर गति करने वाले) होते है जल और पृथ्वीतत्त्वप्रधान रस प्राय· अधोगामी (नीचे की ओर गति करने वाले) होते हैं। परन्तु अग्नि, वायु, जल और पृथ्वी इन तत्वोंके मिश्रित हो जानेसे रसोंकी न्यूनाधिकता के अनुसार औषध ऊर्ध्व और अधोगति युक्त हो जाती है।

इन रसोके गुणकी न्यूनाधिकता (शरीर पर होने वाला प्रभाव) सहज समझमें आनेके लिये पुन इसी बातको संक्षेपमे लिखता हू।

१. मधुर रस—वात-पित्त-नाशक और कफ-वर्द्धक है।

२. अम्ल रस—वात-नाशक और पित्त-कफ-वर्द्धक है।

३. लवण रस —वात-नाशक ओर पित्त-कफ-वर्द्धक है।
४ तिक्त रस—वात वर्द्धक और कफ-पित्त-नाशक है।
५. कटु रस—वात-पित्त वर्द्धक और कफ-नाशक है।
६ कषाय रस—वात-वर्द्धक और कफ-पित्त-नाशक है।
उपर्युक्त स्वभावको दूसरी रीतिसे कहें, तो—
१ वातवर्द्धक—कटु, तिक्त, कषाय रस।
२ वातशामक—मधुर, अम्ल, लवण रस।
३ पित्तवर्द्धक—कटु, अम्ल, लवण रस।
४. पित्तनाशक—मधुर, तिक्त, कषाय रस।
५ कफवर्द्धक—मधुर, अम्ल, लवण रस।
६ कफशामक—कटु, तिक्त, कषाय रस।

जो रस वातवर्द्धक है, उस रसका अतियोग होने पर वातप्रकोप होता है। ऐसे समयपर वातशामक रसके उपचारसे लाभ हो जाता है।

वातकी उत्पत्ति वायुसे, पित्तकी उत्पत्ति अग्निसे तथा कफकी उत्पत्ति जलसे होती है। अत. जो रस जिस भूतकी अधिकतासे उत्पन्न होता है, वह स्वाभाविक ही उस भूतसे उत्पन्न दोषको बढाता है तथा विपरीत भूत से उत्पन्न दोषको शान्त करता है। उदाहरणार्थ वायुमे शैत्य, रौक्ष्य, लाघव, वैशद्य और वैष्टम्भ्य गुण है, उसके समान योनि और समान गुण वाला कषाय रस है। (यद्यपि चरक संहितामे कषायको गुरु कहा है, तथापि वह लघुपाकी होनेसे और वातधातुमे भी लघुता होनेसे दोनोंकी तुल्यता दर्शायी है) अत. कषाय रसका सेवन करनेपर अपने शैत्यसे वायुके शैत्यको रौक्ष्यसे रौक्ष्यको, लाघवसे लाघवको, वैशद्यसे वैशद्यको और वैष्टम्भ्यसे विष्टम्भताको बढाता है, अर्थात् कषाय रस सब प्रकारसे वातवर्द्धक है।

पित्तमें औष्ण्य, तैक्ष्ण्य, रौक्ष्य, लाघव और वैशद्य गुण अवस्थित हैं। उसके समान योनि और समान गुण वाला कटु रस है। वह अपनी उष्णता से पित्तकी उष्णताको, तीक्ष्णतासे तीक्ष्णताको रुक्षतासे रुक्षताको और विशदतासे विशदताको बढाता है। इस तरह कटु रस सर्वभावसे पित्तवर्द्धक है।

कफमे माधुर्य, स्नेह गौरव, शैत्य और पैच्छिल्य गुण रहते हे। उसके समान योनि मधुर रस है। वह अपनी मधुरतासे कफकी मधुरताको, स्निग्धतासे स्नेहको, गुरुतामे गौरवको, शीतलतासे शैत्यको तथा पिच्छिलता से पैच्छिल्यको बढाता है, अर्थात् मधुर रस सर्वभावसे कफवर्द्धक है।

कफसे विषम योनि कटु रस है। क्योकि कफवर्द्धक मधुर रस जलकी अधिकतासे और कटु रस अग्निसे उत्पन्न होता है। दोनों परस्पर विपरीत गुण वाले है। इस हेतुसे वह कटुता (चरपरेपनसे मधुरताको, रुक्षतासे स्नेहको, लघुतासे गुरु गुणको, उष्णतासे शीतलताको तथा विशदतासे

पिच्छलताको दबा देता है। इस तरह अन्य रस भी अपने विपरीत रसको दवा देते हैं। परिणाममें उसके अनुरूप मूल धातु, वात, पित्त और कफमें वृद्धि ह्रास हो जाता है।

कभी कभी उक्त नियमके अपवाद स्वरूप उदाहरण भी मिलते हैं। जैसे अम्ल वस्तु पित्तकर होती है, किन्तु अनार और आंवले नही। मधुर रस कफ कर होता है, किन्तु शहद, पुराने शाली-षष्टिक चावल, जौ और गेहूँ (एवं मूंग, मिश्री और जाँगल प्राणियोके मांस आदि) नही। कडुवा रस प्राय. वातवर्द्धक और अवृष्य होते है; किन्तु वेतके अग्रभाग, गिलोय, पटोलपत्र (कडुवे परवलके पान), कुचिला आदि नही। चरपरा रस प्रायः धातुवर्द्धक और अवृष्य होता है; किन्तु लहशुन पिप्पली और सोंठ नही। लवण रस अचक्षुष्य होते है, किन्तु सैंधानमक नही।

यदि वातहर पदार्थमे रूक्ष, लघु और शीतल गुण मिश्रित होगा, तो वह वातको शमन नही कर सकेगा। पित्तशामक पदार्थमे तीक्ष्ण, उष्ण और लघु गुण मिला होगा, तो वह पित्तशमन नही कर सकेगा। कफ-शामक पदार्थमे स्निग्ध, भारी और शीतल गुण होगा, तो वह कफको दूर नही कर सकेगा।

मधुर, तिक्त और कषाय रस प्राय· शीतवीर्य तथा कटु, अम्ल और लवण रस प्रायः उष्णवीर्य है, किन्तु कितनीक औषधियां विरुद्ध स्वभाव वाली भी है। जैसे—बिल्वादि वृहद् पंचमूल चरपरा और कसैला होनेपर भी किंचित् उष्ण है। सेंधा नमक खारा होनेपर भी उष्ण नही है। अनार और आंवला खट्टे होनेपर भी उष्ण नही है। आक, अगर, और गिलोय कडुवे होनेपर भी किञ्चित् उष्ण है। कुचिला कडुवा होनेपर भी अति उष्ण है; तथा हरड कसैली होनेपर भी किञ्चित् उष्ण है।

खट्टे रस वाली औषधि कोई ग्राही और भेदन कराने वाली होती है। जैसे-कैथ (कपित्थ) ग्राही और आंवला मलका भेदन कराने वाला है।

कसैला रस प्राय. स्तम्भन करता है, परन्तु कभी कभी इस नियमका भी परिवर्तन हो जाता है। जैसे—हरड कसैली होनेपर भी मलका भेदन करती है।

ऊपर लिखे नियमानुसार कितनेक अपवाद भी प्रतीत होते है। अतः केवल रस परसे ही सर्व औषधियोके गुणोका निश्चय नही हो सकता। गुण और प्रभावको समझनेके लिये विशेष शास्त्राभ्यास और अनुभवकी आवश्य-कता रहती है।

इनके अतिरिक्त अनेक रसो वाले द्रव्योमे तथा अनेक दोषयुक्त रोगोमे प्रत्येक रस और दोषका जो भिन्न भिन्न प्रभाव कहा गया है, उन सबका विचार करके उस औषधि या रोगके प्रभावका निश्चय करना चाहिये।

किन्तु यह नियम जिस ओषधिमे रस संमिलन और जिस रोगके भीतर दोषोका संमिलन प्रकृति सम-समवेत हो, उनको लागू होता है। विकृति विषम समवाय वालोको नही।

जो रस अथवा दोषोका प्रकृति अनुगुण समवाय होता है, उसे प्रकृति सम-समवाय तथा जिनका प्रकृति अननुगुण समवाय होता है, उसे विकृति विषम समवाय कहते है। जैसे तन्तु कपडेका समवाय कारण है (इसे वेदान्त मतमे उपादान कारण कहा है), वह कपडा एक ही प्रकारके तन्तुओंसे बुना हुआ हो, तो उसके सम्बन्धको प्रकृति सम-समवाय और सम्बन्ध वालोंको प्रकृति सम-समवेत कहा जायगा। यदि उसमे दूसरे प्रकारके तन्तु कुछ मिलाये हो, तो उसे विकृति विषम समवेत कहेगे। इस तरह समान प्रभाव वाले द्रव्योका समूह हो, इसे प्रकृति सम-समवेत और विषम (अस्वाभाविक) प्रभाव वालेको विकृति विषम समवेत कहा है। रोगोमे भी जो एक दोषज है, उनमे कारण या लक्षणोका प्रकृति-सम-समवाय होता है; किन्तु इसके विपरीत सन्निपातमे विकृति विषम समवाय प्रतीत होता है। जैसे "क्षणे दाह क्षणे शीतम्" आदि लक्षण।

विकृति विषम-समवायमे प्रभावका ज्ञान करना कठिन होता है। विभिन्न प्रभाव वालोके सम्मिलनसे पृथक् प्रभाव उत्पन्न होता है। जैसे हल्दी और चूनेके सयोगसे लाल रगकी उत्पत्ति होती है। यह लाल रंग हल्दी या चूना, इन दोनोमेसे किसीके भीतर नही है; यह लाल रग संयोग-जन्य उत्पन्न हुआ है। हीग और कपूर तथा अजवायन पुष्प और कपूरके समिलनसे द्रवता उत्पन्न होती है। कितनेक वातवर्द्धक शाक लहशुन या हीगोके छोकसे पित्तवर्द्धक बन जाते है।

प्रकृति सम-समवायमे आशिक ज्ञान पर्याप्त है; क्योकि, कारण गुण अनुसार कार्य गुण होते है तथा कर्म भी सजातीय परंपराका अनुसरण करते हैं। अतः उतनेसे ही उसके समुदायका ज्ञान हो जाता है; किन्तु विकृति विषम-समवायमे आशिक ज्ञान पर्याप्त नही है। समुदायके प्रभावके ज्ञानकी आवश्यकता है। जैसे—मधुर आम्रातक (अवाडा) के रसमे प्रकृति का सम-समवाय होनेसे मधुर रसके गुणके समान वह वात-पित्त शामक है, किन्तु वार्ताक (क्षुद्र टमाटर जैसे फल) मे विकृति विषम-समवाय है; अत. वह कटुतिक्त होनेपर भी वात-कारक नही है। चरक संहिताकारने "वातघ्न दीपन चैव वार्ताक कटुतिक्तकम्" इस वचनसे वातहर कहा है।

पारद-गधकके समिलनसे कज्जली बननेपर काला रग आ जाता है, उसका अग्नि सस्कार करनेपर रक्तवर्णका रससिंदूर बन जाता है। क्रिया भेदसे इन दोनोके गुण प्रभावमे विभिन्नता हो जाती है।

सामान्यतः घी-शहद समभाग मिलानेका निषेध है (ह्लास उत्पन्न

करता है); किन्तु यह विषम प्रभावयुक्त औषधि सूर्यावर्तमे दोष महिमा और संयोग-महिमाके हेतुसे लाभप्रद होती है। इस तरह आमलकी रसायनमे भी आंवले, घी और शहदको समभाग मिलाया जाता है, जो रसायन गुण दर्शाता है।

विकृति विषम समवाय असंख्य हो जाते है। द्रव्योंमे रसभेद, वीर्यभेद, क्रियाभेद आदि कारणोसे तथा रोगोमें व्याधिबल, देहगत स्थानभेद, दोष-दूष्य भेद, कारण भेद, मात्रा भेद, प्रकृति भेद, आहार-विहार भेद, आदि कारणोंसे नाना प्रकारके भेद हो जाते है। जबतक उनके समुदायकी प्राभाविक शक्तिका बोध न हो, तबतक इन विषम समवेतोंका निर्णय नहीं हो सकेगा।

परस्पर रस विरोध

१. मधुर और अम्लरस, दोनोंके वीर्यमे विपरीतता है।

२. मधुर और लवण रस एवं मधुर और कटु रस, परस्पर विरोधी है।

३. मधुर और तिक्त रस, दोनोके रस और विपाकमे विरोध है।

४. मधुर और कषाय तथा अम्ल और कटुरस, इनके रस और विपाकमे विरोध है।

५ अम्ल और तिक्त तथा अम्ल और कषाय, इन सबके रस, वीर्य और विपाकमे विरोध है।

६. लवण और कटु तथा लवण और कषाय, इन सबके रस, वीर्य और विपाकमें परस्पर विरोध है।

७. कटु और तिक्त रसके रस और वीर्यमें विरोध है।

८. कटु और कषाय रस तथा तिक्त और कषाय रस, इनके रसमें विरोध है।

इनमेसे रस, वीर्य, विपाक, इन तीनोमे जो विरुद्ध (Antagonists) हो, उन रसोवाले भोजनका सेवन एक समयमे नही करना चाहिये। इसका विशेष विचार भगवान् धन्वन्तरिजीने नीचे लिखे अनुसार किया है।

हिताहितीय द्रव्य—स्वस्थ मनुष्योके लिये समस्त द्रव्य स्वभावसे अथवा संयोगसे सर्वदा हितकर, अहितकर या हिताहितकर होते हैं। जल, दूध, घृत, भात, गेहूँ, मूंग आदि मनुष्यमात्रके लिये हितकारी होते है, किन्तु वे ही अनेक रोगोमे हानिकर हो जाते है। जलानेके लिये प्रवृत्त हुआ अग्नि, फफोला उठानेमे प्रवृत्त क्षार, तथा मारनेमें प्रवृत्त हुआ विष सर्वदा अहितकर है; किन्तु ये ही अवस्था विशेषमे लाभदायक होते है। कतिपय हितकर पदार्थ भी संयोगसे विषके तुल्य हो जाते है। इस तरह कई पदार्थ प्रकृति भेदसे एकको पथ्य और दूसरेको अपथ्य हो जाते हैं। अतः प्रकृति, ऋतु, स्वभाव और संयोगका विचारकर द्रव्यका उपयोग करना चाहिये।

हितवर्ग—रक्तशाली, सब प्रकारके चावल, नीवार, कोदों, कूटू, शामक गेहूँ, जौ, चना, मूंग, मोंठ, मसूर, अरहर, मटर आदि धान्य विशेष, हिरण कबूतर, लावा, तीतर, बतख, कुक्कुट, आदिका मांस बथुआ, जीवन्ती, चौलाई, पालक, सोवा, चौपतिया, तोरई, परबल आदि शाक, गोघृत, शहद, सैंधानमक, अनार, आवले आदि फल, ब्रह्मचर्य, निर्वात स्थानमे शयन, निवाये जलसे स्नान, रात्रिमे निद्रा और व्यायाम आदि आहार-विहार स्वस्थावस्थामें सबके लिये हितकर है।

स्वभावसे अहिततम पदार्थ—वर्षा ऋतुमे नदीका जल, सड़ा मांस, रोगी पशुका माँस, विषसे मरे हुए पशुओका माँस, भेडका दूध, कसूमका तैल, कटहलके पक्के फल, पक्की मोटी मूली, बासी उतरे हुए शाक और फल-फूल, गुडकी राब, गोमांस, कपोत मास, बासी भोजन, ये सब बहुधा स्वस्थ प्रकृतिको भी हानि पहुंचाते है।

दुग्धविरोधी पदार्थ—वल्लीफल, (तोरई आदि) छत्राक, करीर, आंवले के अतिरिक्त नीबू आदि खट्टे फल, नमक, कुलथी, पिण्याक (तिलकुट्टी), दही, तैल, मछली, पिट्ठी, सूखे साग, गोह, बकरी और भेड़का मास, शराब जामुन, मूली, इनमेसे किसीके साथ दूधका मेल नही है। इन पदार्थोमेसे किसीके साथ खाया हुआ दूध हानिकर हो जाता है।

दुग्धके मित्र—मिश्री, शहद, घी, मक्खन, अदरख, पीपल, मुनक्का, सोंठ, कालीमिर्च, अदरख, हरड और सैंधानमक, ये सब दूधके मित्र है। अम्ल पदार्थमे आवला, मधुर पदार्थोंमे मिश्री, शाक वर्गमे परवल, चरपरे, पदार्थो मे अदरख, कसैले पदार्थोमे जौ और नमकमे सैंधानमकका उपयोग दूधके साथ किया जाता है।

दहीविरोधी पदार्थ—कोई भी प्रकारके गरम पदार्थ, कोमल कटहल, दूध, तैल, केला, आसव-अरिष्ट, मृग-मास, ताडफल, ये सब दहीके विरोधी है। दहीके साथ इनका संयोग होनेपर विकार हो जाता है। इसी तरह रात्रिको भी दही नही खाना चाहिये। शरद ऋतु और ग्रीष्म ऋतुमे दहीसे पित्त-प्रकोप होता है, तथा रक्तविकार पित्त-प्रकोप और कफज व्याधिवालो को भी दही हानिकर होता है।

तक्रविरोधी पदार्थ—घृत, केले, भातकेखील, दूध, सत्तू, इन सबके साथ मट्ठेका विरोध है। इसी तरह क्षतपीडित, क्षीण मनुष्य, मूर्च्छा, भ्रम, दाह और रक्तपित्त विकारवालोको मट्ठा नही खाना चाहिये। एव उष्णकाल (शरद और ग्रीष्मऋतु) मे भी मट्ठेका सेवन नही करना चाहिये।

शहदविरोधी पदार्थ—शहदके साथ उष्ण पदार्थ या गरम जल नही मिलाना चाहिये। शहद और घी समभाग नही मिलाना चाहिये। इसी

तरह शहद, घी, वसा और जल, इनमेसे दो, तीन या चारोका समभाग संयोग करना हानिकर है। शहदको गर्म करनेका भी शास्त्रकारोंने निषेध किया है। शहदके साथ सुअरके मांस और मूलीका भी विरोध है।

अफीमविरोधी पदार्थ—हीग, तैल या तैलमे बने हुए पदार्थ।

कटहलविरोधी पदार्थ—कटहल खानेपर नागरवेलका पान नही खाना चाहिये। दूध, दही, उडदकी दाल, शहद और घीके साथ कटहलका विरोध है। कटहल पचन हो जानेके पहिले या पीछे दूधका सेवन करनेसे परिणाम मे हानि होती है।

खिचडीविरोधी पदार्थ—दूध और खीर।

गुडविरोधी पदार्थ—मकोय, मछली, सूअरका मांस, और दूध।

मासविरोधी पदार्थ—विरुद्ध धान्य (जल में भिगोकर अंकुर निकले मूंगादि) चरवी, शहद, दूध, गुड़ और उड़द।

कुलथीविरोधी पदार्थ—बगुलेका मास और मद्य।

मकोयविरोधी पदार्थ—पीपल और मिर्च।

नाड़ीशाकविरोधी पदार्थ—मुर्गेका मांस और दही।

पित्तविरोधी पदार्थ—मास।

खीरविरोधी पदार्थ—शराब और कृशरा (तिल चावल की खिचडी)

मछलीविरोधी पदार्थ—ईख, गुड़, शक्कर और गुड़ वाले पदार्थ। इसी तरह आम, जामुन, भेडका मांस, सुअरमास, और गोमांसका भी विरोध है। मछलीका सबसे अधिक विरोध दूधके साथ है।

केलाविरोधी पदार्थ—तालफल, दूध, दही और मट्ठा।

परस्परविरोधी पदार्थ—जलवासी प्राणियोंका मांस, उडद, शहद, दूध, अंकुर निकले मूंग आदि धान्य, मूली, और गुड, ये प्रत्येक पदार्थ एक दूसरेके विरोधी है। इसी तरह अनेक प्रकारके मांसको एक साथ पकानेसे विष सम घातक हो जाते हैं।

१- ऐसे ही कतिपय विपरीत पदार्थ रोग, देश, काल या प्रकृति भेदसे हितकर हो जाते है। जैसे अग्नितप्त शहदको विष समान माना है। फिर भी अनन्तवात (मस्तिष्कगत वातरोग) मे अग्निपर पकाये हुए शहदके माल पुए खिलानेमे रोगकी निवृत्ति हो जाती है।

२-कर्मविरुद्ध पदार्थ—कबूतरे के मासको सरसोके तैलमे नही भूनना चाहिये। चातक, मोर, लावा, तीतर, गोह, इनको एरण्डी तैलमें न पकावे और न एरण्डीकी लकडीसे ही पकावे।

३- कांसेके बर्तनमे १० दिनतक घी रहनेसे दूषित हो जाता है।

४- शहद गरम पदार्थोंके साथ या उष्ण ऋतुमें न खायं।

मछली या अदरख जिस पात्रमे पकाया हो, उसमें मकोयको न पकावें।

तिलके कल्कके साथ पकाया हुआ पोईका शाक न खायँ ।

सुअरकी चरबीमे भूना हुआ बगुलेका मास, नारियलकी गिरीके साथ न खायँ ।

छोटे गिद्धको लोह-शलाकासे अग्निपर भूनकर न खायं ।

मानविरुद्ध पदार्थ—शहद और जल या शहद और घी समभाग मिलाकर सेवन न करे । दो प्रकारके स्नेहो (घी, तैल, चरबी या मज्जा) को, स्नेह और शहदको या जल और स्नेहको समभाग मिलाकर सेवन न करे ।

परस्परविरोधी औषध द्रव्य उत्तेजक कफघ्न और कफशामक औषध । उदाहरणार्थ कटेली या वचा मिश्रित औषधि श्वासनलिका आदिमे श्लैष्मिक कलापर उत्तेजना पहुँचा और कास लाकर कफको बाहर निकालती है । इसके विपरीत सितोपलादि (घृत-शहद मिश्रित), प्रवाल पिष्टी, मुक्ता आदि उत्तेजना (कासवेग) को शान्त करके कफोत्पत्तिको रोकती है । इनका सेवन एक साथ नही करना चाहिये ।

स्वेदल और स्वेदावरोधक औषध । स्वेदलाने वाले—सोरा, नौसादर, कपूर, सप्तपर्ण आदि, स्वेदावरोधक जसद भस्म, धतूरा, सूची बुटी आदि, इन दोनों विरुद्ध प्रकारोकी औषधियोका संमिश्रण नही करना चाहिये ।

कनीनिका प्रसारक और कनीनिका आकुंचक औषधि । प्रसारक-द्रव्य सूचीबूटीसत्व तथा आकुंचक द्रव्य अफीम सत्व इन दोनोंको मिलाकर नेत्र मे नही डालना चाहिये ।

इसी तरह अन्य विरुद्ध वीर्यवाली औषधियोंको भी नही मिलाना चाहिये । और इसी प्रकार अति शुष्क और अति स्निग्ध, अति उष्ण और शीतल (चाय और आइस्क्रीम आदि) का उपयोग भी एक ही समयमे नही करना चाहिये ।

तरुण और बलवान तथा व्यायाम करने वाले मनुष्यको तो विरुद्ध भोजन भी प्राय: विशेष बाधा नही पहुँचा सकता । परन्तु सामान्य व्यक्ति को चाहिये कि, नियम भंग न करे ।

विरुद्ध पदार्थकी मात्रा थोडी होनेपर बहुधा हानि नही पहुँचा सकती । फिर भी कदाचित् किसी विरुद्ध पदार्थके खानेसे कोई विकार हो जाय, तो वमन, विरेचन या शमन पदार्थका सेवन कर प्रकृतिको सत्वर स्वस्थ बना लेना चाहिये ।

विरुद्ध सयोग वाले या स्वाभाविक दोषयुक्त एवं प्रकृतिविरुद्ध पदार्थोंके दोषोंसे बचनेके लिये दोषशामक औषधियोंके ज्ञानकी परमावश्यकता है, जिससे कि प्रत्येक मनुष्य भोजनके समय सावधानता रख सके और भूल हो जानेपर बहुत जल्द दोषको दूर कर सके । जैसे केला दुर्जर है, किन्तु उसका उपयोग घी, मिश्री और इलायचीको सम्मिलित करके किया जाय,

तो उसकी दुर्जरता दूर हो जाती है। एवं केलेका अजीर्ण भी इलायचीके सेवनसे शीघ्र ही मिट जाता है। सामान्यतः मिठाई या फल आदिमे जिससे अजीर्ण हुआ हो, उसको जला, राखकर शहदके साथ सेवन करनेसे भी अजीर्णकी निवृत्ति हो जाती है।

जैसे केलाके लिये घी, मिश्री और इलायची दोषशामक औषधि है, वैसे अनेक वस्तुओके लिये पृथक्-पृथक् दोषशामक औषधियां कही गई है, उन मेसे कुछ नीचे औषधियोकी सूची दी जाती है। इसके अनुरूप अन्यान्य दोषशामक औषधियोकी योजना देशकालानुसार आवश्यकतापर कर लेनी चाहिये।

कारण रूप औ०	दोषशामक औ०
अखरोट	अनारदाने
अगर	कपूर,गुलावका फूल
अदरख	कपूर, शहद
अन्ननास	सौफ, मिश्री
अफीम	केशर,दालचीनी, हीग
अम्लवेत	लौंग, कालीमिर्च
अलसी	धनियाँ, सिकंजबीन
अरड ककड़ी (पपीता)	शक्कर
असगन्ध	कतीला गोद
आक	घृत
आम	सोठ,नमकसिकजवीन
आम पक्के	दूध
आमाहल्दी	नारंगी
आलूबुखारा	रूमीमस्तगी
अंजीर	वादाम
इन्द्रजव	धनिया
इमली	कौडीभस्म, वनफसा, नमक।
इलायची	गुलावके फूल
कनेर	घी,मिश्री मिलादूध, शहद
कपूर	एलुआ, केशर, कस्तूरी

कारण रूप औ०	दोषशामक औ०
करौंदा	नमक
कसीस	दही
कटहरके पक्के फल	नारियल,अनारदाने, केला।
कचूर	धनिया, अगर, श्वेत चन्दन।
कांदा (प्याज)	नमक और सिरका
काच	दही,गोपीचन्दन,घी, बड़ी दूधी
क्विनाईन	दूध, च्यवन-प्राशावलेह, सुवर्णमाक्षिक भस्म, सितोपलादि चूर्ण।
कुचिला	वमन कराना, घी, मिश्री मिला दूध।
कुटकी	घी, शहद-पीपल, जावित्री।
केला	घी,मिश्री औरइलायची; सोठ और नमक।
कौच	दही, घी
कैथ	नीमकी निवोलियाँ
केरोसीनतेल	बबूलका गोद, बिहदाना

कारण रूप औ०	दोषशामक औ०
खजूर (छुहारा)	सोंठ, नागरमोथा, दूध-मिश्री, दही, घी
खिरनी	नीमकी निबौलियाँ
गुड़	नाभिपर घीका लेप मक्खन, दही, चिरायता गिलोय
गूलरके फल	सोंठ का क्वाथ
गुंजा (चिरमी)	धनिया, दूध
घी	नीबू कोकम, अनार नमक, गरम जल, कांजी, निवायामाण्ड कालीमिर्च ।
चना	दही, घी, गुलकन्द
चावल	त्रिकटु, दूध-शक्कर, नमक ।
चिरौंजी	हरड़
चूना	घी, बादामका तैल, मक्खन ।
जसद भस्म (अशुद्ध)	हरड़ और मिश्री मिला दूधा, कत्था
जायफल	धनिया, बनफसा, शहद ।
जाम (अमरूद)	नमक, सौंफ, अदरख का मुरब्बा ।
जामुन	नमक
जव	घी
जमालगोटा	घी, कत्था, मिश्री मिला दही, वमन कराना, गाढ़ा शर्बत पिलाना ।
ज्वार	दही, घी, गुलकद
तक्र	नमक, निवाया माण्ड ।
तमाखू	दूध, गुलकन्द

कारण रूप औ०	दोषशामक औ०
ताम्रभस्मकी उग्रता	मोतीपिष्टी, शुक्तिभस्म, चावलका धोवन, मिश्री मिला धनियेका हिम ।
तांबे का जहर	घी, विरेचन देना, नीबूका शर्बत ।
थूहरका दूध	घी, मक्खन, दही, शहद ।
द्राक्षा	गुलकन्द ।
दही	जीरा-नमक, शक्कर, सोंठ ।
दूध	शक्कर
धतूरा	घी, दही, मिश्री मिला दूध
नारंगी	मिश्री, नमक
नारियल	शक्कर, गुड, नमक
नीबू	नमक
नीलाथोथा	कत्था, शर्बत नीबू, शर्बत अनार, मिश्री मिला दूध, तिल तैल, धानके लावा का जल ।
पारद	शुद्ध गन्धक, चौलाई की भाजी, धमासा का क्वाथ, दूध, घी, हरड ।
वच	सौंफ, सिकजवीन, घी
बच्छनाग	घी, दूध, हृदय पौष्टिक औषधि ।
बाजरा	घी, शक्कर
बादाम	शक्कर
ब्राह्मी	चन्दन सफेद गुलाब जल ।
बेर	गुलकन्द

कारण रूप औ०	दोषशामक औ०
वैंगन	घी
दूषित वंगभस्म	मेषशृङ्गी का चूर्ण और मिश्री दूध के साथ
भाँग, गाँजा	तेज कॉफी, दही, घी, निद्रा, शराव।
भिलावा	नारियल की गिरी, चिरौंजी, बादाम।
मैनफल	शहद मिश्रित दूध
मुरदासंग	घी, बादामका तैल, वमन, अनार दानो का रस।
मंडूरभस्म (दूपित)	कतीला, शहद, अरंडी का तैल
मद्य	मक्खन-मिश्री, मुनक्का, मट्ठा, फिटकरीका जल, मीठा अनार।
मिर्च	घी, नीवूका रस, मट्ठा
रसकपूर	गन्धक, गायका दूध, चौलाईकी जड, घी, सोहागेका फूला
अशुद्ध रौप्य	मिश्री-शहद
लहसुन	दही, घी, मट्ठा
लोहभस्म	अगस्त पत्रके रसके

कारण रूप औ०	दोषशामक औ०
(दोषवाली)	साथ बायविडङ्ग, अमलतास की फली का गूदा
शतावरी	शहद-पीपल
सीसाभस्म (अशुद्ध)	सुवर्ण का वर्क, हरड़ मिश्री।
शिलाजीत	घी, दूध, लस्सी।
सिंदूर	शर्वत-नीबू, चिरमी के पत्ते, मुलहठी।
सिंघाडा	सोंठ और नागरमोथा
सुवर्णभस्म (अशुद्ध)	हरड और मिश्री दूधके साथ।
सोमल	घी, दूध-मिश्री, मलाई, कत्था, सोहागेका फूला।
सोपारी	दूध, मिश्री, गुड
हल्दी	बिजौरेका रस, नीबू का रस।
हलदिया विष	घी पीकर वमन करे
हरड	घी, शहद
हींग	जीरा, अनारदाने
हीरा	घी पिलाकर वमन करावे, कतीरा गोंद, बनफशा शर्वत।

(२) गुण।

उपर्युक्त ६ रसके न्यूनाधिक अंशके संयोगसे नामा प्रकारके गुणोंकी उत्पत्ति होती है। इन गुणोके प्राचीन आचार्योंने निम्नानुसार २० विभाग किये हैं :—गुरु, मन्द, शीतल, स्निग्ध, श्लक्ष्ण, सान्द्र, मृदु, स्थिर, सूक्ष्म और विशद तथा इनके क्रमशः विरोधी लघु, तीक्ष्ण, उष्ण, रूक्ष, खर, द्रव, कठिन, सर, स्थूल और पिच्छिल। इन २० गुणोंमेसे वात धातुमे रूक्ष, लघु, शीत, खर, सूक्ष्म और चल, ये ६ गुण, पित्त धातुमे सस्नेह (किञ्चित्

स्निग्ध), तीक्ष्ण (शीघ्रकारी), उष्ण, लघु, विस्र (आम गन्धयुक्त), सर (व्याप्तिशील) और द्रव, ये ७ गुण; कफ धातुमे स्निग्ध, शीत, गुरु, मन्द, श्लक्ष्ण, पिच्छिल, स्थिर (व्याप्तिशील) ये ७ गुण अवस्थित है।

गुरु मन्द हिमस्निग्धश्लक्ष्ण सान्द्र मृदु स्थिराः।
गुणाः ससूक्ष्मविशदा विंशतिः सविपर्ययाः ॥
तत्र रूक्षो लघु शीतः खर. सूक्ष्मश्चलोऽनिलः।
पित्तं सस्नेहतीक्ष्णोष्ण लघु विस्रं सरं द्रवम् ॥
स्निग्धः शीतो गुरुर्मन्द. श्लक्ष्णो मृत्स्न. स्थिर कफ·।

उपर्युक्त गुणयुक्त औषधियोके फलमे कालभेदसे विविधता हो जाती है। सत्वर फलदर्शक, पाककालमे परिणामदर्शक और कालान्तरमे प्रभावदर्शक। अथवा गुण, विपाक और वीर्य प्रभावसे परिणाममे भेद दर्शाया है। जैसा कि भगवान् धन्वन्तरिजी ने निम्न वचनसे वतलाया गया है।

तद्रव्यमात्मना किञ्चित् किञ्चिद्वीर्येण सेवितम्।
किञ्चिद्रसविपाकाभ्या दोष हन्ति करोति वा ॥
(सु० सू० अ० ४०-१४)

कितनेही द्रव्य अपने आत्मबल (प्राभाविक गुण) से कई वीर्य वलसे, कई रस गुणसे तथा कितनेही विपाकके अनुरूप दोषको वढाते हैं या कम करते है।

सब द्रव्य केवल रस अनुसार या गुण अनुसार फल नही दर्शा सकते। क्योकि द्रव्यका सेवन करने पर उसके साथ, लाला, आमाशय रस, यकृत्पित्त, अग्न्याशयका रस, अन्त्ररस, आदि विशेषत मिल जाते है, जिससे गुणमे बहुत कुछ परिवर्तन हो जाता है। अनेक औषधियोके वीर्यका शोषण रक्तमे होनेके पश्चात् उसके साथ अनेक अन्त.स्रावी ग्रन्थियोके रसका समिलन हो जाता है। जिससे वे कुछ कालके पश्चात् फल दर्शाती है। इस तरह केवल वाह्य प्रयोगो द्वारा औषधियोके फलका निर्णय नही हो सकता।

अन्य रीतिसे भिन्न-भिन्न गुणोके उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ रूपविभाग होते है। कौन-कौनसे रस वाले पदार्थमे किस-किस रीतिसे उत्तम, मध्यम आदि विभाग होते है। यह चरक संहितामे नीचे लिखे अनुसार दिखाया है।

१. गुरु—बृंहणकारी। अवसादजनक, उपलेपकारी (मलवर्द्धक) बल, तृप्ति और पुष्टिकर। यह वातहर, देहकी पुष्ट वनानेवाला, कफकर और चिरपाकी है।

२ मंद—शामक। शिथिलताकारक या मदतासे कार्य करनेवाला।

३ हिम—स्तंभनकारी। उष्णतासे पीडितोको सुखदायी, स्तम्भन और शीतल, मूर्च्छा, तृषा, स्वेद और दाहका नाशक।

४. स्निग्ध—क्लेदनकारी। स्नेह और मृदुता लानेवाला, बलवर्द्धक,

वर्णप्रद। वातहर, श्लेष्मकर, वृष्य, देहको चिकना बनानेवाला।

५ श्लक्ष्ण—स्नेहरहित, कठिन होते हुए भी चिकना (चिक्कण)। व्रण रोपण, तैजस।

६. सान्द्र—देहको स्थूल और पुष्ट बनानेवाला। प्रसादन शक्ति वाला।

७. मृदु—कोमलता लानेवाला। दाह, पाक और स्रावका नाशक। आकाश और जलकी प्रधानतावाला।

८ स्थिर—धारण करनेकी शक्तिवाला। वात और मलका स्तम्भक।

९ सूक्ष्म—सूक्ष्म सूक्ष्म स्रोतोमे प्रवेश करनेकी शक्तिवाला। स्रोतोको खोलनेवाला।

१० विशद—क्लेदशोषक। क्षालन करने वाला। व्रणरोपण। पार्थिव और वायव्य।

११. लघु—लङ्घनकारी। गुरुसे विपरीत अर्थात् उत्तेजना, मलक्षय, निर्बलता और कृशता लानेवाला तथा व्रणरोपण। यह परम पथ्य, कफघ्न और शीघ्र पचनेवाला है।

१२ तीक्ष्ण—शोधक। दाहजनक, पाक और स्राव करानेवाला। यह पित्तकर लेखन कृशता लानेवाला, कफघ्न और वातहर है।

१३ उष्ण—(स्वेदकारी) शीतगुणसे विपरीत अर्थात् गरम। शरीरको कष्ट देनेवाला, रस, रक्त आदिकी प्रवृत्ति करनेवाला, मूर्च्छा, तृषा, स्वदल और दाहको उत्पन्न करनेवाला। पाचन।

१४ रूक्ष—स्निग्धसे विपरीत। शोषणकारी। रूक्षता और कठिनता लानेवाला। बल और वर्णका ह्रास करानेवाला। इसमे यह गुण वातकर और परम कफहर है।

१५ खर—खर (कर्कश) स्पर्शयुक्त। लेखनकारी। वातगुणकी प्रधानतावाला।

१६. द्रव—देहको आर्द्र (तर) बनानेवाला। प्रवाही, सर्वत्र व्याप्त होने की शक्तिवाला।

१७ कठिन—द्रव्यको दृढ बनानेकी शक्तिवाला।

१८ सर—अनुलोमन। प्रेरक शक्तिवाला। वायु और मलकी प्रवृत्ति करानेवाला।

१९ स्थूल—देहमे स्थूलता लानेवाला। स्रोतावरोधक।

२०. पिच्छिल—लेपनकारी। जीवनप्रद, बल्य, अस्थिसंधानक, कफकर और गुरु। लेसदार। (चिपचिपा)। आप्य।

इनके अतिरिक्त आयुर्वेद साहित्यमे प्रचलित पारिभाषिक गुणदर्शक शब्द।

१. दीपन—जठराग्निप्रदीपक।

२. पाचन—आमपाचक ।

३. संशमन—न्यूनाधिक वात, पित्त कफको प्रकुपित्त न करतें हुए स्थापित करनेवाला द्रव्य ।

४. अनुलोमन—अपक्व मलको पकाकर और मार्गमें उत्पन्न प्रतिबन्धको हटाकर देहमेंसे अधोमार्ग द्वारा बाहर निकालनेवाला ।

५ स्रंशन—कोष्ठमे चिपके हुए पकाने योग्य अपक्व मल, कफ, पित्त आदिको अपक्वावस्थामे ही नीचे गति करानेवाला ।

६. भेदन—पतले, गाढे और पिण्डित (गाठ जैसे बधे हुए) मलको खीचकर नीचे गिरानेवाला ।

७ विरेचन—पक्व और अपक्व मलको प्रवाही बनाकर फेकनेवाला ।

८. सशोधन—देहमे संगृहीत मलको उनके स्थानोसे खेचकर ऊर्ध्व या अधोमार्ग द्वारा बाहर निकालनेवाला ।

९ ग्राही— दीपन, पाचन और द्रवशोषक ।

१० स्तम्भन—रूक्ष, शीतल, कषाय और पाकमे लघुगुणयुक्त, वात वर्द्धक और रोकनेवाला, अथवा बाहर निःसरणशील, उत्तेजक मल आदि की गतिका रोधक ।

वक्तव्य—ग्राही औषधि आग्नेय गुणयुक्त होनेसे जलीय अशका शोषण करती है । फिर मलको धारण करती है । स्तम्भन औषधि वातप्रधान और शीतल गुणयुक्त होनेसे वातकी वृद्धि करके मल आदिको रोक देती है ।

११. छेदन—चिपके हुए कफ आदिको बलपूर्वक उखाड़कर निकालनेवाला ।

१२. लेखन—धातु और मलको सुखाकर बाहर निकालनेवाला ।

१३. प्रमाथी—१ स्रोतोके भीतर संगृहीत विकारको दूर करनेवाला । २. सूक्ष्म, तीक्ष्ण और व्यापक गुणयुक्त । ३ सूक्ष्म और तीक्ष्ण गुणके हेतुसे स्रोतोमें प्रवेशकर चिपके हुए दोषोको उखाड़कर पृथक् करनेवाला ।

१४. अभिष्यन्दि—रसवाहिनियोंका अवरोधक और देहमे भारीपन लानेवाला ।

१५. आशु-जलमे गिरी हुई तैलकी बूंदके सदृश देहमे सत्वर फैलानेवाला ।

१६ व्यवायी—पहिले देहमे व्याप्त होकर फिर पचन होनेवाला । शराब, भाग, अफीम आदि ।

१७ विकाशी—अपक्कावस्थामे ही देहमे व्याप्त होकर धातुको शिथिल बनानेवाला ओजशोषक । सुपारी, कोदो आदि ।

१८ विष—व्यवायी, विकासी, कफनाशक, मादक, आग्नेय गुणविशिष्ट प्राणनाशक और योगवाही ।

१९. मादक—(मदकारी)—बुद्धिका लोप करानेवाला । तमोगुणप्रधान द्रव्य ।

२०. विदाही—जिस द्रव्यके सेवनसे खट्टी खट्टी डकार आने लगे, तृषा उत्पन्न हो, हृदयमे दाह हो तथा भोजनका परिपाक देरसे और दुःख पूर्वक हो।

२१. दारण—पक्वव्रणको फोडनेवाला।

२२. पीडन—व्रण आदिका पाक (पचन) करानेवाला।

२३. विम्लापन—लेप या अभ्यङ्ग करनेपर अपक्व व्रणशोथको फैलानेवाला या अंगुली आदिसे मर्दन करनेपर शोथको दूर करनेवाला द्रव्य।

२४ निर्वापण—पकते हुए व्रणकी दाह पीडा आदिका शामक।

२५ उत्सादन—शुष्क, अल्प मांसवाले तथा गहरे व्रणमे मांसकी वृद्धि करके ऊँचा लानेवाला द्रव्य।

२६. अवसादन—उभरे हुए कोमल मासमय व्रणको बैठाकर सम अवस्थामे लानेवाला द्रव्य।

२७. रोमशातन—बालोपर लगानेसे उनको निकाल देनेवाला द्रव्य।

२८ सधान—कटे हुए अवयवोका संयोजन करनेवाली औषधि।

२९ स्वेदन—स्वेद लाकर स्तब्धता, गुरुता, और शीतका नाशक। स्निग्ध या रुक्ष, द्रव या कठिन, किसी भी द्रव्यमे उष्णवीर्य, तीक्ष्ण, प्रसरणशील, सूक्ष्म और गुरुपाक, ये गुण हो, उससे प्राय स्वेदन कार्य हो सकता है।

३०. स्नेहोपग—स्नेहद्रव्योकी स्नेहन क्रियामे सहायक।

३१ स्वेदोपग—स्वेदन क्रियामे सहायता पहुँचानेवाले द्रव्य।

३२. वमनोपग—वामक द्रव्योकी सहायता पहुँचानेवाले द्रव्य।

३३. शिरोविरेचनोपग-मस्तिष्कमे जमे हुए दोषोको गिरानेवाला द्रव्य।

वक्तव्य—स्नेहोपग, स्वेदोपग, वमनोपग, विरेचनोपग, (इस तरह आस्थापनोग, अनुवासनोपग) गणोंमे जो द्रव्य हैं-वे प्रधानतया स्नेहन, स्वेदन अदि कार्य नही करते, वे केवल स्नेहन आदि द्रव्योकी शक्ति बढानेका कार्य करते हैं। किन्तु शिरोविरेचनोपग गणके द्रव्य शिरोविरेचनमें प्रधानकार्य करते हैं, वे सहायक मात्र ही द्रव्य नही है।

३४. पुरीषविरजनीय—मलके दोषको दूरकर स्वाभाविक रंग लानेवाली औषधि।

३५. शोणितस्थापन—१. रक्तके दोषका हरणकर रक्तको प्रकृतिस्थ बनानेवाली। २ रक्तके अतिस्रावका स्तम्भन करने वाली औषधि। इसके ४ विभाग हैं। सधान, स्कंदन, पाचन और दहन।

३६ वेदनास्थापन—१ उत्पन्न हुई वेदनाका नाशकर शरीरको प्रकृतिस्थ बनानेवाली। २ वेदनाओ (वेग) के निवृत्त होनेपर उत्पन्न विकृतिको हटाकर पुनः वेदना उत्पादक औषधि।

३७. प्रजास्थापन-सतान विनाशक दोषोको दूरकर सन्तानकी स्थापना

करनेवाला द्रव्य ।

३८. वयःस्थापन—युवावस्थाकी प्राप्ति करानेवाली औषधि, इसे रसायन भी कहते हैं ।

३९ संज्ञास्थापन—बेहोशी होनेपर चेतना लानेवाला द्रव्य ।

४०. संज्ञाहर—मस्तिष्क और सुषुम्णा काण्डमें स्थित नाड़ी चक्रोपर असर पहुंचाकर बेहोश बनानेवाला द्रव्य । इसे स्वापजनन भी कहते है ।

४१ क्षेत्रीकरण—वमन, विरेचन आदि पञ्चकर्म विशुद्ध की हुई देह, जो रसायनके योग्य बनाई हो, वह ।

४२. रसायन—१ वृद्धावस्था और व्याधियोके आक्रमणसे देहकी रक्षा करनेवाला । २ स्वस्थ मनुष्यके लिये ओजस्कर और वृष्य गुणकी प्राप्ति करानेवाला (दीर्घायुकी प्राप्ति करानेवाला) ३ जराव्याधिका नाशक ।

४३ वाजीकरण—सुरत शक्तिकी वृद्धि करनेवाला । सुश्रुतसहितामे इसके ३ प्रकार दर्शाये हैं । शुक्रजनक, शुक्रप्रवर्त्तक तथा शुक्रजनकप्रवर्त्तक ।

४४ शुक्रल—(शुक्रजनक) वीर्यवर्द्धक ।

४५ शुक्रप्रवर्त्तक—शुक्रको उत्तेजित करनेवाला ।

इस सम्बन्धमे श्री शार्ङ्गधराचार्यने विशेष रूपसे लिखा है कि—

प्रवर्त्तनी स्त्री शुक्रस्य रेचनं वृहतीफलम् ।
जातीफलं स्तम्भकं च शोषणी च हरीतकी ।।

स्त्री वीर्यका प्रवर्त्तक । बड़ी कटेलीके फल वीर्य विरेचक । जायफल वीर्यस्तम्भक । हरड वीर्यशोषक-वीर्यको हीन करानेवाली । मतान्तरमे चतुर्थपाद—'कालिङ्ग क्षयकारी च' अर्थात् तरवूज वीर्यका क्षयकारक है ।

४६, जीवनीय—१ जीवनके लिये हितकर, २ सौम्य धातुकी वृद्धि करनेवाली, ३. देहको सुदृढ अथवा निरोग बनानेवाली ओषधि ।

४७ तृप्तिघ्न—भोजन न करनेपर भी श्लेष्म विकारसे तृप्तिके समान भास होता हो, उसे दूर करनेवाला ।

४८. ग्लपन—अवृष्य, सुरत समागमकी शक्तिका ह्रास करानेवाला ।

४९ योगवाही—१. पच्यमान अवस्थामे संसर्गी वस्तुके गुणको ग्रहण करनेवाला । २. अपना गुण परित्याग किये विना अपनेमें रहे हुए गुणोमे जो गुण संयोगी औषध सदृश हो, उसके द्वारा संयोगी ओषधकी शक्तिको पूर्ण करनेवाला ।

वक्तव्य—अष्टाग-हृदयके टीकाकार अरुणदत्तने योगवाहीकी निम्न लिखित ३ व्याख्याओको अशुद्ध वतलाया है ।

"१ इतर द्रव्यके साथ मिलनेपर अपने स्वभावका परित्याग कर सयुक्त द्रव्यके स्वभावका अनुकरण करनेवाला । २. इतर द्रव्यके साथ मिलनेपर उसकी शक्तिमे वृद्धि करनेवाला । ३ तुल्य गुण-युक्त द्रव्यके साथ संयुक्त

होकर दास सदृश गुणानुयायी वर्ताव करते हुये उसके अविरोधी अपना कार्य भी कुछ अंशमें करनेवाला।

५०. तर्पण—१ तृप्तिकारक और रस आदिका वर्द्धक। २ दृष्टिप्रसादन क्रियाको नेत्रतर्पण कहा है।

५१, मार्गविशोधन—मलमूत्रका अवरोध होनेपर उन मार्गोंका शोधन करना।

५२. पुंसत्वोपघाति—शुक्रनाशक।

५३ बृंहण—देहको मोटा बनानेवाली औषधि। यह औषधि बहुधा गुरुपाकी, शीतवीर्य, मृदु, स्निग्ध, घन, स्थूल, पिच्छिल, मंद, स्थिर श्लक्ष्ण गुणयुक्त होती है।

५४. लघन—देहमे लघुता लानेवाली ओषधि। यह औषधि प्रायः लघु-पाकी, उष्णवीर्य, तीक्ष्ण, विशद, रूक्ष, खर, सर और कठिन गुणयुक्त होती है।

५५ हृद्य—हृदयके लिये हितकर। हृदयपौष्टिक।

५६. उत्तेजक—देहमे उत्तेजना (तेजी) लानेवाली औषधि।

५७. शामक—अवसादक, शैथिल्यकर।

५८ उग्रतासाधक—त्वचापर दाह उत्पन्नकर तथा रक्त संचालनमें उत्तेजना लाकर वेदनाको दूर करनेवाली औषधि।

५९ प्रत्युग्रतासाधक—जिन उग्रतासाधक औषधियोकी क्रिया प्रतिफलित हो अर्थात् एक स्थानपर प्रयोजित औषधिका परिणाम इतर सम्बन्धवाले स्थानपर प्रकाशित हो, ऐसी औषधि।

६०. रक्तप्रसादन-रक्तमे उत्पन्न विकृतिको दूरकर पवित्र बनानेवाली औषधि।

६१. मेधाकर—संज्ञावाही नाडियों और मस्तिष्कको पुष्ट बनाकर धारणाशक्तिकी वृद्धि करानेवाली औषधियां।

६२ रुजादोषघ्न—स्थानिक व्यथाके कारण रूपदोष या निर्बलताको दूर करनेवाली औषधि।

६३ रजोनिसारक—आर्तवजनक लुप्त, रुद्ध और अनियमित मासिक धर्मको पुन स्वाभाविक नियमानुसार स्थापन करनेवाली औषधि।

६४ कीटाणुनाशक—रक्त, त्वचा, श्लैष्मिककला, लसीकाग्रन्थियों आदि मे उत्पन्न या बाहरसे प्रविष्ट सूक्ष्म कीटाणु और उनसे उत्पन्न विषको नष्ट करनेवाली औषधि।

६५ फेनीभवन—किसी भी वस्तुके मूल द्रव्योकी रासायनिक या प्राकृतिक रचना विकृति होना, खमीर बनना। विकृतिकर पदार्थके प्रभावसे मिश्रित परमाणुओंका विगलन।

गुण	उतम गुणयुक्त रस	मध्यमगुणयुक्त रस	कनिष्ठ गुणयुक्त रस
रूक्ष	कसैला	चरपरा	कडुवा
उष्ण	खारा	खट्टा	चरपरा
स्निग्ध	मधुर	,,	खारा
शीतल	,,	कसैला	कडुवा
गुरु	,,	,,	खारा
लघु	कडुवा	चरपरा	खट्टा

जैसे उपर्युक्त कोष्टकके आरम्भमे रूक्ष गुण है, वह कसैले पदार्थोमे उत्तम प्रकारका, चरपरे पदार्थोमे मध्यम प्रकारका, और कडुवे पदार्थोमे कनिष्ठ प्रकारका दिखाया है। वैसे ही अन्य गुणोके उतम, मध्यम और कनिष्ठ प्रकारको भी समझ लेवे।

रूक्ष, शीत, लघु, सूक्ष्म, चल, विशद, सर इन गुणोसे वातवृद्धि और इनसे विपरीत गुणोसे वात-शमन होता है।

स्नेह, उष्ण, तीक्ष्ण, द्रव, अम्ल, सर, कटु (चरपरा), इन गुणो वाली औषधियोंसे पित्त बढता है, और इनसे विपरीत गुणयुक्त औषधियोंसे पित्त शमन होता है।

गुरु, शीत, मृदु, स्निग्ध, मधुर, स्थिर, पिच्छिल, ये गुण कफकारक और इनसे विपरीत गुण कफनाशक है।

वात, पित्त, कफ, इन धातुओके गुणोमेसे कितने ही गुण परस्पर विपरीत है। परमात्माने इन विपरीत गुणोको मर्यादामे रखकर इनसे शरीर-संधारण और शरीरपोषण रूप कार्य लिया है। परन्तु जब प्रमाद या भूलके हेतुसे विषमताकी प्राप्ति होती है, तब सूक्ष्मतर त्रिधातु या उनमे रही हुई रोग निरोधक शक्ति साम्यता स्थापित करनेके लिये विविध व्यापार करने लगती है। उस समय पर औषध आदि द्वारा रोग निरोधक शक्तिको सहायता दी जाय, तो शीघ्र लाभ पहुँच जाता है।

यदि वातके रूक्ष गुणकी वृद्धि होने पर कफमे स्निग्ध गुण वढाया जाय, तो वातप्रकोप शमन हो जाता है। पित्तके तीक्ष्ण गुणकी वृद्धि होने पर इस के विरोधी कफके गुरु, मंद आदि गुणोंकी वृद्धि कराई जाय, तो तीक्ष्णत्वका ह्रास हो जाता है। इसी तरह अन्य गुणोंकी वृद्धि होनेपर उनके प्रतिकूल गुणकी वृद्धि कराई जाती है।

उपर्युक्त २० गुण-विभागके अतिरिक्त रोगशमन या देहमें होनेवाले विविध गुण प्राप्तिको दृष्टिसे औषधियोके अनेकके गुण विभाग-वर्गीकरण (Classification) किये हैं। इनमेसे यहाँ १०० विभाग वर्ग (groups) लिखे हैं।

आयुर्वेद और एलोपैथीने औषधियोंके गुणोके अनुरूप नाना विभाग किये है। इनमेसे अनेकोकी परिभाषा उभय शास्त्रमे समान है। इन विभागोका डाक्टरी शैली अनुसार विवेचन भी उपादेय है। यह आयुर्वेदके विद्यार्थियोके लिये उपयोगी प्रतीत हुआ है। अत इनकी विचारणा इस ग्रन्थमे वैज्ञानिक शैलीसे शास्त्रानुकूल युक्तिपूर्वककी गई है।

डाक्टरी मतानुसार गुणविभाग।

(१) सार्वदैहिक Systematic अर्थात् जिनका फल शारीरिक आशयोकी क्रिया पर हो।

(२) परंपरा सार्वदैहिक-Nonsystematic अर्थात् जिनका फल अवयवोंके भीतर रहे हुये अपर पदार्थ (कृमि, मल आदि) पर प्रकाशित हो।

(१) सार्वदैहिक फलदर्शक।

(अ) व्यापक (General) फलदर्शक-रक्ताभिसरण संस्था, वातसंस्था, रससंस्था आदि सब पर परिणाम कारक।

(आ) स्थानिक (Local) स्थानविशेष या यन्त्रविशेष पर परिणामी।

१. अ. व्यापक फलदर्शक।

इस श्रेणीकी औषधियाँ शारीरिक क्रिया पर उत्तेजना, अवसादन या परिवर्तन द्वारा कार्य करती हैं। अतः इनके क्रियानुरूप निम्नलिखित तीन विभाग होते है।

A उत्तेजक—शामक Stimulants.

B. अवसादक—Sedatives

C परिवर्त्तक—दोषघ्न-Alteratives.

A. उत्तेजक औषध।

सब उत्तेजक औषधियोकी क्रियाका अन्वेशष करने पर विदित होता है कि इनमे कतिपय औषधियोकी क्रिया शनै शनै क्रमशः प्रकाशित होती है, और कुछ काल तक स्थिर रहती है। एव कितनीही औषधियोंकी क्रिया तीव्र वेगसे सहसा प्रकाशित होकर अल्प समयमे ही पर्यवसित हो जाती है। इस हेतुसे उत्तेजक औषधियोमें स्थायी (Permanent) और प्रसारणशील किन्तु अस्थायी (Diffusible) ऐसे दो विभाग हो जाते हैं।

स्थायी उत्तेजक औषधियां—इनमे कतिपय औषधियो द्वारा शारीरिक आकुञ्चन शक्तिकी वृद्धि होती है, इनको संकोचकारी—ग्राही—(Astringents) संज्ञा दी है। कतिपय औषधियां जीवनीय क्रियाको उत्तेजित और सबल बनाती हैं, इनको बलदायक-पौष्टिक (Tonic) संज्ञा दी है।

अस्थायी उत्तेजक—इस प्रकारमे उत्ताप, विद्युत (Electricity) प्रभृति की क्रिया समग्र शरीरमें प्रकाशित होती है। इनको व्यापक (General) उत्तेजक संज्ञा दी है। इसके अतिरिक्त इस विभागकी कतिपय औषधियोंकी क्रिया रक्तसंचालन यन्त्र अथवा वातवहा नाडीमण्डलको उत्तेजित करती है। अतः इनमें तीन विभाग होते है। १ धामनिक उत्तेजक Arterial stimulants, २. मस्तिष्क उत्तेजक-Cerebral stimulants, ३. सुषुम्णा उत्तेजक—Spinal stimulants, ।

(१) धामनिक उत्तेजक औषध द्वारा रक्ताभिसरण क्रियाका वेग, हृदय स्पंदन और धमनी स्पदन, इन सबमे वृद्धि होती है, और तज्जनित शारीरिक उष्णता भी बढ़ जाती है।

(२) मस्तिष्क उत्तेजकमे निम्नानुसार दो उपविभाग है—

(अ) वातनाडी उत्तेजक (Nervous stimulants)—अर्थात् कितनी ही औषधियोंकी क्रिया समस्त वातवहा नाडियोको समान रूपसे उत्तेजना देती हैं और किसी विशेष वातनाडी मूलका आश्रय नही करती। यह बात नाडियोकी विषमताका दमन कर आक्षेप निवारण करती है। इस हेतुसे इस श्रेणीकी औषधियोंको वाताक्षेपघ्न या आक्षेपनिवारक (Antispasmodics) संज्ञा दी है।

(आ) मस्तिष्क उत्तेजक (Cerebral stimulants)—कितनीक औषधियोकी क्रिया विशेषांशमे बृहद् मस्तिष्कके ऊपर प्रकाशित होती है। यदि इसकी क्रिया अधिक होती है, तो मस्तिष्कक्रिया विकृत होकर बेहोशी ला देती है। अत ऐसी औषधियोंको स्वापजनक (Narcotics) संज्ञा दी है।

(इ) सुषुम्णा उत्तेजक (Spinal stimulants)—कितनी ही औषधियोंका प्रभाव सुषुम्णाकी प्रत्यावर्त्तन क्रिया (Reflex) पर पड़ता है; उनको सुषुम्णा उत्तेजक संज्ञा दी है।

B अवसादक औषध।

इन औषधियोंकी क्रिया जीवनीय शक्तिको अवसन्न करती है।

१. व्यापक अवसादक (General Sedatives)—इस श्रेणीकी औषधियोकी क्रिया समस्त शरीरपर प्रकाशित होती है। जैसे—जल, शैत्य, दोहन आदि।

२ धामनिक अवसादक (Arterial Sedatives)—इस प्रकारकी औषधियाँ हृदय और सब धमनियोके स्पन्दनका ह्रास कराती है, रक्ताभिसरण गतिमन्द और शारीरिक उष्णता न्यून कराती है। इस विभागमे कितनीक शीतल औषधियोको शैत्यकारक तृषाशामक (Refrigerants) संज्ञा दी है।

३ वातनाड़ी अवसादक (Nervous Sedatives)—इस श्रेणीकी औषधियाँ वातवहा नाड़ियोकी क्रियाका ह्रास कराती है। परन्तु मस्तिष्कस्थ केन्द्रपर कोई विशेष प्रकाश नही डालती। अत. ये औषधियाँ परम्परा धामनिक अवसादकके समान फल प्राप्त कराती है।

४ मस्तिष्क अवसादक (Cerebral Sedatives)—इस श्रेणीकी औषधियोकी क्रिया विशेषत. मस्तिष्कपर प्रकाशित होती है। इस हेतुसे अधिक मात्रा लेनेपर वेहोशी आजाती है। अतः इस प्रकारकी औषधियों को अवसादक स्वापजनक (Sedative Narcotics) संज्ञा दी है।

५ सुषुम्णा अवसादक (Spinal Sedatives)—इस प्रकारकी औषधियाँ सुषुम्णाकी प्रत्यावर्त्तन क्रियाको अवसन्न करती है।

C. परिवर्त्तक औषध।

इस प्रकारकी औषधियाँ समस्त शरीरमे शनैः शनैः परिवर्त्तन कराती है। इन औषधियोंका फल जल्दी नही मिलता। कुछ काल तक सेवन करनेपर इनके चया अपचय (Metabolism) क्रियामे सुधार होता है, फिर देह पूर्व स्थितिको प्राप्त करती है अर्थात् स्वास्थ्यकी प्राप्ति कराती है। इसका विवेचन आगे रक्तशोधक और रसायन गुण वाली औषधियोमें किया जायगा।

१, आ. स्थानिक फलदर्शक औषध।

इस प्रकारके औषध देहके किसी विशेष स्थान या विशेष यन्त्रपर प्रभाव दर्शाती है। इनमे मुख्य ३ विभाग है।

(A) संशोधक—अर्थात् देहका शोधनकर शारीरिक क्रियामें वैलक्षण्य उत्पादक औषधियाँ। इनमे अनेक उप विभाग है।

१. वमनकारक—एमेटिक्स—Emetics.
२ विरेचक—केथार्टिक्स—Cathartics.
३. मूत्रल—डाइयूरेटिक्स—Diuretics.
४. स्वेदल—डायाफोरैटिक्स—Diaphoretics
५. शिरोविरेचक—एरिन्स—Errhines.
६. कफनि.सारक—एक्सपेक्टोरण्टस—Expectorants
७ पित्तनिःसारक—कोलागोग्स—Cholagogues.
८ रजोनि सारक—एमेनागोग्स—Emmenagogues.
९ गर्भाशय आकुंचक—एक्बोलिक्स—Ecbolics
१०. लालानि.सारक—स्यालोगोग्स—Sialogogues.

(B) क्षोभ उत्पादक—Irritants.

१ त्वक् प्रदाहक—रूबेफेसियन्ट्स—Rubefacients.
२. स्फोटोत्पादक—एपिस्पेस्टिक्स—Epispastics.

३ पूयोत्पादक—परच्युलन्टस—Pustulants
४ तीव्रदाहक—एस्कारोटिक्स—Escharotics

(C) प्राकृतिक नियमानुसार कार्यकारी

१ स्निग्धकारक—डेमलसेन्ट्स—Demulcents
२ मार्दवकारक—एमोलियेन्ट्स—Emollients
३ तरलकारक-द्रवोत्पादक—डायल्युएन्ट्स—Diluents
४. सरक्षक-आच्छादक—प्रोटेक्टिवस्—Protectives

(२) परम्परा सार्वदैहिक फलदर्शक

अ. अम्लतानाशक—एन्ट एसिड्स—Antacids
आ क्षारनाशक—एन्टाल्कालिज—Ant-alkales
इ. परोपजीवी कीटाणु नाशक—पेरेसाइटिसाइडस्—Parasiticides.

अर्थात् शारीरिक सत्व शोषण करने वाले शत्रु अथवा शारीरिक धातुओसे पुष्ट होने वाले, कृमि, कीटाणु आदिको नष्ट करने वाली औषधियाँ । इनमे दो उपविभाग है ।

A उदरकृमिघ्न—एन्थेलमिन्टिक्स—Anthelmintics
B सेन्द्रिय विषघ्न एन्टिजाइमोटिक्स—Antizymotics

अर्थात् दूषित आम और उससे उत्पन्न विषको नष्ट करनेवाली औषधिया । इनका विवेचन आगे किया जायगा ।

(१) वातदोषघ्न ।

शरीरके भीतर व्यापक वातवाहिनियोंमे उत्पन्न वातप्रकोपको शमन करनेवाली औषधिया । इस विषयमे चरकसंहितामे लिखा है कि.—

रूक्ष शीतो लघु सूक्ष्मश्चलोऽथ विशद खरः ।
विपरीतगुणैर्द्रव्यैर्मारुत संप्रशाम्यति ।।

वायुमे रुक्ष, शीतल, लघु, सूक्ष्म, चल, विशद और खर, ये गुण मुख्य है । इन गुणोके विपरीत गुण - स्निग्ध, उष्ण, गुरु, स्थूल, मृदु, पिच्छिल और श्लक्ष्ण, इन गुणों और कर्मों द्वारा उपचार करनेपर वायु शमन हो जाता है ।

यद्यपि वायु शीतल या उष्ण स्पर्शवाला नही है; तथापि शीत लगने या शीतल द्रव्यका सेवन करनेपर वायुकी वृद्धि होती है तथा उष्ण उपचार से शान्ति होती है । इस हेतुसे चिकित्सा शास्त्रमे वायुको शीतल माना गया है ।

वायुके आधारपर आरोग्य अवलम्बित है । वायुकी विकृतिसे विविध रोग उत्पन्न होते है । इस सम्बन्धमे चरकसहितामे लिखा है कि—

सर्वा हि चेष्टा वातेन स प्राण. प्राणिनां स्मृतः ।
तेनैव रोगा जायन्ते तेन चैवोपरुध्यते ॥

देहमे सब प्रकारकी चेष्टा वातधातु द्वारा होती है । यह सब प्राणियों का प्राण है । जब यह विकृत होता है, तब रोग उत्पन्न होते है और यहा तक कि मृत्यु भी हो जाती है ।

यदि वायुमे विकृति होती है, तो जितना हो सके उतना तुरन्त उपचार कराना चाहिये । देर होनेपर रोग दृढ बन जाता है ।

वात संशमन वर्ग—सुश्रुत संहितामे देवदारु, कूठ, हल्दी, वरना, मेषशृंगी (काकड़ासिंगी) खरेंटी, अतिबला, (कघई), आर्तगल (कटसरैया-पियावांसा), कौंच बीज, शल्लकी (शालभेद), कुवेराक्षी (पाटला), वीरतरु, कटसरैया, बडी अग्नी, गिलोय, एरंड पाषाणभेद. श्वेतार्क, आक, शतावरी पुनर्नवा, वसुक (मंदार), वसिर (अपमार्ग), धतूरा, भारगी, वनकपास, वृश्चिकाली, (मेषशृंगीभेद या बिछुआ बूटी), पतग, बेर, जौ, बड़े बेर, कुलथी आदि, तथा विदारीगंधादि गण और दशमूल, ये सब वातसंशमनकारी औषधिया कही हैं ।

विदारीगंधादि गण—विदारीगंध (शालपर्णी), विदारीकंद, सहदेवी, गंगेरन, गोखरू, पृश्नपर्णी, शतावरी, सारिवा श्वेत, सारिवा श्याम, जीवक ऋषभक, माषपर्णी, मुद्गपर्णी, छोटी कटैली, बड़ी कटैली, पुनर्नवा, एरण्ड हंसपदी, वृश्चिकाली, (मेषशृंगी भेद), कौंच, ये २० औषधियां । यह गण पित्त-वातशामक है, शोष, गुल्म, अंगमर्द, ऊर्ध्वश्वास और कासको नष्ट करता है ।

इनके अतिरिक्त वातहर औषधियां—सुवर्ण भस्म, रौप्य भस्म, पुष्पराग माणिक्य सोमल, शिलाजीत, दशमूल, ब्राह्मी, रास्ना, गूगल, जटामासी, भिलावा, लोवान, एरण्ड तैल, लहशुन, वच, वच्छनाग, वादाम, पिस्ते, पीपलामूल, कायफल, खुरासानी अजवायन, गोरखमुण्डी, शंखाहुली, घी, उडद, नारियल, मालकांगनी, रुद्राक्ष, हालो, प्रसारणी, उतरंड, विधारा, कुचिला, तार्पिन तैल, नीलगिरी तैल, इत्यादि ।

आचार्य चक्रपाणिदत्त लिखते हैं कि—

स्निग्धोष्णं मारुते शस्तं पित्ते मधुरशीतलम् ।
कफेऽनुपानं रूक्षोष्णं क्षये मांसरसः पयः ॥

वातप्रकोपमें स्निग्ध उष्ण, पित्त प्रकोपमे मधुरशीतल, कफमें रूक्ष-उष्ण तथा क्षय रोगमे मांस रस और दूध हितकारक है ।

डाक्टरीमे वातवहा नाडीपौष्टिक (Nervine tonic) औषधियां कही है; उनका समावेश इस वातदोषघ्न विभागमे हो सकता है । इनमे वातवाहिनियोंपर प्रभावोत्पादक मस्तिष्क और सुषुम्णापर उत्तेजक (Stim-

ulant) शामक (Sedative), मादक, वेदनानिवारक, चेतनाहर, और आक्षेपनिवारक आदि विभाग है। इन सबका अतर्भाव इस आयुर्वेदीय वातदोषघ्न विभागमे हो जाता है। इन सबका विवेचन आगे पृथक् पृथक् विभागोमे यथा स्थान किया जायगा।

आयुर्वेदकी दृष्टिसे वात धातुके स्थान भेदसे ५ विभाग, अविकृत वात धातुके कार्य, वात विकृत हेतु, वातके क्षय, वृद्धि और प्रकोपके लक्षण, वातशामक उपाय, इन सबका वर्णन 'चिकित्सातत्त्वप्रदीप' ग्रन्थके प्रथम खण्ड के उपोद्‌घातमे पृष्ठ २५ से ३१ के भीतर किया है।

वातप्रधान प्रकृतिके लिये पथ्य—मधुर, अम्ल, लवण रस, गेहूँ, जो, चावल, उडद, घी, तैल, मासरस, दही, मधुर पदार्थ, पक्वान्न, सज्जीखार, मद्य, पुरानागुड, परवल, वैगन, सुहिजनेकी फली, नीबू, कोकम, (वृक्षाम्ल), पोदीना, सूखा धनिया, अदरख, सोठ, कालीमिर्च, पीपल, मेथी, लौग, अरंडीका तैल, सोया, अजवायन, लहसुन, हीग, मुनक्का, किशमिस, अगूर, आंवला, कच्चानारियल, मीठे आम, अनार, बादाम, पिस्ते, अखरोट, काजू, चिलगोजे, खुरमानी, चिरौजी, जीरा, काला जीरा, ताम्बूल, तैलमर्दन, निवाये जलसे स्नान, आमोद, क्रीडा, गाना, बजाना आदि आहार-विहार पथ्य हैं, और ये ही (आहार-विहार) वातप्रकोप होनेपर शमन करनेके लिये भी हितावह है।

वातप्रकोपज आहार-विहार -बलवान से लडना, अतिव्यायाम, अति मैथुन, अति अध्ययन, अग्नि और सूर्यके तापका अधिक सेवन, उछलना, कूदना, अति दोडना, देहको अति कष्ट पहुँचाना, जखम होना, चोट लगना, लंघन, अत्यन्त तैरना, रात्रिको जागरण, अति बोझा उठाना, हाथी, घोडा, रथपर या पैदल अति प्रवास करना, अति वमन, अति विरेचन, अधिक रुधिर निकालना चरपरे, कसैले, और कडुवे रसवाले पदार्थ ज्यादा खाना, शुष्क, लघु और शीतवीर्य गुणवाले पदार्थका अति सेवन, शुष्क शाक, सूखामांस, चीना, कोदो, और शामक आदि कुधान्य, मूग, मसूर, अरहर काला मटर, सफेद मटर, निष्पाव (शेम), लाख, चोला, चना, बाजरा, ज्वार, मोठ, उपवास, स्वल्प, भोजन, विरुद्ध भोजन (जैसे दूध और मूली एकसाथ खाना) अध्यशन, (भोजन पर भोजन), अधोवायु, मूत्र, मल, शुक्र, वमन, छीक, डकार और अश्रुपात आदि वेगोंको रोकना, ताडफल, कच्चा कटहल, गँवार फलो इत्यादिके सेवनसे वायु प्रकुपित होती है।

इसी प्रकार भैसका दूध, मकाई, मैदा उडदके आटेके पदार्थ, कुलथी, कन्दूरी, आलू, रतालु, शकरकन्द, फूलगोभी, पानगोभी, तोरई, लौकी, ककडी, तरबूज, मूँगफली, केला, अमरुद, सीताफल, रामफल, ये सब वातवृद्धिकर पदार्थ है।

वायु शीतकालमे बादल आनेपर, वर्षा होनेपर और ग्रीष्म-ऋतुके अन्त मे विशेषतः कुपित होता है। एवं सूर्योदयसे पहिले और सायंकालसे पहिले भी वातका प्रकोप हो जाता है।

सुवर्ण—शीतल, वृष्य, बल्य, गुरु, रसायन मधुर, तिक्त, (कडुवा), कसैला, पाक कालमे मधुर, पिच्छिल, शुद्धिकर, बृंहण, नेत्रको हितकर, मेधा, स्मृति और बुद्धिको बढानेवाला, हृदयपौष्टिक, आयु-वर्द्धक, कान्तिप्रद, वाणीको विशुद्ध और स्थिरताकारक, दोनों प्रकारके विष, क्षय, उन्माद, त्रिदोष ज्वर और शोषको दूर करनेवाला है। इसके गुणोका विशेष विवेचन 'रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रह' नामक ग्रन्थके भस्म प्रकरण मे किया गया है।

रौप्य—शीतल, कषाय, अम्ल, मधुर-विपाकी, सर, स्निग्ध, लेखन, वात पित्तजित और रसायन।

पुष्पराग—अम्ल, शीतल, वातघ्न और दीपन।

माणिक्य—मधुर, स्निग्ध, वात-पित्तघ्न और रसायन।

सोमल—रूक्ष, उष्ण, बल्य, वर्ण्यकर और पुष्टिकारक। ज्वर, वमन, श्वास, कास, प्रदर और वात रोगोका नाशक है।

शिलाजीत—इसमे सब प्रकारके रोगोंके नाश करने के विविध गुण अवस्थित है। इसमे वात रोगोके नाशके लिये रास्ना, दशमूल, बला, पुनर्नवा, एरण्ड, सोंठ, मुलहठी, आदिके क्वाथकी भावना देनी चाहिये।

काष्ठादि औषधियोमे रास्ना, गुग्गुलु, लहशुन, एरण्ड, तैल, कुचिला, बच्छनाग, दशमूल आदिमे वातनाशक गुण अधिक होता है। बलामे वात पित्तशामक गुण है। मालकागनीमे वात-कफनाशक गुण अधिक है।

एरण्डको संस्कृत भाषामे वातारि संज्ञा दी गई है। आमदोषसहित वातविकार एरण्ड तैल और होनेपर एरण्ड तैलप्रधान औषधि सत्वर लाभ पहुँचाती है। अनुपान रूपमें अदरखका रस या दशमूल-क्वाथ देना चाहिये।

बच्छनाग—कटु, तिक्त, कषाय, अति मधुर, मादक, उष्ण, वात-कफ नाशक, रसायन और बल्य है। ज्वर, कण्ठविकार, त्रिदोष, आदिको नाश करता है। पाश्चात्य विचारवालोंने भी इसे ज्वरके लिये उपयोगी माना है।

लहशुन—कृमि कुष्ठ, किलास, वातरोग और गुल्म आदि के नाशक, स्निग्ध, उष्ण, वृष्य, कटु, और गुरु है। यह हृद्रोग, जीर्ण ज्वर, कुक्षिशूल, कब्ज, कास, शोफ, अर्श, श्वास और कफ रोगका नाश करता है। राजयक्ष्मा और रक्तभारवृद्धिमे अति हितकारक है, डाक्टरीमे भी लहशुनके तैल और अर्कका उपयोग होता है।

कुचिला— कटु, तिक्त, लघु, और उष्ण है। यह कुष्ठ, रक्तविकार, विष प्रकोप, कण्डू, कफ, वातरोग, व्रण, अर्श, ज्वर आदिका नाश करता है।

डाक्टरी, मतानुसार कुचिला वातवाहिनियोंको उत्तेजना देता है। अतः पक्षाघातमे विशेष लाभदायक है। शीशा धातुके विषसे उत्पन्न पक्षाघातमे तो अत्यधिक हितकारक है।अपतन्त्रक (हिस्टीरिया), अपस्मार, कम्पवात, आधाशीशी. वीर्यस्राव आदिमे लाभ पहुँचाता है। इनके अतिरिक्त इसमे दीपन-पाचक (आमाशय पौष्टिक) और वाजीकरण गुण भी है।

खुरासानी अजवायन—को निघण्टुरत्नाकरमे कटु, रूक्ष, पाचक, ग्राही, उष्ण, मादक, गुरु, और वातकारक कहा है। मदनपालनिघण्टु और भाव प्रकाशमे भी वातनाशक नही माना। परन्तु डाक्टरीमे इसे अवसादक रुजाहर, वाताक्षेपघ्न, उत्तेजक तथा कनीनिका प्रसारक माना है। मानसिक उत्तेजना, उन्माद, हृदय-वेगवृद्धि, निर्बलता, अपतन्त्रक आदिमे उपयोगी है। मूत्रेन्द्रिय संस्था पर अवसादक गुण पहुँचाता है। अतः मूत्राशयप्रदाह (Cystitis) मे अति लाभदायक है।

यह औषधि, निद्राप्रद गुण होनेसे, ५-रत्ती मात्रामे हिस्टीरिया रोगिणी को दी जाती है। अधिक मात्रा देनेपर विषप्रकोप होता है।

गोरखमुण्डी—को धन्वन्तरी निघण्टुमे कटु, तिक्त, वातरक्त, आम, अरुचि, अपस्मार, गण्डमाल और श्लीपद रोगोकी नाशक कहा है। राज-निघण्टुमे कफ-पित्तनाशक माना है। भावप्रकाशकारने अपस्मार, प्लीहा, मेद और गुदाके रोगोको नाश करने वाली कहा है, और आमवातपर सोठ और मुण्डीके कल्कका उपयोग करनेको भी लिखा है। इस तरह नाना प्रकारके मतभेद है।

डाक्टरी मतानुसार गोरखमुण्डी रक्तशोधक है। अत. यह उपदश विकार, चर्मरोग और आमवातका नाश करती है। इसमे स्निग्ध गुण होनेसे मूत्रप्रसेक प्रदाह (Urethritis) और बहुमूत्र या पेशाब करनेकी इच्छा बनी रहना (Frequent Micturition) मे हितकारक है। एव अर्श और ग्रन्थिशोफपर लेप करनेमे उपयोगी मानी है।

भिलावा—कटु, तिक्त, उष्ण, मधुर और कृमिनाशक है। गुल्म, अर्श, ग्रहणी, कुष्ठ और वात-कफप्रधान रोगोका नाश करता है। इनके अतिरिक्त श्वास, आनाह, कब्ज, शूल, अफारा, शोप, अरुचि, अग्निमान्द्य, गुल्म, कुष्ठ, चित्र और व्रण आदि रोगोमें हितकारक हे। चरक सहितामे इसे मेधा और अग्निको बढाने वाला और सपूर्ण प्रकारके कफ रोगोका नाशक कहा है।

वच—तिक्त, कटु, उष्ण और वृष्य है। कफ, कफकास. आमवृद्धि, ग्रन्थि शोफ, वात, ज्वर, अतिसार, अपस्मार आदिको नाश करता है। वमनकारक है। अग्नि, मति, मेधा और आयुको बढाता है और मल-मूत्र का शोधन कराता है।

बचके संस्कृतमे वचा, उग्र गन्धा, षड्ग्रन्थी, तीक्ष्णा, गोलोमी, शतपत्रिका, लोमशा, हेमवती, जटिला, मंगल्या, विजया, उग्रा, रक्षोघ्नी, वच्या, क्षुद्रपत्री, गालिनी भद्रा आदि अनेक नाम दिये है। इसका उपयोग सब प्राचीन ग्रन्थकारोने अत्यधिक किया है।

चरक संहिताकारने ज्वर, अर्श, अतिसार, ग्रहणी, गुल्म, तृषा, क्षय, कास, हिक्का, श्वास, उदररोग, उदावर्त्त, उन्माद, अपस्मार, कुष्ठ, वातव्याधि, विषप्रकोप, योनिरोग, ऊरुस्तम्भ, अश्मरी, हृद्रोग, पीनस, मुखरोग, वमन, विरेचन, नस्य, अञ्जन, प्रसवार्थ नस्य, विषशमनार्थ अगद, घृत, अञ्जन आदि प्रयोगोमे बचका उपयोग किया है। इस तरह सुश्रुत सहिताकारने भी अनेक रूपमे उपयोग किया है। बचका उल्लेख वातसशमन वर्ग मे किया गया है, और इसे ऊर्ध्वदोषहर कहा है।

नव्यमतमे सिन्कोना छाल (Cinchona bark) का प्रयोग सविराम ज्वरो, (Intermittant fevers) मे जब निष्फल हो जाता है, तब बचको उसके साथ मिलाकर प्रयोगमे लेते है। एव बालकोके पेचिश और कास रोगमे कफघ्न रूपसे भी यह उत्तम औषधि सिद्ध हुई है। प्रतिश्यायमे बच का चूर्ण ५-५ रत्ती निवाये दूधके साथ दिनमे दो बार सेवन करानेसे त्रासदायक कण्ठप्रदाहकी निवृत्ति हो जाती है। बालकोके शूलको नष्ट करनेके लिये १॥ रत्ती मात्रा दी जाती है। जमालगोटाका विषमय असर शमन करनेके लिये वचके कोयलेका चूर्ण ५ से १० रत्ती जलके साथ दिया जाता है। यह जमालगोटेके विषपर महौषधि है।

इसका उपयोग उत्तेजक चेतनाप्रद औषध रूपसे आधसे ३ रत्ती तक और वमनार्थ १० से २० रत्ती तक किया जाता है। शिरपर लगानेसे शिरदर्द निवृत होता है। प्रतिश्याय, प्रतिश्यायज कास और इन्फ्लूएन्जामे इसका लेप नासिकापर किया जाता है।

गूगल—के गुण भगवान् धन्वन्तरिजी ने लघु, सुगन्धयुक्त, सूक्ष्म, तीक्ष्ण, कटु, कटुपाकी, सर, हृद्य, स्निग्ध, पिच्छिल आदि कहे है। नये गूगलको बृंहण और वृष्य तथा पुरानेको अपकर्षक माना है। यह तीक्ष्ण उष्ण होने से कफ-वातघ्न, सर होनेसे मल और पित्तनाशक, सुगन्धयुक्त होनेसे उदर की दुर्गन्धनाशक और सूक्ष्म होनेसे अग्निप्रदीपक है।

इनके अतिरिक्त धन्वन्तरि निघण्टुकारने वण्य, स्वर्य, विशद और भेदक गुण कहा है। औषधि पुरानी होनेपर अति लेखन होती है। इस औषधिमे भग्न संधानकारक, वृष्य तथा मद, व्रण, मेह, शोफ और भूतविकारनाशक गुण भी है। राजनिघण्टुकारने इसे कृमि, अर्श और प्लीहानाशक एव मेधावर्द्धक कहा है। इस तरह गूगलके अनेक गुण अनुभवमे आये है।

प्राचीन आचार्योंने इसका उपयोग सर्वाङ्गवात, गृध्रसी, क्रोष्टुकशीर्षक,

आमवात, उदर, ऊरुस्तम्भ, शोथ, कर्णपाक, श्वास, व्रण, विद्रधि, भगन्दर, गण्डमाला, अम्लपित्त, प्रमेह और मूत्ररोग आदिपर किया है।

रास्ना और गूगल प्रधान औषधि या गूगल प्रधान औषधिका रास्नाके क्वाथके साथ सेवन करानेसे नूतन वातरोगमे सत्वर लाभ पहुँचता है।

गूगलका प्रयोग विशेषत. नूतन वातविकारोमे अधिक होता है। यह आमविषको जलाकर वातको शमन कर देता है। जीर्ण रोगोपर कूचिला हितकारक है।

गूगलका बाह्य प्रयोग ज्वर, मासगत आमविकार (Muscular Rheumatism) और शूल स्थानपर होता है। एव अस्थिभग, वृषणवृद्धि, दद्रु और व्रण शोथपर भी किया जाता है।

दशमूलको सुश्रुत सहितामे श्वासहर, त्रिदोषघ्न, आमपाचक और सर्व ज्वरहर कहा है। इस दशमूलकी गणना अष्टाङ्ग हृदयाकारने भद्र दारुगणके भीतर वातघ्न रूपसे की है। भावप्रकाशकारने त्रिदोष, श्वास, कास, शिरदर्द, तन्द्रा, शोथ, ज्वर, आनाह, पार्श्वपीड़ा और अरुचिका नाशक कहा है।

दशमूलका उपयोग 'रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रह' के क्वाथ प्रकरणमे वातश्लेष्म ज्वर, सन्निपातके वातप्रधान उपद्रव, हृदयविकार, हृदयावरोध, कण्ठावरोध, तन्द्रा, वात, कफ, श्वास, पार्श्वपीडा, प्रसूताके मुखशोप, शीत, भ्रम, स्वेद, कास, श्वास आदि उपद्रव, गृध्रसी, आमवृद्धि. अपस्मार, वातज, मूत्राघात, विस्फोटक, आदि रोगोपर किया है।

वक्तव्य—वातविकारके साथ यदि पित्तप्रकोपके लक्षण मुखपाक, गरम गरम पतले दस्त होना, स्वेदवृद्धि, व्याकुलता, निद्रानाश आदि हो तो दशमूलका प्रयोग नही करना चाहिये।

बला—को धन्वन्तरि निघण्टुकारने स्निग्ध, शीतल मधुर, वृष्य और बल्य माना है। यह त्रिदोपघ्न है। रक्त, पित्त, और क्षयको नष्ट करती है; तथा बल और ओजको बढ़ाती है। राजवल्लभकारने इसे ग्राही और वातपित्तजित कहा है। जब वात और पित्त प्रकोप हो तब बलाका सेवन अति लाभदायक प्रतीत हुआ है।

वगसेनने इसका उपयोग विविध वातविकार उन्माद और उरोग्रह पर किया है। भावप्रकाशकारने अर्दित रोगमे बलाक्षीरका प्रयोग किया है। चक्रदत्तने इसके योग, अवबाहुक, अन्त्रवृद्धि और प्रदर रोगपर लिखे है। इनके अतिरिक्त यह औषध वृद्धत्रयीमे रक्तपित्त, रक्तार्श, कफ विसर्प मदात्ययज, तृषा, व्रणशोधन, वातरक्त, स्वरभेद, राजयक्ष्मा, रोगोमे प्रयोजित हुआ है। एव रसायन रूपसे इसका प्रयोग लिखा है। वर्त्तमानमे प्रमेह और वीर्यकी उष्णताके शमनार्थ भी सेवन करानेका रिवाज है।

हालो (चन्द्रशूर) -वातविकार, वातशूल और गुल्मनाशक है; इसमें उष्ण, तिक्त, वल्य, स्तन्यपुष्टिकर और त्वचादोषहर गुण भी हैं। नव्य मतवालोने इसे पौष्टिक, रक्तशोधक (दोषघ्न), स्निग्ध और उत्तेजक माना है।

काली खाँसीमे इसका शीतकषाय गोंद मिलाकर देते है। आमवात-जन्य शूल और प्रदाहजन्य वेदनाके निवारणार्थ इसका बाह्य लेप किया जाता है। जिन स्थानोपर राई बाह्य उपयोगमे ली जाती है, वहांपर इस औषधिका भी लेप होता है। निर्बल स्त्रियोको और प्रदर रोगिणियोंको इस औषधिका मुरब्बा बनाकर दिया जाता है।

मालकांगनी —रूक्ष, किञ्चत्, कटु, तिक्त, सर, वात-कफनाशक, अति उष्ण, वमनकारक, तीक्ष्ण, अग्निप्रदीपक, बुद्धिवर्द्धक और स्मृतिप्रद है। प्राचीन आचार्योने इसका शिरोविरेचनमे भी उपयोग किया है।

मालकागनी वुद्धिवर्द्धक और वातहर होनेसे अनेक मनुष्य इसके बीज का सेवन करते है और क्रमश. ५० तक वढाते है। फिर संख्या घटाते है इसका तेल उत्तेजक है, इसमे प्रस्वेद और पेशाब बढ़ानेका गुण है। इस हेतुसे यह तैल उदर रोग और शोथरोगमे लाभदायक है।

कितनेक चिकित्सक इसका उन्माद और अपस्मार रोगमे उपयोग करते हैं। मिलोके पालिश किये चावलोसे उत्पन्न व्याधि बेरीबेरी (Beri Beri) मे मालकागनीका तेल मद्रासके चिकित्सक उपयोग करते है। उनके मतमे यह वेरीवेरी रोगकी सफल औषधि है।

देवदारु—लघु, तिक्त, स्निग्ध, उष्ण, कटुपाकी, श्लेष्म-वातजित है। ज्वर, कास, आमदोप, विवन्ध, हिक्का, तन्द्रा, शोथ, आध्मान, प्रमेह, पीनस, कण्डू कृमि, कुष्ठ आदिका नाश करती है। प्राचीन आचार्योने इसका अनेक रोगोंपर उपयोग किया है। इस देवदारुमेसे तार्पिन तैल निकलता है। इसमे भी देवदारुके गुणकी प्रतीति होती है।

नव्य विचार वालोने देवदारुको, उदरवातघ्न, स्वेदल, और मूत्रल माना है। वे इसका ज्वर, अफारा (Flatulence) शोथ, जलोदर, विविध मूत्र-रोग और अश्मरीमे उपयोग करते है। यह सुजाक, उपदश, आमवात और त्वचा रोगमें लाभदायक है। इसका कुष्ट रोगोमे बाह्य उपयोग होता है।

वृद्धदारु (समुद्रशोष)—कटु, तिक्त, उष्ण और कफ-वातजित है। यह शोथ, कृमि, प्रमेह, वातरक्त, उदररोग, आमवृद्धि, कास, आदिको दूर करता है। इसका विविध प्रकारके वातरोगोंपर प्राचीन आचार्योने उपयोग किया है। इसका प्रयोग रक्तप्रसादन रूपमे उपदशज सधिवातमे किया जाता है।

जटामासी —तिक्त, कषाय, स्वादु, शीतल, मेधावर्द्धक, कान्तिवर्द्धक, बलप्रद है। यह वातरोग, रक्तदोप, शोफ, व्रण, दाह, विसर्प, कुष्ठ आदिका

नाश करती है। प्राचीन आचर्योंने इसका उपयोग, श्वास, कास, विषप्रकोपमे धूम्रवर्त्तिके भीतर भी किया है।

नव्य विचारानुसार जटामासी पौष्टिक, वातवहा नाड़ियोके लिये उत्तेजक और आक्षेपघ्न है। हिस्टीरिया, अपस्मार, सन्निपात और आक्षेपक वातमें लाभदायक है।

लोबान—वातहर, कफनाशक, वर्णप्रसादक, कण्डू और कुष्ठनाशक है। डाक्टरी मतमे इसे उत्तेजक माना है। यह जीर्णकासमे श्वासनलिकाके भीतर रहे हुए कफको बाहर निकालनेके लिये और प्रतिश्याय शमनार्थ प्रयोजित होता है। आशुकारी वातरोगके शमनार्थ और मूत्रल गुणकी प्राप्ति (मूत्रयन्त्रको उत्तेजना देने) के लिये व्यवहृत होता है। लोबान सेवनसे मूत्रमे रहे हुए क्षारकी मात्रा कम हो जाती है। काली खासी, कण्ठनलीप्रदाह, कण्ठरोहिणी, रक्त-ज्वर और सूतिकाके आक्षेपमे भी यह उपकारक है।

इसका तैल ५-७ बूँद नित्यप्रति दिनमे दो समय सेवन कराते रहनेसे तीव्र गृध्रसी वातमे अच्छा लाभ होता है। कपालपर लगानेसे शिरदर्द शमन होता है। एव मूत्रेन्द्रियपर लगानेसे शिथिलता नष्ट होकर उत्तेजना की प्राप्ति होती है।

लोबान और गुड समभाग मिला शरावमें भर सम्पुट करे फिर भस्म कर एक-एक रत्ती घण्टे घण्टेपर मुखमे डालते रहनेसे मुखपाक शमन हो जाता है।

(२) वाताक्षेपघ्न।

एण्टिस्पाज्मोडिक्स और एण्टस्पेस्टिक्स एण्ड एण्टिकन्वलसिव्स।
Antispasmodics or Antispastics and Anticonvulsives

वायु प्रकोप जनित आक्षेप और संकोच नाशक औषधियाँ। हीग, कस्तूरी, जटामासी, एरण्डतैल, कपूर, गाँजाकी कली, पद्माख, तमाखू, कुटकी, देवनल, डिकामाली, हुलहुल, अडूसा रोहिशका तैल, अजवायनका तैल, तगर, नीलगिरितैल, सोहागा, धतूरा, अफीम, इतर वातहर तैल तथा कितनेक सुगन्धयुक्त, पदार्थ आदि। इन औषधियोसे आक्षेपका दमन होता है, अर्थात् ऐच्छिक और अनैच्छिक मासपेशियोका अनुचित आकुञ्चन दूर होता है। जब अन्त्रस्थ मासपेशियाँ इस विकारसे आक्रमित हो जाती है, तब उदर वातघ्न औषधियाँ खिलाई जाती है।

उपप्रकार—

१ तीव्र सार्वाङ्गिक आक्षेपशामक—अपतन्त्रक। (हिस्टीरिया) मे उपयोगी—हीग, कस्तूरी, जटामासी आदि।

२. सार्वाङ्गिक अवसादक—वच्छनाग, तमाखू, पद्मकाष्ठ, कुटकी, देवनल आदि।

३. बालकोके स्वरयन्त्र आक्षेप और धुनर्वात पर—सोमल, ब्राह्मी, कूठ, सोहागा, रौप्यलवण, प्याज आदि।

४. बालकोकी नृत्यवात (Choria) पर—सोमल, गाँजा, यशदक्षार, ताम्रप्रधान औषधियाँ आदि।

५. तमक-श्वासज आक्षेप (Bronchial Antispasmodics) पर सोम, सूचीबूटी, धतूरा, खोरासानी अजवायन आदि।

६. अन्त्रस्थ वातवाहिनीपौष्टिक—अपान वायुको निकाल कर उदरशूल को शमन करनेवाली औषधियाँ। इसका वर्णन उदर वातघ्नमे किया जायगा।

७. धमनियोके आक्षेपमे अभ्रक भस्म, शृङ्ग भस्म, यवक्षार और कलमी शोरा आदि।

हीग—का उपयोग हिस्टीरियाकी सब अवस्थाओमे होता है। यह उदराध्मान, उदरशूल, हृत्स्पन्दन, बालकोके दांत आनेके समय द्रुत आक्षेप, काली खाँसी, उदर कृमि आदि रोगोंमे उपकारक है।

कस्तूरी—उत्तेजक, वातहर, आक्षेपघ्न, स्वेदजनक, मूत्रल और कामोद्दीपक, अधिक मात्रामे कुछ स्वापजनक।

सोहागा—कटु, उष्ण, स्निग्ध, कफघ्न, स्थावर आदि विषनाशक, कासहर, श्वासशामक, ज्वरनाशक, वात-कफनाशक, आमपाचक और अग्निवर्द्धक। डाक्टरीमे इसे गलन-विकारनिवारक (Antisepties), और संक्रमणापह (कीटाणुनाशक—Disinfectants) माना है सोहागेमे विशेषता यह है कि यह बाह्य प्रयोग करने पर उग्रता नही लाता। इसका उपयोग विविध चर्म रोगोमे किया जाता है। मुखके भीतर छाला होने पर इसका स्थानिक प्रयोग होता है।

धतूरा—वातहर होनेसे अपस्मार, उन्माद, कम्प, आक्षेप आदि वात प्रधान रोगोंमे हितकारक है। श्वास, कास और फुफ्फुस कोषविस्फारण (Emphysema) रोगमे श्लेष्माको बाहर निकालनेके लिये इसका धूम्रपान कराया जाता है। वातशूल आदि रोगोमे इसका आभ्यन्तरिक और बाह्य-प्रयोग किया जाता है। विविध चक्षु रोगोमे कनीनिका प्रसारणार्थ और वेदनानिवारणार्थ इसका लेप नेत्रके चारो ओर किया जाता है। विषम ज्वर, उदररोग और कृमिरोगमे भी यह लाभदायक है।

डाक्टरी मतानुसार दो प्रकार

(१) वातवहा नाडियोकी निर्बलताके हेतुसे वातनाडियोकी क्रियामे वैषम्य होकर आक्षेप उपस्थित होने पर हीग, कस्तूरी, एरण्ड तैल, जटामांसी आदिका उपयोग किया जाता है। इसको विशुद्ध या विशेष (Specific) आक्षेपनिवारक संज्ञा दी है।

जसदघटित औषधिया, रौप्यघटित औषधिया, लोह भस्म, नीलाथोथा,

ताम्रघटित औषधियां आदि बलकारक (Tonic), आक्षेपनिवाकर कह-लाती है।

अफीम, सूचीबूटी (Belladonna), धतूरा आदि मस्तिष्क उत्तेजक औषधियोको चापजनक (Narcotic) आक्षेप-निवारक कहते है।

(२) वातवहा नाडियोकी उग्रताके हेतुसे वातवहा नाड़ियोकी क्रियामे वैषम्य होकर आक्षेप उपस्थित होने पर वातवहानाडी अवसादक और मस्तिष्क अवसादक औषधियाँ-तम्बाखू, क्लोरोफार्म, हाइड्रोस्यानिक-एसिड आदिको व्यवहारमे लाया जाता है।

बहुधा आक्षेप-निवारक सब औषधियाँ पहिले वातवहा नाडियो और मस्तिष्क पर अवसादक असर पहुँचा कर आक्षेपका निवारण करती है। इन के अतिरिक्त रक्तमोक्षण, शीतलता और अवसादक औषधिया भी आक्षेपकी निवृत्ति करती हैं। प्रदाहजन्य आक्षेपमे इनके विशेष उपयोग होता है।

(३) उदरवातघ्न

कार्मिनेटिव्स Carminatives उदर (आमाशय और अन्त्र) मे उत्पन्न वातको शमन करनेवाली औषधियाँ—सखिया, ताम्र, शख, कौड़ी, गधक, नमक, सज्जीखार, अजवायन अदरख, चित्रकमूल, कुचिला, दालचीनी, सोंठ, मिर्च, पीपल, गजपीपल, मेथी, लौग, अरण्डी, वायबिडग, सोया, हीग, कस्तूरी, इलायची, शीतल मिर्च, कस्तूरी, तगर, सरसो, जीरा, अजमोद, लहशुन आदि।

इस प्रकारकी औषधियोसे आमाशय और अन्त्रकी पुर सरण क्रिया (Peristalsis) मे वृद्धि होती है, तथा आमाशयके उभय ओरकी मांस-पेशियोका अवरोध दूर हो जाता है। फलत वायुका निर्गमन सरलता-पूर्वक हो जाता है। इनके अतिरिक्त कुचिला, पीपल, पीपलामूल आदि चरपरी औषधियोसे आमाशयकी गति सबल बनती है।

सोमल और ताम्र—उग्र है। इनसे पाचक रसकी वृद्धि होती है, और उदर-वातका शमन होता है। इन दोनोके गुणोका विस्तार रसतन्त्रसार' के भस्म प्रकरणमे किया है।

मुक्ता, प्रवाल, शख, शुक्ति, वराटिका, ये सब आमाशय रसकी उग्रता को शमन कर उदर स्थित दाह और वायुको दूर करते है। विशेष गुण वर्णन "रसतन्त्रसार" मे लिखा है।

चित्रकमूलका—उपयोग प्राचीन ग्रन्थोमे अत्यधिक किया है। चरक सहितामे लेखनी, भेदनीय, दीपनीय, तृप्तिघ्न, अर्शोघ्न, शूल प्रशमन आदि दशेमानिमे इसका उल्लेख किया है। प्रसूताको इसका चूर्ण जल्दी प्रसवार्थ सुंघाया जाता है। वमनोपग और कटु स्कन्धमे भी इसकी गणना की है। सुश्रुत-सहिताकारने आरग्वधादि, वरुणादि, मुस्ककादि, पिप्पल्यादि, मुस्तादि

आमलक्यादि और वीरतर्वादि गणमे चित्रककी योजना की हैं।

चित्रकमूल दीपन, पाचन, गुदशोफहर, कटु, लघु और विपाकमे कटु है। कफ, वातोदर, अर्श, ग्रहणी, कृमि, कण्डू आदि रोगोका नाश करती है। प्राचीन आचार्योंने इसका उपयोग अतिसार, अर्श, उदररोग, ग्रहणी, मेदोरोग, पाण्डु, शोथ, गुल्म, कुष्ठ, चित्र, श्लीपद, व्रणशोथ, सिकतामेह, कृमिरोग आदिके प्रयोगोमें किया है। वाग्भट्टाचार्यने इसका प्रयोग रसायन रूपसे भी लिखा है।

नव्य चिकित्सक व्रण, विद्रधिको पकाकर फोड़नेके लिए इसके मूलका लेप करते हैं। चित्रकमूल सूक्ष्म मात्रामे उत्तेजक है; और अधिक मात्रामें दाहक और स्वापजनक असर उत्पन्न कराती है। इसमे स्वेदल गुण होनेसे नूतन ज्वरोमे लाभदायक है।

गन्धक—स्वेदल, संशोधक, कफनि.सारक, पितनासारक, ज्वरघ्न, कुष्ठघ्न, विरेचक, दाहशामक है। आमाशयकी श्लैष्मिक कलापर किसी भी प्रकारका असर नही पहुंचाती। आतोमे पहुँचनेपर अन्त्रस्थ श्लैष्मिक कला और दीवारमे उत्तेजना लाकर विरेचन कराती है; तथा अन्त्रकी पुरःसरण क्रियामे वृद्धि कराती है।

गन्धकका विशेष उपयोग कब्ज, अतिसार, अर्श, रक्तविकार, कण्डू आदि त्वचा रोग, ज्वर, उदरवात, दाह, अपचन, विसूचिका, उपदंश, जीर्ण वातविकार, शीशा धातुजनित विषविकार, पारद विष आदि रोगोमें किया गया है। आयुर्वेद और एलोपैथी दोनो शास्त्रोमें इसका उपयोग विशेष रूपसे होता है।

गन्धकका तैल बनाकर कर्णपाकमे और त्वचा रोगोमे मालिश आदिके लिये उपयोगमे लिया जाता है।

इसके अतिरिक्त डाक्टरीमे सुगन्धित द्रव्य (Aromatics) विभागमे कितनी ही औषधियाँ है। इसमे उदरवात नाशक गुण रहता है। इनके सेवनसे अन्नशक्ति होती है, अपान वायु सरता है; डकार आने लगती है तथा उदरशूल शमन हो जाता है। ये सब रूक्ष स्वाद और सद्गन्ध युक्त है। सबके स्वाद और सुगन्धका हेतु इनमे रहा हुआ उड्डयनशील तैल (Volatile oil) है। इन सबके तैलमे विभिन्नता है।

सौफ, सोया, सन्तरेकी छाल, कागजी नीबूकी छाल, छोटी इलायची, केशर, लौग, दालचीनी, धनिया, जीरा, शीतल मिर्च, बिजौरेकी छाल, पीपरमेण्ट (Mentha Piperita), पोदीना, जायफल, कालीमिर्च, पीपल, अजवायन, सोठ, अनीसून (सौंफ भेद), ताजी चाय, रोहिष घास, यूकेलिप्टस आदिके तैलमे उदर वातहर गुण है।

इस प्रकारकी औषधियोके सेवनसे उदरमे उष्णताका भास होता है,

धमनीकी गति द्रुत होती है, और समस्त शरीर उष्ण हो जाता है। आमाशयकी श्लैष्मिककला उत्तेजित होनेसे पाचक रस विशेष परिमाणमें निकलता है, इस हेतुसे पचन शक्तिमे वृद्धि हो जाती है। अत. इन औषधियोकी गणना आमाशय पौष्टिक औषधियोमे की है। आमाशय अथवा अन्त्रमे वायु उत्पन्न होनेपर ये वायुको नष्ट करती है। अतः इनको उदर वातघ्न भी कहते है। यदि इन औषधियोका सेवन अधिक मात्रामे किया जाय, तो आमाशयमे प्रदाह उत्पन्न हो जाता है।

यदि इन औषधियोंका बाह्य उपचार किया जाय, तो स्थानिक उग्रता उत्पन्न करती है। एवं अधिक काल तक रखनेपर प्रदाह उपस्थित होता है। ये औषधियां वातवाहा नाड़ियोपर विशेष प्रभाव नही दर्शाती।

इन औषधियोके प्रयोगके हेतु :—

१. अपचन, आमाशयकी निर्बलताके हेतुसे वेदना, आक्षेप या भारीपन और आमाशय या अन्त्रमे वायुकी उत्पत्तिको दूर करनेके लिये।

२. दुर्गन्धियुक्त और बेस्वादु औषधिके गन्ध और स्वादका परिवर्तन करानेके लिये।

३ विरेचक औषधिके साथ उग्रताका शमन करानेके लिये। इसे मिलानेपर उदरमे वेदना नही होती।

४. आमाशयपौष्टिक औषधियोंके साथ मिलानेसे आग्नेय गुणकी वृद्धि होती है; और वह आमाशयसे सहन हो जाती है।

५ भोजनके साथ मिलानेसे भोजनका पचन सत्वर होता है। इसलिये इसका भोजनके साथ व्यवहार हो सकता है।

सूचना—मात्रा अधिक होनेपर विविध रोगोंकी उत्पत्ति हो जाती है। यथा—आमाशयका चिरकारी प्रदाह, वारम्बार उत्तेजनायुक्त आमाशयकी निर्बलता, देहके अधिक पोषणसे रक्ताधिक्य और इस हेतुसे वातरक्तकी उत्पत्ति, मूत्रमे क्षार (यूरिक एसिड Uric Acid) जाना और अश्मरी आदि रोग हो जाते है।

इन औषधियोंके तैलका बाह्य प्रयोग करनेपर चर्ममे उत्तेजना होती है; फिर त्वचा लाल हो जाती है। क्वचित् स्थानिक स्फोटकी भी उत्पत्ति होती है। उदरमे सेवन करनेपर आमाशय और अन्त्र उत्तेजित होते हैं। फिर रक्तावेगकी वृद्धि होती है। लाला, आमाशय रस, और आन्त्रिक रस, ये सब अधिक निकलते हैं। इस हेतुसे अन्ननलिकामे उत्तेजना आ जाती है।

योग्य मात्रामें ये अग्निप्रदीपक और वातहर हैं। अधिक मात्रामे आमाशय और अन्त्रमे उत्तेजना लाते है। आमाशयमें क्षोभ होनेपर प्रतिफलित रूपसे हृदय और केन्द्रीय वातवहानाडियोमे उत्तेजना आती है।

इस प्रकारके तैल त्वचा द्वारा शोषित होते है, और त्वचा द्वारा ही

बाहर भी निकलते है। इसी हेतुसे ये चर्मपर उग्रता उत्पादन करते हैं। इसके अतिरिक्त श्वासनलिकाकी श्लैष्मिककला द्वारा निश्वासके साथ बाहर निकल जाता है। इस हेतुसे श्वासनलिकाकी श्लैष्मिककला उत्तेजित होती है। फिर स्रावण, रक्तावेग और सब माँसपेशियोंकी निष्कासन शक्ति बढ जाती है एवं उग्रताके हेतुसे प्रतिफलित रूपमें कासकी वृद्धि होती है। इस हेतुसे ये औषधियाँ कफनि.सारक रूपसे कार्य करती हैं।

ये तैल प्रचुर परिमाणमे वृक्क द्वारा मूत्रके साथ बाहर निकलते है। इस हेतुसे मूत्रग्रन्थियाँ उत्तेजित होकर क्षोभ पीडित हो जाती है। किन्तु ये तैल अधिकांश स्थलमे मूत्रल रूपसे कार्य करते है। इसके अतिरिक्त ये मूत्राशय और जननेन्द्रियकी श्लैष्मिक कलापर उत्तेजना लाते है। क्वचित यह उत्तेजना इतनी अधिक होती है, कि श्लैष्मिककला प्रदाहग्रस्त होजाती है।

इन तैलोमे किसी-किसीकी क्रिया सब प्रकारसे प्रबल रूपमे प्रकाशित होती है, और किसी-किसीकी क्रिया किसी-किसी आशय या यन्त्रपर अधिकतर प्रतीत होती है। ये सब शारीर विधानपर जिस तरह कार्य करते हैं; तदनुसार उनका व्यवहार किया जाता है। अत इनके निम्नानुसार विभाग किये है।

(१) त्वचापर प्रधानत कार्य करनेवाले--तार्पिन तैल, नीलगिरी (यूकेलिप्टस) तैल, राई और सरसोका तैल, रोजमरीका तैल, काजूपुट तैल आदि। ये सब त्वचापर उत्तेजना लाते है।

(२) आमाशय और अन्त्रपर कार्यकारी उदरवातहर—लौंग, पीपल, पिपरमेंट, जायफल, दालचीनी, सोंठ, लाल मिर्च, कालीमिर्च, इलायची, सोंफ, सोया, नीलगिरि कपूर, लवेंडर धनिया, जीरा आदिके तैल। ये सब पचनेन्द्रिय संस्थामे उत्तेजना लानेके लिये प्रयोगमे लिये जाते हैं।

(३) आमाशयपर कार्यकारी और प्रतिफलित रूपसे हृदय और केन्द्रीय वातविधानमे उत्तेजना लाने वाले—जटामासी, हीग, बेल (Myrrh) और गाल्वेनम गोंद (Galbanum), आदि। इनका मिश्रण उडनेवाले तैलमे होनेपर या इनका तैल बनानेपर ये प्रतिफलित रूपसे हृदय और समस्त वातविधानपर असर पहुचाते है।

(४) श्वासनलिकाकी श्लैष्मिककलापर कार्यकारी लहशुन और प्याजका तैल, फरवुल तैल (Fir Wool Oil), लोबानका तैल आदि। ये सब उत्तेजना लाते हैं।

(५) वृक्क मूत्रमार्ग और जनेन्द्रिपर कार्यकारी--शीतल मिर्च, गंधाविरोजा, चन्दन, जुनिपर आदिके तैल। ये सब उत्तेजक है।

(६) स्त्रियोंके जननेन्द्रियपर कार्यकारी—कस्तूरी, हीग, जीरा, शीतल मिर्च, कपूर आदि। ये सब उत्तेजना लाते हैं।

(४) वातशूलघ्न

एन्टिनर्विन्स और एन्टिन्यूरलजिक्स ।

(Antinervins or Antineuralgics) ।

वात कुपित होनेसे या वातवाहिनियोकी विकृति होनेसे उत्पन्न शूलको शमन करनेवाली औषधियाँ—ताम्रभस्म, लोहभस्म घटित औषधियाँ, कासीसभस्म, शृंगभस्म, रौप्यभस्म, गन्धक, सोमल, पारदघटित औषधियाँ, शिलाजीत, अरनी, आकडा, अरडी, करंज, कायफल, गुंजा, प्याज, लहशुन, दशमूल, निर्गुण्डी, बच्छनाग, कालीमिर्च, लौंग, सोंठ, जीरा, अफीम, कपूर, पीपल, अजवायन, अजमोद, कूठ, पुष्करमूल, पीपलामूल, चित्रकमूल, चव्य, मक्खन, चोपचीनी और पौष्टिक पदार्थ आदि ।

उदरमे शूल होनेपर–ताम्रघटित औषधियाँ और हीग, अजवायन आदि।

आमाशयमे पित्त वृद्धिजन्यशूलपर—शंखभस्म, वराटिका भस्म ।

पाण्डुताजन्य शूलमे—लोहभस्म, मण्डूर, अभ्रकभस्म आदि ।

पारद, शीशा और ताम्रविषज शूलमे—गन्धक । वातप्रधान या वात-पित्तप्रधान उदरशूल यदि रोग अथवा शीशाजनित हो, तो फिटकरी, नाग-भस्म हितकर होती है ।

सन्धि स्थानोके वातज शूलमे—लहशुन, एरड तैल आदि औषधियां ।

निर्बलताजन्य शूलमें—अभ्रकभस्म और रस सिंदूर आदि पौष्टिक औषधिया ।

विषमजन्य शूलमे—सोमल, हरताल और ज्वरघ्न औषधिया ।

उपदशविषज शूलमे—सोमल, हरताल, चोपचीनी, पारद भस्म, रस-कपूर आदि ।

मस्तिष्कशूल और नेत्रशूलमे—रौप्य भस्म, कडवी जीरी विरेचन आदि ।

हिस्टीरियाजनित शूलमे—गाजा, खुरासानी अजवायन, हीग आदि ।

आमवातिक शूलमे—लहशुन, एलुआ, तार्पिन तैल, कपूर आदि ।

वस्तिशूलमे—जवाखार, शिलाजीत आदि ।

गर्भाशय शूलमे—अशोक, कासीस आदि ।

हृदय और फुफ्फुसके शूलमे—शृङ्ग भस्म, (मृग या बारहसिंगेके सीग की भस्म) उपकारक है ।

तीव्र पीड़ा दमनार्थ—अफीम आदि ।

रौप्य भस्मका उपयोग मस्तिष्ककी शक्तिका क्षय होकर उत्पन्न शिर शूल अपस्मार, उन्माद, भूतोन्माद, रक्तवाहिनीमे वातप्रकोपज शूल, रक्तार्शमे शूल वात या वात पित्तज नेत्रशूल और वातवाहिनियोंमे विकृति होकर इतर स्थानमें चलनेवाले शूल, सबपर होता है । विशेष विवेचन 'रसतन्त्र-सारमें किया गया है ।

कासीस भस्मका प्रयोग आमायिक व्याधियां, गर्भाशय शूल, आंतोंमें सेन्द्रिय विषज शूल आदिमे होता है और यह रक्तवर्द्धक भी है।

शृङ्ग भस्मका उपयोग पार्श्वशूल, हृच्छूल, कफकास, न्यूमोनिया, प्रतिश्याय क्षयज्वर, काली खांसी, दन्तशूल, वृक्कव्रण आदिमे होता है।

कर्पूरमे तीक्ष्ण, उष्ण, कटु, ईषत् शीत, कफनाशक, कण्ठदोषघ्न, मेधाकर, पाचन, कृमिनाशक, वातविकार, चक्षुष्य, पित्तशामक, विषघ्न, दाह, तृषा, मुखदोष, मेद और दुर्गन्धको नाश करना आदि गुण हैं।

नव्यमतानुसार कपूर हृदयकी गति, श्वासोच्छ्वास और रक्ताभिसरण क्रियाको उत्तेजित करता है। कपूरमे कामोत्तेजक गुण भी है। दीर्घकाल तक सेवन करनेपर अवसादक असर पहुचाता है। इसके सेवनसे गर्भाशय उत्तेजित होता है, और रजःस्राव बढ़ जाता है। कर्पूरमें वेदनाहरण गुण होनेसे बाहर लेप लगानेपर त्वचाको लाल बनाता है। एवं शोथकी निवृत्ति करता है।

कपूर सेवन करनेपर त्वचा, मूत्रपिण्ड और श्वासनलिका द्वारा प्रस्वेद, मूत्र और कफ बनकर बाहर आ जाता है। कभी कभी कपूर वृक्कस्थान और मूत्राशयमे प्रदाहकी उत्पत्ति कराकर मूत्रकृच्छ्र भी कराता है। अधिक मात्रा में सेवन करनेपर अन्त्र प्रदाह और विलक्षण प्रकाशित होते है। फिर हृदय मे अवसाद, शारीरिक उष्णतामें न्यूनता, हाथ-पैरमे शीतलता, बेहोशी और आक्षेप आदि उपद्रवोकी उत्पत्ति होकर मृत्यु हो जाती है।

कर्पूर दन्तशूल, प्रतिश्याय, नासास्राव, वस्तिगत कृमि, आमवातिक शूल, मूढमार, व्रण आदि रोगोमें बाह्य प्रयोगरूपसे प्रयोजित होता है। डाक्टरीमे कर्पूरको मस्तिष्क उत्तेजक, मादक, आक्षेप-निवारक, वेदनाहर, स्वेदजनक और जननेन्द्रियकी उग्रता नाशक लिखा है। कर्पूरका बाह्य प्रयोग प्रत्युग्रतासाधक रूपसे भी होता है। सेवन करनेपर धमनियोंमे स्पन्दनकी वृद्धि होती है। वातनाड़ियां प्रसरित होती है। देहमे स्फूर्ति आती है। यह मात्रा भेदसे कभी उत्तेजक होता है, और कभी उग्रताशामक बनता है। अत्यधिक मात्रामे सेवन करनेपर वमन न हो जाय, तो स्वापजनक असर दर्शाता है। मस्तिष्कमे भारीपन, चक्कर, ज्ञानेन्द्रियोंमे विकृति, प्रलाप, आक्षेप, अचेतना, सुषुप्ति आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। यह अवस्था कई घण्टो तक रहती है।

ज्वर, निर्बलता, अस्थिरता, निद्रानाश, मृदुप्रलाप, आक्षेप आदि उपद्रव होनेपर मस्तिष्कमे रक्ताधिक्य या प्रदाह न हो, तो कर्पूरका सेवन करानेसे वातवहा नाड़ियां उत्तेजित होकर उपकार दर्शाती है। इस तरह विसूचिका रोगमें इसका उपकार प्रत्यक्ष प्रतित होता है। इनके अतिरिक्त अनेक रोगो मे बाह्य प्रयोग रूपसे कर्पूर प्रयोजित होता है।

अफीम—त्रिदोषघ्न, वृष्य, बल्य, और मोहजनन है। भावप्रकाशकारके मतानुसार शोषक, ग्राही, श्लेष्मघ्न, वातकर और पित्तकर है। फिर भी भावप्रकाशमे अतिसार, सग्रहणी आदिकी चिकित्सामे अफीमकी योजना नहीकी है अत. प्राचीन ग्रन्थकारोंने इसको उपयोगमे नही लिया है।

नव्यमतानुसार अफीम—मस्तिष्क उत्तेजक, मोहजनक, स्वापजनन, वेदनानिवारक, आक्षेपघ्न, स्पर्शहारक, स्तम्भक, स्वेदजनक और दोषघ्न है। अल्प मात्रा सेवन करनेपर प्रारम्भमे उत्तेजना आती है। फिर मोहजनक और अवसादक अवस्थाकी प्राप्ति होती है। प्रकृति भेदसे इसका फल भेद हो जाता है। किसीको उत्तेजना अधिक होती है और किसीको मोहकताकी प्राप्ति अधिक होती है। अफीमकी क्रिया प्रधानत मस्तिष्क और वातनाडियोके सुषुम्णाकेन्द्रपर होती है। अफीमके सेवनसे कनीनिका आकुंचित होती है।

अफीमका उपयोग वेदनाशमन, आक्षेपनिवारण, निद्राप्राप्ति और स्तम्भन क्रिया (मलस्तम्भन, वीर्यस्तम्भन)के हेतुसे होता है। एव विविध अविराम ज्वर, सूतिका उन्माद, शिराओमे रक्तसग्रह होकर मन्द शिरदर्द मदात्यय, निद्रानाश, विविध कास, काली खाँसी, तमकश्वास, श्वासकृच्छ्रता प्रतिश्याय, अन्त्रावरणप्रदाह (Peritonitis), अन्त्रप्रदाह, आमाशयप्रदाह अतिसार, प्रवाहिका, अन्त्रशूल, आमाशयस्थ कर्कस्फोट, विसूचिका,अन्त्रान्त्र प्रवेश (Intussusception) दुर्निवार कोष्ठबद्धता,इन्फ्लुएञ्जा, शीशाधातुजनित आक्षेप, वृक्कप्रदाह, आमाशयस्थ वातवहानाडियोकी उग्रता जनित वमन और हिक्का पित्ताशयस्थ अश्मरी, मूत्राशयमे अश्मरी, मूत्राशयप्रदाह, मूत्रप्रसेक नालिका आक्षेप मूत्रावरोध, अभिघातज गर्भस्राव या गर्भपात, गर्भाशय मेंसे रक्तस्राव, इतरप्रकारके रक्तस्राव, मासपेशीशूल, वातशूल, पार्श्वशूल, मधुमेहीके मूत्रमे शर्करावृद्धि इत्यादि रोगोमे प्रयोजित होती है; तथा शूल आदि व्याधियो मे स्थानिक बाह्य प्रयोग रूपसे उपयोगमे ली जाती है।

आयुर्वेदकी अपेक्षा एलोपेथिमे अफीमका उपयोग अत्यधिक परिमाणमें और विविध प्रकारसे किया गया है।

(५) पित्तदोषघ्न

पित्तके प्रकोपको दूरकर सम अवस्थामे लाने वाली औषधिया। इस सम्बन्धमे चरक संहितामे लिखा है कि—

सस्नेहमुष्णं तीक्ष्ण च द्रवमम्लं सर कटु।
विपरीत गुणै पित्तं द्रव्यैराशु प्रशाम्यति॥

पित्तमे किञ्चित् स्नेह, उष्ण, तीक्ष्ण, द्रव, अम्ल, सर और कटु, ये मुख्य गुण अवस्थित है। इन गुणोसे विपरीत स्निग्ध, शीतल, मृदु, सान्द्र, कषाय,

तिक्त या मधुर, इन गुणो और कर्मो द्वारा पित्तका शमन होता है।

पित्त स्वभावसे कटु है और विदग्ध होनेपर अम्ल,कटु बन जाता है, ऐसा सुश्रुत संहितामे कहा गया है।

पित्तमे सर गुण भी कहा है। उसके विरुद्ध स्थिर गुण है किन्तु उसका उपयोग नही होता। क्योकि, शमन क्रियाके लिये उसकी आवश्यकता नही है। स्तम्भन औषधिका प्रयोग पित्तशमनार्थ नही होता। आचार्योंने विरेचनसे बढकर पित्तशामक अन्य औषधि नही कही।

सुश्रुताचार्यने इस सम्बन्धमे कहा है कि—

यथोदकानामुदकेऽपनीते चरस्थिराणां भवति प्रणाशः।
पित्ते हृते त्वेवमुपद्रवाणा पित्तात्मकाना भवति प्रणाशः॥

पित्त प्रकार—

१. पाचक—आमाशय और पक्वाशयके बीचमे। अन्न पाचक।
२. रंजक—यकृत्प्लीहामे। रसको रंजित करता है।
३ साधक—हृदय (मस्तिष्क) मे। बुद्धिकी पोषक अग्नि।
४. आलोचक—नेत्रमे। रूप ग्रहण करनेवाला अग्नि।
५ भ्राजक—त्वचामे। अभ्यंग आदिकी छायाकी प्रकाशक।

आयुर्वेदकी दृष्टिमे पित्त धातुके स्थान भेदसे ५ विभाग, अविकृत पित्त धातुके कार्य, पित्तविकृति हेतु पित्तके क्षय-वृद्धि-प्रकोपके लक्षण, पित्त-शामक उपाय, इन सबका वर्णन 'चिकित्सातत्वप्रदीप' प्रथम खण्डके पृष्ठ २५ से ३२ तकमे किया है।

धातुओको गति दो प्रकारकी होती है। प्राकृत (Physiological) और वैकृत (रोगसंप्राप्तिकर Pathological) इन धातुओंके पोषण का आधार पित्तपर है। पित्त अग्निमय है, जो नाना प्रकारके आहार सत्वोको पकाकर धातुओके लिये आवश्यक सत्व प्रदान करता है। यदि वह विकृत हो जाय, तो धातुओको पोषण नही मिलता। फिर बहुतसे विकारोंकी उत्पत्ति हो जाती है। यह भाव सुश्रुताचार्यने निम्न श्लोकोमे दर्शाया है।

पित्तादेवोष्मणः पक्तिर्नराणामुपजायते।
तच्च पित्तं प्रकुपितं विकारान्कुरुते बहून्॥

देहकी रस रक्त आदि सब धातुओमें रासायनिक परिवर्तन (Chemical Changes) सर्वदा सतत होता रहता है। यह सब कार्य पित्त (धातुओ के भीतर अवस्थित पित्त) द्वारा होता रहता है। इन सब पित्तोको पाचक पित्तका आश्रय मिलता है। पाचक पित्त विकृत होनेपर ये क्रियाएँ सम्यक् प्रकारसे सिद्ध नही होती। फिर अनेक रोगोकी सृष्टि होती है।

पित्तप्रधान प्रकृतिके लिये पथ्य— मधुर, कडुवा और कसैला रस, शीतल जलमे स्नान, शीतल जलपान, शीतलवायु सेवन, ग्रीष्मऋतुमे रात्रिको चांद-

नीमे बैठना, मोती या पुष्पकी माला धारण करना, शय्यापर कमल, गुलाब, मोतिया, मल्लिका, चमेली आदिके पुष्प डालना, चन्दनका लेप, खसके पखेकी वायु, गेहू, जौ, भात, चने, मूंग मसूर, मिश्री, शक्कर, जौका सत्तू, चनेका सत्तू घी, दूध, सैधानमक, परवल, करेले, काशीफल, गूलर, आलू, गोभी, चोलाई, पोई, पालक, बथुआ, चौपतिया, अगस्त्यके फूल, कच्ची ककडी, जीरा, धनिया, कोकम, आवला, नीवू, पका कैथ, अगूर, मुनक्का, किसमिस सेव, अंजीर, फालसा, पक्के केले, संतरा (नारंगी), मीठा नीवू, सिंघाड़े, कमलगट्टे, खीरेके बीज, खिरनी, नारियलका जल, खजूर, ताडफल, सब प्रकारके शीतल फल-फूल आदि, जलाशयमे स्नान, प्रात साय घूमना, गाडी घोडा सवारी करना इत्यादि आहार-विहार पथ्य है और पित्तप्रकोप होने पर शमनार्थ भी उपयोगमे आते है ।

पित्तप्रकोपक आहार-विहार- क्रोध, शोक, भय, परिश्रम, उपवास, जले हुए पदार्थ खाना, अधिक मैथुन, दौडना, अधिक घोड़ेकी सवारी, चरपरे, खट्टे नमकीन, तीक्ष्ण, उष्णलघु और विदाही गुणवाले पदार्थ, तिलतैल खली, उडद कुलथी, सरसो, अलसी, ताजे शाक, गोह, मछली, बकरे और भेड़का मांस, खट्टा दही, खट्टा मट्ठा, कूर्चिका (दही या छाछके साथ ओटाये हुए दूधको मिलाना) मस्तु (दहीका जल), कांजी, सिरका, ताडीका रस (बासा), शराब, खट्टे फल, दहीकी मलाई, सूर्यका ताप, सरसोका तैल, तैलमे तले हुये पदार्थ, नया गुड, हीग, मैथी, कच्ची इमली, ताजीमूंगफली, शरद्ऋतुका नया अन्न, सेम, चाय, काफी, तम्बाखू, गांजा, चरस, ज्यादा नमक, कच्चा फालसा, पुराना तरबूज, पुराना नारियल आदि आहार-विहारके सेवनसे पित्त प्रकुपित्त होता है ।

इसी प्रकार उष्ण पदार्थसे तथा उष्णऋतु, शरदऋतु, मध्याह्नकाल, अर्धरात्रि और भोजन पचनेके समय बहुधा पित्त प्रकोप होता है । क्षुधा-तृषाके वेगको रोकनेसे भी पित्त प्रकुपित हो जाता है ।

सूचना—यदि लवण द्रावक, काशीश द्रावक आदि अम्ल पदार्थ या अम्ल फलोके रसका सेवन आयुर्वेदीय मात्रामे किया जाय, तो आमाशयमे से अम्ल रसकी उत्पत्ति कम होती है, फिर क्षाररस बढ़ जाता है, इसके विपरीत क्षारप्रधान द्रव्यका सेवन आयुर्वेदीय मात्रामे होनेपर क्षार रसकी उत्पत्ति कम होती है, परिणाममे अम्ल रसकी वृद्धि होती है, अर्थात् क्षारो के सेवनसे आमाशयरस पाचक रसका स्राव बढ जाता है, परन्तु लालानि - मरणमे ह्रास होता है । इसके विपरीत अम्लरसके सेवनसे लालास्राव बढ जाता है, किन्तु आमाशय रसका स्राव न्यून हो जाता है । अत. इस नियमको लक्ष्यमे रखकर औषधिकी योजना करनी चाहिये ।

पित्त सशमन वर्ग —पित्तकी तीक्ष्णता और वृद्धिको न्यून करनेवाली

औपधिया-चन्दन, कुचन्द (लाल चन्दन), नेत्रवाला, खस मजीठ, पयस्या (क्षीरकाकोली), विदारीकन्द, सतावरी, गोदनी, शैवाल (काई), कल्हार (श्वेत कमल), कुमुद, उत्पल (नीलकमल), केला, कंदली (कमलगट्टे), दूब, मुर्वा आदि, काकोल्यादि गण, न्यग्रोधादि गण तथा तृण पंचमूल, ये सब पित्तशामक औषधिया है।

काकोल्यादि गण—काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, ऋषभक, मुग्दपर्णी, माषपर्णी, मेदा, महामेदा, गिलोय, काकड़ासिंगी, वंशलोचन, पद्माख, प्रपौण्डरिक, (पुंडरीकंद), ऋद्धि, वृद्धि, मुनक्का। जीवती, मुलहठी, ये १८ औपधियां कही हैं। यह गण पित्त, रक्त और वायुकी विकृतिका नाशक तथा जीवनीय वृंहण, वृष्य, स्तन्यवर्द्धक और कफवर्द्धक है।

न्यग्रोधादि गण—वड, गूलर, पीपल, पिलखन, महुवा, आमड़ा, अर्जुन, आम, आमभेद (कोशाम्र), चोरक पत्र (लाखका वृक्ष), दोनो प्रकारका जामुन, चिरोजी, मुलहठी, रोहिणी (काश्मरी), वंजुल (वेत) कदम्ब, वेर, तेंदू, शल्की (शालभेद), लोध, पठानी लोध, भिलावा, पलाश, पारस पीपल, ये २५ वृक्ष कहे है। यह गण व्रणमें हितकारी, संग्राही, भग्नसधानकारी, रक्तपित्तशामक, दाहनाशक, मेदोहर और योनि दोषको हरने वाला है।

पञ्च तृणमूल—कुश, कास नरसल दर्भ और ईख, इनके मूल तृषा दाह, रक्त और मूत्रविकार तथा मूत्रावरोधके नाशक है। विशेषत: इनका प्रयोग दूधके साथ किया जाता है।

इनके अतिरिक्त सुवर्ण, रौप्य, पन्ना, मोंती, प्रवाल, वैडूर्य, अकीक, जस्ता, सुवर्णमाक्षिक, सफेद चन्दन, रक्तचन्दन, चिरायता, पित्तपापड़ा, धनिया, मजिष्ठा, विहीदाना, पाढ़ल, कटु पटोल, वनगोभी, गोखरू, कुष्माण्ड, फालसा, मीठे अनार, अंगूर, मोसम्बी, सन्तरा, नीवू इत्यादि पित्तशमन करते है।

आयुर्वेदमें आमाशयिक रस (Gastric juice) और यकृतमेसे निकलने वाला रस (Bile) दोनोंको 'पित्त' सज्ञा दी है। आमाशयिक रस अम्ल और उग्र हैं। पित्ताशयसे निकलने वाला पित्त नमकीन है।

पाचक पित्त (आमाशयिक रस) पर कार्यकारी—

(१) आमाशय क्षीण होने पर (अजीर्ण और अग्निमान्द्यमें) भोजनके प्रारम्भमे तरल पदार्थका सेवन नही करना चाहिये। कठिन (शुष्क) पदार्थ का सेवन करनेपर आमाशय-रसस्राव अधिक होता है।

(२) भोजनके पहिले सोड़ा आदि क्षारको जलमे मिलाकर सेवन करने पर आमाशयिक रस अधिक स्रवता है।

(३) नमकीन और स्वादिष्ट भोजनका मुंहमे उत्तम रूपसे चर्वण होने पर मुंहमेसे लालास्राव अधिक होता है। फिर आमाशयमें उत्तेजना आकर

आमाशयरस अधिक निकलता है, और अच्छी तरह चवाये हुए भोजनका परिपाक भी सत्वर हो जाता है ।

(४) भोजनके साथ जलमिश्रित थोडी शराब लेनेसे आमाशय उत्तेजित होकर रस वि.सरण अधिक होता है जब यकृतके पित्त स्रावका ह्रास हो गया हो, तब पित्त स्राववर्द्धक औषधिया सेवन कराई जाता है । इसका वर्णन आगे न० ८ में करेगे ।

डाक्टरी मतानुसार अम्लतानाशक (Antacids) यकृदवसादक (Hepatic Sedatives) और पित्तविरेचक औपधियोसे पित्तशमन हो जाता है । अम्लतानाशक औषधियोमे आमाशय, अन्त्र, मूत्राशयकी अम्लताका ह्रास होता है । इस प्रकारकी औपधियोमे दो विभाग है । साक्षात् और दूरवर्त्ती फलदायक ।

साक्षात् फलदायक-भोजनके पहिले शीतलजलपान, नौसादर, सज्जीखार, मौक्तिक, प्रवाल, शुक्ति, वराटिका, शख, मिश्री मिश्रित चूनेका जल. चाक मिट्टी आदि औषधियोकी प्रत्यक्ष क्रिया आमाशयकी अम्लता पर प्रतीत होती है ।

दूरवर्त्ती फलदायक—जवाखार, शिलाजीत, मौक्तिक, प्रवाल, वराटिका आदि । इस प्रकारकी औषधियोसे पेशावकी अम्लताका नाश होता है, और परम्परागत पचन-संस्थापर लाभ पहुचता है । प्रवाल, मौक्तिक आदि कतिपय औषधियोमे उभय प्रकारके गुण अर्थात् साक्षात और दूरवर्त्ती गुण भी है । इन औषधियोके गुणका विशेष विवेचन 'रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसग्रह' मे किया गया है ।

आमाशयिक पित्तशामक—अम्लतानाशक(Antacids or Alkalies) जिन क्षारोका अम्लद्रावके साथ मिलानेपर रासायनिक सम्मिलन द्वारा अम्लताका नाश हो, और दोनोके सयोगसे एक नूतन पदार्थकी उत्पत्ति हो, ऐसे पदार्थको डाक्टरीमे लवण सज्ञा दी है । क्षार और अम्लके तारतम्यके हेतुसे लवणके तीन प्रकार होते हैं ।

१. क्षाराधिक लवण—आल्कलाइन सॉल्ट (Alkaline Salt) ।

२. अम्लाधिक लवण—एसिड सॉल्ट—(Acid Salt) ।

३ समक्षाराम्ल लवण—न्यूट्रल सॉल्ट (Neutral Salt) ।

क्षारके अतिरिक्त ऑक्सिजनसयुक्त धातुओका अम्लद्रावने सहयोग होने पर लवण प्रस्तुत होता है । तथा कासीस (Sulphate of Iron) का निर्माण गन्धकाम्ल और ऑक्सिजन घटित लोहेके मिश्रणसे होता है । एवं गन्धक द्रावक और ऑक्सिजन घटित ताम्रके मिश्रणसे नीलाथोथा (Sulphate of Copper) की उत्पत्ति होती है । इनके अतिरिक्त विविध वनौषधिसत्व और अम्लके सहयोगसे भी विविध लवणोंकी उत्पत्ति

होती है। तथा क्विनाइन और गधकाम्ल मिलाकर क्विनाइन सल्फास, अफीमसत्व (Morphine) के साथ सिरका (Acid Acetic) मिलाने पर सिरका प्रधान अहिफेन लवण (Acetate of Morphine) और गन्धकका तेजाब मिलानेपर गन्धकाम्लप्रधान अहिफेन लवण (Sulphate of Morphine) तैयार होता है। इस तरह डाक्टरीमे अनेक लवणोकी रचना की है।

क्षारका द्वितीय लक्षण यह है, कि वनौषधिजन्य पीतवर्णको रक्त बना देता है। जैसे हल्दीके चूर्णके साथ सज्जीखारका जल मिलानेसे लोहितवर्ण की प्राप्ति होती है।

नीलाथोथा, कासीस आदि अनेक उपधातुओका डाक्टरीमे लवण वर्गमे अन्तर्भाव किया है।

क्षार सेवनसे वसायुक्त पदार्थ सत्वर द्रवीभूत होता है। इस हेतुसे संशोधन और मेदोवृद्धिमे क्षारका उपयोग होता है। क्षारमिश्रित जलका उपयोग कुल्ले करनेके लिए भी किया जाता है। कुल्ले करनेसे मुखमे रही हुई अम्लताका शमन होता है। तथा मसूढेके पासमें वातनाडीकी उग्रताके हेतुसे दतशूल चलती हो,तो वह शमन हो जाती है। आमाशयमे अम्लरसका परिमाण अधिक सग्रीत होनेपर अम्लनाशार्थ क्षारका सेवन किया जाता है।

यदि भोजनके एक या आध घण्टे पहिले क्षार उपयोगमे लिया जायगा, तो आमाशयमे भोजनके साथ अम्ल रसका स्राव अधिक हो जायगा। इस हेतुसे जब आमाशयरस स्राव कम होता हो, पेटमे भारीपना हो जाता हो, तब भोजनके साथ या भोजनके आध घण्टे पहिले क्षारका सेवन हितकारक होता है।

इसके विपरीत भोजनके साथ अम्लरस स्राव अधिक होता हो, तब भोजनके आध घण्टे पहिले थोडे जल(१०-२० तोले)मे एक पके नीबूका रस निचोड ३-४ माशे शक्कर मिलाकर पिला देनेसे अम्लरसकी उत्पत्ति कम होती है।

तेजाब, धातव-लवण (नीलाथोथा, कासीस आदि) या उपक्षार द्वारा विपाक्त असर पहूँचने या पित्तप्रकोप होनेपर विषशमनार्थ क्षार व्यवहृत होता है। तेजाबमे क्षार मिल जानेसे समक्षाराम्लता प्राप्त होती है। धातव-लवण अद्रवणीय ऑक्साइड (Oxide) रूपमे अधःस्थ हो जाता है। एव उपक्षारका तेजाब नष्ट होकर वह अपेक्षाकृत द्रवणीय बन जाता है।

आमाशयमेसे अर्धपक्व द्रव्य अन्त्रमे आता है, वह अम्लगुणयुक्त होता है। इस अम्लताके हेतुसे आन्त्रिक क्रिया उत्तेजित होती हैं, किन्तु भोजनके १-२ घण्टे बाद क्षार प्रयोग द्वारा उस अम्लताको नष्ट किया जाय, तो अन्त्र स्राव योग्य नही होता। फिर परिपाक विकार या अजीर्णकी उत्पत्ति

होती है। अतः आमाशयमे अधिक अम्लता हो, तब ही क्षारका उपयोग करना चाहिये।

क्षार सेवनसे रक्त तन्तु (Fibrin) द्रवीभूत होते है, इस हेतुसे आमवातमे हृदयके भीतर संग्रहीत रक्ततन्तुओके निवारणार्थ क्षार प्रयोजित होता है। यदि नमकका गाढ़द्रव काटा, क्षत, श्लैष्मिककला, मासपेशी या वातवहानाड़ी आदिपर लगाया जाय, तो अति उग्रता उत्पन्न होती है। नमकका भोजनमे अधिक उपयोग किया जाय, तो आमाशयमे उग्रता उत्पन्न होती है। जलमें मिलाकर पान किया जाय, तो वमन होती है। नमक शरीरमे सत्वर शोषित होता है; और सत्वर ही शरीरमेसे बाहर निकल जाता है। अधिक नमक सेवन करनेपर पिपासा भी अधिक लगती है। अत्यधिक सेवन करनेपर क्वचित् प्रलाप भी हो जाता है।

सूचना—(१) क्षार सेवन करनेपर आमाशयकी अम्लता नाश होती है; परन्तु अम्लनाशका सच्चा प्रतिकार नही होता। इससे केवल तात्कालिक अम्लता दूर हो जाती है। इस हेतुसे अम्लता वृद्धि होनेपर होनेवाली वेदना तुरन्त निवृत्त हो जाती है। परन्तु अम्लतावृद्धिका मूल कारण रह जानेसे कुछ समयके पश्चात् पुनः पूर्ववत अम्लता उपस्थित होती हे। अत क्षार द्वारा अम्लरोग (अम्लपित्त आदि) आदिके प्रतिकार करनेकी चेष्टा निष्फल होती है।

(२) बारम्बार क्षारका सेवन करनेपर भयानक अजीर्ण रोग उपस्थित होता है। कारण, अधिक परिमाणमे क्षार सेवन करनेपर क्षारके नाशके लिये आमाशयको तुरन्त अधिक पाचक रस निकालना पडता है। इस तरह बार-बार प्रयोग करते रहनेसे आमाशयकी शक्तिमे पुनः पुन. उत्तेजना आते रहनेसे अन्तमे क्षीणता आ जाती है। फिर पाचक रस यथेष्ट परिमाणमे निर्गत नही होता। इस हेतुसे भयानक अजीर्ण रोग उपस्थित होता है। (ऐसी अवस्था लवणाम्ल द्रव उपकारक है)।

(३) आमाशयकी अम्लतानाशार्थ क्षार प्रयोग करना हो, तो भोजन कर लेनेपर तुरन्त व्यवस्था नही करनी चाहिये। कारण, इससे पाचक रसकी अम्लता नष्ट होकर परिपाक क्रियामे व्याघात पहुँचता है। अतः भोजनके ३-४ घण्टे बाद (अन्त्रमे आहार रस चले जानेपर) प्रयोग करना चाहिये। अन्त्रमे अम्लता रहनेपर देरसे द्रवणीय मेगनेशिया, चूना, वराटिका भस्म आदिका उपयोग करना चाहिये। कारण, ऐसा होनेपर औषध, रोग स्थान पर्यन्त जाकर कार्य कर सके।

(४) आमाशयमें यदि अम्लता वायु रूपमे हो, तो उनके निवारणार्थ शखवटी, नौसादर आदि औषधिका प्रयोग करना चाहिये। यदि अम्लरोगके साथ आध्मान हो, तो हीग प्रधान औषधि (शिवाक्षार पाचन) देनी चाहिये।

(५) जब विसूचिका आदि रोगोंमे रक्तमेसे जलीय अंश अधिक निकल जाय, तब रक्तमें स्वाभाविक क्षार कम हो जाता है। ऐसे समयपर क्षार उपकारक है। क्षारको कम मात्रामे अधिक जलके साथ मिलाकर देना चाहिये।

जिस तरह तैलके साथ क्षार मिश्रित होनेपर साबुन बन जाता है, उसी तरह आमाशय आदिमे रहा हुआ तैल प्रधान द्रव्य क्षार सेवनसे पचन होता है, अतः मेदोवृद्धिमे क्षार सेवन (गोमूत्र, गोमूत्र क्षार, अपामार्गक्षार, शिलाजीत आदि) लाभदायक होते है। एवं जब पित्त और आग्नेय रसकी मात्रा कम हो, तब क्षारका उपयोग किया जाता है।

क्वचित् ज्वर आदि रोगोमे तृषा बढ जाती है। उसे आयुर्वेदमे पित्त-प्रकोपका लक्षण माना है। ऐसे समयपर मुंहमे अम्ल मधुर द्रव्य आलु-बुखारा आदि रखने या अम्ल द्रव्यका जलके साथ सेवन करानेपर मुखके भीतर लालानिःसरणमे वृद्धि होती है। फिर तालु आर्द्र होता और तृषा शमन होती है। किन्तु तेज खटाईका उपयोग किया जायगा, तो दांतोको हानि पहुँचेगी।

यकृदऽवसादक (Anticholagogues)—मौक्तिक, शुक्ति, वराटिका तथा अफीम, पारद घटित औषधि (केलोमल), मेगनेशिया, एरण्ड तैल आदि औषधियां यकृत्के पित्तस्रावका ह्रास करता है। इनमेसे मौक्तिक आदिका पित्तशामकमे अन्तर्भाव किया जाता है किन्तु अफीम आदिका प्रयोग इस अभिप्रायसे नही किया जाता।

पित्तनिःसारक (Cholagogues)—पारद घटित औषधियां रेवन्द-चीनी, निसोत, एलवा आदि औषधियोंका सेवन करनेपर पित्तका अन्त्रमे पुनः शोषण होकर रक्तमे मिश्रित होनेके पहिले ही, वे उसे शरीरसे बाहर निकाल देती है। ये औषधियां अन्त्रको पुरःसरणगति और आन्तरिक रस-स्रावमे वृद्धि कर पित्तनिःसारक क्रिया करती है। इसी हेतुसे पित्तका नाश होनेसे परम्परागत शमन गुण प्रतीत होता है।

पित्तपापडा—शीतल, तिक्त, पित्तश्लेष्महर है, तथा ज्वर, रक्तप्रकोप, दाह, अरुचि, ग्लानि, मद, भ्रम आदिको नाश करता है। यह मूत्रल और सारक गुण भी दर्शाता है। एव रक्तकी उष्णताका ह्रास करता है। प्राचीन आचार्योने रक्तपित्त, पित्तज्वर, सर्व प्रकारके ज्वर, अतिसार मदात्यय, छर्दि आदि रोगोमे इसका उपयोग किया है। इन्फ्लूएन्जामे भी इस औषधि के क्वाथसे सत्वर लाभ पहुंचता है। नव्यमत वाले इसके पत्तोंके स्वरसका अभिष्यन्द तीक्ष्ण नेत्रप्रदाह—(Ophthalmia) रोगमे उपयोग करते हैं।

श्वेत चन्दन—शीतल, दाह-पित्तशामक, वर्ण्य, कण्डूघ्न, विषनाशक, ज्वरहर और तिक्त है। वमन, मोह, तृषा, कुष्ठ, तिमिर, कास, रक्तप्रकोप

आदिका शमन करता है। चन्दनके तैलमें ग्राही, कफघ्न, मूत्रल और उत्तेजक गुण है। इसका प्रयोग वंगलोचनके साथ सुजाकजनित तीव्र मूत्रदाहमे किया जाता है।

नव्यमतानुसार चन्दनके चूर्ण और क्वाथके सेवनसे किञ्चित् उत्तेजना और परम्परागत रक्तसंचालन यन्त्रपर अवसादकता पहुँचती है। इसके सेवनसे हृदयक्रिया मन्द होती और क्वचित् वमन होती है। विषमज्वरमे यह प्रस्वेद लाकर उष्णताका ह्रास करता है।

गिलोय—तिक्त, कटु और कषाय रसयुक्त है। इनमे तिक्तरस प्रधान है। विपाक मधुर और वीर्य मन्द उष्ण है। यह संशमन गुण तीनो दोषोपर दर्शाती है। रक्तके भीतर पित्त या कीटाणुविषजन्य उष्णता बढी हो, तो उसे दूर करती है।

गिलोय रसप्रधान औषधि है (वीर्य–Activeprinciple प्रधान नही) इस हेतुसे इसका उपयोग आर्द्रावस्थामे करनेका विधान किया है। नूतन ज्वर, जीर्ण ज्वर, आमाशय और यकृत्की निर्बलता, रक्तमे विषप्रकोप और अरुचिपर हितकारक है। अन्त्रमे कुछ ग्राही असर दर्शाती है। यह रस रक्त आदि सर्व धातुओके लिये बल्य होनेसे धातुओंके भीतर लीन हुए विषोको दूर करनेमे उत्तम कार्य करती है। इसका विशेष विचार आगे 'संशमन' विषयमे वर्णन किया जायगा।

(६) पित्तशामक और सारक

कुटकी, आवला, इमली, घीग्वार, अंजीर, इन्द्रायन, चन्दलोई, त्रिफला, पुनर्नवा, अम्लतासकी फली का गूदा, द्राक्षा, मुलहठी, वृक्षाम्ल, (कोकम), आमचूर आदि।

जो पित्तविरेचक औषधिया है, उनमे पित्तशामक और सारक गुण अवस्थित है। इनका वर्णन आगे विरेचन नं० १७ मे किया जायगा। कुछ वर्णन पहिले "पित्तशामक" नं० ५ मे आ गया है।

आमलकी (आंवला)—यह दिव्य रसायन है। इसमे कषाय, अम्ल और मधुर रस है। यह शीतल और लघु है। दाह, पित्त, वमन, प्रमेह, शोथ, कफ, पित्त, रक्तप्रकोप, श्रम, विबन्ध, आध्मान, आदिको नष्ट करता है। इसमें अम्ल रस होनेसे वातशमन, मधुर रस होनेसे पित्तशमन और रूक्ष-कषाय रस होनेसे कफका नाश होता है। इस तरह यह त्रिदोषजित है।

प्राचीन ग्रन्थोमे आवलेका उपयोग ज्वर, अर्श, प्रदर, रक्तपित्त, हिक्का, तिमिर, रक्ताभिष्यन्द, मूत्रविकार, प्रमेह, वातरक्त, विसर्प, पाण्डु, उदावर्त, मूर्च्छा, मूत्रकृच्छ्र, शीतपित्त, नासिकासे रक्तस्राव, स्वरभग, नेत्ररोग, सोम, पित्तशोफ, पित्तशूल, योनिदाह, कास, निर्बलता, स्मृतिलोप आदि व्याधियों मे रसायन रूपसे किया है।

पित्तशमनार्थ आंवलेका चूर्ण १-१ तोला या इसका हिम बनाकर दिया जाता है। जिससे विरेचन होकर दूषित पित्त निकल जाता है। फिर पित्त प्रकोपका लक्षण दूर हो जाता है।

नव्य विचारवाले इसका उपयोग अतिसार और पेचिशमे ग्राही रूपसे करते है। थूकमे रक्त आना (Hemopthysis) रक्तवमन (Hematemesis) और रक्तातिसार आदि रोगोमे यह लाभदायक है। इसके चूर्णका शर्कराके साथ सेवन करनेसे क्षुधा प्रदीप्त होती है। इस चूर्णमे शीतल, वातहर, संकोचक और रक्ताधिक गुण रहता है। मूत्राशयकी उग्रता और मूत्रस्तम्भ होनेपर इसका स्थानिक प्रयोग (लेप रूपसे उपयोग) किया जाता हैं। रज.स्राव अधिक होनेपर गर्भाशयको इसके क्वाथ या फॉटसे धोया जाता है, रक्तपित्त (Scurvy) मे यह सत्वर उपकार दर्शाता है।

(७) पित्तशामक और ग्राही।

जहरमोहरा खताई, कहरवापिष्टी, कैथ, (कपित्थ), अनार, कुडेकी छाल वेलगिरी, दारुहल्दी, रसाजन, बिजौरा, जामुन, सेव, गगेरनके फल, कमल, कमल बीज, पटोलपत्र पित्तपापड़ा आदि।

अनार—जो मधुर स्वाद वाला है, वह पित्तशामक और हितकर माना गया है; तथा जो खट्टा है उसे चरक सहिताकारने वात-पित्त प्रकोपक कहा है। सुश्रुत सहितामे मीठे अनारको त्रिदोषघ्न और खट्टेको वात-कफनाशक कहा है। अनार ग्राही, दीपन, लघु, शीतल, रुचिकर, कासघ्न, हृद्य और श्रमनाशक है। वृक्षके मूलकी छालमे कृमिघ्न गुण होनेसे उदरावेष्टा-कृमि कद्दु दाना कृमि (Tape worms) के नाशमे यह उत्तम और निर्विघ्न औषधि है। इसका उपयोग क्वाथ रूपसे किया जाता है। इसके अतिरिक्त मूलकी छालमे ईषत् सकोचक गुण होनेसे प्रदर आदि रोगोमे इसके क्वाथ का पिचकारी रूपसे उपयोग किया जाता है।

कुटजत्वक्—(कुडेकी छाल) कटु, तिक्त, उष्ण, रूक्ष, दीपन, कषाय, लघु, पित्तनाशक, ग्राही और कफनाशक है। यह अतिसार, राजयक्ष्मा रोगी के अतिसार, रक्तातिसार, रक्तार्श, रक्तपित्त, प्रमेह, शुक्राश्मरी, विस्फोटक, कुष्ठ आदि रोगोमे लाभदायक है। नव्यमतानुसार भी इसमे ज्वरघ्न, कृमिघ्न, रक्तस्तम्भक, और ग्राही गुण माने गये है। पेचिशमे यह अच्छा काम देती है। बालकोकी पेचिशमे भी इस औषधिका निर्भयतापूर्वक उपयोग हो सकता है।

कपित्थके पक्के फलमें मधुराम्ल, कषाय, तिक्त, शीतल, वृष्य, गुरु, संग्राही, पित्तघ्न, वातनाशक, और व्रणनाशक गुण है। कच्चा फल कफनाशक, ग्राही, वातकर, कण्ठघ्न, विषघ्न, और कण्ठदोषहर है।

नव्यमतानुसार कैथके कोमल पत्ते पाचक, आध्मानहर और अश्मरी

नाशक है। अजीर्ण, ग्रहणी, अतिसार, मूत्रमे शर्करा या रक्त जाना, इत्यादि रोगोपर दिये जाते हैं। कच्चा कैथ ग्राही होनेसे वेलफलके समान अतिसार और ग्रहणी रोगमें प्रयोजित होता है। पक्का फल तृप्तिकर, पाचक पौष्टिक और रक्तपित्तनाशक (स्कर्विनाशक Antiscorbutic) है। इसका शर्बत लालास्राव और कण्ठपाकके शमनार्थ तथा मसूढोको सवल वनानेके लिये उपयोगी है। इसका गोद शहदके साथ अतिसार, पेचिश और ग्रहणी रोगमे दिया जाता है। इसके मूलका चूर्ण या स्वरस श्वास रोगीके लिये हितकर माना गया है।

बिल्व (बेलफल)—मे धन्वन्तरि निघण्टुकारने अम्ल, स्निग्ध, सग्राहि, दीपन, कटु, तिक्त, कषाय, उष्ण, तीक्ष्ण और वातश्लेष्महर गुण कहे है। फल पक्व जानेपर मधुर, गुरु, विदाही, विष्टम्भकारक और दोषघ्न बनता है। परन्तु राजनिघण्टुकारने मधुर, हृद्य, कषाय, पित्तशामक, गुरु, कफघ्न ज्वरनाशक, ग्राही, रुचिकर और दीपन लिखा है। भावप्रकाशकारने भी इसे वातश्लेमहर और पित्तशामक कहा है। चरक संहितामे पके वेलको दुर्जर, दोषवर्द्धक, दुर्गन्धमय मल वातकारक कहा है। कच्चा स्निग्ध, उष्ण, तीक्ष्ण, अग्निप्रदीपक और कफ वातजित है। वेलके ये गुण प्रत्यक्ष अनुभवमे आते है।

नव्य विचारवाले वेलको तीक्ष्ण और चिरकारी, दोनों प्रकारके पेचिश मे उपयोगी मानते है। कच्चे फलोको भून, फिर शक्कर मिलाकर खिलाने से पेचिश दूर हो जाती है।

बेलफलमे मृदु विरेचक, संकोचक और शोधक गुण उत्तम प्रकारका होनेसे आमातिसारमे निर्भयतापूर्वक दिया जाता है। कच्चे फलोमे सकोचक और दीपनपाचन गुण है, और पक्व फलमे मृदुविरेचक गुण अवस्थित है।

बीजपूरक (बिजौरा) लघु, उष्ण, दीपन और हृद्य है। श्वास, कास अरुचि, तृषा आदिको न[illegible] करता और कण्ठका शोधन करता है। इसका रस अति मधुर और हृद्य है। वीर्य, पित्त तथा वातको हरता है। वर्णकर, रुचिकर, रक्त, मास और बलको वढाने वाला तथा शूल, अजीर्ण, विबन्ध, मन्दाग्नि, कफ-वात वृद्धि, अपची, श्वास, कास आदि रोगोमे उपयोगी है। इसके केसरमे दीपन, लघु, ग्राही, गुल्मनाशक और अर्शोघ्न गुण है। इस तरह इस वृक्षके सब अङ्गोंका औषधि रूपसे उपयोग किया जाता है।

प्राचीन आचार्योने गुल्म, आनाह, पित्तविकार, रक्तपित्त, कर्णशूल, पित्तज्वरमे पिपासा, पित्तज शिरोरोग, शूल (पार्श्व हृदय और बस्ति प्रदेशमे), वमन, हिक्का, मूत्रमे शर्करा (रेत) जाना, दातोमे कृमि, वातज विसर्प, सगर्भाकी अरुचि इत्यादि रोगोमे बिजौराको उपयोगमे लिया है।

नव्यमतानुसार रक्तपित्त (Scurvy), अजीर्ण, वातज गुल्म (आमा-

शयमे गैस भर जाना (Flatulance), ज्वर रोगमें तृषा और अतिसार आदिमें अति हितकर है। बिजौरेसे रक्तके भीतर अम्ल प्रतियोगी तत्व (Alkalies) की वृद्धि करानेका गुण होनेसे आमवात, गृध्रसी, कटिशूल और इतर वातरोगमें विशेष लाभ पहुँचाता है। लू लगनेसे उत्पन्न त्वचा की शुष्कता और कण्डू रोगमे इसके रसकी मालिश की जाती है। एवं यह रस प्रसवके पश्चात् होने वाले रक्तस्रावको भी बन्द करता है। इसके तैल की मालिश करनेसे आमवातज शूलका सत्वर शमन होता है।

(८) पित्तनिःसारक।

पित्तस्राव वर्द्धक—यकृदुत्तेजक—कोलेगोग्स-कोलेरेटिक्स।

Hepatic Stimulants Chlagogues-Choleretics

यकृत्को उत्तेजित करके अधिक पित्तस्राव कराने वाली औषधियाँ—ताम्रभस्म, पारद घटित औषधियाँ, नौसादर, मल्लभस्म, कोकम आमचूर, एलुआ, सज्जीखार घीग्वार, मिर्च, सनाय, निसोत, रेवन्दचीनी, आदि। इस प्रकारकी औषधियोंके सेवनसे यकृत्की क्रिया बढती है; और पित्त-स्राव अधिक परिमाणमे होता है। आमाशयमे आहार होनेपर यकृत्स्वाभाविक ही उत्तेजित हो जाता है अतः इन औषधियोंका सेवन भोजनके पश्चात् करनेसे पित्तस्रावमे सहज वृद्धि हो जाती है।

डाक्टरीमे पोटासियम लवणको पित्तनिःसारक कहा है। अधिक प्रथिन-मय आहार पित्तस्रावकी वृद्धि कराता है, कर्पोदक नही, तथा मद्य और स्वापजनक द्रव्य (Narcotics) पित्तस्रावको नष्ट कर देते है।

डाक्टरीमे पित्त विरेचन (Cholagogue purgatives) द्रव्य है, उनको अधिक पित्तस्रावी नही माना; किन्तु वे पित्तमेसे मलत्यागकी वृद्धि कराते हैं और पित्तका पुनः शोषण होनेमे प्रतिबन्ध करते है। इनके अति-रिक्त प्रसन्नता (आनन्द) और भयवृत्ति होनेपर पित्ताशयमेंसे पित्तस्राव अधिक होता है। क्रोध होनेपर पित्तस्राव स्तम्भित होता है। यदि क्रोधा-वेगमें भोजन किया जायगा, तो उसका पचन योग्य नही होगा।

उपर्युक्त औषधियोमेंसे कतिपय एलुआ, रेवन्दचीनी, निसोत आदि अन्त्रकी पुरःसरण क्रिया और आन्त्रिक रस निःसरणकी वृद्धि करा पित्तको बाहर फेंकनेमे सहायता भी पहुँचाती है। अतः इन औषधियोमे यकृत् और अन्त्र दोनोंको उत्तेजना देनेका गुण अवस्थित हैं।

नरसार (नौसादर)—अति उग्र, तीक्ष्ण, सारक और नेत्रोको हितावह है। गुल्म, उदररोग, विष्टम्भ, शूल, शोष, मासाजीर्ण, त्रिदोष, यकृत्विकार, प्लीहा विकृति, ज्वर, शिरःशूल, अर्बुद, स्तनरोग, रक्तपित्त, कास, अस्थि-भग, योनिरोग आदिमे हितकारक हैं।

नव्यमतानुसार यह दोषघ्न, शोषक, स्रावण क्रियावर्द्धक (पित्तनिःसा-

रक, कफनि सारक), प्रस्वेदकारक, मूत्रल और रजोनि सारक है । स्थानिक प्रयोग करनेपर यह उग्रता साधक शैत्यकारक और शोषक है । विविध ज्वरमे शीतलता लानेके लिए प्रयोजित होता है । प्रदाहका ह्रास करानेके लिये स्थानिक प्रयोग रूपसे उपयोगमे लिया जाता है । स्वरयन्त्रप्रदाहज स्वरभंग होनेपर इसका धूम्रपान कराया जाता है । शीत लगकर स्वरभंग होनेपर नौसादरको जलमे मिलाकर उसकी बाष्पका सेवन श्वास द्वारा कराया जाता है । भोजनके अभावसे या अधिक परिश्रमसे मासपेशियोमे शूल (Myoneuralgia), विविध वातवाहिनियोकी विकृतिजन्य कामला, यकृद्वृद्धि, प्लीहावृद्धि, गर्भाशयकी क्रिया क्षीण होकर रजोलोप, चिरकारी वातरक्त, रक्तोत्कास, रक्त वमन इन सबमे हितकारक है । स्तन-प्रदाह और योनिकण्डूमे इसके जलक प्रयोग, धोनेके लिये किया जाता है । नेत्रका श्वेतवर्ण मलिन होनेपर इसके बूँद डाले जाते है । यदि नौसादरकी अपेक्षा नौसादरके पुष्पको काममे लिया जाय, तो यह सत्वर फल दर्शाता है ।

आयुर्वेदकी अपेक्षा डाक्टरीमे नौसादरके अधिकतर प्रयोग बनाये है और यह अत्यधिक परिमाणमे व्यवहृत होता है ।

यकृत्के कार्य—यकृत् शरीरके भीतर अत्यधिक परिमाणमे बडी ग्रन्थि है । यह सार्वाङ्गिक चयापचयकी क्रियामे महत्वका भाग लेता है । इसकी क्रियामे कुछ भी विश्रृंखलता होनेपर सब चयापचय क्रियामे विकृति हो जाती है, फिर विभिन्न लक्षण उपस्थित होते हैं । यकृतके मुख्य कार्य निम्नानुसार ७ है ।

(१) पित्तका निर्माण—इसमे कुछ अश प्राकृत (Secretory) और कुछ मलरूप विकृत (Excretoıy) होता है । जो अनुपयोगी रक्तरंजकमेंसे बनता है, यह विकृत स्राव है और इस स्राव कार्यमे कुछ प्रतिवन्ध होनेपर पित्तारुण (Bilirubin) के त्यागमे रुकावट आकर कामलाकी संप्राप्ति हो जाती है । ये रञ्जक द्रव्य पचनसंस्थामे कुछ भी भाग नही लेता । किन्तु आहार रसके साथ अन्त्रके भीतरी मार्गमे मिश्रित हो जाता है । फिर उद्भिद् कीटाणुओके उद्योगसे नष्ट हो जाता है ।

विविध पित्ताम्ल (Bile acids) प्राकृतस्राव है, जो वसाके शोषणमे सहायता पहुँचाते है । ये अम्ल या इनके विनाशसे उत्पन्न द्रव्य अन्त्रके भीतर से कुछ अंशमे शोषित हो जाते है और यकृत् द्वारा पुन. मलरूप निकाल दिये जाते है । वे यकृत्के भीतर प्राकत स्रावकारी घटकोको उत्तेजित करते है और स्वभाविक पित्त नि सारक क्रिया कराते हैं ।

(२) लोहद्रव्यका चयापचय—यकृत् अवयवोके लोहद्रव्यकी रक्षा और रक्तरंजनकी रचनामे मुख्य भाग लेता है । यह पाण्डुविरोधी प्रतिनिधिका संग्रह करता है । उस प्रतिनिधिकी उत्पत्ति आमाशयिक स्रावमे रहे हुए

मण्डवत् विशेष द्रव्य (Intrinsic factor) और प्रथिनमय आहारमें अवस्थित पाण्डुनाशक द्रव्य (Extrinsic factor), इन दोनोंके संघर्षसे होती है जो मज्जाके भीतर जीवकेन्द्रमय वृहद् रक्ताणुओ (Megaloblasts) मे से सामान्य कदके जीवकेन्द्रमय रक्ताणु (Normoblasts) और जालदार रक्ताणु (Reticulocytes) वनानेका मुख्य कार्य करता है। एवं यह रक्ततन्तुजन (Fibrinogen) की रचनाद्वारा रक्तके सामान्य जमावमे भी सहायता पहुँचाता है।

(३) कर्वोदकके चयापचयका नियमन—प्रतिहरिणी शिरासंस्थामे से अधिक शर्कराको निकाल देता है और अधिक हो उसका मधुजन (Glycogen) के रूपमे संग्रह करता है, जो सामान्यत. ०.१२ प्रतिशत मात्रामे रक्तके भीतर शक्करके केन्द्रीकरणका पोषण करता है। इस क्रियामे अग्न्याशय, अधिवृक्कके भीतरके घटक, ग्रैवेयक ग्रन्थि और पोषणिका ग्रन्थिके विशेष रासायनिक स्राव सहायता पहुँचाते है।

(४) प्रथिनके चयापचयका नियमन—अमिनोंअम्ल (Aminoacids) जो प्रथिनोंके मुख्य अम्ल विपाक रूप हैं, उनके चयापचयमें यकृत् सहायता पहुँचाता है। उनका शोपण विशेषत: अन्त्रमे होता है।

(५) द्रव्योका निर्विपकरण—यह क्रिया चयापचयके कालमे उत्पन्न या अन्त्रमे शोपित विपके प्रभावसे, देहका रक्षण करती है। अनेक पदार्थ पित्त मे मलरूपमे निकाल दिये जाते हैं, जो उन द्रव्योंकी व्यवस्थाको परिष्कृत करते है, किन्तु यकृत्का महत्वपूर्ण कार्य तो अनेक औषधिको निर्विष करना है। यह निर्विषकरण इनके निर्दोष मिश्रणका रूप धारण करने तक भेदन या निष्क्रिय मिश्रणकी रचना अथवा शनै: शनै: मलरूपमें निकल जानेके लिये अवयवके भीतर संपत्ति सग्रह होकर होता है। इस क्रिया द्वारा अमोनिया मूत्रीयारूपमे परिवर्तित होता है। जो स्वापजनक अम्लके लवणोंको निष्क्रिय मिश्रण रूपसे नष्ट कर देता है। रंग रहित क्लोरल तैल यूरोक्लोरलिक अम्ल वनकर ग्लायकुरोनिक अम्लके साथ संमिलित होता है सल्फोनमाइड वर्ण-रहितवायु (एसिटीलाइन) रूपमे रूपान्तरित होता है। फिर आगे भारी धातु जो विदीर्ण नही हो सकती या किसी निर्दोष मिश्रणके रूपमे संयोजित नही हो सकती, उसको रक्तसे मुक्त और यकृत्मे संगृहीतकी जाती है फिर धीरे-धीरे उनका मल रूपसे त्याग किया जाता है।

(६) वसाके चयापचयका नियमन—अन्त्रमेसे वसाका शोपण पित्तकी उपस्थितिमे होता है। इस वसाका रूपान्तर यकृत्के भीतर लेसिथिन (Lecithin) रूपमें होता है, जो तन्तुओंके पास भेज दिया जाता है। कितनी ही अवस्थाओंमेंसे वसा यकृत्के भीतर रहती और वढ़ती जाती है। उदाहरण स्वरूप उपवास, मधुमेह, फोस्फरस और सोमलका विप प्रकोप तथा

कोलिन (Choline) द्वारा विरोध होनेपर ।

(७) मूत्रीयाके चयापचयका नियमन—यह मनुष्यो के लिये विशेष महत्वका नही है ।

इनके अतिरिक्त पित्त रंगका नाश और हेपेरिन (Heparin)की उत्पत्ति आदि कतिपय कार्य भी यकृतमे होते है ।

यकृत्मेसे जो पित्तस्राव होता है, उस क्रियाको अनेक औषधियाँ उत्तेजित करती है । तथा अनेक उत्तेजनाका ह्रास करती है । उत्तेजना देने वाली औषधियोसे पित्तस्रावमे वृद्धि और अवमादक औषधियोसे पित्तस्राव का ह्रास होता है । इनमे उत्तेजक औषधियोमे दो प्रकार हैं—साक्षात् पित्तनि.सारक और परम्परागत नि:सारक ।

साक्षात् पित्तनि.सारक (Direct Cholagogues) - ताम्रभस्म, घीग्वार, नौसादर, एलुआ, कलमीशोरेका तेजाब (Acid Nitric), रेवन्द चीनी आदि । इन औषधियो द्वारा पित्तस्राव क्रिया उत्तेजित होती है ।

परम्परागत पित्तनि सारक (Indirect Cholagogues)—इस प्रकार की औषधियोसे स्रवित पित्तका परिमाण नही बढता । ये ग्रहणीके निम्नांश और शेषान्त्रक (Ileum) के मध्यमे रहे हुए लघु अन्त्रके मध्य भाग (Jejunum) मे उत्तेजना पहुँचाते है । तथा अन्त्रमेसे पुन: शोषण करानेके लिए पित्तको नीचे गमन कराते है। इस श्रेणीमे पारद-घटित औषधियाँ सत्र विरेचन औषधियाँ और वमनकारक औषधियाँ, इन सबका समावेश होता है । इस प्रकारकी औषधियोके सेवनसे मलमे पित्त अधिक प्रतीत होता है ।

पित्तनि सारक औषधि सब विरेचक होकर कार्य करती है । कारण, पित्त से अन्त्रकी पुर.सरण क्रिया उत्तेजित होती है । अत. इस श्रेणीकी औषधियाँ यकृत्की विविध व्याधियाँ-यकृत्विकारज अजीर्ण (Hepatic Dyspepsia) कामला पित्ताशय, अश्मरी आदिमे विशेष उपयोगी होती है । इन रोगोंमें साक्षात् और परम्परा कार्य करनेवाली, दोनो प्रकारकी औषधियोकी योजना की जाती है ।

यकृत्के विकार जनित अजीर्ण रोगमे औषधि प्रयोगके अतिरिक्त पथ्य और व्यायामकी भी व्यवस्था करनी चाहिये । पथ्य और व्यायामसे पित्ताशय और पित्तनलिकामेसे पित्त निर्गमन होनेमे सहायता मिल जाती है ।

पित्ताश्मरीमे ताम्रभस्म, निसोत, जैतूनका तैल आदि औषधियोंका व्यवहार होता है। तीव्र वेदनामे आवश्यकतापर अफीम आदि मादक औषधि दी जाती है । परन्तु अफीम पित्तस्रावका ह्रास कराती है ।

यकृत्की मधुरक क्रिया वृद्धि होनेपर लोटिया सज्जी (सोडाबाईकार्ब), कलमी शोरा और नमकके तेजाबका मिश्रण (Acid Nitro Hydrochloric) आदि उत्तेजक औषधिया दी जाती है । एव निर्माण क्रियाका ह्रास

या उसे स्थगित करानेके लिए सोमलघटित औषधियाँ, नागभस्म, फास्फरस आदि भी दिये जाते है। इस प्रकारकी औपधियोको मधुरक दमनकारी (Glycogenic Depressants) कहा है। यदि मधुमेहमे मूत्रके साथ शर्करा अधिक जाती हो, तो उसका ह्रास करानेके लिये अफीम प्रधान औपधि दी जाती है।

पित्तनिःसारक औपधियोसे पित्त अधिक निकलनेपर मलमे पित्त अधिक प्रतीत होता है। परन्तु मलके देखने मात्रमे अधिक पित्तस्राव हुआ है, ऐसा निर्णय नही हो सकेगा। कारण, कभी पित्ताशयमें सचित पित्त एक साथ अन्त्रमे चला जाता है, कभी ग्रहणीमे जो पित्त आया है, यह स्वाभाविक क्रिया द्वारा अन्त्रमे शोषित होनेके पहिले किसी कारणवश सत्वर नीचे चला जाता है; इन दो हेतुओंको लक्ष्यमे रखकर निर्णय करना चाहिये।

(९) कफ दोषघ्न

कफ धातुके प्रकोपको दूरकर सम अवस्थामें लानेवाली औषधियाँ, चरक संहितामे लिखा है कि —

> गुरु-शीत-मृदु-स्निग्ध-मधुर-स्थिर-पिच्छिला ।
> श्लेष्मणः प्रशमं यान्ति विपरीतगुणैर्गुणाः ॥

कफके मुख्य गुण गुरु, शीतल, मृदु, स्निग्ध, मधुर, स्थिर पिच्छिल है; इन गुणोसे विपरीत गुणों (लघु, उष्ण, तीक्ष्ण, रूक्ष, कटु आदि रस, सर और विशद) द्वारा यह शान्त होता है।

कफ धातु सम अवस्थामे होनेपर वल और विकृत होनेपर मल कहलाता है। प्राकृत कफको ओज रूप और विकृत कफको रोग रूप निम्न श्लोकमे चरकसंहिताकारने दर्शाया है।

> प्राकृतस्तु वलं श्लेष्मा विकृतो मल उच्यते ।
> स चैवौज स्मृत. काये स च पाप्मोपदिश्यते ॥

श्लेष्मसंशमन वर्ग—कालेयक (पीत चन्दन), अगर, तिलपर्णी (हुलहुल), कुठ, हल्दी, शीतशिव (कपूर), सोवा, सरला (निसोथ), रास्ना, प्रकीर्या (कटेली), उदकीर्या (करंज), हिंगोट, चमेली, काकादनी (कंथारी), कलिहारी, हस्तिकर्ण (पलाश), मुंजातक (अभावमे तालफल), खस, कटु, तिक्त, कपाय युक्त कफघ्न औपधियाँ, वल्लीपञ्चमूल, कण्टक पञ्चमूल, पिप्पल्यादिगण, बृहत्यादिगण, मुष्ककादिगण, वचादिगण, सुरसादिगण और आरग्वधादिगण, ये सव श्लेष्मसंशमनकारी है।

वल्लीपञ्चमूल—विदारीकन्द, अनन्तमूल, हल्दी, गिलोय और मेढासिंगी, ये सव रक्तपित्त वातज, पित्तज और कफज, ये तीनों प्रकारके शोथ, सव प्रकारके प्रमेह और शुक्रदोपको दूर करता है।

कण्टक पञ्चमूल—करोंदा, गोखरू, काला कटसरैया, शतावरी, और

ग्रधनखी (कंथारी) इनमे वल्लीपञ्चमूलके समान गुण है।

पिप्पल्यादिगण—पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रकमूल, सोठ, मिर्च, गजपीपल, रेणुकाबीज, इलायची, अजवायन, इन्द्रजौ, पाठा, जीरा, सरसों, बकायनका फल, हीग, भारगी, मूर्वा, अतीस, वच, बायबिडग और कुटकी। इस गणका यथा विधि व्यवहार करनेसे कफ, जुकाम, वायु, अरुचि, गुल्म और शूल नष्ट होते है। यह आम परिपाचक और अग्निप्रदीपक है।

बृहत्यादिगण—बडी कटेली, छोटी कटेली, इन्द्रजौ, पाठा और मुलहठी। यह पित्त, वायु, कफ, अरुचि, वमन (मतान्तरमे हृद्रोग) और मूत्रकृच्छ्रको शमन करता तथा पचन करता है।

मुष्ककादिगण—मोर्वा, पलाश, धायके फूल, चित्रकमूल, मैनफल, सीसम, सेहुड और त्रिफला। यह मेद रोग, शुक्रदोष, प्रमेह, पाण्डु, शर्करा और अश्मरीका नाशक है।

सुरसादिगण—तुलसी, रामतुलसी (छोटे पत्ते वाली तुलसी) वनतुलसी (मरवा), आजवला, रोहिपतृण सुमुख (नगद बाबची) बडी बावची, कसौदी, नकछिकनी, खरपुष्पाह (नकछिकनी भेद), बायविडङ्ग, कायफल, सुरसी (सफेद निर्गुण्डी), सम्हालू (काली निर्गुण्डी), गोरखमुण्डी, मूसाकानी, भारंगी, काकजंघा, मकोय और विषमुष्टि (बकायन)। यह गण कफ, कृमि, प्रतिश्याय, अरुचि, श्वास और कासका नाशक और व्रणशोधक है।

इनके अतिरिक्त अभ्रकभस्म, शृंगभस्म, वैक्रान्तभस्म, शिलाजीत, ताम्रभस्म, मल्लभस्म, तालभस्म, मन शिला, बहेडा, सौफ, पीपरमेट, मधु आदि कफदोषघ्न है।

मुष्कक (मोर्वा) कटु, तिक्त, ग्राही और कफवातघ्न है। विप, मेद, गुल्म कण्डु, बस्तिपीडा, कृमि और शुक्रका नाश करता है। प्राचीन कालमें इस वृक्षकी लकडी जलाकर क्षार बनाया जाता था। इस हेतुसे संस्कृतमे इसे "क्षार श्रेष्ठ" संज्ञा, भी दी है। प्रमेह और वातरक्तकी औषधि (पत्रलवण) मे इसका प्रयोग किया है।

कुष्ठ, (कूठ) कटु, उष्ण और तिक्त है यह कफ, वात, और रक्तविकार, त्रिदोष, विष, विसर्प, दद्रु, खर्जू, (ब्युची) कण्डु और कुष्टरोगका नाश करता है। कूठ काश्मीर और हिमालयके पहाडोमे अधिक होता है। इसमे एक प्रकारकी सुगन्ध होती है। प्राचीन आचार्योने इस औषधिका अनेक रोगों पर प्रयोग किया है।

नव्यमतानुसार कुष्ठ उत्तेजक होनेसे आक्षेपक व्याधियां—कफ, श्वास, विसूचिका, आदिमे और अपचनमे लाभ पहुँचाता है। दोषघ्न, होनेसे जीर्णत्वचा विकार और आमवातमे उपयोगी है। हाथ-पैरके प्रदाह, मेदो-

वृद्धिजन्य उदर-स्फीति मूढ़मार और शिरदर्द आदिमे शीतोपचार रूपसे इसका लेप गुलावजलमें घिसकर किया जाता है। इस तरह व्रणोके मल-हममे भी यह रोपण रूपसे लाभ पहुँचाता है।

आयुर्वेदमें स्थान भेदसे वात, पित्त, कफ, तीनोंके ५-५ भेद किये है। इन भेदोंमें अवलम्वक, क्लेदक, वोधक, तर्पक और श्लेष्मक, ये पांचों प्रकारके कफ अविकृत धातु रूप होनेपर इनका कार्य एवं कफविकृति हेतु कफके क्षय, वृद्धि और प्रकोपके लक्षण, कफशामक उपाय इत्यादि बातोंका वर्णन 'चिकित्सातत्वप्रदीप' प्रथम खण्ड पृष्ट २५ से ३२ तकमे किया गया है।

जो कफ मुख और नासिकासे वाहर निकालता रहता है, वह विकृत दूषित श्लेष्मा है। प्रकृतिके लिये हानिकर है। इस हेतुसे आभ्यन्तरिक शक्ति उसे जलाती और वाहर निकालती रहती है। डाक्टरीमें इस दूषित कफके निम्नानुसार अनेक विभाग किये है—

केवल कफ, रक्तमिश्रित कफ, पूयमिश्रित कफ; केवल रक्तमय कफ, रक्तरस, मिश्रित कफ, केवल पूयमय कफ, सौत्रिक तन्तुमय कफ ये सब विकृति अनुसार उत्पन्न होकर वाहर निकलते रहते है।

फुफ्फुस संन्यास, हृदयके द्विपत्र कपाटका अवरोध, श्वास नलिकाविस्तार और वायुकोषविस्तार आदि रोगोंमे केवल रक्त गिरता है; तथा रक्तपित्त, पित्त ज्वर, श्वासनलिकाप्रदाह और धमनी-विस्तारमें वहुधा कास आकर न्यूनाधिक रक्त गिरता है।

कफप्रधान प्रकृतिके लिये पथ्य—कड्डुवा, चरपरा और कसैला रस, क्षार परिश्रम, व्यायाम, मार्गगमन, कुश्ती, हाथी-घोड़ेपर सवारी, समुद्रतटकी वायु, रात्रिका जागरण, जलक्रीडा, सूर्यके तापका सेवन, अग्नि सेवन, पुराने चावल, चना, मूँग, कुलथी, जौका सत्तू चनेका सत्तू जुवार, बाजरा, सरसोका तैल, शुष्क भोजन, तेज नमक, हल्दी, लालमिर्च, पोदीना, गरम मसाला, वैंगन, मटर, ककोड़ा, करेला, चौलाई, लोणिका (अम्लोनिया), अदरख, मोंठ, सूखा धनिया, करीर, पीलू, वायविडंग, सुपारी, जायफल, जावित्री, कंकोल, लौंग, कपूर, जीरा, कालाजीरा, कालीमिर्च, पीपल, शहद, लहशुन, प्याज, राई, मेथी, केलेका फूल, अगस्त्यके फूल, कच्चे वेल-फल, कंदूरी, सुहिजना, ताम्वूल, मूली और गरमजल आदि आहार-विहार पथ्य है; तथा कफका प्रकोप होनेपर उसे दूर करनेमे भी सहायक हैं।

कफ प्रकोपक आहार-विहार—दिनमे सोना, शारीरिक श्रम न करना, वैठे रहना, आलस्य करना, मधुर, खट्टे, नमकीन, शीतल, स्निग्ध, गुरु, पिच्छिल (चिकने रेसादार और गुरु), अभिष्यन्दी (रसवहानाड़ियोके मार्गों को रोकनेवाले दही आदि), शालि चावल, जौ, उड़द, नया चावल, जंगली धान्य, उड़द, वड़े उड़द, गेहूँ, तिल, मैदाके पदार्थ, खोवेके पदार्थ, दही,

ज्यादा दूध, खिचडी, खीर, ईखके पदार्थ, अनूप देशके पशु और जलचरो का माँस, चरबी, कमलकी नाल, कसेरू सिंघाडे, बादाम पिस्ता आदि मधुरफल, जामुन, पक्के केले, खट्टे आम, खट्टे बेर, करौदा, बल्लीफल, (बेलोमे होनेवाले फल), अधिक भोजन, भोजनपर भोजन, तुरन्तकी व्यायी हुई गाय और भैसका दूध, चन्दन आदि शीतललेप, शीतल जलसे स्नान और नारियलका जल इत्यादि आहार-विहारसे कफ प्रकुपित होता है ।

इसी प्रकार बहुधा शीतल पदार्थका सेवन शीतसमय, वसन्तऋतु, सूर्योदय, संध्यासमय और भोजनके प्रारम्भमे कफ कुपित होता है ।

आशुकारी फुपफुसप्रदाहका प्रारम्भ होनेपर कफमें कुछ अशमे रक्त निकलता है । फुफ्फुसस्थ कर्कस्फोट (Cancer) में रक्तमिश्रित, चिपचिपा कफ गिरता है ।

न्यूमोनियामे पूय हो जानेपर कफ पीला या हरा हो जाता है ।

श्लैष्मिक कफमे वायुके बुदवुदे होते है, और पूयमय कफमे वायु नही रहती । पूयमय कफ जलमे डालनेपर डूब जाता है ।

कभी कभी कफ केवल रक्तरसरूप निकलता है । केवल रक्तरस होनेपर वह झाग सदृश प्रतीत होना है ।

स्वरयंत्र और श्वासनलिकाकी श्लैष्मिक कलाके प्रदाहमे तथा कण्ठ-रोहिणीमे सौत्रिक तन्तुमिश्रित कफ निकलता है ।

राजयक्ष्मामे बताशे सदृश गोल बँधा हुआ कफ आता है । क्वचित् तालुग्रन्थियोके कोषोमेसे भी इसी प्रकारकी कफकी छोटी छोटी गोलियाँ निकलती रहती हैं ।

इनके अतिरिक्त स्वरयंत्रके चिरकारी प्रदाहमे कफके साथ तरुण अस्थि के टुकडे निकलते रहते है । एवं कभी कभी कुत्ता आदिके कृमि (Hydatid) जनित पदार्थ भी देखनेमे आते है । इन सबका विशेष विवेचन 'चिकित्सातत्वप्रदीप' द्वितीय खण्डमे श्वासयन्त्र व्याधियोमे किया गया है ।

(१०) कफघ्न ।

कफनि:सारक छेदन एक्सपेक्टोरन्टस्-एपोफलेग मेटिक्स ।
(Expectorants-Apophlegmatics), ।

> श्लिष्टान् कफादिकान् दोपानुन्मूलयति यद्बलात् ।
> छेदन तद्यथा क्षारा मरिचानि शिलाजतु ।।

श्वासनलिका और फुपफुस कोप आदिमे चिपके हुए दूषित कफको बलपूर्वक उखाडकर निकाल देने वाली औषधियां क्षार, कालीमिर्च, शिलाजतु, ताम्रघटित औषधिया, शिला नमक, सोहागा, जवाखार, अपामार्गका क्षार, नौसादर, सज्जीखार, अडूसा, अरनी, आकडेका मूल, सोपारीके फूल, बहेड़ा, हल्दी, आमाहल्दी, काकड़ासिंगी, कायफल, मुलहठी, भिलावा,

तुलसी, देवदारु, कटेली, बच, निर्गुण्डी, लालबोल, शहद, बनफसा, लोबान के फूल, कुंदरु, कुचिला, तार्पिन तैल, गन्धक, लौंग, पीपल, प्याज, लहशुन, वच, कपूर, मिश्री आदि ।

उत्तेजक कफस्रावी औषधियाँ—ये सब उत्तेजनाकी वृद्धि करा कफको पतला करती है । चिपचिपापन कम होनेसे खांसनेपर कफ सरलतासे बाहर आ जाता है । अभ्रक भस्म, शृङ्गभस्म, वासा, गन्धाविरोजा, जंगली प्याज, शिलारस, सबजा, हिंगु, नौसादर, कंदल गोंद, (Dorema Ammoniacum) कर्पूर, लोहबान, कण्टकारी, एरण्डमूल, तार्पिन तैल आदि ।

इनके अतिरिक्त स्वल्प मात्रामे वामक औषधियां, उष्ण-आर्द्र वायुका श्वसन, ऊनी वस्त्र धारण, फुफ्फुसोपर निवाये तैलकी मालिश, पुल्टिस, सेक आदि क्रिया, ये सब कफको बाहर निकालनेमे सहायक है ।

ताम्रघटित औषधियाँ (कफ कुठार आदि) कफको निकाल देनेमे अच्छा काम देती है । एवं वेदना शामक और आक्षेपहर गुण भी दर्शाती है ।

जब कफका परिमाण कम हो, तब कुचिला, नौसादर, पीपल, आदि औषधिया देनेसे श्वासयन्त्रकी वातवाहिनियोके अन्त भागकी क्रिया उत्तेजित होकर कफ निकालनेमें सहायता पहुँचाती है ।

कफनिसारक औषधियाँ श्वासनलिकामें रसस्राव बढाती और दूषित श्लेष्माको बाहर निकालनेमे सहायता देती है । इस क्रियाकी वृद्धि करने और वायु मार्गका संरक्षण करनेके लिये नैसर्गिक यन्त्रिणाओं (Mechanisms) को समझनेकी आवश्यकता है । ये संचालक (Motor) और स्राव कराने वाली (Secretory) है । संचालक यन्त्रिणा सूक्ष्म प्रवर्धन (Cilia) ये – १ श्लैष्मिक कलामे अवस्थित संचलन क्षम गति, २. कास को कफ निसारक प्रतिफलित क्रिया, ३. छोटी श्वासनलिकाओंकी मांसपेशियोकी पुरःसरणवत् गति, इन तीनोको धारण करती है । स्राव कराने वाली यन्त्रिणा श्वासनलिकाकी सतहको आर्द्र रखती और क्षोभ कराने वाले पदार्थको द्रवीभूत बनाती है, जो श्लैष्मिककला बहुसंख्यक ग्रन्थियोद्वारा पूरा करती है । ये दोनों (संचालन और स्राव) क्रिया प्राणदा (Vagus) और स्वतन्त्र (Sympathetic) नाडियो द्वारा नियमित होती रहती है । प्राणदानाडियोके केन्द्रगामी तन्तु (Afferent Fibres)श्लैष्मिक कलामेसे प्रभावको वहन करते है, जब वहिर्गामी (Efferent) तन्तु मांसपेशियां और स्रावकारी ग्रन्थियोंको शक्ति प्रदान करते हैं । मांसपेशियो को स्वतन्त्र नाडियोके वहिर्गामी तन्तु भी प्रभावित करते रहते है । ये दोनों प्रकारके तन्तुओंका असर कल्पित कास केन्द्र (Hypothetical Cough Centre), जो श्वसन और वमन केन्द्रसे सम्बन्ध वाली है, पर अभिमुखी होता है ।

डाक्टर गणका वर्गीकरण—

१. प्रतिफलित कफ नि:सारक (Reflex expectorants)

२, केन्द्रीय कफ नि:सारक (Central expectorants)

३. स्रावकारी नाड़ीतन्तुओके सिरेकी उत्तेजना द्वारा कार्यकारी।

४ श्वासनलिकाकी ग्रन्थियोकी उत्तेजना द्वारा कार्यकारी

१, प्रतिफलित कफ नि:सारक—कफ नि.सारक वर्गकी अत्यधिक औषधियां इस वर्गमे आ जाती है। ये प्राणदा नाड़ियोके अन्तिम् संवेदक भाग पर उत्तेजना पहुँचाती है। इस भागमे टार्टर इमेटिक (सुरमे से वना हुआ श्वेत दानेदार चूर्ण), कपूर, नौसादर, जगली प्याज, क्षार, अफीम क्षार (Apomorphine), बचा आदि असर पहुँचाते है।

इस प्रकारकी उत्तेजना, जो श्वासनलिकाकी श्लैष्मिक कलामे प्राणदा नाडियोके संवेदक अन्तिम सिरेपर होती है, वह भी श्वासनलिकाके स्राव की वृद्धि कराती है। इस प्रकारके उड्डयनशील तैल, तैली गोद आदि द्रव्य है, जो श्वासनलिकाकी श्लैष्मिक कलामेसे कफ स्राव करानेमे मृदु क्षोभ कराते है।

२. केन्द्रिय कफ नि.सारक—इस वर्गके द्रव्योंसे केन्द्रस्थान उत्तेजित होकर स्रावको बढा देता है। इस वर्गमे अफीम क्षार मुख्य औषधि है। टार्टर इमेटिक और वचा भी केन्द्रस्थानपर असर पहुँचाता है। श्वासनलिकासे स्राव कराने वाला केन्द्रस्थान सुषुम्णास्थ वमनकेन्द्रके साथ सम्बन्ध वाला है। इस हेतुसे वामक ओषधियाँ सूक्ष्म मात्रामे कफ नि.सारक गुण दर्शाती है।

३. स्रावकारी नाड़ी तन्तुओके सिरेपर उत्तेजना द्वारा कार्यकारी—इस वर्गकी ओषधियाँ परिस्वतन्त्र नाडियोके अन्तिम भागपर असर पहुँचाती है। पाइलोकार्पिन (Pilocarpine) की पत्ती और क्षार इस वर्गकी औषधि है।

४ श्वासनलिकाकी ग्रन्थियोको उत्तेजित करके कार्य करनेवाली—आयोडाइड कफस्राव करानेमे स्रावकारी घटकोपर क्रिया करके श्वासनलिका के कफका स्राव वढ़ा देता है। पहिले यह माना जाता था कि—

अत्यन्त कफनि सरण और श्वासनलिकाकी ग्रन्थियोके स्रावको वढा देने वाले द्रव्योमें नौसादर मिश्रित लवण और क्षार विशेप औषधि है।

कफनि सारक औषधियोके नियमनका आधार रोगीकी स्थितिके मर्म गुणधर्म, कासप्रकार, श्लेष्माका स्वभाव, रोगकी अवस्थाओ (Stages) से सम्बन्ध और कार्योत्पादक रोगका परीक्षात्मक विशेप लक्षण इनपर रहा है।

ओपध गुण धर्म विज्ञान दृष्टिसे वर्गीकरण—

१. उत्तेजक कफ निसारक Stimulant expectorants

२ अवसादक कफ.निसारक Sedative expectorants

३ आक्षेपहर कफःनिसारक Antispasmodic expectorants

१. उत्तेजक कफनि सारक—इस प्रकारकी औषधिया श्वासनलिकाकी श्लैष्मिक कला द्वारा नि सरण कराती है। ये मृदु क्षोभ कराती और श्वासनलिकामे स्रावकी वृद्धि कराती हैं। वह मृदु क्षोभ कार्य करनेमें सहायक होता है। इस वर्गमे मुख्यतः उड्यनशील तैल और सुगन्धमय द्रव्य हैं। उड्यनशील तैल, तार्पिन, कर्पूर, लोहवान क्रियासोट और ग्वायाकोल आदि हैं।

इस वर्गकी औषधियोमेसे कितनी ही मस्तिष्क गत केन्द्र स्थानको उत्तेजित करती हैं, वे श्वासोच्छ्वास क्रियाको सवल वनाती है। इस हेतुसे कफयुक्त कास, फुफ्फुसखण्ड प्रदाह, यक्ष्मा, अफीमका विषप्रकोप आदिमे श्वासावरोधके निवारणार्थ व्यवहृत होती है। वे औपधिया तार्पिन तैल, लोहवान नौसादर आदि है।

२ अवसादक कफ निसारक—इस वर्गमे कफ वृद्धिका ह्रास कराने वाली या कासके वेगको शमन करने वाली विशेष औषधियां चुनी हुई हैं। इस वर्गकी औपधिया सार्वाङ्गिक रक्त सचालनका अवसादन करती है या श्वासकेन्द्रकी उग्रताका शमन कराती हैं या केन्द्राभिमुखी (Afferent) उत्तेजनाका ह्रास कराती है। इसमे निम्नलिखित ३ प्रकार होते हैं।

अ हृल्लासकर कफनि सारक—(Nauseant expectorants) आशुकारी प्रदाह या क्षोभको शमन करानेके साथ श्वासनलिकामे सरक्षक कफका स्राव करानेवाली औपधियाँ, जो श्लैष्मिक कलापर साक्षात् क्षोभ नही लाती (पहिले प्रतिफलित कफनि.सारकमे दर्शायी है) इस वर्गको प्रदाहहर कफनि सारक (Antiphlogistic expectorants) संज्ञा भी दी है। इस वर्गमे टार्टर इमेटिक, अफीमक्षार तथा वचा आदि वामक औषधियाँ हैं। इनके अतिरिक्त स्निग्धकारक औषधियोमे गोद, ग्लिसरीन, लेसवा, मुलहठी आदि हैं।

आ लावणिक कफनि सारक—(Saline expectorants) लेसदार मोटे कफको द्रवीभूत, करके निकालने वाली औपधियां—इस वर्गमे पोटास आयोडाइड, नौसादर, लवण, क्षार, सोडा, पोटास आदि है।

इ. शूलघ्न कफनि सारक—(Sedative expectorants) यह कासवृद्धिकी प्रतिफलित क्रियाकी नियन्त्रणकारी हैं। इस उपवर्गमे विशेषत कृची बूटी धतूरा, अफीम और अनेक क्षार हैं। ये स्रावका ह्रास कराते हैं। इस हेतुसे जब अत्यधिक स्राव होता हो, तब इन औपधियोका उपयोग नही होता।

वक्तव्य -इन अफीम आदि औपधियोंमे कफ शोषक (Anti expectorants) गुण रहा है। इस गुणके लिये ये वहुधा व्यवहृत नही होती।

क्वचित् राजयक्ष्मामें शान्त निद्रा लानेके लिये प्रयोजित होती है। इसका वर्णन कफनि:सारकके आगे किया जायगा।

जब अत्यन्त त्रासदायक शुष्क कास उपस्थित होती है, कफ नही गिरता अति त्रास होता है, तब स्निग्धकारक औषधिया दी जाती है; इनके अतिरिक्त प्रवालपिष्टी, मुक्तापिष्टी, वंशलोचन, अमृतासत्व, सितोपलादि (घृतमधुसह), सेलखड़ी, कत्था, मुलहठी सत्व, बबूल छालका क्वाथ आदि सौम्य शामक औषधिया भी दी जाती हैं। ये सब निर्भयता पूर्वक उपयोगमे ली जाती है।

श्वासोच्छ्वासके वातनाड़ी मूलकी क्रियाको अवसादन करनेवाली औषधियां प्रतिफलित कासके उपशमनार्थ भी प्रयोजित होती है। फुफ्फुस, आमाशय, यकृत्, प्लीहा, फुफ्फुसावरण, बृहद् श्वासनलिका, स्वरयन्त्र, नासिका ग्रसनिका और अन्ननलिकामेसे किसीको उग्रताकी प्राप्ति होनेपर कास प्रारम्भ होती है। इस कासमे बहुधा कफ नही निकलता ऐसे समयपर अवसादक कफनि.सारक औषधियोके अतिरिक्त मुखमे रखकर चूसनेवाली शामक औषधियां भी दी जाती है।

३ आक्षेपहर कफनि सारक—यद्यपि इस उपवर्गकी औषधिया सच्ची कफनि:सारक क्रिया नही करती। ये कफका स्राव नही बढाती और न चिपचिपेपनको कम कराती है। ये श्वासनलिकाकी श्लैष्मिक कलाको अवसन्न कर, कफको बाहर निकालनेमे सहायता देती है। ये श्वासनलिकाके चिरकारीप्रदाह और तमक श्वासमे अधिक उपयोगी है। सूची बूटी, धतूरा, लोबेलिया, सोरा, सोम (Ephedrine) एड्रिनलीन आदि।

कफशोषक (एन्टिएक्सपेक्टोरन्ट्स Ahti-expcctorants) इस प्रकार की ओषधियो द्वारा श्लेष्मके जलीय अशका परिमाण कम होता है। इस हेतुसे श्वासनलीमे स्रावित रस शुष्क हो जाता है। सब प्रकारके तेजाव, अफीम, अनारदाने और अम्ल रस प्रधान औषधियां इत्यादि।

क्षार सेवन करने पर कफ अपेक्षा कृत तरल हो जाता है; और कफके परिमाणकी वृद्धि होती है। परन्तु अम्ल रस प्रधान औषधियोके सेवनसे कफकी तरलताका ह्रास होता है। इस हेतुसे कफको बाहर निकालनेमे अधिक कष्ट होता है। एवं कासके वेगकी वृद्धि होती है।

अम्ल रस—अम्ल रस या सिरकाका सेवन करनेपर कर्णमूलिका ग्रन्थियो (Parotid glands) मेसे लालास्त्रावकी वृद्धि होती है। एव हन्वधरिया ग्रन्थियो (Submaxillary glands) मेसे भी लाला रस निकलता है। इस हेतुसे ज्वर रोगमे पिपासा शमनार्थ अम्ल पदार्थ (आलुबुखारा आदि) प्रयोजित होते हैं। इन पदार्थोसे मुँह और तालु आदिमे लाला रसने आर्द्रता रहती है।

यदि किसी प्रकारके खट्टे रसको क्षारके साथ मिला दिया जाय, तो उसका क्षारत्व गुण नष्ट होजाता है। एवं उन दोनोके संयोगसे लवणोत्पत्ति होती है।

अम्ल रस दाँतपर लगानेपर दन्तहर्ष हो जाता है। अधिक अम्लता दाँतोको लगती रहनेपर दाँत क्षय ग्रस्त हो जाते है।

तेजाव—डाक्टरीमे तेजावके दो प्रकार है-उद्भिज (वनौषधिजन्य) और पार्थिक (खनिज)। इनमे खनिज तेजाव (गन्धक, नमक, नीलाथोथा, फास्फरस आदिका तेजाव) उद्भिज तेजावोंकी अपेक्षा अधिक उग्र है।

खनिज तेजाव क्षारनाशक, शीतल, संकोचक और बलकारक है। ये अधिक दिनो तक सेवन करते रहनेमे पचनक्रियाका ह्रास कराते और शरीरको दुर्बल बनाते हैं।

उद्भिज तेजाव (जम्भीर, नीबू, इमली, द्राक्षम्ल, ईख, लोवान आदि का) कम उग्र है। ये तेजाव शीतलता लानेके लिये प्रयोजित होते है।

ये रक्तपित्त (Scurvy) रोगमे विशेष लाभदायक हैं। इस हेतुसे इन उद्भिज तेजावोको रक्तपित्तघ्न (Antiscorbutic) संज्ञा दी है।

तेजावका सेवन करनेपर लालारस और आन्त्रिक रस उत्तेजित होते हैं; तथा पित्ताशयमेसे पित्तस्राव अधिक होता है। सामान्यतः जिन ग्रन्थियो का रस क्षारगुण विशिष्ट है, वे सभी तेजावके सेवनसे उत्तेजित होती है।

यदि अम्ल रस या तेजावका सेवन भोजनके पहिले किया जायगा, तो आमाशयिक रसस्राव कम मात्रामे होता है। यदि आमाशयिक रसमे अम्लता और उग्रताकी वृद्धि हो गई हो, तो भोजनके पहिले तेजावके सेवनसे लाभ होता है।

दीर्घकाल तक तेजावका सेवन करते रहनेसे आमाशयिक रसस्राव कम हो जाता है। एव आमाशयकी श्लैष्मिक कलामे प्रतिश्यायावस्था उपस्थित होती है। इसलिये अधिक काल तक सेवन करना हो, तो इसे बीच-बीचमे कुछ दिनोंके लिये बन्द करते रहना चाहिये।

तेजावका सेवन अधिक मात्रामे करनेपर आमाशय और अन्त्रमे प्रबल दाह, ज्वाला, अतिसार, वमन अतिशय निर्बलता आदि लक्षण उपस्थित होते है। फिर मूर्छा या बेहोशी होकर मृत्यु हो जाती है।

मूत्रमे क्षारकी वृद्धि होनेपर उसके संशोधनार्थ कडुवी औषधियोके साथ तेजावका सेवन कराया जाता है।

चिरकारी यकृत् व्याधिमे शोरा नमकका तेजाब सेवन करनेसे वह दोषघ्न और पित्तनिःसारक गुण दर्शाता है। इस तरह मोतीझरा आदि पित्तप्रकोप ज्वरोंमे तेजावसे अच्छा लाभ पहुँचता है।

तेजावको जिस स्थानपर प्रयोजित किया है, उस स्थानके घटकोका

भेदन करके फैलता है। फिर घटकोंमेसे जलीय अंशका शोपणकर उनको नष्टकर देता है। इस तरह स्थानिक क्रिया द्वारा जो विधान ध्वंस प्राप्त होता है, उसके चारों ओर प्रदाहकी उत्पत्ति होती है; और दग्ध स्थान पृथक् हो जाता है। यदि तेजाबके स्थानपर क्षीण द्रावकका प्रयोग किया जाय, तो उसके बल अनुसार त्वचामे उग्रता उत्पन्न होती है, और समीप की रक्त प्रणालियाँ आकुञ्चित हो जाती है।

स्थानिक कफस्रावी (Topical exlectorants) कतिपय कफनि:-सारक औषधियोका धूम्रपान कराया जाता है; या उनकी धूप अथवा वाष्प श्वास द्वारा ग्रहण कराई जाती है, ऐसी सब औषधियोको स्थानिक कफ-नि:सारक औषधि कहते है। इनमे दो विभाग है—उत्तेजक और शामक, मनःसिल, कोलटार (Tar), लोबानका पुष्प आदि उत्तेजक है। एव धतूरा तथा उष्णजलकी वाष्प आदि अवसादक है, इस श्रेणीकी औषधियो द्वारा कासकी उग्रताका ह्रास होता है, जिससे कफ सरलतापूर्वक बाहर निकल जाता है।

तार्पिन तैल की वाष्प (वायुमिश्रित) श्वास मार्गसे ग्रहण करनेपर श्लेष्मानिःसरण क्रिया सरलतापूर्वक होती है। अतः कासरोगमे कफ अत्य-धिक बढ जानेपर यह क्रिया उपकारक मानी गई है।

सूचना—विरेचक और मूत्रल औषधियो द्वारा कफनि.सरणमें व्याघात पहुँचता है। एवं अफीम और शीतलताका सेवन भी कफस्राव करानेमे प्रतिबन्ध करता है। वमनकारक औषधि और उष्ण जल कफनिःसरण क्रिया उत्तम प्रकारसे कराते है।

जीर्णकास रोगमे श्वास प्रणालिकाओकी श्लैष्मिककलामे रक्तसंचय होता रहता है। फुपफुसोमे रक्तसचालन क्रिया मन्द हो, और शिराओमे रक्तकी गति स्थगित हो, तो हृदयपौष्टिक औषधियाँ—रससिन्दूर, लोहभस्म आदिको कफघ्न औषधियोके साथ मिला देनेसे हृदय उत्तेजित होता है, जिससे फुपफुसस्थ विकृति रक्तसचालन क्रिया प्रकृतिस्थ बनती है और कफ भी सरलतापूर्वक बाहर निकल जाता है। इस तरह हृदयकी क्रिया द्वारा परम्परा लाभ पहुँच जाता है।

कर्पूर—उत्तेजक, आक्षेपनिवारक, वायुनाशक और कफनि.सारक है। कपूरमे वातहर गुणके साथ गलन विपनाशक (Antiseptics) गुण भी है। अत: यह अतिसार और विसूचिकामें दिया जाता है। इनके अतिरिक्त श्वास यन्त्रकी श्लैष्मिक कलामेसे प्रसेकज रसस्राव (Catarrh of the Respir-atory) होने पर कपूरका धूप विशेष उपकार दर्शाता है। वृद्ध मनुष्य आदि को चिरकारी कास होनेपर कफघ्न औषधिके साथ कपूर मिला दिया जाता है। स्थानिक वातरोगमे कपूरको तैलमे मिलाकर मालिशकी जाती है।

दांतोमें कृमि होने पर कपूर-अर्कका फोहा रखा जाता है।

जननेन्द्रियके समीप ब्युची होने पर कपूर और जसदक्षार मिश्रित मलहम लगाया जाता है। हिस्टीरिया, नष्टार्त्तव, कष्टार्तव और इतर आक्षेप युक्त रोगोमे कपूर विशेष लाभदायक है। स्त्रियोंके स्तनका दूध सुखानेमे कपूर महौषधि मानी गई है।

न्युमोनिया रोगमे कपूरको चार गुने जैतूनके जैतैलमे गलाकर ३० बूंद मात्राका इञ्जेक्शन करनेसे हृदयको उत्तेजना मिलती है।

सामान्य मंदज्वरमें दुग्धके भीतर आंठवा हिस्सा कपूरको गलाकर १-१ ड्राम मात्रा ३-३ घण्टेपर देते रहनेसे उत्तेजना पहुँचकर ज्वरकी निवृत्ति हो जाती है। सामान्यत: कपूरकी मात्रा १ से ३ रत्ती तक है।

कंटकारी (कटेली) कफनि सारक, मूत्रल, तिक्त, बल्य और वातहर है। श्वास, कास, वक्षमे वेदना आदि कफनि:सरणार्थ व्यवहृत होती है। मूत्रमे स्वल्पता, अश्मरी और कोष्ठबद्धतामें हितकारक है। विविध स्फोटको पर इसके बीजोंका लेप करनेसे सत्वर पाक होकर पूयोत्पत्ति हो जाती है। मक्खनमे मिलाकर फलोका धुआं देनेसे दांतोके कृमि मरकर गिर जाते है। इसका तैल बनाकर चर्म रोगोमें मालिसकी जाती है।

अडूसा कफनि सारक, आक्षेपघ्न और रक्तपित्तनाशक है। इस हेतुसे कालीखाँसी, उर:क्षत, यक्ष्मा, ज्वरसहित कास और आक्षेपयुक्त तमक-श्वास आदिमें लाभदायक है। एवं रक्तपित्तके लिये तो यह अत्युत्तम औषधि ही है।

धतूरा अवसादक कफनि:सारक, मादक और वेदनाहर है। संज्ञावाही और चेष्टावाहि नाड़ियो पर अधिक प्रभाव नही पहुचता। परन्तु इड़ापिंगला नाडी पथ (Sympathetic Nerve System) पर अच्छा गुण पहुंचता है। अधिक मात्रामे सेवन करने पर हृदय-कार्य अनियमित होजाता है। एवं रोगी भयंकर प्रलाप करने लगता।

धतूराके रसका अजन करनेपर कनीनिका विस्तृत होती है।

यकृत शूल, स्वरयंत्रमे कफसंग्रह, नृत्यवात (Chorea), गद्‌गद्‌ वाक् आदि विकारोमे धतूरा आक्षेपनिवारक रूपसे व्यवहृत होता है।

रज कृच्छ, गृध्रसी आदि विविध वातरोगोमे यह लाभदायक है। कामोन्माद और अपघातकी इच्छाके लक्षणयुक्त सूतिकाके उन्माद रोगमे यह फलप्रद औषधि है। तमकश्वासका दौरा होनेपर इसका धूम्रपान कराया जाता है। धतूराका रस और बीज त्वचा रोगमे उपयोगी है, एव दतशूलमे भी हितकर है। धतूराके सेवनसे श्लेष्मिक कलामेसे रसस्राव नियमित है।

मुलहठी मधुर, किञ्चित्, तिक्त, गुरु और स्निग्ध है। विपाक मधुर और वीर्य शीतल है। पित्तशामक, वातशामक और कफवर्द्धक है। कफवर्द्धक होनेसे जब सरलतासे कफस्राव नही होता, तब कफका पतला रस

उत्पन्न करा दूषित कफको पतला बनाकर बाहर निकालती है। एवं श्वास प्रणालिकाकी श्लैष्मिक कलाके उपतापको भी शमन करती है।

मुलहठीमे कण्ठ्य गुण भी रहा है। इस हेतुसे पित्तप्रकोपसे स्वरयन्त्रको भी हानि पहुंची हो, आवाज बैठ गयी हो या शुष्क कास आती रहती हो तो यह पित्तप्रकोप दूरकर कासादिका शमन करती है। स्वरयन्त्र या श्वास नलिकामें कफ भरा हो और न निकलता हो, तो मुलहठीके टुकड़ेको मुंह मे रखकर रस चूंसते रहने पर पहिले स्नेहन असर पहुँचाकर, फिर वमनोपग गुण द्वारा कफको बाहर निकाल देती है।

रक्त या मांसधातुने उष्णता हो तो उसे यह शमन करती है। मूत्रमें लाल रंग आ गया हो तो उसे श्वेत बनाती है। शीतवीर्य होनेसे रक्तस्राव होता रहता हो, तो उसे दूर करती है। स्थानिक प्रयोगमे व्रण दुष्टिशामक होनेसे व्रणरोपणका कार्य करती है।

इनके अतिरिक्त यह वर्ण सुधारक, नेत्रके लिये हितकर और धातुपौष्टिक (वयःस्थापन) और जीवनप्रद है।

इनके अतिरिक्त कासहर और श्वासहर गुण विचार आगे नं० ८७ और ८८ मे किया जायगा।

(११) लेखन

कृशताकारक शोषक एब्सोर्बेन्ट् स-A bsorbents

धातून् मलान् वा देहस्य विशोष्योल्लेखयेच्च यत्।
लेखनं तद्यथा क्षौद्रं नीरमुष्णं वचा यवाः॥

जो द्रव्य देहके रस धातुओ और मलोंको सुखाकर निकाल देता है तथा शरीरको पतला बनाता है, वह लेखन कहलाता है। जैसे—शहद, उष्ण जल, वचा और जौ आदि।

लेखनीय कषाय—चरक संहितामें नागरमोथा, कूठ, हल्दी, दारुहल्दी, वच अतीस, कुटकी, चित्रकमूल, चिरविल्व (करंज) और श्वेतवचा ये १० औषधियां लेखनीय कही गई हैं।

इनके अतिरिक्त रौप्यभस्म, शिलासिंदूर, रसकपूर, मुर्दासङ्ग, कासीस, ताम्रभस्म, शिलाजीत, शहद, अनन्तमूल, वासा, गोमूत्र, नागरमोथा, कूठ तथा सालसारादि गण (आगे कुष्ठघ्न गुणके साथ दर्शाया जायगा) की औषधियोमे भी लेखन गुण अवस्थित है। सुश्रुत संहितामे क्षारको भी लेखन लिखा है।

लेखन द्रव्य अग्नि-वातभूयिष्ठ होते हैं एवं ये कटु, तिक्त और कषाय रसयुक्त, उष्ण, लघु और रूक्ष होते हैं। ये औषधिया मल, दोष, धातु और स्निग्धताका शोषण करती है। जिससे रूक्ष, खर, चल और लघु गुणकी वृद्धि होती तथा देह कृश होती है।

लेखन द्रव्योका उपयोग विशेषत मेद और कफको सुखाकर निकाल देनेके लिये होता है। उदरमे जहरी वायु (Gas) को उत्पत्ति होती हो, तो भी वे उसे शोषण कर लेते है।

उदरमें आम-मेद आदि दोष संचित हो जाने पर लेखन बस्ति दी जाती है। त्रिफला क्वाथ, गोमूत्र, यवक्षार, शहद आदि मिश्रित बस्ति लेखन वस्ति कहलाती है। इस बस्तिसे मेद, कफ, आम, आदि दोषोमे जो सूक्ष्म मल हो, वह जल जाता और स्थूल मल-भाग बाहर निकल जाता है।

जव नेत्रमे मल सचित होता है, तब त्रिफला क्वाथ, गोमूत्र, शहद, क्षार, कालीमिर्च आदि औषधियोंका अञ्जन किया जाता है। अञ्जन विशेषत. क्षार, तीक्ष्ण गुण तथा कसैले और खट्टे रस वाला होता है। यह अञ्जन वर्त्म (पलक), शिराकोष, कान और शृङ्गाटक (कपाल की हड्डी) मे रहनेवाले दोषोंको सुखाकर मुँह, नाक और नेत्रसे बाहर निकाल देता है। इनके अतिरिक्त नीलाथोथा, सैंधानमक मैनशिल, शंखनाभि आदि औपधिया भी लेखन अञ्जनमे व्यवहृत होती है।

स्थानिक व्रणशोथ आदि विकार होनेपर स्थानिक लेप, सेक, मलहम आदि प्रयोग किये जाते है। दोषघ्न लेप, दशांग लेप, बीजपूरःजटादि लेप, कंकुष्ठादि लेप, मधुकादि लेप, व्रणामृत मलहम आदि औषधियां 'रसतन्त्र-सार व सिद्धप्रयोगसंग्रह' मे लिखी हुई हैं।

उपर्युक्त लेखन गुणके अतिरिक्त शल्यतन्त्रमे व्रणके अन्दर बढे हुए कठिन और उभरे हुए मांस आदिको शस्त्रसे छीलनेको भी लेखन कहा गया है।

(१२) संशमन

न शोधयति न द्वेष्टि समान् दोषांस्तथोद्धतान् ।
समीकरोति विषमाञ्छमनं तद्यथाऽमृता ॥

जो औपधि सम अवस्थामे रहे हुए दोपोका वमन विरेचन आदि द्वारा शोधन नही करती (बाहर नही निकालती, एव उनकी वृद्धि भी नही कराती, न उनको प्रकुपित करती है, किन्तु प्रवृद्ध विपम दोषोको उनके साथ समिलित होकर शरीरके भीतर ही शान्त कर देती तथा साम्यावस्था मे ला देती है, उसे सशमन कहते है। जैसा अमृता।

ऊपर जो दोप शब्द कहा गया है वह वातादि दोप तथा उनसे उत्पन्न व्याधिया, इन दोनोके वाचक है। वात आदि विकृतिके लिये संशमनका अर्थ ऊपर बतलाया गया है। व्याधि पक्षमे उत्पन्न व्याधिको शान्त करना और अनुत्पन्न व्याधिकी उत्पत्तिको रोक देना, ऐसा अर्थ लेना चाहिये।

अष्टाङ्ग हृदयकारने इसके ७ भेद किये हैं। पाचन, दीपन, अन्नत्याग, जलत्याग, व्यायाम, सूर्यका ताप और वायु। पाचन और दीपनका विचार

आगे पृथक् गुणधर्म रूपसे किया जायगा। अन्न-जलत्याग अर्थात् उपवास, व्यायाम आदिके युक्ति पूर्वक सेवनसे भी प्रवृद्ध दोषोंका शमन हो जाता है।

सुश्रुत संहिता और अष्टाङ्ग संग्रहकारने संशमनके वातसंशमन, पित्त-संशमन और कफसंशमन, ऐसे ३ विभाग किये है। उसके अनुरूप अविकृत वातआदि धातुओके गुण, धातुक्षय लक्षण, धातुप्रकोप-लक्षण तथा शामक उपाय, ये सब चिकित्सातत्वप्रदीप प्रथम खण्डके पृष्ठ २५ से ३२ तक लिखे है। इनके अतिरिक्त रस, रक्त आदि धातुओके वृद्धि क्षय और उनके मानस लक्षण भी दर्शाये हैं।

सुश्रुत संहितामे संशमन द्रव्योको आकाश गुणभूयिष्ठ कहा है, किन्तु रसवैशेषिक सूत्रके भाष्याकारने इनको वायु, जल और पृथ्वी, प्रधान कहा है।

शामक औषधियां—गिलोय, पाढल, श्योनाक-छाल, आंवला, शिला-जीत आदि।

गुडूचि (गिलोय) का उपयोग प्राचीन ग्रन्थकारोने अत्यधिक किया है। इसकी महिमा भी बहुत कुछ गाई हुई है। इसका संक्षिप्त वर्णन पित्तसंशमनमे किया है। गिलोय लघु (मतान्तरमे गुरु), तिक्त, कषाय, उष्ण वीर्य और स्वादुपाकी है। त्रिदोषज विकार (वातज, पित्तज, कफज), रक्तार्श, कुष्ठ, ज्वर, प्रमेह, पाण्डु, भ्रम, दाह, तृषा, श्वास, कास, कामला, कुष्ठ, वातरक्त, कृमि, वमन और हृद्रोग आदिको दूर करती है। इसमे संग्राही, बल्य, अग्निप्रदीपक और रसायन गुण भी अवस्थित है।

प्राचीन आचार्योंने गिलोयको जीर्णज्वर, पित्तज वमन, स्तन्य-विकृति, पित्तप्रधान वातरक्त, श्लीपद, कुष्ठ, पाण्डु, हलीमक, कामला, प्लीहोदर, हृदयगत वात, प्रमेह और वातप्रधान रक्तप्रदर आदि रोगोमे प्रयोजित किया है। एवं रसायन रूपसे भी इसका उपयोग किया जाता है।

नव्यमतानुसार गिलोय, कलंभा (Columba) की प्रतिनिधि औषधि है। गिलोय पाचक, तिक्त, पौष्टिक दोषघ्न, वाजीकरण, नियत ज्वरोत्पत्ति रोधक (Antiperiodic) और स्निग्ध है। यह प्लीहावृद्धिनाशक और ज्वरघ्न होनेसे जीर्ण ज्वर और उससे उत्पन्न निर्बलता दूर करनेसे अति हितकर औषधि है, दोषघ्न गुण होनेसे आमवात, उपदंशकी द्वितीयावस्था, कुष्ठ, रक्त-विकार और कामला रोगमे उपयोगमे आती है। मूत्रल और स्निग्ध गुणयुक्त होनेसे मूत्रकृच्छ्र, मूत्राशय प्रदाहजन्य बहुमूत्र (बूंद-बूंद पेशाब आना) मे अति हितकर मानी गई है। एवं विविध प्रमेह रोगोमे इनके स्वरसका उपयोग करनेसे लाभ पहुँच जाता है।

गिलोयमेसे निकाला हुआ सत्व, पित्त-प्रधान मंदाग्नि, पित्तातिसार, दाह, भ्रम, तृषा, वमन, निर्बलता, धातुक्षय और मूत्ररोग आदिमें अच्छा गुणकारी है।

(१३) पुरीष वर्णकारक

पुरीष विरजनीय अर्थात् मलका स्वाभाविक वर्ण लानेवाली औषधियां जामुनकी छाल, कौच, मुलहठी, मोचरस, श्रीवेष्टक (गन्धाविरोजा), दग्ध मृत्तिका, विदारीकन्द, नीलोफर, भूसारहित तिल, ये १० मलको स्वाभामिक वर्णकारक बनाती है।

जब यकृतका पित्तस्राव कम होनेसे मल सफेद हो जाता है, तब पित्तस्राव वर्द्धक औषधियोंका सेवन करानेसे मलका वर्ण पीला हो जाता है। इसका विवेचन पहिले पित्तस्राव वर्द्धक औषधियोमें किया जा चुका है।

यकृत् निर्बल हो जानेपर या पित्ताशय या पित्तनलिकाके पित्तस्रावमे प्रतिबन्ध होनेपर अन्त्रमे पित्त नही जाता, जिससे मलका वर्ण सफेद हो जाता है, अत उसमे दुर्गन्ध आने लगती है और छोटे छोटे कृमियोंकी उत्पत्ति भी हो जाती है। ऐसे समयपर पित्त विरोधी भोजन—घृत, शक्कर आदिका सेवन जितना हो सके उतना कम कर देना चाहिए और पित्तस्राववर्द्धक द्रव्य ताम्र भस्म, पारद, अतीस, चित्रक मूल, नौसादर आदिका सेवन करना चाहिये।

(१४) सारक–अनुलोमन

अनुलोमनो वातमलप्रवर्तन:। (डल्हणाचार्य)

कृत्वा पाकं मलानां यद्भित्वा बन्धमधो नयेत्।
तच्चानुलोमनं ज्ञेय यथा प्रोक्ता हरीतकी ॥ (शारंगधर संहिता)

जो द्रव्य वायु और मलका प्रवर्तन करे, उसे अनुलोमन, सर और सारक कहते है।

जो द्रव्य मलो और दोषोको पकाकर तथा उनके विबन्धों (वायु और मलमूत्रकी अप्रवृत्ति) का भेदनकर अधोमार्ग द्वारा बाहर निकालता है, उसे अनुलोमन कहते हैं। जैसे हरड़।

इस प्रकारकी औषधियाँ अन्त्रकी पुर:सरण क्रियाको बढ़ाती और मृदु उत्तेजना देती हैं। इनको डाक्टरीमे मृदु विरेचन (Laxatives or Aperients) संज्ञा दी है। इसका विवेचन आगे 'विरेचन' प्रकरणमें किया जायगा।

अनुलोमन औषधिया—गुलाबके फूल, आंवला, हरड़, भागरा, कालमेघ गंधक, चदलोई, उतरण, मुलहठी, मुर्दासंग, वरना, त्रायमाण, घृत, मक्खन, गोदुग्ध, मुनक्का, एलुआ, विविध क्षार, वच, वायविडङ्ग, अंजीर, बादाम, आलुबुखारा, इमली आदि, मधुराम्ल फल विल्वफल, पलाश बीज, शहद, गुड़ आदि।

(१५) स्रंसन

पक्तव्यं यदपक्त्वैव श्लिष्टं कोष्ठे मलादिकम्।

नयत्यधः स्रंसन तद्यथा स्यात् कृतमालकः ।।

जो द्रव्य कोष्ठके भीतर चिपके हुए पच्यमान मल आदिको विना पकाये ही बाहर निकाल देते है, उन्हें स्रंसन कहते है। उदाहरणार्थ अमलतासकी फलीका गूदा।

चरक संहिताकारने तथा टीकाकार योगीन्द्रनाथजीने विरेचन द्रव्यके लिये ही स्रंसन शब्दका प्रयोग किया है।

इस प्रकारकी औषधियोमे वहुतसी पिच्छिल गुण युक्त है ये अन्त्रमे अधिक उत्तेजना नही पहुँचाती। जिससे इन औषधियोका उपयोग पक्व-ज्वरमे मल शुद्धिके लिये निर्भयतापूर्वक होता है। बच्चोके लिये ही ये व्यवहृत होती है। डाक्टरी मतानुसार इनको स्निग्ध या सौम्य विरेचन (Lubricant Laxatives or Simple Purgatives) कह सकते है।

औषधिया -अमलतास, पेराफिन, एरंड तैल, सनाय, गोकर्णी (कोयल) गुलकंद, आंवलेका मुरब्बा और एलुआ आदि।

अमलतास—इसकी फलीके गर्भका उपयोग औषध रूपसे होता है। यह पित्तशामक और सारक है और यह कफ और पके आमको भी मलके साथ फेंक देता है। इस हेतुसे ज्वरमे मलावरोध होनेपर इसका प्रयोग होता है। आम-पाचक गुण न होनेसे आम-ज्वरमे इसे नही देना चाहिये। यह अन्त्रके भीतर दाह नही करता। एव बलहानि भी नही करता है। अतः यह अति सौम्य विरेचन है।

इसका शोधन कार्य, कफधातु और मासधातु (यकृत् आदि) के भीतर भी होता है। इस लिये यह यकृत् दोप मुक्त होता है।

कफवृद्धि, रक्तपित्त, शूल, उदावर्त, गौण-कुष्ठ, त्वचाविका, आमवात, हृदयशूल आदिमे पित्तशमन, रक्तप्रसादन, कफशमन, आमनाश, और कीटाणु विषको नष्ट करनेके लिये इसका प्रयोग किया जाता है।

(१६) भेदन।

मलादिकमवद्धं च वद्धं वा पिण्डितं मलैः।
भित्वाऽधः पातयति तद्भेदनं कटुकी यथा ।।

जो द्रव्य अवद्ध-प्रवाही मल और दोषों, दोषोके द्वारा जमे हुए या गांठ-दार बने हुए मलोका भेदनकर अधोमार्गसे बाहर निकालता है, उसे भेदन कहते हैं, जैसे कुटकी।

स्रंशन और सारक औषधियोकी अपेक्षा भेदनकी क्रिया अधिक प्रवल होती है। इस वर्गकी औषधिया अन्त्रमे क्षोभ कराती है। अनेक औषधियां श्लैष्मिक स्राव बढाती है और कई यकृत्पित्तका स्राव भी अधिकतर कराती हैं। परिणाममे रस, रक्त आदिमेसे अधिक जलाश अन्त्रके भीतर मिश्रित हो जानेपर भेदन क्रिया होती है।

कुटकी—स्वादमें तिक्त, विपाकमे कटु, शीतल, वीर्य एवं रूक्ष और लघु है। यह आवला और अमलतासकी अपेक्षा विशेष बलवान विरेचक है। यकृत्के पित्त और अन्त्रस्थ मलको सत्वर फेंक देती है। साथमे यकृत्, स्तन्य और रक्तका शोधन भी करती है; दूषित कफको निकालकर कफ धातुको शुद्ध करती है, उष्णता, दाह और क्लेदका नाश करती है एवं तिक्त रस और कटु विपाकके कारणसे अग्निको प्रदीप्त करती है। रक्तपर इसकी क्रिया होनेसे परम्परागत मूत्रको भी लाभ पहुँचता है तथा मूत्र दुष्टि हो तो उसकी निवृत्ति हो जाती है।

यह ज्वर (पित्तज्वर, कफज्वर, विषमज्वर), कफप्रकोपसह श्वास, व्रण विकार, त्वचारोग, गौण कुष्ठ, शोथ, पार्श्वशोथ और पित्तप्रकोपज विविध विकारोको शमन करनेके लिये व्यवहृत होती है।

भेदनीय गण—चरक सहितामे निसोत, आक, एरण्डके बीज, अग्निमुखी (कलिहारी), चित्रा (दन्तीमूल) चित्रकमूल, करंज, शंखिनी (यवत्तिका), कुटकी और सत्यानाशी ये १० औषधियाँ कही है।

श्यामादि गण—श्यामा (काली निसोथ) महाश्यामा (विधारा), सफेद निसोथ, दन्तीमूल, शंखिनी, (यवत्तिका), तिल्वक (लोध्र भेद), कपिला, बकायन, सुपारी, पुत्रश्रेणी (मूसाकानी), इन्द्रायण, अमलतास, करंजुवा, कटकरंजा, गिलोय, सातला, थूहर, छगलान्त्री (विधाराभेद) सुधा (थूहर), सुवर्णक्षीरी (चोक) इन १९ औषधियोंको सुश्रुत संहितामे श्यामादि गण कहा गया है। यह गण गुल्म, विष दोष, अनाह, उदर रोग और उदावर्त का नाशक और विशेषत. मल भेदक है।

इनके अतिरिक्त कुटकी, सत्यानाशी, रेवन्दचीनी, कडुवी तुम्बी, कटेली की जड, आक छाल, एरण्ड आदिमें भेदन गुण अवस्थित है।

चरक संहितामे घियाकद्दु, चिर्भटी (काकड़ा-फूट), खरबूजा, अम्लवेतस् आदिको भी भेदन गुण-युक्त कहा गया है।

भेदनका डाक्टरी विवेचन विरेचन प्रकरणमे देखे।

(१७) विरेचन

केथर्टिक्स-पर्गेटिव्स-एपेरिएण्ट्स-इवाक्युएण्ट्स ।

Cathartics-Purgatives-Aperients-Evacuants ।

विपक्वं यदपक्वं वा मलादि द्रवतां नयेत् ।
रेचयत्यपि तज्ज्ञेयं रेचनं त्रिवृता यथा ॥

जो द्रव्य पक्व और अपक्व मल। आम आदिको द्रवीभूत करके अधोमार्गमे बाहर निकाल देता है,वह रेचन या विरेचन कहलाता है,जैसे निशोत।

चरक संहितामें लिखा है कि, जो द्रव्य दोषोंको हरणकर ऊर्ध्व भाग (मुख) से निकालता है। उसे वमन और जो अधो भाग (गुदा) से निका-

लता है उसे विरेचन तथा उभय भागसे निकालने वालेको भी विरेचन (शोधन Evacuants) संज्ञा दी है। ये सब द्रव्य उष्ण, तीक्ष्ण, सूक्ष्म, व्यवायी, विकाशी आदि गुणयुक्त होनेसे अपने वीर्यसे हृदय (मस्तिष्क स्थित केन्द्रस्थान) को प्राप्त होकर धमनी (वातनाडियो) का अनुसरण करके फिर स्थूल और सूक्ष्म स्रोतोमेसे देहमे स्थित संपूर्ण दोष संघात (मलसमूह) को आग्नेय गुणके हेतुसे पिघलाती और तीक्ष्ण गुणके हेतुसे भेदन करती है। तब वह मल छिन्न-भिन्न और पतला होकर इधर-उधर फिरता है।

पहिले स्नेहन द्रव्यसे देहको स्निग्ध कर लिया जाता है, जिससे मल, चिकने घडेमे शहदके समान कही भी इधर उधर न चिपककर या रुककर सूक्ष्म मार्गोमे सचार करने वाला होनेसे आमाशयमे आ जाता है (जिन द्रव्योमे वमन करानेका गुण है, यह कथन उनके लिये ही है), पश्चात् उक्त द्रव्य उदान वायुसे प्रेरित होकर अपने अग्निवाय्वात्मक वीर्यसे (वमन द्रव्योमे अग्नि वायुकी प्रधानता होनेसे) दोषको ऊपरकी ओर उछालकर मुँहसे निकाल देता है। इसके अतिरिक्त जिन द्रव्योमे सलिल पृथिव्यात्मक वीर्य है, उनमे अधोभाग प्रभावी गुण है अत वे मलको नीचेकी ओर प्रवृत्ति करते है, फिर अपान वायु द्वारा प्ररित होनेपर पच्यमान दोषोको नीचेकी ओरसे बाहर निकाल देते है। जिन द्रव्योंमे दोनो प्रकारके वीर्य अवस्थित है, वे दोनो ओर गति करके मुख और गुदा मार्गसे मलोको बाहर निकालते है।

सुश्रुत संहिताकार भी कहते हैं कि, विरेचन द्रव्य स्थिर, गुरु, पृथिवी और जल गुण भूयिष्ट होनेसे पच्यमान मलोको अधो मार्गसे बाहर निकाल देते तथा वमन (वमनकारक) द्रव्य, वायु-अग्निकी प्रधानता वाले होनेसे अपक्व दोषोको ऊर्ध्व भागमे ले जाकर मुखसे बाहर निकाल देते है।

चरक सहिता कथित विरेचन औषधियाँ—सफेद और काली निसोत, त्रिफला (हरड़, बहेडा, आवला), दन्ती, यीलनी (काला दाना) सप्तला (सातला थूहरभेद), वच, कपोला, इन्द्रायन, क्षीरिणी (दूधी या चोक) उदकीर्यका (वृक्षकरंज), पीलू, अमलतास, मुनक्का, द्रवन्ती, (दन्तीभेद), नीचुल (समुदरफल), ये औषधिया पक्वाशयमे दोष होनेपर विरेचनार्थ दी जाती है।

चरक संहिता विमान स्थानमे कहे हुए विरेचन द्रव्य—काली निसोत, रक्त-मूलवाली निसोत, चतुरगुल (अमलतास), तिल्वक (लोध विशेष), महावृक्ष, (सेहुँड), सप्तला (सातला,शखिनी (कालमेघ या श्वेत अपराजिता), दन्ती (जमालगोटा), द्रवन्ती (बडी दन्ती), इनके दूध, मूल, छाल, पान, फूल और फलका उपयोग, योगके अनुसार करना चाहिये। इनका ही केवल

प्रयोग करे या निम्नानुसार द्रव्य संयोगकर लेवे। यदि द्रव्य मिलाना हो, तो निम्न कषाय आदि द्वारा निम्नलिखित विधानसे तैयार करके व्यवहृत करना चाहिये।

अजगन्धा (जगली तुलसी), अश्वगन्धा (असगन्ध), मेढासिंगी, क्षीरिणी (दूधी), नीलनी (कालादाना), क्लीतक (मुलहठी), इनमेसे जो मिले उनके कषायोके साथ या प्रकीर्या (पूतिकरंज), उदकीर्य (करज), मसूरविदला, श्यामलता (काली सारिवा); कपीला, वायविड़ङ्ग, गवाक्षी (इन्द्रायन), इनके कषायोके साथ या—

पीलू; पियाल (चिरौजी), मुनक्का, गंभारीफल, फालसा, बेर, अनार, आंवले, हरड़, वहेडा, श्वेत पुनर्नवा, लाल पुनर्नवा, विदारीगंध, (शालपर्णी या लघु पञ्चमूल अथवा दशमूल), इनके कषायोके साथ या—

सीधु, सुरा, सौवीर, तुषोदक, मैरेय, मेदक, मदिरा, मधु मधूलक (महुआ-मतान्तरमें मधूदक-शहदका जल), कांजी, कुवल (बड़े बेर), बेर, खजूर, झड़वेरीके वेर, इनसे तैयार किये हुए सीधुओं (गुड़की शराब) के साथ या दही, दहीका जल, अर्द्ध जलवाला मट्ठा, इनके साथ उपयोग करें।

गौ, भैस, वकरी, भेड़, इनके दूध या मूत्रोंसे संस्कार (भावना या पाक क्रिया) करके गोली, चूर्ण, आसव, लेह, स्नेह (घृत), कषाय, मांसरस, यूष, काम्बिक (अम्ल यूष), यवागू, खीर (या दूध) रूपमें या मोदक, अन्य भक्ष्य पदार्थ और विविध प्रयोग तैयार करके विरेचन देने योग्य अधिकारीको विरेचन देवे।

विरेचनोपग—चरक संहिता कथित विरेचन क्रियामें सहायक औषधियाँ मुनक्का, गंभारी, फालसा, हरड़, वहेडा, आवला, वड़े वेर, वेर और झड़वेर है।

चरक संहितामे ५० महाकषाय वतलाये हैं, उनमें भेदनीय कषाय कहा है, किन्तु उसका शार्ङ्गधाराचार्य कथित अनुलोमन, स्रंसन और विरेचन भेद नही किया। इसी तरह सुश्रुत सहिता और अष्टाङ्ग संग्रहमें भी उक्त विभागोको पृथक्-पृथक् नही दर्शाया गया। केवल वलभेदसे तीक्ष्ण मध्यम और मृदु प्रयोग करनेका विधान किया है।

सुश्रुत संहितामें चरक संहिता लिखित औषधियोके अतिरिक्त निम्न लिखित औषधियाँ भी कही है। छगलान्त्री (वृद्धदारु), सुवर्णक्षीरी (सत्यानाशी या रेवन्दचीनी), चित्रक, किणिही (कटभी), कुशा, कांस, तिल्वक (लोध्र), वकायन, पाटला, सुपारी, एरण्ड, आक और मालकागनी।

सुश्रुत संहिताकारने लिखा है कि, उक्त औषधियोंमेसे निसोत, दंती, द्रवन्ती; सातला, कालमेघ, मेढासिंगी, इन्द्रायण, वृद्धदारुक, सेहुँड, सुवर्णक्षीरी, चित्रक, किणिही, कुश और काश, इनकी मूल लेवे। तिल्वक, वकायन, पाटला, इनकी छाल लेवे। कपीला फूलोंके रजरूपसे उपयोगमें लिया

जाता है। सुपारी, हरड, बहेड़ा, आवला, नीलिनी (काला दाना), अमलतास, एरण्ड, इनका फल लेवे। पूतिकरज और आरग्वधके पत्र लेवे। आरग्वधकी फली लेनेका ही रिवाज है। पूतिकरजकी छालको चरक संहितामे प्रधान माना है। महावृक्ष (थूहर), सप्तवर्ण (सतौना), मालकांगनी (ज्योतिष्मती), इनका दूध विरेचनार्थ लेना चाहिये।

कोशतकी (तरोई), सप्तला (सातला), शखिनी, देवदाली, कारवेल्लिका (करेला, इनका स्वरस वमन-विरेचन कराता है।

उक्त मूल, छाल आदिमे उत्तम विरेचन द्रव्य भगवान् धन्वन्तरिजी ने निम्नानुसार दर्शाये है।

अरुणाभ त्रिवृन्मूल श्रेष्ठ मूल विरेचने.।
प्रधान तिल्वकस्त्वक्षु फलेष्वपि हरीतकी॥
तैलैष्वेरण्डज तैल स्वरसे कारवेल्लिका।
सुधापय: पय सूक्तमित प्राधान्यसग्रह ॥

मूल विरेचनोंमे ईषत् रक्ताभ निसोत छालोमे तिल्वक, फलोमें हरड़, तेलोमे एरण्ड तैल, स्वरसमे करेलेका रस तथा दूधोमे सेहुँडका दूध, ये सब प्रधान विरेचन माने जाते है।

बालक और छोटी आयु (१२ वर्ष तक) वालोको अमलतासकी फलीका जुलाब देवे। अमलतासकी फलीको पहिले ७ दिन धूपमे वालुकामे रख देवे। शुष्क हो जानेपर उसकी मज्जा निकाल लेवे तत्पश्चात् उसे जलमे मिलाकर क्वाथ करे या तैलमे उबाल लेवे या तैलमे भिगोकर कोल्हूमे पिलवाकर तैल निकलवा लेवे फिर उसका उपयोग करे। अथवा कुष्ठ और त्रिकटुको एरण्ड तैलके साथ मिला, चटाकर निवाया जल पिला देवे।

अथवा बालक, वृद्ध, क्षतक्षीण और सुकुमारोंको तीन गुने त्रिफला क्वाथके साथ एरण्ड तैल देवे। ऊपर दूध और मासरस पिलावे। विशेपत: एरण्ड तैल दूधके साथ देनेका रिवाज है।

प्रबल दोषोमे और सबल व्यक्तियोको सेहुँड आदिका दूध देवे। यह तीक्ष्ण विरेचन है। यदि अनधिकारीको दिया जायगा या क्रियामे भूल होगी, तो विषप्रभाव दर्शायगा।

विरेचन फल—चरक सहिताकार लिखते है कि —

स्रोतो विशुद्धिन्द्रिय सप्रसादो
लघुत्वमूर्जोग्निरनामयत्वम्।
प्राप्तिश्चविट्पित्तकफानिलाना
सम्यग्विरिक्तस्य भवेत्क्रमेण॥

स्रोतोकी शुद्धि, इन्द्रियोकी प्रसन्नता, लघुता, उत्साहवृद्धि, अग्निकी दीप्ति, नीरोगता तथा मल, पित्त, कफ (आम) और वायुका क्रमश: निक-

लना, ये लक्षण सम्यक् विरेचन होनेपर उपस्थित होते हैं।

योग्य विरेचन न होनेपर कफ, पित्त और वातका प्रकोप, अग्निमान्द्य, देहमे भारीपन, प्रतिश्याय, तन्द्रा, वान्ति, अरुचि तथा वायुकी अनुलोम गतिमे प्रतिवन्ध होना आदि लक्षण प्रतीत होते है।

यदि विरेचनका अतियोग हो जाय तो कफक्षय, रक्तक्षय, पित्तक्षय, फिर उनके क्षयमे वात-प्रकोप होकर शून्यता, हाथ-पैर टूटना, क्लान्ति, कम्प, निद्रानाश, निर्वलता, चक्कर आना, उन्माद और हिक्का आदि विकार उत्पन्न होते हैं।

डाक्टरी वर्णन

विरेचन द्रव्यो द्वारा अन्त्रशोधन क्रिया होनेमें गुदनलिकाकी पुर:सरण क्रियाके दबावकी वृद्धि होती है तथा आभ्यन्तरीय गुदसंकोचनीपेशी खुल जाती है। इस वातका ठीक निर्णय नही हो सकता कि, गुदनलिकामेसे मल त्यागार्थ कितना वेग प्राथमिक प्रतिफलित क्रिया उत्पन्न कराता है। ओषधिकी मात्रा और उसके द्रव्योकी दृढ़ताके भेदसे भी आवश्यक उत्तेजनामे भेद हो जाता है।

विरेचन द्रव्योकी क्रिया —

१ शोषित न होने योग्य द्रव्योके आयतनकी वृद्धि।

२. जलका शोषण होनेसे संरक्षण।

३ लघु और वृहद् अन्त्रमे क्षोभ लाकर प्रतिफलित रूपसे पुर-सरण क्रियाकी वृद्धि कराना।

४ मांसपेशियो और उनको वातनाड़ियोकी यन्त्रिणापर प्रत्यक्ष उत्तेजना पहुँचाना।

इनमेसे एक या अधिक क्रिया विरेचन द्रव्योकी शक्ति अनुसार होती है।

सामान्यत: लघु अन्त्रमें रहे हुए द्रव्य सदृश कपाटिका (Ileo Caecal valve) मे से प्रवाहित होते हैं, जो प्राय: प्रवाही स्थितिमे होते है। फिर वृहदन्त्रके भीतर जानेके पश्चात् उनमेसे शनै: शनै द्रव्यका शोषण होजाता है और शेष द्रव्यका गाढा मल बन जाता है। इस हेतुसे विरेचन द्रव्य सामान्यत अन्त्रकी पुर:सरण क्रियाको बढा देता है। जिससे शोषणकी सुविधा कम मिलती है और जल सदृश अधिक मल द्रव्य सत्वर गुदनलिकामे पहुँच जाता है। दूसरी ओर अन्त्रके भीतर तरल बडी मात्रामें संगृहीत हो जाता है। उसका प्रतिफलित असर भी पुर:सरण क्रियाको उत्तेजित करना है।

अनेक द्रव्य अन्त्रको शिथिल बनाते हैं, किन्तु फिर वे प्रवल क्षोभ उत्पन्न करते है। अत उनका उपयोग विरेचनरूपसे नही किया जाता। आदर्श रूप या श्रेष्ठ विरेचन द्रव्य उसे कहा जायगा कि, जो अन्त्रके अति-

रिक्त अन्यत्र कुछ भी असर न पहुँचावे वह आमाशयमे क्षोभ नही करता तथा अन्त्रमे पहुँचनेपर प्रबल असर पहुचाता है। इसका शोषण सरलतासे नही होता, अथवा शोषण उतना शनैः शनै. होता है, कि वह अन्त्रके भीतर अपना कार्य कर सकता है।

अनेक मृदुविरेचन द्रव्य उनके विशेष अश द्वारा भौतिक असर पहुँचाते और अन्त्रको स्फीत करते है तथा प्रतिफलित क्रिया रूपसे मल त्यागकी प्रवृति कराते है। ये हानि रहित है और क्षोभ नही कराते। एव उनका सेवन लम्बे समय तक कुछ भी हानि न पहुचते हुए हो सकता है। ये मलावरोधकी आदतवालोके लिए उपयोगी है तथा जिन रोगियोकी देहमे मल पिण्डके आकारके अनुरूप स्थान न हो, उन रोगियोके लिए मृदुविरेचन—अगैर (Agar), लिक्विड पेरेफिन आदि हितकर है।

विरेचन तेल, एरण्ड तैल या जमालगोटेका तैल, ये तब कार्य करते है, जब उनमे रहा हुआ वसाम्ल मुक्त हो जाता है।

एन्थ्रे सिन विरेचन द्रव्य (एलवा, रेवन्दचीनी, सनाय, केस्केरा आदि) तब कार्य करते है, जब इनका वियोजन होकर मधुजन (Glyco sidal) मिश्रणकी उपस्थिति होती है।

रालमय विरेचन द्रव्य तब फलोत्पत्ति करा सकते है, जब राल गल जाय और क्षार और पित्त द्वारा नियुक्त हो जाय। इस हेतुसे रालप्रधान विरेचन (पोडोफिलम, जेलप आदि) के लिये पित्तोपस्थितिकी आवश्यकता है।

तीव्र विरेचन लघु और बृहत्, दोनो अन्त्रकी पुर सरण क्रिया बढा देते है। एवं बडी मात्रामे देनेपर अन्त्रके भीतर द्रवका सग्रह कराते है।

मेगनेसियम सल्फेट लघु अन्त्रमेमे जानेवाले मार्गमे त्वरा कराता है, शोषण नही होने देता और बृहदन्त्रमे द्रव्योका सग्रह होनेमे सहायता पहुँचाता है।

केलोमल दोनो अन्त्रकी पुरःसरण गतिको उत्तेजित करता है।

विरेचनका सेवन अत्यधिक करते रहनेपर मलावरोधके पश्चात् आनुषगिक अन्त्रकी मासपेशियोमे आक्षेप उत्पन्न होता है। यह असर एरण्ड तैल और रेवन्दचीनी, जिसमे रेवन्दचीनी प्रधान कषायाम्ल (Rheo tannic Acid) रहता है, इनका सेवन करनेपर अधिक प्रतीत होता है।

कतिपय विरेचन त्वचा मार्गसे देनेपर, मल-त्याग कराते है, जमालगोटेका तैल त्वचापर रगडने मात्रसे विरेचन क्रिया कराता है। सनाय, एलवा और इन्द्रवारुणी उसी समूहके द्रव्य है, किन्तु इनका असर अन्त्रपर विशेष प्रभाव नही पहुंचाता। अति संभवतः अन्त्रमे उनके मल त्यागसे असर पहुँचता है।

अनेक औषधिया, जो सामान्यतः विरेचन रूपसे प्रयुक्त नही होती, वातवाहिनिया अथवा मासपेशियोपर विशेष प्रकारका असर पहुंचानेसे

लिये जब त्वचा मार्गसे दी जाती है, तब ठीक वैसा ही परिणाम लाती है। इस वर्गकी औषधिया - पाइलोकार्पिन (जेबराण्डिके पानका क्षार), एसिटील कोलिन प्रोस्टिग्मिन आदि प्राणदा-नाड़ियोके सिरेपर फलोत्पत्ति करते है। एपोकोडीन (½ ग्रेन) और अर्गटामिन (१/६० ग्रेन) महती आशयिकी नाड़ी (Nerve Splachnic) या अवयवकी उत्तेजनाका ह्रास कराने वाली नाड़ी (Nerve Inhibitary) के सिरेपर अवसादक असर पहुँचाकर फल दर्शाते हैं। पोपणिका (Pituitary) ग्रन्थिका सत्व मासपेशियोंपर प्रत्यक्ष फलोत्पत्ति कराता है और अन्त्रकी गतिकी स्पन्दन सख्या और प्रसारणकी वृद्धि कराता है; किन्तु दबावमे अधिक वृद्धि नही कराता।

चिकित्सार्थ औषध प्रयोगके हेतु—

१. मलावारोधके रोगियोमे मल संग्रहको दूर करनेके लिये, (वहुधा मृदु विरेचन)।
२ हृदय, वृक्क और यकृत्, इनकी विकृतिसे उत्पन्न जलोदरके रोगियो मे रक्तमेसे रक्त-वारिका आकर्पण करनेके लिये (बहुधा लवण विरेचन और जलवत् भेदन कराने वाला विरेचन)।
३. ज्वरमे उत्तापका ह्रास करानेके लिये (वहुधा मेगसल्फ या निसोत)
४. सन्यास (Apoplexy) और मस्तिष्कमे रक्तसंग्रह होनेपर रक्त दवाव कम करनेके लिये (वहुधा जलवत् भेदन कराने वाली औषधि)
५. अर्श, धमन्यर्बुद और अन्त्रावतरणसे पीडित व्यक्तियोको मलत्याग मे प्रवाहण (कूंथन) न होनेके लिये (मृदु विरेचन)।
६ पित्ताश्मरीको निकालनेके उद्देश्यसे उसके मार्गमे पित्तस्राव कराने के लिये (पित्त:निसारक विरेचन)।
७. रक्तमेसे कितनेक मल संक्रान्त द्रव्य मूत्रीया, मूत्राम्ल आदिको निकाल देनेके लिये (लवण विरेचन)।
८. क्षोभको शमन करने अथवा हानिकर द्रव्योको निकाल देनेके लिये जैसे अपाचित आहार द्रव्यमे उत्पन्न अन्त्रके भीतर पूतिभवन (Putrefaction) और अतिसार होनेपर सेन्द्रिय विषकी उत्पत्ति होती है, तब उसे दूर करनेके लिये (अमलतास, एरण्ड तैल आदि स्निग्ध मृदु विरेचन) इनके अतिरिक्त जीर्ण वान्तिका अवरोध करानेके लिये कभी-कभी सौम्य विरेचन भी दिया जाता है।

आयुर्वेदमे पचन संस्थामे संगृहीत मल, आम, विप, कृमिको वाहर निकाल देनेके लिये विरेचन देनेका विधान किया हे। इनके अतिरिक्त दोपोके प्रवाहकी विपरीत गतिसे उत्पन्न कुष्ठ, प्रमेह, त्वचा-विकार, अति स्वेद आदि व्याधियोमे धातु प्रवाहका वहन सम्यक् मार्गपर कराने या धातुसाम्य स्थापित करनेके लिये कोष्ठ शुद्धि करायी जाती है। एव

श्वास, कास, हिक्का, वमन, उबाक, विसर्प स्तन्यविकार, वातरक्त, कुष्ठ, मेदोवृद्धि आदि रोगोमें नाड़ीके भीतर जमे हुए मल, मेद, आम, कफ आदि को हटाने (स्रोतोरोध दूर करने) के लिये भी विरेचन दिया जाता है।

सूचना—निम्न अवस्थाओंमे विरेचन नही दिया जाता या अति सम्हालपूर्वक व्यवहृत होता है।

१. उदरके अवयवोकी प्रादाहिक अवस्था, उदर्य्याकला प्रदाह, या अन्त्र प्रदाह होनेपर।

२. सगर्भावस्था और मासिकधर्म स्रावके समय प्रवल विरेचन देनेका निषेध है।

३ अन्त्रमेसे रक्तस्राव, बलह्रास और शक्तिपात होनेपर।

४ अन्त्रके भीतर अवरोध और अन्त्रान्त्र प्रवेश (Intussusception) होनेपर।

वर्गीकरण—

अ—आपेक्षिक गुरुत्ववर्द्धक—अन्त्रके भीतर शोषण न होने योग्य द्रव्योके भारकी वृद्धि कराने वाली औषधियाँ।

१ लवण विरेचन (Saline Purgatives)—ये शोषण क्रियामे हस्तक्षेप कराकर परिणाम लाती है। सोडा सल्फास,सोडा फोस्फेट, एसिड टार्ट्रेट आफ पोटाशियम, मेगनेसिया कार्व, मेगनेसियम ऑक्साइड नमक, थूहरका क्षार, अपामार्ग आदिके क्षार और गोमूत्र आदि।

२ सब आहार द्रव्य—रोटी, फल, अगैर, पेरेफिन आदि।

आ—क्षोभोत्पादक वर्ग—

१ मृदु विरेचन (Laxative)—इमली, केसिया, माना (शीरेखिस्त) एरण्ड तैल, गंधक आदि।

२. एन्थ्रेसिनसत्व प्रधान—(Anthraccne) हाइड्रोकार्वोन (C 14 H 10) विद्यमानता वाले द्रव्य। एलवा, रेवन्दचीनी, सनाय, केस्केरा आदि।

३ तीव्रविरेचक (Drastic Pnrgatives)—स्केमोनो, जेलप, जमालगोटा, इन्द्रवारुणी, कालादाना, निशोथ आदि।

४ पित्तविरेचक (Cholagogue purgatives)-ये औषधियाँ बहुधा पित्तस्रावकी वृद्धि नही करती, किन्तु अन्त्रकी पुरःसरण क्रियाकी वृद्धि द्वारा अन्त्रके द्रव्योकी गतिको वढाकर पित्तमेमे मल त्यागकी वृद्धि कराती है तथा पुनः शोषण होनेसे रक्षण करती है। पोडोफिलम, पारद प्रधान औषधियाँ आदि।

इ—अन्तःक्षेपण योग्य विरेचन—इन औषधियोका अन्तःक्षेपण करनेपर

ये चेष्टावाहिनी नाड़ियों या मांसपेशियोको उत्तेजित करती हैं। ये सामान्यतः विरेचन रूपसे प्रयुक्त नही होती, किन्तु अन्त्रके पक्षवधके अस्त्रचिकित्साके पश्चात् संरक्षणार्थ व्यवहृत होती है। पाइलोकार्पिन आदि औषधियां परिस्वतन्त्र नाड़ियो (Parasympathetic nerves) के सिरेको उत्तेजित करके अन्त्रकी गतिको बढ़ाती हैं। पश्चिम पोषणिका ग्रन्थि प्रत्यक्ष मासपेशियोको उत्तेजित करती है।

इनके अतिरिक्त जो औषधि जलवत् भेदन कराती है उसे डाक्टरीमे हाइड्रागोग (Hydragogue) सज्ञा दी है। ये औषधिया अन्त्रकी श्लैष्मिक कलामेसे अत्यधिक रसस्राव कराती है। इस हेतुसे जल सदृश पतले विरेचन होकर देहमेसे जलका विशेष परिमाण निकल जाता है। कालादाना, जमालगोटेका ऊँटनीके दूधके साथ सेवन, इन्द्रायन, सत्व, मेगनेशिया, जेलप आदि।

लवण विरेचनमे अधिक जल मिलाकर प्रयोग करनेपर मूत्रल गुण भी दर्शाता है, जिससे जलोदरमे सत्वर लाभ पहुँचता है। जल कम मिलानेपर केवल विरेचन गुणकी प्राप्ति कराता है। किन्तु लवण विरेचनकी उपकारिता कितनीक विशेष अवस्थापर निर्भर है। आमाशय और अन्त्रमे कोई भुक्त द्रव्य, विशेषत तरल द्रव्य न होना चाहिये। इस हेतुसे आमाशय रिक्त होने पर प्रात कालको इसका प्रयोग करना चाहिये। डाक्टरीमे सामान्यत. मेगनेशिया सल्फास समान जलके साथ मिलाकर दिया जाता है।

कतिपय लवण विरेचन अन्त्रकी श्लैष्मिक कलामेसे रसस्राव अधिक कराती है, किन्तु अन्त्रकी सचालन क्रिया उत्तेजित न होनेसे नि सृत रसका देहमे पुन. शोषण हो जाता है। फलत भेद उपस्थित नही होता। अत उनके साथ अन्त्रकी गतिवर्द्धक विरेचनका मिश्रण करके प्रयोगमे लाना चाहिये।

अन्त्रमेसे उग्रताजनक त्याज्य पदार्थको दूर करने और कोष्ठवद्धताजन्य शिरदर्द, व्याकुलता आदिको नष्ट करनेके लिये मृदु विरेचन देना चाहिये। इन औषधियोका खास असर शारीरिक इतर विधानमे प्रतीत नही होता।

एन्थ्रेसिन विरेचन और तीव्र विरेचनकी अन्त्रपर साक्षात् क्रिया दृष्टिगोचर होती है। ये औषधिया परम्परा रूपसे रक्तपर कार्यकर प्रचुर परिमाणमे रक्त-रसका हरण कर लेती है। अत. उन दोनो प्रकारकी औषधियोसे कतिपय अशमे दोहन (अपतर्पण) क्रियाकी सिद्धि होती है।

आयुर्वेद मर्यादा अनुसार विरेचन देनेके पहिलेके कर्त्तव्य, विरेचनकी विधि, अधिकारी, काल, फल और अनधिकारी, विरेचनके अतियोग और हीन-योगमे कर्त्तव्य विरेचनके पश्चात् कर्म, इन सब बातोको भलीभाति

जानकर विरेचन देना चाहिये। इन सबको विस्तृत विवेचन "चिकित्सा-तत्वप्रदीप" प्रथम खण्डके पृष्ठ ६० ने ६६ तक किया है।

स्त्रियोंको मासिक धर्मके चार दिनोमे विरेचन औषधि नही देनी चाहिये। एवं गर्भावस्थामे अति सम्हालपूर्वक (आवश्यकता होनेपर) मुनक्का, गुलकन्द, आदि सौम्य औषधि देनी चाहिये। एलुआकी क्रिया लघु अन्त्रपर होती है, अतः एलुआ भी नही देना चाहिये।

बार बार विरेचन लेते रहनेसे अजीर्ण, अतिसार, अन्त्रप्रदाह आदि विविध रोग उपस्थित होते है।

विरेचन द्वारा कोष्ठशुद्धि कर लेनेपर दूसरे दिन बहुधा योग्य मलशुद्धि नही होती, परन्तु उतनेसे भय मानकर पुन. विरेचन औषधि नही लेनी चाहिये।

विरेचन औषधियोमेसे कितनीक जल्दी फल प्रदर्शित करती है, और कतिपय देरसे असर पहुँचाती हे। जमालगोटेका तैल १-२ घण्टेमे कार्य करता है। लवण विरेचन ३-४ घण्टेमे, निसोथ, रेवन्दचीनी, एरण्ड तैल आदि ४-५ घण्टेमे और एलुआ आदि ८-१० घण्टेमे विरेचन कराते है। देरसे विरेचन करानेवाली एलुआ आदि औषधियोको रात्रिमे ओर शेप औषधियोको प्रातःकाल सेवन करना चाहिये।

इन्द्रवारुणी विरेचनार्थ देना हो, तो कपूर मिला लेनेसे क्रिया वृद्धि होती है। एव एलुआके साथ भी कपूर मिला लेनेसे एलुआकी उग्रताका ह्रास होता एरण्ड तैलके साथ सोठका क्वाथ और सनायके साथ शहद मिलानेसे उदरमे पीडा नही होती। एव अधिक उग्र औषधिके साथ खुरासानी अजवायन मिला देनेसे उग्रताका ह्रास हो जाता है।

अन्त्रप्रदाहके रोगी अति दुर्बल, वृद्ध और बालकोको मृदु विरेचन देना चाहिये।

औषधियोके अतिरिक्त मोटे आटे या भूसी मिले आटेकी रोटी, शहद, गुड़, फल (अगूर, किशमिश, पपीता, अजीर आदि). शाक भाजी आदि पदार्थ, व्यायाम और उष्ण जलपान आदि मल शुद्धिमे सहायक होते है।

जीर्ण मलावरोधके रोगीको विरेचन नही देना चाहिये। कुचिला, नागभस्म, चन्द्रप्रभावटी आदि औपधियोके सेवन द्वारा अन्त्रको सबल बनानेका प्रयत्न करना चाहिये।

वृक्कप्रदाह (Bright's Disease) के रोगीको बहुधा विरेचन औषधि जलवत् मेदोत्पादक कालादाना प्रयोजित होती है। इसके अतिरिक्त दुर्दम कोष्ठबद्धतामे भी यह उपयोगी है।

वातरक्तके रोगीको विशेषत. लवण विरेचन कुटकी, मजीठ आदि हितकारक है।

यदि विरेचन औषधिके सेवनसे उबाक या कै होती हो, तो डाक्टरी नियमानुसार गुदा द्वारा पिचकारी दी जाती है; अथवा बस्ति कराई जाती है।

निसोत—इसकी अरुण और श्याम दो जाति है। चरक संहिताकारने श्यामा त्रिवृत् कल्पमे अरुण निसोतको श्रेष्ठ विरेचन कहा है। टीकाकार चक्रदत्ताचार्य सुख विरेचनके हेतुसे इसे प्रधान कहते हैं। इसमे रस कषाय-मधुर, गुण रूक्ष, विपाक कटु और वीर्य उष्ण है यह कफ पित्तशामक तथा रौक्ष्य गुणके हेतुसे वातप्रकोपक है। सुकुमार शिशु, वृद्ध और मृदु कोष्ठवालोंको दे सकते हैं।

काली निसोत मोह कराती तथा तीक्ष्ण होनेसे हृदय और कण्ठको कुछ खीचती है, यह क्रूर कोष्ठवालोको दी जाती है।

डाक्टरीमे इसे तीव्र विरेचन (Drastic purgative) कहा जाता है। इसके मूलमे टर्पेथिन (Turpethin) नामक राल ५ से १० प्रतिशत रही है। इसके अतिरिक्त वसा द्रव्य, उड्डयनशील तैल, शुभ्रप्रथिन, श्वेतसार, पीला रंग द्रव्य, क्षार और लोहद्रव्य आदि मिलते हैं।

यह लघु और वृहदन्त्र, दोनोकी पुरःसरण क्रिया बढ़ाती है। अन्त्रमे क्षोभोत्पत्ति कराती है। जिससे अन्त्रको श्लैष्मिककलामेसे अधिक परिमाण मे रसस्राव होता है और पुनः शोषण नही हो सकता। इसी हेतुसे शौच पतला होता है। इसमे वातप्रकोप दोष है। इसलिये अन्त्रमे शूल चलता है। इसे कम करानेके लिये सोंठ, पीपल, सेंधानमक आदि शूलघ्न औषधि मिला देनी चाहिये।

पक्वज्वरमें मलावरोधको दूर करने, स्रोतोंको शुद्ध करने तथा उत्ताप को कम करानेके लिये यह व्यवहृत होती है। एवं मस्तिष्कमे रक्त-दबाव वढ़ गया हो, तो उसे भी कम कराती है, यह पतला शौच लाती है, इस हेतुसे शोथ और जलोदर रोगमे भी सुकुमारोके लिये उपयोगमे आती है।

इन्द्रायण—इसके फल और मूल, दोनोंका उपयोग होता है। फल अति विरेचन कराता है। फलोको सुखा, वीजोको निकालकर केवल गर्भको उपयोगमे लेना चाहिये।

फलमे रस तिक्त, गुण विरेचन, लघु, विपाक कटु और वीर्य उष्ण है। डाक्टरीमें इसे तीव्र विरेचक माना है। इसके वीर्यको डाक्टरीमे कोलोसिन्थिन (Colocynthin) सज्ञा दी है। कोलोसिन्थिन राल रूपमे और उदासीन प्रतिक्रियावाले द्रव्य रूपमे मिलता है। इसके अतिरिक्त कुछ गोद मय द्रव्य मिलता है।

आयुर्वेदकी दृष्टिसे यह कफनाशक और वातवर्द्धक है। इसमे पित्तस्राव करानेका गुण होनेसे यह विरेचन द्वारा पित्तको निकाल देता है। इस हेतुसे पित्तप्रकोपमे लाभ पहुंच जाता है।

डाक्टरी दृष्टिसे यह आमाशयमे भी क्षोभ कराता है । इस हेतुसे हृल्लास उत्पन्न होती है । सामान्य मात्रामे अन्त्रकी ग्रन्थियोंको उत्तेजित करता है तथा पुरःसरण क्रिया बढ़ा देता है । फिर उदरमे वेदनासहित जल जैसे पतले शौच कराता है । यह असर मुख द्वारा अथवा त्वचा या रक्तमे अन्त क्षेपण करनेपर होता है ।

बड़ी मात्रा होनेपर आमाशय और अन्त्रमे क्षोभके अतिरिक्त उसकी प्रतिफलित क्रिया द्वारा उदर और श्रेणीगुहाके अवयवोपर भी असर पहुँचाता है । इसी हेतुसे सगर्भा स्त्रीको इसका विरेचन देनेपर गर्भपात होजाता है।

डाक्टरीमे यकृत्की विकृति होनेपर कब्ज वालोंको एलवा और पारदके साथ देते है । प्रतिहारिणी शिरासंस्थानमे उत्पन्न रक्त सग्रहको शमन करनेके लिये इसे श्रेष्ठ औषधि मानी है । इस औषधिसे वेदना करानेका दोष है, इस हेतुसे डाक्टरीमे खुरासानी अजवायन अथवा बेलाडाना (सूचीबूटी मिला देते है) ।

यह अनेक बार जलोदर, शोथ और मस्तिष्क रक्त संग्रहपर भी व्यवहृत होता है; किन्तु इन रोगोमे (डाक्टरीमे) शीरेखिस्त और जेलप अधिक प्रभावशाली माने गये है ।

आयुर्वेदमे इन्द्रायणका उपयोग कामला रोगपर किया गया है । पित्ताशय या पित्तनलिकामें प्रतिबन्ध होनेपर अधिक पित्तस्राव द्वारा उसे दूर कर कामलाको शमन करता है । कामलामे इसका नस्य देनेपर नाकमेसे अतिशय पीला स्राव कराता है । जिससे रक्त शुद्ध हो जाता है ।

प्लीहावृद्धिमे कफ दुष्टि, अन्त्रमे मलसंग्रह और मन्द-मन्द ज्वर बार-बार आ जाना आदि लक्षण होनेपर इसका अच्छा उपयोग होता है ।

(१८) संशोधन ।

चरक संहितामे संशोधनके ४ प्रकार कहे हैं । वमन, विरेचन आस्थापन वस्ति और शिरोविरेचन । इनमेसे विरेचनका विवेचन न० १७ में किया है । मस्तिष्क शोधन न० २० मे तथा वमनका न० २१ मे किया जायगा । यहाँ केवल आस्थापन वस्तिका वर्णन करेंगे ।

महर्षि आत्रेय कहते है कि, शाखागत, कोष्ठगत और मर्मगत रोग अर्थात त्रिविध मार्गोमे आश्रित रोग, जो देहके उर्ध्व भागमे हुए हो, सम्पूर्ण देहमे फैल गये हों या किसी अवयव विशेषमे आश्रित हो, उन सबका हेतु वायुसे सबल और कोई नही है । अष्टाङ्ग संग्रहकारने भी वायुको पित्त और कफ दोषोंका नेता कहा है ।

यद्यपि पित्त और कफ प्रकोप भी रोगोत्पत्तिमे कारण होते है, तथापि वे पगु है, वायु ही उनको इधर-उधर फैलाकर रोगोकी सम्प्राप्ति कराती है । इस तरह वायुके अति प्रवृद्ध होनेपर उसके शमनार्थ वस्तिके अतिरिक्त और

कोई औषध नही है। कई चिकित्सक इसे आधी चिकित्सा मानते हैं और कई पूर्ण चिकित्सा।

वस्तिका प्रवेश नाभिस्थान, कमर, पार्श्व और कुक्षिमे होता है, वहां पहुँचकर पुरीष और सगृहीत दोषोको क्षुभित (मथित) कर स्वशक्तिसे देहमे व्याप्त होकर देहको स्निग्ध बना, मलको लेकर बिना कष्ट पहुँचाये बाहर आ जाती है।

वस्तिके तीन प्रकार हैं। १. आस्थापन (निरूह); २. अनुवासन(स्नेह) और ३. उत्तर वस्ति। इनमे आस्थापन और अनुवासन बस्ति गुदामार्गसे तथा उत्तर वस्ति मूत्रमार्गसे मूत्राशय और गर्भाशयके शोधनार्थ दी जाती है। आस्थापन वस्ति जल और कषाय प्रधान होती है। शेष दोनो स्नेह प्रधान है।

आस्थापन वस्तिमे अन्त्रस्त मलमूत्र आदि दोषोंका शोधन करनेके लिये शोधन, दोष प्रकोपको शमन करनेके लिये संशमन मेद-कफ, आदिको सुखानेके लिये लेखन, पाचन और शोधन कार्यके लिये यापन, आदि भेदसे अनेक प्रकार होते है।

भिन्न-भिन्न व्याधियोके लिये भिन्न-भिन्न औषधियों द्वारा तैयार की हुई बहुसंख्यक वस्ति प्रयोग प्राचीन सहिता ग्रन्थोंमे लिखे हैं और इस बस्ति कर्मकी अत्यधिक महिमा गाई गई है। जब अन्य औषधचिकित्सा असफल हो जाती है, तब उस समय भी वस्ति चिकित्सासे सफलता मिल सकती है। फिर भी वर्तमानमे इस वस्ति चिकित्साका आश्रय कोई चिकित्सक क्वचित् ही लेते हैं। वैद्योने इस ओर अति दुर्लक्ष्य किया है।

डाक्टरीमे जलवस्ति देते है। साबुन, एरण्ड तैल या ग्लिसरीन मिलाते हैं या केवल ग्लिसरीन या एरण्ड तैलकी बस्ति कराते है। वह भी अन्त्र-शोधनमे उपकारक होती है। यदि प्राचीन वस्ति विधिका उपयोग किया जाय, तो असाध्य कहकर छोड़े हुए अनेक व्याधि पीडितोको भी लाभ पहुँच सकता है।

आस्थापन वस्तिके मिश्रत, मात्रा, अधिकारी आदिका वर्णन तथा कई वस्तिप्रकार चिकित्सा-तत्व-प्रदीप प्रथम खण्डके पृष्ठ ७८ से ८४ तकमे दिये है। इस आस्थापन वस्तिमे सब रसोका उपयोग होता है। मात्रा भेद से उनके मिश्रण असंख्य हो सकते हैं। उनके भीतर उपयोगमे आने वाले द्रव्य भी अत्यधिक है, अत उनका विभाग चरक संहिताकारने रस भेदके अनुसार प्रकारके नीचे लिखे आस्थापन स्कन्धोमे किया है।

१. मधुर स्कन्ध, २ अम्ल स्कन्ध, ३. लवण स्कन्ध, ४. कटु स्कन्ध, ५. तिक्त स्कन्ध, ६ कषाय स्कन्ध।

उक्त स्कन्ध प्राय अधिक द्रव्य निश्रित होनेमे अनेक रसो वाले ही हैं।

अत· उनमे जो रस प्रधान हो, उसे उस रस प्रधान स्कन्धमे कहेगे। जैसे मधु रस, प्राय मधुर रस, मधुर विपाक और मधुर प्रभाव वाले द्रव्योको मधुर स्कन्धमे कहा जायगा। इस तरह अन्य रसोके लिये समझ लेवे।

मधुर स्कन्ध—जीवक, ऋषभक, जीवन्ती वीरा (महा शतावरी), भुई आवला, काकोली, क्षीर काकोली, भीरू (शतावरी भेद), मुद्गपर्णी, माषपर्णी, शालपर्णी, पृश्नपर्णी, असनपर्णी (अपराजिता), मधुपर्णी (विककत कटाई), मेदा, महामेदा, काकडा सिगी, सिघाडा, गिलोय, छत्रा (तालमखाना), अति छत्रा (लाल तालमखाना), श्रावणी (सफेद मुण्डी), महाश्रावणी (लाल मुण्डी), अलम्बुषा (महा श्रावणीका विशेपण है या मुण्डी भेद), सहदेवी, नागबला, शक्कर, सफेद निसोत, खरैटी, ककहिया (अति बला), विदारीकन्द, क्षीरविदारी, क्षुप्रसहा (गुलाबके फूल), महासहा (महाबला), ऋष्यगधा (बलाभेद या विधारा), अश्वगन्धा, पयस्या (अर्कपुष्पी), सफेद पुनर्नवा, लाल पुनर्नवा, छोटी कटेली, बडी कटेली, एरण्ड, मोरट (मूर्वा), गोखरू, वन्दाक, शतावरी, सोफ, मधुकपुष्पी, (मुलहठी बेल) मुलहठी, मधुलिका (द्राक्षा), किशमिश, खजूर, फालसा, कोछ, कमलके बीज, कसेरू, बडे कसेरू, खिरनी, कतक (निर्मलीके फल), गम्भारी, शीतपाकी, (नील अपराजिता), ताडफल, खजूर, नागरमोथा, ईख, इक्षुवालिका, (ईख भेद), दर्भ, कुश, कास, शालिकी जड, गु द्रा (गोदनी-गोदर), इत्कट (एक प्रकारका क्षुप), सरकण्डेकी जड, राजक्षवक (राजसरसो), ऋष्यप्रोक्ता (बलाभेद), द्वारदा (शाकतरु-शगुण), भारद्वाजी (वनकपास, वनत्रपुष्पी(वन काकडी), अभीरुपत्री (शतावरी भेद), हंसराज, काकनासिका, कौवाठोडी, कुलिगा (उच्चटा), क्षीरवल्ली (क्षीर विदारी भेद), कपोतवल्ली (छोटी इलायची), सोमवल्ली (सोमलता) गोपवल्ली (अनन्तमूल), मधुवल्ली (मुलहठीभेद) आदि। इन मधुर स्कन्ध और अन्य मधुर वर्गकी औषधियोमेसे, जो छेदन या टुकडे करने योग्य हो, उनके छोटे छोटे टुकडे करे। भेदनयोग्य हो उनका सूक्ष्म भेदन करके स्वच्छ जलसे धो लेवे। फिर धोई हुई हाडीमे (या कलईदार वर्त्तनमे) डाल, आधे जलमिश्रित दूध (औषधिसे आठ गुने) से सीचकर मन्द अग्निपर सिद्ध करे और कड़छीमे सतत चलाते रहे। जब चतुर्थाश जल शेष रहे, दूध न जले और ओषधियों का सत्व दूध-जलमे मिल जाय, तब हाड़ीको नीचे उतारकर थालीमे उडेल देवे और उसकी उष्णता कम होनेपर छान लेवें। फिर घी, तेल, मज्जा, लवण, फाणित (ईक्षु रसकी राब) यथाविधि मिलाकर किञ्चित् निवाये द्रवकी वस्ति वात विकारवालेको देवें। यदि पित्त विकार वालेको देनी हो तो शहद घी मिलाकर शीतल द्रवकी वस्ति देवे यह वस्ति शास्त्र विधि अनुसार देनी चाहिये।

यद्यपि पित्तमे विरेचनको प्रशस्त कहा गया है, तथापि यहांपर जो वस्तिविधान किया है, वह पक्वाशयगत पित्त या कफपित्त (आम मिश्रित पित्त) को मलके साथ बाहर निकालनेके लिये है।

अम्ल स्कन्ध—कच्चे आम, अम्बाडा, लकुच (बडहर), करौदा, वृक्षाम्ल (कोकम), अम्लवेतस, बड़े-बेर, बेर, अनारदाने, बिजौरा, गण्डीर खट्टा-शाक), आवला, नन्दीतक (कर्परनन्दी-पानी आवला), शीतक (लकुच भेद) इमली, दन्तशठ (जम्बीर), ऐरावत (सतरा), कोशाम्र (जंगली छोटे आम) और धामनके फल। अम्बाडा, अश्मन्तक (कोविदार या चूका) और चांगेरी के पान, चारो प्रकारकी इमलीके पत्ते, दोनों प्रकारके बेर कच्चे या शुष्क पान, जगली और ग्राम्य दोनो प्रकारकी इमलीके पान। आसव द्रव्य तथा सुरा, सौवीर, तुषोदक, मैरेय, मेदक, मदिरा, मधु (मुनक्काकी शराब), सीधु, सिरका, दही, दहीका तोड, छाछ, कांजी आदि, ये और इसी प्रकार अन्य अम्ल वर्गकी औषधियां, जो छेदन योग्य हों, उनका छेदन कर और भेदन योग्य हो उनका भेदन करे। फिर स्थिर द्रव्योंको सुरा आदि द्रवोसे भिगो कर सिद्ध करे। पश्चात् छानकर यथा विधि तैल, वसा, मस्तु, मज्जा, लवण और फाणित मिलाकर वातरोगीको विधिवत् निवायी वस्ति देवे।

लवणस्कन्ध—सैंधव, सौंचल, कालानमक, विड़नमक, पाक्य (सोरा), अनुप (आनूप देशमे तैयार किया हुआ लवण), कूप्य (तालावोमें तैयार किया क्षार) वालुक (वालुकासे तैयार किया हुआ), ऐल (लूणार क्षार), मौलिक (समुद्र किनारे जमा हुआ लवण), समुद्रनमक, रोमक (साभर लवण), उद्‌भिज और औषर (ये दोनों उपर भूमिसे तैयार होते हैं), पाटेयक (सज्जीक्षार), पाशु (ऊपर भूमिका क्षार), इन सब लवणोको तथा लवण वर्गके अन्य द्रव्योको काजी आदि अम्ल द्रव या निवाये जलमे मिला, विधिवत् तैल आदि मिश्रित कर वातरोगीको निवायी वस्ति देवे।

कटुस्कन्ध—पिप्पली, पिप्पलीमूल, गजपीपल, चव्य, चित्रक, सोंठ, कालीमिर्च, अजमोद, अदरक, वायविडङ्ग, नेपाली धनिया, पीलूफल, तेजोवती (तेजवल), छोटी इलायची, कूठमीठा, भिलावेकी गिरी (गोडम्बी), हींग किलिम (सरल देवदारु), मूली, सरसो, लहशुन, करंज, जंगली सुहिजना, बागका सुहिजना (मीठा), खरपुष्पा (मरुवा), भूस्तृण (रोहिस घास) सुमुख, सुरस, कुठेरक, अर्जक, गण्डीर, कालमालक, पर्णास, क्षवक, फणिज्झक, (सुमुखसे फणिज्झक तक ये ६ तुलसीके भेद है), क्षार, मूत्र, पित्त तथा इस प्रकारके द्रव्य, जो कटुवर्गके हों, उनमेसे टुकडे करने योग्यके टुकडे और चूर्ण योग्यका चूर्ण करें फिर उसे गोमूत्रमें सिद्धकर स्वच्छ वस्त्रसे छान लेवें, पश्चात् शहद, तैल, लवण आदि यथाविधि मिलाकर कफ पीड़ित को निवायी वस्ति देवें।

तिक्तस्कन्ध—चदन, नलद (उशीर भेद), कृतमाल (कर्णिकार-छोटा अमलतास), नक्तमाल (बृहत् करज), नीम, तुम्वरु (नेपाली धनिया), कुडा, हलदी, दारुहल्दी, नागरमोथा, मूर्वा, चिरायता, कुटकी, त्रायमाण, करेली, करीर, करवीर (कनेर), केबुक (केऊँ), कठिल्लक (पुनर्नवा), अडूसा, मण्डूकपर्णी, ककोडा, बेंगन, कर्कश (कसौंदी), मकोय, काठगूलर, सुषवी (कडुवी जीरी), अतिविषा, परवलके पान, कुलक (पटोलभेद), पाठा, गिलोय, बेत, बेतका अग्रभाग, विकङ्कत (श्रुवा वृक्ष) मोलसरी, सोमवल्क (सफेद खैर), सतौना, चमेली, आक, अवल्गुज (वावची काली), वच, तगर, अगर, नेत्रवाला और खस तथा तिक्तवर्गके अन्य द्रव्योमेसे टुकडे करने योग्यके टुकडे कर तथा भेदन करने योग्य द्रव्योका भेदन करके धो डाले, फिर जल मे मिलाकर मन्दाग्निपर सिद्ध करे, पश्चात् छानकर यथाविधि शहद, तैल, लवण आदि मिलाकर श्लेश्माके रोगीको निवायी बस्ति देवे। यदि पित्तप्रकोपवालोको बस्ति देनी हो तो घी शहद मिलाई हुई शीतल वस्ति देनी चाहिये।

कषायस्कन्ध—प्रियंगु, अनन्तमूल, आमकी गुठली, पाठा, कटवंग (अरलू), लोध, मोचरस, मजीठ, धायके फूल, पद्मा, (स्थलकमल मतान्तरमे पद्म अर्थात् कमल), कमल केसर, जामुन, आम, पिलखन बड़का वृक्ष कपीतन (पारसपीपल), गूलर, पीपल, भिलावा, अश्मन्तक (को विदार या पाषाण भेद), सिरस, शीशम, सफेद खैर, तेन्दू, पियाल (चिरौजीका वृक्ष), बेर, खैर, सतौना, अश्वकर्ण (शालभेद), तिनिश, अर्जुन, असन, दुर्गन्धवाला खैर, एलबालुक (सुगन्धवाला द्रव्य), परिपेलव (केवटी मोथा) कदम्व, शल्लकी (शालभेद), जिङ्गिनी (कृष्ण शालमली), कागा कसेरु, बडे कसेरु, कटफल, बाँस, पद्माख, अशोक, धावडा, रालका वृक्ष, भोजपत्र, सनपुष्पी, शमा, माची (काकमाची-मकोय) वरक (चीना वरीधान्य), तुंग (पुन्नाग) अजकर्ण (शालभेद) अश्वकर्ण (पीलाशाल), स्फूर्जक (तेंदूभेद) बहेडा, कुम्भीक (पाटलावृक्ष), पुष्करवीज (कमलगट्टे) कमलकी जड, कमलनाल, ताडके कच्चे फल, खजूरके कच्चे फल, इनके और इसी प्रकारके कषायवर्गके अन्य द्रव्योमेसे टुकडे करने योग्य हो, उनके टुकडे करे, छाल निकालने योग्य हो, उनकी छाल निकाले, फिर जल से धो, जल मिलाकर, मदाग्निपर सिद्ध करे। पश्चात् छान शहद, तैल, लवण आदि मिला कफ पीड़ितको विधिवत् निवायी वस्ति देवे। पित्त विकारवालोंको वस्ति देनी हो तो घृत-मधु मिलाकर शीतल वस्ति देनी चाहिये।

उक्त ६ स्कन्धों परसे रोगानुरूप विचार करके आस्थापन वस्तिकी योजना करनी चाहिये। उक्त रसोके गुण और फलका विस्तारसे विवेचन

पहिले रसविवेचनमें किया गया है ।

इस आस्थापन वस्तिमे गुणवर्द्धक सहायक औषधियां कितनी ही हैं, जिनके मिला देने पर तुरन्त प्रभाव प्रतीत होता है । उन औषधियोकी कुछ यादी चरक सहितामे निम्नानुसार आस्थापनोपग नामसे दी है ।

आस्थापनोपग—निसोत, वेल, पीपल, कूठ, सरसो, बच, इन्द्रजो, सोया, मुलहठी और मैनफल, ये १० औषधियां आस्थापन क्रियामे सहायक है ।

(१९) बृंहण ।

नुट्रिशियसिस-Nutritiouses

वृहत्वं यच्छरीरस्य जनयेत्तच्च वृंहणम् ।
गुरुशीतमृदुस्निग्धं वहलं स्थूल पिच्छिलम् ।
प्रायो मन्द स्थिरं श्लक्ष्णं द्रव्यं वृंहणमुच्यते ॥

जो द्रव्य शरीरमे मोटापन ला देता है (स्थूल बना देता है), वह वृंहण कहाता है । जो द्रव्य गुरू शीत, मृदु, स्निग्ध, बहल (गाढापन), स्थूल (संहत अवयवयुक्त), पिच्छिल, मद (चिरकारी), स्थिर और श्लक्ष्ण गुण युक्त हो, वह प्राय: वृंहण होता हैं । प्राय: कहनेका तात्पर्य यह है कि, कोई कोई श्यामाक आदि शीतल द्रव्य लघन भी होते है ।

वृंहण द्रव्य पृथ्वीजल भूयिष्ठ और कफधातुवर्द्धक होते हैं । मधुर रस प्रधान अनेक द्रव्य वृंहण होते है । रस रक्त आदि धातुओको पोषक (Nutritious) आहार आवश्यकता अनुरूप मिलते रहनेपर सब धातुओ की वृद्धि होकर देह मोटी हो जाती है । इन धातुओमे मांसकी वृद्धि और पुष्टि यथोचित हो, तो वृंहण गुण दीर्घकालपर्यन्त टिक जाता है । मांसवर्द्धक दृष्टिसे श्री वाग्भट्टाचार्यजी लिखते है कि—

न हि मांससम किंञ्चिदन्यद्देह वृंहत्वकृत् ।
मांसा दमांसं मासेन संभृतत्वाद्विशेपत: ॥

मासके ममान देहको वृंहण करनेवाला कोई भी द्रव्य नही है । मासके पुष्ट होनेपर देह और देहकी अन्य धातुए भी पुष्ट वन जाती है ।

महर्षि अत्रेय भी कहते है कि "प्रीणन: सर्वधातूनां हृद्यो मांसरम परम्" मांसरस संपूर्ण धातुओकी न्यूनताको पूरा करता है । यह हृदयके लिये हितकर है । व्याधियोसे आई हुई शुष्कता, कृशता और वीर्य क्षीणता को दूर करता है, वल और वर्णको बढाता है, वुद्धि, इन्द्रिय और आयुमें वृद्धि करता है ।

इनके अतिरिक्त योग्यपूर्ण पथ्य आहार, नियमित दिनचर्या, तैलाभ्यंग, चिन्ताका अभाव, शुद्ध वायुका सेवन, आवश्यक श्रम, प्रकृतिके अनुकूल जलवायुमे निवास आदि कारण भी देहको वृंहण करनेमें सहायक होते हैं ।

वृंहण चिकित्साके अधिकारी—व्याधि, औषधिसेवन, मद्यपान, स्त्री

सेवन, चिन्ता, भार-वहन, प्रवास और उर क्षतसे क्षीण हुए व्यक्ति, रूक्ष, अशक्त, वातप्रकृतिवाले, सगर्भा प्रसूता, बालक और वृद्ध ये सब बृंहण चिकित्साके अधिकारी है। इनके अतिरिक्त ग्रीष्म ऋतुमे प्राय: सब रोगियोकी चिकित्सा बृहणकी जाती है।

कदाच इन अधिकारियोमेसे किसीको लंघनसाध्य ज्वर आदि रोग हो जाय, तो उस समय मृदु लंघन चिकित्सा करनी चाहिये।

बृंहणाय कषाय—चरक संहिता कथित कषायमे क्षीरिणी (खिरनी या क्षीरविदारी), राजक्षवक (दूधी), बला (खरैंटी), काकोली, क्षीरकाकोली वाट्यायनी (सफेद फूल वाली खरैंटी), भद्रौदनी (पीले फूलकी खरैंटी) भारद्वाजी (वनकपासके कच्चे फल), विदारीकंद और विधारा, ये १० औषधियाँ बृंहण कही है।

काकोल्यादि गण—सुश्रुत संहिताकथित काकोली आदि १८ औषधियाँ बृंहण है। इसका वर्णन पहिले पित्त शमन रूपसे किया है।

और बृंहण औषधियाँ—सुवर्ण, लोह, सुवर्णमाक्षिक, जसद, अभ्रक, शिलाजीत, मुक्ता, प्रवाल, असगन्ध, मिश्री, दूध, घृत, मधुर और स्निग्ध औषधियाँ तथा अनुवासन वस्ति आदि।

फलोमें, आम, आम्रातक नारियल, केला, खजूर, पनस, फालसा, तालफल, गभारीफल, खिरनी, महुवा, बड़े मधुर बेर, बेलफल, गुलर फल, ल्हिसोडा, बादाम, पिस्ता, अखरोट न्योजे, चिलगोजा, उरुमाण (तैल प्रधानमधुर फल), चिरौजी, काजू आदिमे न्यूनाधिक अंशमे बृहण गुण अवस्थित है।

अनुवासन बस्ति—वह स्नेहन प्रधान है। स्नेहमें घी, तैल, वसा और मज्जा, ये ४ है। इनमे तैल मुख्य है। तैलोंमे भी तिल तैल प्रधान है। वात कफप्रकोपके रोगियोके लिये तैल, वसा मज्जा और घी, इन चारोमे यथापूर्व श्रेष्ठ है अर्थात् सबसे तैल श्रेष्ठ है, किन्तु पित्तविकारोमे यथोत्तर श्रेष्ठ हैं अर्थात् सबसे घीको विशेष हितावह माना है।

अनुवासन बस्तिका उपयोग—

देह निरूहेण विशुद्धमार्गे संस्नेह वर्णबलप्रदं च।
न तैलदानात् परमस्ति किञ्चि द्रव्यं विशेषेण समीरणार्ते॥

निरूह बस्ति द्वारा मार्गकी सम्यक् शुद्धि हो जाने अर्थात् अनुवासन वस्तिका प्रयोग करनेपर वर्ण और बलकी वृद्धि होती है। वात-पीडितोके लिये बहुधा इस बस्तिसे श्रेष्ठ कोई उपाय नही है।

देहमे तैलका उपयोग हो जानेमे कृशता, रूक्षता लघुता और शीतलताका नाश होता है। मनकी प्रसन्नता तथा बल, वीर्य वर्ण और अग्निकी पुष्टि

होती है। फिर आगे लिखते है कि—

मूले निषिक्ते हि यथा द्रुमः स्यान्नीलच्छद कोमल पल्लवाग्रः।
काले महान् पुष्पफलप्रदश्च तथा नर स्यादनुवासनेन॥

जिस तरह मूलमे जलका सिचन करनेसे वृक्ष कोमल हरे पत्तों वाला (हराभरा) बन जाता है, शाखा नयी नयी फूटती जाती है और कुछ समयमे वृक्ष बडा होकर फूलो ग्रौर फलोसे सुशोभित मालूम देता है, उसी तरह अनुवासन वस्तिका योग्य सेवन करनेपर मनुष्य भी कुछ समयमे देहसे मोटा, सुदृढ, अनेक सतान युक्त यशस्वी और कीर्तिमान हो जाता है।

अनुवासन वस्ति कितनी देना, इस विषयमे मतभेद है। सामान्यतः देह पुष्ट हो और सहन हो सके उतनी देनी चाहिये। अनुवासन बस्तिके अधिकारी, समय, अनधिकारी, बस्ति मर्यादा, अपथ्य आदिका विचार चिकित्सातत्त्वप्रदीप प्रथम खण्डके पृष्ठ ६९ से ८६ के भीतर किया गया है।

अनुवासनोपग—अनुवासन वस्तिमें सहायता देनेवाली औषधियां-रास्ना, देवदारु, विल्व, मैनफल, सोया, श्वेत पुनर्नवा, रक्तपुनर्नवा, गोखरू, अरणी और श्योनाक, ये १० कही गई है।

(२०) शिरोविरेचन।

मस्तिष्कशोधन-एर्हिन्स-स्टर्नुटेटोरिज।

Errhines-Sternutatories

नस्य करने पर मस्तिष्कके दोषको नाकसे गिरानेवाली औषधियां। इन मे अनेक औषधियां छीके लाती हैं और कितनी ही नही लाती। छीके न लानेवाली अनेक उग्र औषधियां सूंघने मात्रसे नासिकाकी श्लैष्मिक कलामें प्रदाहकी उत्पत्ति करती है, फिर वहांसे रसस्राव होने लगता है।

शिर विरेचनोपग—मालकांगनी, नकछिकनी, कालीमिर्च, पीपल, वाय-विडंग, सहजनेके वीज, सरसो, अपामार्गके वीज, श्वेत अपराजिता, (गोकर्णी) और कृष्ण अपराजिता, ये १० औषधियां चरकसंहिताकारने नस्य कर्मके लिये उपयोगी लिखी है।

अष्टाङ्ग हृदयकार लिखित शिरोविरेचन—वायविडङ्ग, अपामार्ग के वीज, सोठ, मिर्च, पीपल, दारुहल्दी, सुराला (श्रेष्ठ सर्जरस), सिरसके वीज, बडी कटेलीके फल, सुहिजनेके वीज, महुएके फूलका रस, सैंधानमक, रसोंत, छोटी इलायची, बडी इलायची और काला जीरा।

इनके अतिरिक्त छींके लानेवाली तमाखू, कायफल, लोवान, बकुल, मैनफल, वच, सिरस, सरसोंका तैल, घृत, त्रिकटु, कुलिजन, इलायची, द्रोणपुष्पी, कठ, इन्द्रजो, अर्क-दुग्ध-मिश्रित भस्म आदि औषधियां।

श्लैष्मिक कलामें उग्रता उत्पादक—नौसादर चूनेका मिश्रण, सिरकेकी वाष्प, चंदान (देवदाली), नीलगिरी तैल पीपरमेण्टका तैल, मिर्च आदि।

इस प्रकारकी औषधियोका नस्य रूपसे उपयोग करनेसे मस्तिष्कसे संचित दोष बाहर निकल जाता है। इस वर्गकी औषधियोसे रक्त-भारकी वृद्धि होती और मस्तिष्कस्थ शिरासमूह परम्परागत प्रसारित होकर मस्तिष्कमें उत्तेजना उपस्थित होती है।

शिरोविरेचनके लिये जो नस्य औषधिया प्रयोजित होती हैं, उनके बृंहण, शिरोविरेचन, प्रतिमर्श, अवपीड और प्रधमन, ये ५ भेद है। इन सबकी विधि, अधिकारी, फल, नस्यके पश्चात् कर्त्तव्य, अपथ्य आदिका विस्तृत विवेचन 'चिकित्सातत्वप्रदीप' प्रथम खण्डके पृष्ठ ८९ से ९४ तक किया गया है।

शिरोविरेचन हेतु—

(१) नासारन्ध्रकी श्लैष्मिक कला नीरस होनेपर उसे आर्द्र करना और घ्राणशक्तिका ह्रास होने पर उसे उत्तेजित करना।

(२) अधिक श्लेष्मा निःसरण द्वारा दोहन (अपतर्पण) और स्थानिक वातवहा नाडियोकी उत्तेजना द्वारा प्रत्युग्रता साधन करके शिरदर्द, हिक्का, नेत्ररोग, कर्णरोग कर्ण-पथमे शोथ (यूस्टेकियन ट्यूबेर Eustachian-Tuber) आदि पर लाभ पहुँचता है।

(३) प्रसव वेदना कालमे प्रसव पथमे कोई व्याघात न हो, तो सन्तान या भ्रूणको बाहर निकालनेमे सहायता पहुँचाती है।

(४) नासारन्ध्रस्थ वातनाडियोंकी उत्तेजना मस्तिष्कमे जाती है; फिर तत्काल वक्षः, ग्रीवा और मुखकी मांसपेशियोंमे प्रत्यावर्तन होकर उसकी एक कालीन क्रिया द्वारा छीक उत्पन्न होती है। उसी समय समग्र वात वहा मण्डल उत्तेजित हो जाता है, इस हेतुसे मूर्च्छावस्था (वेहोशी) में प्रयोग करनेपर चेतना आ जाती है। इसके अतिरिक्त नासिका या श्वास-नलिकामे किसी द्रव्यका प्रवेश हुआ हो, तो वह निकल जाता है। मस्तिष्क मे भारीपन रहता हो तो मस्तिष्कमेसे दूषित मलका स्राव होकर वह शमन हो जाता है। फिर स्मरण-शक्तिको भी लाभ पहुँच जाता है।

सूचना—श्वास मार्ग या फुफ्फुसमेसे रक्तस्राव, मूर्च्छा, रक्त-वाहिनियो की दीवारकी अपक्रांति (Atheroma), अन्त्रावतरण या गर्भाशय निर्गमन आदि विकारसे पीडित या उनके अनुकूल प्रकृति वालोको नस्य करानेकी औषधि नही देनी चाहिये।

(२१) वमन।

वान्तिकर-इमेटिक्स—Emetics-

अपक्वपित्तश्लेष्माणौ बलादूर्ध्वं नयेत्तु यत्।
वमनं तद्धि विज्ञेयं मदनस्य फलं यथा॥

जो द्रव्य अपक्व केवल पित्त अथवा केवल कफको या दोनोको (अपक्व

अन्नको और आमाशयमे विष हो तो विषको भी) बलात्कारसे ऊपर उछाल कर मुख द्वारा बाहर निकाल देवे, उसे वमन कहते है। जैसे मैनफल।

यद्यपि आचार्योंने कफशोधनार्थ वमन तथा पित्तनिर्हरणार्थ विरेचन कहा है, तथापि आमाशयस्थ विकृत उग्र अपक्व पित्तका निर्हरण वमनसे कराना विशेष हितावह माना गया है। इसी हेतुसे अम्लपित्त चिकित्साके प्रारम्भमे वमन द्वारा शोधन करनेकी आज्ञा दी गई है।

इस सम्बन्धमे श्री वाग्भट्टाचार्य जी कहते है—

अपक्वं वमनं दोषान् पच्यमान विरेचनम्।
निर्हरेद्वमनस्यातः पाकं न प्रति पालयेत्॥

अपक्व दोषोको दूर करनेके लिये वमन और पच्यमान दोषोके लिये विरेचन व्यवहृत होता है।

वमनोपग—चरक संहिताकारने वमन करानेमे सहायक औषधियां—शहद, मुलहठी, लाल कचनार, सफेद कचनार, कदम्ब, जलबेंत, बिम्बी, (कन्दुरी), शणपुष्पी, आक, अपामार्ग आदि कही हैं।

चरक संहिता कथित वमन औषधियां—मैनफल, मुलहठी, नीम, देवदाली, कड़वी तुरई, पीपल, कुड़ेकी छाल, कडुवी तुम्बी, छोटी इलायची, घिया तुरई इत्यादि औषधिया आमाशयगत श्लेष्म पित्तविकार उपस्थित होनेपर देहको कष्ट न पहुँचे उस रीतिसे वमन कराती है।

विमान स्थानमे लिखि हुई औषधिया—मदनफल, देवदाली, कड़वी तुम्बी, पीतपुष्पा कोशातकी, इन्द्रजौ, कडुवी तुरई इन सबके फल। इनमे मैनफल, देवदाली, कडुवी तुम्बी और कडुवी तुरईके पत्ते और फुल भी। अमलतास, वृक्षक (मीठे इन्द्रयव), मैनफल, स्वादुकण्टक (छोटे गोखरू) पाठा, पाढल, गुञ्जा, (मतान्तरमें कोआठोड़ी), मूर्वा, सतौना, करंजवृक्ष, नीम, परवल, कडुवा करेला, गिलोय, सोमवल्क (सफेद खैर), चित्रक (सफेद एरण्डकी जड), द्वीपि (छोटी कटेली), सुहिजनेकी जड, इनके कषायोसे मुलहठी (मतान्तरमे शहद), महुआ, सफेद कचनार, कर्बुदार (लाल कचनार), नीप (कदम्ब), जलबेत, बिम्बी (कंदूरी), शणपुष्पी, सदापुष्पी (लाल आक), प्रत्यक् पुष्पी (औधा-फूली, मतान्तरमे अपामार्ग) इनके कषायोंसे छोटी इलायची, रेणुका, प्रियंगु, बड़ी इलायची नेपाली धनिया, नगर; नलद (जटामांसी), उशीर, तालीसपत्र, खस, गोपी (सारिवा), इनके कषायोंसे। ईख, काण्डेक्षु (ईखभेद), इक्षुवालिका (ईखभेद), दर्भ, पोटगल (नल) कालंकृत (कसौंदी), इनके कषायोंसे। सुमना (चमेली), जाविती, हल्दी, दारुहल्दी, श्वेत पुनर्नवा, महासहा (माषपर्णी), क्षुद्रसहा (मुदगपर्णी), इनके कषायोमे शालमली (सेमल), शालमलक (रोहितक), भद्रपर्णी (गम्भारी या प्रसारणी), एलापर्णी (रास्ना), पोई शाक, उद्दालक

(बनकोदों), धामन, खिरनी, उपचित्रा (उदरकानी-मुसाकानी), गोपी (सारिवा), शृंगाटिका (जीवन्ती) इनके कषायोसे । पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, सरसो, गुडकी राव, दूध, क्षार, नमक, इनके हिम या जलोसे । जो औषधिया मिल सके उनसे इच्छानुरूप संस्कारकर वर्ति, चूर्ण, अवलेह, घृत, कषाय, मासरस, यवागू, यूष, काम्बलिक (काजी विशेष) तथा दूध रूपमे प्रयोग किये जानेवाले योग, मोदक अथवा अन्य प्रकारके प्रयोग तैयारकर रोगीको विधिपूर्वक वमन देवे ।

मदनफल आदि मुख्य वमन द्रव्योको आरग्वध आदिके क्वाथसे भावना देकर या पाक करके वर्ति आदि प्रयोग बना लेवे ।

इनके अतिरिक्त हस्तीशुण्डी, कडुवी ककडी, राई, वच, रीठा, नीलाथोथा, गरम जल आदि औषधियोसे भी वमन होती है ।

वान्तिकर ओषध सेवन करनेपर कुछ समयके पश्चात् ग्लानि होने लगती है; मुखमण्डल रक्तहीन, शरीर शीतल, प्रस्वेदसे भीगा हुआ, धमनीकी गति निस्तेज और चचल, मुखमेसे लालास्राव, मासपेशियोमे शिथिलता, दुर्बलता और अत्यन्त व्याकुलता आदि लक्षण होकर फिर वमन होती है । उस समय नाडी, अनियमित श्वसन, मुखमण्डल लाल हो जाना, मुख, कपाल और कण्ठ देशकी सब शिराएँ शिथिल हो जाना, मस्तिष्कमे रक्तकी वृद्धि और भारीपन आदि लक्षण प्रतीत होते है ।

फिर हार्दिक कपाटिका (Cardiac Sphincter) खुल जाती है और आमाशय-प्रणिलिका प्रदेश (Pyloric Vestibule) दृढ बन जाता है । फिर आमाश मे रहे हुए द्रव्य उदरपेशिया और महाप्राचीरा पेशीके समकालीन आकुचन द्वारा बाहर आ जाते है । यदि पुन· पुन वमन होती रहे, तो उदर गह्वरस्थ सब ग्रन्थियोपर अधिक दबाव पडता है । पश्चात् सब ग्रन्थियोसे रसस्राव अधिक मात्रामे होता है और बाहर निकलता रहता है । एव पित्ताशयका पित्त और अग्न्याशयका आग्नेय रस भी निर्गत होने लगता है ।

वमन प्रकार—१ स्थानिक, २ सार्वाङ्गिक ।

जो स्थानिक कार्यकारी औषधियाँ है, वे गलनिका, अन्ननलिका और आमाशयपर कार्यकर अर्थात् प्राणदा नाडियोके सिरेपर क्षोभ उत्पन्न कराके वमन कराती है और सर्वाङ्गिक कार्यकारी औषधियोकी भौतिक क्रिया सुषुम्णा (Medula) मे अवस्थित वमन करानेवाले वातनाडी केन्द्रके अधीन है । जब वातवहा-नाडिया अथवा विविध स्थान—मस्तिष्क, नेत्र, नासिका, कण्ठ, अन्न-नलिका, फुफ्फुस, हृदय, आमाशय, अन्त्र, पित्ताशय, वृक्क, उदर्य्याकला, गर्भाशय आदिपर औषध दिया होकर वातनाडियो द्वारा केन्द्राभिमुख प्रतिफलित होती है, तब केन्द्र स्थान उत्तेजित होता है । फिर

वमन कराती है।

स्थानिक कार्यकारी-अप्रत्यक्ष या प्रतिफलित क्रिया द्वारा कार्यकारी)-फिटकरी, नीलाथोथा, नमक, नालुनाका गरम फाट, जगली प्याज, वासा, अधिक परिमाणमे उष्ण जलपान, मॅनफल और राई आदि। इन औषधियों की क्रिया अल्पक्षण स्थायी होती है। बहुधा आमाशय शून्य होनेपर क्रिया निवृत्त हो जाती है। इन स्थानिक कार्यकारी औपधियोसे अधिक क्षीणता नही आती; अत: आवश्यकतापर उचित मात्रामे निर्भयतापूर्वक दी जा सकती है। जितना इन सबमे नमक मिश्रित निवाया जलपान विशेप सौम्य है। उकड़ू बैठाकर हो सके उतना अधिक परिमाणमे जलपान करनेसे तत्काल विना त्रास कै हो जाती है।

सार्वाङ्गिक कार्यकारी—(प्रत्यक्ष कार्यकारी) रक्त सचालनमे मिश्रित होनेसे वमन केन्द्र उत्तेजित होनेपर कार्य करनेवाली औषधियाँ—रीठा, सत्यानाशीके बीजका तैल, हस्तिशुण्डी, बच, बन्दाल, अर्क-मूल-त्वक्, तमाखू, अफीमक्षार (एपीमोर्फाइन), डिजिटलिस आदि। इस प्रकारकी औपधियोसे अधिक काल-पर्यन्त वमन, उबाक, क्षीणता, अङ्गोमे शिथिलता और रक्त सचालनमे मन्दता होती है। तथा लाला, प्रस्वेद और कफ (श्वासनलिका और आमाशयमेसे श्लेष्म) का स्राव अधिक होता है।

वमन प्रयोग हेतु—

१ आमाशयमे अपचन क्षोभ होनेपर भुक्तद्रव्य, पित्त, श्लेष्मा, सेन्द्रिय-विष, या इतर विष हो, उन सबको निकाल आमाशयको शून्य करना।

२ अन्न-नलिका या श्वासनलिकामे वाह्य पदार्थका प्रवेश हो जानेपर उसे वाहर निकालना।

३ धमनीकी पुष्टि और गतिका ह्रास कराना, तथा मासपेशियोको शिथिल कराना।

४ कण्ठ और वृहद् श्वासनलिकामे श्लेष्मा सचित हो या कृत्रिम त्वचा वर्त्तमान हो, तो अति सूक्ष्म मात्रामे उसे वाहर निकालना।

५ पित्ताशयमेसे पित्ताश्मरी और पित्तका नि:सरण करना।

६ रह रहकर आनेवाले विषम ज्वर-नाशक औषधिके गुणमे वृद्धि कराना।

७. विरेचन-जन्य शौच वन्द न होनेपर उसे वन्द कराना।

८. आभ्यान्तरिक रक्तस्राव होनेपर रक्त संग्रहका निवारण कराना।

९. प्रसव वेदना होनेपर गर्भाशय ग्रीवाकी कठोरताका दूरीकरण।

१० स्वेदोत्पत्ति द्वारा रक्तमे लीन विषको वाहर निकाल देना।

यदि आमाशयस्थ आहार द्रव्य पचन न हुआ हो, वह परिवर्तित होकर अम्ल और उग्र रस युक्त हो गया हो, फिर मस्तिष्क आदि उत्तर यन्त्रोंमे

वेदना उत्पन्न कराता हो, तो उसे वमनकारक औषधि देकर सत्वर बाहर निकाल देना चाहिये ।

यदि आमाशय शूल और अपचन-जनित शिरदर्द हो रहा हो, उबाक आती हो तथा व्याकुलता प्रतीत होती हो, तो थोडा नमक मिला हुआ निवाया जल लगभग १-२ पौंड या अधिक परिमाणमे पिलाकर वमन करा देना चाहिये। यदि जल कम पिलाया जाय, तो आमाशयके उत्तेजक पदार्थ द्रवीभूत होकर लाभ पहुँच जाता है; परन्तु वमन नही होती ।

सेवित विषको बाहर निकालनेके लिये नीलाथोथा, राई आदि औषधि को जलमे मिलाकर पिलाया जाता है । (केवल अफीमके विषमे वामक औषधि नही दी जाती; किन्तु स्टमक पम्प द्वारा विषको बाहर निकाल लिया जाता है) अनेक बार सर्पविष आदिमे आमाशयको शून्य करनेके लिए रीठा, नीलाथोथा, पीनेकी तेज तमाखू आदि औषधियाँ अत्यधिक मात्रामे प्रयोजित होती है ।

क्षुद्र पित्ताश्मरी जनित शूलमे पित्तस्राव अधिक करा पित्तनलिकामेसे अश्मरीको निकाल देनेके लिये वामक औषधका सेवन कराया जाता है, परन्तु साथ-साथ वमन कालमे उदरस्थ मासपेशियोको और यकृत्को दबाते रहना चाहिये । इनको दबानेसे पित्तस्रावमे वृद्धि होकर अश्मरी और श्लेष्मा-जनित पित्त-मार्गविरोध दूर हो जाता है ।

पित्तज्वर, अम्लपित्त आदि रोगोमे वमन करानेपर ज्वरोत्पादक विष, दूषित पित्त और हानिकर द्रव्य बाहर निकल जाता है ।

कण्ठरोहिणी (Diphtheria) और स्वरयन्त्रका आक्षेप-गलौघ (Croup) इन रोगोमे अधिक श्लेष्म स्राव होकर श्वासावरोध होनेपर वामक औषधिका सेवन कराया जाता है। स्वरयन्त्रकी विकृतिमे नीला-थोथा, फिटकरी आदि तथा कण्ठरोहिणीमे मैनफल, हस्तिशुण्डि आदिका उपयोग होता है (कण्ठमे एरण्ड काकडीका दूध भी लगाया जाता है) ।

सर्पविष, पागल कुत्ता आदि जीवोका विष और जीर्ण उपद्रवयुक्त उप-दंश व्याधियोमे नीलाथोथा, रीठा, सत्यानाशीका तैल, पीनेकी तमाखू आदि औषधियाँ उपकार दर्शाती है ।

सूचना—१. हृदय रोग, शिरोरोग, मन्यासके वशवर्ती, धमनी विस्तार या धमनीकी दीवारकी विकृति, तथा फुफ्फुस, आमाशय और गर्भाशय आदिसे रक्तस्रावके वशवर्ती, आमाशय प्रदाह, अन्त्र प्रदाह, उदर्याकला प्रदाह, पूर्ण गर्भावस्था और अति दुर्बल व्यक्तियोको वामक औषधि नही देनी चाहिये ।

२. यदि अन्त्रावतरण और गर्भाशय निर्गमन वालोको वामक औषधि देनी हो, तो अति सम्हालपूर्वक देनी चाहिये ।

३. सगर्भा स्त्रीको गर्भपात प्रवणता हो, तो वमनकारक औषधि नही देनी चाहिये।

४. उष्ण जलका सेवन करने और कण्ठप्रदेशमे अगुली डालनेपर वान्तिकर औषधिकी क्रिया होनेमे सहायता मिलती है।

५ शीतलता और अफीमका सेवन वमन होनेमे प्रतिवन्धक है।

६. वाल्यावस्थामे वमनकारक औषधिसे अधिक क्लेश नही होता। औषधि सरलतापूर्वक सहन हो जाती है, परन्तु सौम्य औषधि देनी चाहिये।

७. विषप्रकोपमे नीलाथोथा उत्तम औषधि है। इसकी क्रिया सत्वर होती है; तथा अधिक ग्लानि और दुर्बलता नही आती। इस तरह राईसे भी ग्लानि कम होती है; परन्तु राईका कार्य सत्वर प्रकाशित नही होता।

८. श्लेष्म-पित्तको निकालनेके लिये मनफल निर्भय ओर हितकर औषधि मानी गई है; तथा आमाशय और अन्त्रमे अपचन-जनित आमके सशोधनार्थ लवण जल श्रेष्ठ है।

९. वमनकारक औषधि सेवन करनेपर आमाशयकी धारण-शक्ति कम हो जाती है, अत वार-वार वामक औषधिका सेवन नही करना चाहिये। अन्यथा अजीर्ण रोग उपस्थित होता है।

१० यदि वमन अधिक हो, तो उदरपर राईका पलस्तर लगाना चाहिये; अथवा अफीमका सेवन कराना चाहिये।

वामक औषधि सेवनमे उपद्रव—वमन कराने वाली औषधियोके प्रयोग मे गर्भपात, अन्त्रवृद्धि, अन्त्रावतरण, संन्यास, रक्तोत्कास, श्वासावरोध, गर्भाशय निर्गमन, उदर प्रदेश की मासपेशियोका विदारण आदि उपद्रव उपस्थित होते हैं, किन्तु ये सव उपद्रव अति विरल होते है।

विकृत कफ-पित्तको निकालनेके लिये वमन देनेमे आयुर्वेदने विधि, अधिकारी, फल, वमनके पश्चात् कर्म, अतियोगमे प्रतिकार वमनके अनधिकारी इन सवका विचार किया है। इन सवको भलीभांति जानकर छर्दि-कारक औषधि देनी चाहिये। इसका विस्तृत विवेचन "चिकित्सा-तत्व प्रदीप" प्रथम खण्ड पृष्ठ ५६ से ६७ तक देखे।

(२१) छर्दि-निग्रहण।

वान्तिहर-वमन निवारक एण्टिइमेटिक्स।

(Antiemetics)

जो द्रव्य के और उबाकको वन्द करे तथा कारणभूत दोषको दूर करे, उसे छर्दि-निग्रहण सज्ञा दी है।

छर्दि निग्रहण वर्ग—जामुनके पान, आमके पान, विजौरा, खट्टे वेर, अनारदाने, जौ, साठी चावल, खस, गोपीचन्दन और लाजा (धानकी लाजा) ये १० औषधियां चरक सहितामे लिखी है।

सुश्रुत संहितामे आरग्वधादि, पटोलादि तथा गुडूच्यादि गणको वमन-निवारक कहा है। इनमेसे आरग्वधादिका वर्णन नं० ३७ कण्डूघ्न तथा शेष दोनोका नं० ९० ज्वरघ्नमे वर्णन किया जायगा।

शेष वान्तिहर औषधियाँ—सतरा, मोसम्बी, अंगूर, आवला, धनिया, सौफ, फिटकरी, जीरा, नागकेसर, इलायची, केला, नागरमोथा, पित्त-पापड़ा, पद्मकाष्ठ, पीपल वृक्षकी राखका जल, रक्तचन्दन, लोहबान, गिलोय, बर्फ, अदरख, दालचीनी, सोठ, मयूरशिखा भस्म, शुक्ति भस्म, वराटिका भस्म, राजावर्त पिष्टी, तुलसी, हरड, शठी, वंशलोचन, पटोल-पत्र, कुटकी, मूर्वा, पाठा और मृदु विरेचन आदि।

डाक्टरी मतानुसार वमन-निवारक औषधियोके दो प्रकार है। १. आमाशयके क्षोभसे उत्पन्न वमनको शान्त करने वाली औषधिया, उनको स्थानिक या प्रत्यक्ष वान्तिहर (Direct antiemetics) संज्ञा दी है।

२ सुषुम्णास्थ वमन केन्द्रपर कार्यकारी औषधियाँ, उनको परम्परागत कार्यकारी कहा है।

जब वमन केन्द्र उत्तेजित होकर वमन कराने लगता है, तब सत्वर लाभ नही पहुँच सकता। उदाहरणके लिये परिवर्तित वमन (Cyclic vomiting) समुद्र पर्यटनजन्य विकृति (Sea-sickness), सगर्भाकी वमन, पित्त नलिका या गवीनी, (Ureter) मे अश्मरीका फंस जाना और विविध विष या कीटाणुविषज प्रभावसे वमन केन्द्र उत्तेजित होता है यह वमन सरलता से निवृत्त नही होती।

स्थानिक वमननिवारक—बर्फ, शराब, अफीम, मौक्तिक, शुक्ति, प्रवाल, राजावर्त्त, फिटकरी, स्वल्पमात्रामे सोमल, लोबान, शठी, इलायची, वंग-लोचन, नागरमोथा, चाँगेरी, बिजौरा, मधुरअम्ल रसयुक्तफल, जीरा, मुनक्का आदि सारक औषधिया, धानका लावा, मिश्री मिला चूनेका जल आदि।

स्थानिक उपचारमे वर्फ उत्कृष्ट औषधि है। दुर्दमन वमनमे वर्फ मिला दूध या इतर पेय पदार्थ पीने और वर्फके टुकडोको मुहमे रखकर चूसते रहनेसे वमनकीनिवृत्ति हो जाती है।

पीपल (अश्वत्थ) वृक्षकी छालकी राखको १६ गुने जलमे भिगोकर नितरा हुआ जल थोड़ा-थोडा पिलाते रहनेसे या शठीका सेवन करानेसे भी तत्काल गुण प्रतीत होता है।

राजयक्ष्मा रोगीकी वमनमे गोपीचन्दन और फिटकरी तथा मूत्राघात जनित वमनमे राजावर्त्त लाभदायक है।

वमन केन्द्र और वातवहानाडियोपर कार्यकारी औषधियाँ—अफीम रौप्यभस्म, गिलोय सत्व, मिश्री मिला आँवलेका रस, स्वल्प मात्रामे सुरा सत्व (Alcohol), राईका प्लास्टर आदि।

ये औषधियां आमाशयस्थ वातनाड़ियां और वमन उत्पादक वातनाड़ी केन्द्रकी उग्रताका ह्रास करा वमनका निवारण कराती है। इनके अतिरिक्त विविध यन्त्रोंकी उग्रताका भी शमन कराती है।

आमाशयमें उग्र तरल पदार्थ होनेपर अधिक परिमाणमे निवाया जल पिला, के करा देनेसे उवाक और वेदनाकी निवृत्ति हो जाती है। फिर प्रवाल पिष्टी, शुक्तिभस्म, वराटिका भस्म, सोडा या इतर क्षार आदि औषधि देनेसे स्थिर लाभ पहुँच जाता है।

आमाशयमे वेदना होती हो, तो आमाशय अवसादक रूपसे अफीम या सोमल हितकर है।

आमाशयकी श्लैष्मिक कलामे तीव्र उग्रता हो जानेसे छर्दि होती हो, तो वर्फ शुक्ति भस्म, गिलोय, सत्व आदि तथा चिरकारी मन्द उग्रताऔर रक्त संग्रह जन्य वमन होनेपर मधुर-अम्ल फलोका रस, आवला, लोवान, फिटकरी आदि उपकारक है।

अन्त्रावतरण, पित्ताशय शूल, वृक्कशूल, अन्तर्विद्रधि आदि विकारोंमें वमन रूप उपद्रव होनेपर मूल कारणको दूर करना चाहिये।

सगर्भाके वमनने फलोका रस और आमाशय अवसादक औषधियां दी जाती है।

इन वमन-निवारक औषधियाका विशेष विवेचन छर्दि चिकित्सा में 'चिकित्सातत्त्वप्रदीप' द्वितीय खण्डमे किया है।

मोर्फियाके प्रकोप या आमाशयके मुद्रिका (Pyloric) द्वारके आक्षेप जन्य वमनपर सूची बूटी सत्व (Atropine) का प्रयोग उपकारक है।

डाक्टरीमे वमन केन्द्रपर शामक असर पहुँचानेके लिये निद्राप्रद औषधियां—ब्रोमाइड और क्लोरल हाइड्रेटका प्रयोग बडी मात्रामे करते है। कभी अमिल नाइट्रिट और नाइट्रोग्लिसरीन भी उपयोगी होती है।

आमाशय अवसादक हाइड्रोस्येनिक एसिड, कोकेन, टिंचर आयोडीनकी कुछ बूंदे, बिस्मथ लवण आदिका उपयोग भी किया जाता है।

(२३) तृष्णा-निग्रहण।

तृषाशामक-पिपासाहर-रेफ्रिजरण्ट्स।

(Refrigerants)

जो औषधियां प्यासको रोकें तथा उसके कारण रूप दोषको दूर करें, उनको तृषा-निग्रहण कहते हैं।

तृषा-निग्रहण वर्ग — सोंठ, धमासा, नागरमोथा, पित्तपापड़ा, रक्त (और श्वेत) चन्दन, चिरायता, गिलोय, नेत्रवाला, धनिया और पटोल, ये १० औषधिया तृषा शामक है।

सुश्रुत संहिता मे सारिवादि, परूषकादि, उत्पलादि, गुडूच्यादि और

अम्बादि गणको तृषा-शामक लिखा है। इनमेसे सारिवादि, परूपाकादि तथा उत्पलादि, इन गणोंका वर्णन न० ५१ दाह-शामक वर्गमे, अम्बादि गणका वर्णन नं० ३९ विषशामक वर्गमे तथा गुडूच्यादि गणका वर्णन ज्वरघ्न नं० ९० में किया जायगा।

और तृषाशामक औषधियाँ—वंशलोचन, आवला, लौग, बडी इलायची, जौ, धानका लावा, गन्ना, मीठा दही, नीबूका रस, सन्तरा मोसम्बी, पकी इमली, मधुराम्ल, अनारदाने, अगूर, मुलहठी, अतीस, इस्सबगोल आदि।

डाक्टरी मतानुसार २ विभाग—१ स्थानिक, २ सर्वाङ्गिक। मुख, तालु, कण्ठ आदि शुष्क होनेपर पिपासाका बोध हो, उसे स्थानिक, और रक्तमे द्रवणीय पदार्थ (विशेषत क्षार) के परिमाणकी वृद्धि होने या रक्तमे जलका परिमाण न्यून होनेपर पिपासाकी उत्पत्ति होवे, उसे सर्वाङ्गिक पिपासा कहते है।

स्थानिक पिपासा निवारक औषधियाँ—जलपान, अत्यधिक जल मिला हुआ उद्भिद् अम्ल, सुपारी, लौग, धनिया, इलायची, मधुराम्ल फलोका रस, आंवला, आदिका मुखमे धारण कर रस निगलना।

सार्वाङ्गिक पिपासा निवारक औषधियाँ—जलपान, वंशलोचन, अफीम पित्तपापडा, धमासा, चिरायता, कडुवी नाई, गुडमार वेलपत्र आदि। इनमे अफीम वातवहानाड़ियोके पिपासोत्पादक केन्द्रकी उग्रताका ह्रास कराकर प्यासका दमन कराती है।

तृषा निदान और तृषा चिकित्सा सम्बन्धी विशेष विचार "चिकित्सा तत्व प्रदीप" द्वितीय खण्डमे किया गया है।

(२४) स्वेदन।

स्वेदजनक घर्मकारक-डायाफोरेटिक्स-स्यूडॉरिफिक्स।

(Diabhoretics-Sudorifics)

जो द्रव्य स्तम्भ (अङ्गोका जकडना), भारीपन और शीतको दूर करें तथा पसीना ला देवे, उसे स्वेदन कहते है। स्वेदन द्रव्योमे उष्ण, तीक्ष्ण, सर (या स्थिर) स्निग्ध (या रूक्ष), सूक्ष्म, द्रव्य और गुरु गुण प्रायः होते है।

ईश्वर रचित इन शरीरोमे विविध यन्त्रोका व्यापार नित्य निरन्तर होता रहता है। साथ-साथ आहार आदिसे पोषक तत्वका सात्म्यकरण तथा विकृत हुए और हानिकर तत्वका पृथक्करण भी यथा नियम होता रहता है।

विकृत तत्व रूप मलमे कुछ भाग स्थूल और कुछ सूक्ष्म है। जो भाग स्थूल है, वह विशेषत. बृहदन्त्रमे आकर गुदा द्वारसे बाहर निकलता है, तथा जो सूक्ष्म अंश है वह रक्तमे आकर फिर मूत्रके साथ और प्रस्वेद रूप से बहिर्गमन करता रहता है। यदि इस शारीरिक विष निकलनेकी क्रियामे

व्याघात हो जाय,तो स्वास्थ्यको हानि पहुँचती है। इस हेतुसे सब क्रिया सतत होती रहती है। इनमे प्रस्वेद लानेकी क्रिया भी दिन और रात, शीतकाल और उष्णकाल मे सर्वदा होती रहती है। शीतकालमें प्रतिक्रिया होकर शारीरिक उत्तापकी वृद्धि होती है; फिर रक्ताभिसरण क्रिया उत्ते-जित होकर प्रस्वेद निकलनेमे सहायता पहुँचाती है। उष्णकालमे शारीरिक उत्ताप न्यून हो जाता है, फिर चर्मस्थ शिराएँ और ग्रन्थियाँ शिथिल होकर स्वेद रूप विषको निकाल देती है। शीतकालमे घर्मकी मात्रा न्यून होनेसे वाहर निकलनेका बोध नही होता, और उष्णकालमे स्वेद अधिक आनेसे स्पष्टतया जाना जाता है।

यदि किसी कारणवश अधिक शीत लग जाय, तो शारीरिक उत्ताप वहुत कम हो जाता है, रक्ताभिसरण क्रिया मन्द हो जाती है, स्वेदावरोध हो जाता है; एव पचनक्रिया विकृत होकर आमवृद्धि भी हो जाती है। फिर स्वेद लानेकी क्रिया यथोचित नही हो सकती। इस तरह स्वेदावरोध होनेपर औषधि सेवन या इतर चिकित्सा करके इस क्रियाको नियमित वनानेका प्रयत्न किया जाता है। अन्यथा अनेक व्याधियोकी उत्पत्ति हो जाती है। इसके अतिरिक्त क्वचित् आहार-विहारमे भूल होनेपर रक्तमे विष वृद्धि हो जाती है, तव रक्तमेसे विपको बाहर निकालने या मूत्रपिण्डो की विकृतिमे मूत्रपिण्डोको शान्ति देनेके लिये भी स्वेद लानेकी क्रिया उत्तेजित कराई जाती है।

यह स्वेद चर्ममे रही हुई घर्मग्रन्थियो द्वारा बाहर आता है। त्वचामे सर्वत्र अत्यधिक सख्यामे घर्मग्रन्थिया रहती है। जिस तरह वृक्कोमे रहने वाले अनेक कोप सर्वदा त्याज्य पदार्थको पृथक् कर मूत्रद्वारा व्राहर निका-लते रहते है, उसी तरह त्वचामे रहने वाले अनेक स्रावक कोष रक्तमेसे स्वेद द्वारा विपको वाहर निकालते रहते है। ये स्रावक कोष स्राव कराने वाली वातवहा नाडियो (Secretory Nerves) के अधीन हैं; और वातवाहिनियोका केन्द्रस्थान सुपुम्णामे अवस्थित है।

स्वेदस्राव जितना अधिक होता है, उतनी ही जल, नमक नत्रजन-विशिष्ट मलके परित्यागमे सहायता मिलती है। एव यह जलमेसे वाष्प वनाकर शारीरिक उत्तापको नियमित रखता है, २४ घण्टेमे विशेष अनु-कूल परिस्थिति होनेपर ५०० से ७०० सी० सी० (लगभग १७ से २४ औंस) अथवा इससे भी अधिक जल स्वेद मार्गसे व्राहर निकल जाता है।

स्वेदकी प्रतिफलित क्रिया अम्ल होती है, कारण, वसा ग्रन्थियोमेसे वसाम्लका स्राव मिल जाता है। यह स्वेद वातनाडियो और रक्तस्रावके प्रभावसे मूत्रमेसे या सार्वाङ्गिक अभिसरणमेसे पृथक् हो जाता है।

यदि त्वचाको अभिसरण क्रिया बिल्कुल न होती हो और स्वेदस्राव

प्रचुर हो रहा हो, तो वह स्वेद शीतल या मृत होता है। रक्ताभिरणकी आवृत्ति प्रचुर जलपान करनेपर जैसी होती है, वैसी अन्तर स्थिति होनेपर ही प्रचुर स्वेद स्राव हो सकता है।

घर्मग्रन्थियोको स्वतन्त्र (इडा-पिंगला) नाडीके तन्तु मिलते है, जो केन्द्रीय नाडी संस्थाके नियन्त्रणमे है। यदि देहगत औषध क्रिया विज्ञान दृष्टिसे (Pharmacologically) विचार किया जाय, तो परिस्वतन्त्र-नाडियो (Parasympathetic nerves) द्वारा स्वतन्त्र नाडियोको शक्ति मिलती है, अर्थात् नाडियोंके तन्तु द्वारा लवणोत्पन्न अम्ल (Acetylcholine) का प्रतिपादन होता है।

एड्रेनलिन, जो स्वतन्त्र नाडियोको उत्तेजित करता है, यह स्वेदस्राव पर कुछ भी असर नही पहुँचाता।

स्वेदोपग वर्ग—स्वेदन द्रव्योके साथ मिलानेपर उनकी शक्तिकी वृद्धि कराने वाले द्रव्य-सुहिजना, एरण्ड, आक, श्वेत पुनर्नवा, रक्त पुनर्नवा, जौ, तिल, कुलथी, उडद और बेर, ये १० औषधिया।

स्वेदजनक औषधिया—प्रवाल भस्म, कलमी सोरा, नौसादर, जवाखार, सप्तपर्ण, सहदेवीमूल, कुलथी, आककी जड, सुहिजनेकी छाल, द्रोणपुष्पी, एरडकी जड, बच्छनाग, फिटकरी, अनन्तमूल, कपूर, बनफसा, अकोल, वच, देवदारु, श्वेत पुनर्नवा, रक्त पुनर्नवा, नागरमोथा, अतीस, मालकागनी, कुटकी, मरुआ, सब्जा, तुलसी, रोहिषघास, सोठ, दालचीनी, कुसुम्भ, विशल्यकरणी, चाय, गरम जल, सौफ, शीतलमिर्च, गन्धक, तार्पिन तैल- वेर, उडद, जौ, तिल, कुलथी, आदि औषधियोंमे प्रस्वेदवृद्धि करानेका गुण है। इनके अतिरिक्त परिश्रम मार्गगमन, व्यायाम, सूर्यके ताप और अग्निका सेवन आदि भी धर्मवृद्धि कराते है।

इन औषधियोका प्रयोग तीव्र प्रतिश्याय, ज्वर, जलोदर, चिरकारी प्रवाहिका, अतिसार और कतिपय जातिके चर्मरोगोमे होता है। इनके अतिरिक्त जब मूत्रके साथ लसीका (शुभ्रप्रथिन एल्व्युमिन) जाती हो, वृक्क प्रदाहकी प्राप्ति हुई हो, या वृक्कमे अश्मरी आ जानेसे या इतर हेतुसे उसपर शस्त्र चिकित्साकी हो, तव वृक्कोको शान्ति पहुचाने (वृक्क क्रिया कम कराने) के लिये भी धर्मकारक ओपधिया प्रयोजित होती है।

गरम जल, चाय, कपूर सोठ, दालचीनी, सुरावीर्य आदि अनेक ओपधियोंमे उत्तेजक धर्मकारक गुण रहता है, और कतिपय ओपधियोमे अवसादक गुण न्यूनाधिक अंशमे रहता है। शारीरिक उत्ताप कम कराने और चर्मकी क्रियामे वृद्धि करानेके लिये अवसादक और स्वेदन गुणयुक्त बच्छनाग आदि विशेष हितावह मानी जाती है।

विविध जीर्ण चर्मरोगोमे चिरकारी पिटिका अदृश्य होनेपर आभ्या-

न्तरिक यन्त्रोमे प्रदाह हो जानेकी सभावना है। ऐसी स्थितिमें चर्मके रक्त-संचालन की वृद्धि करानेके उद्देश्यसे स्वेदल औषधि व्यवहारमे लाई जाती है।

जलोदर रोगमे मूत्रल औषधिके साथ स्वेदल औषधि देनेसे उदर्य्याकलामेमे जलका अधिक शोषण हो जाता है।

आयुर्वेदमे अनेक रोगोमे वाष्प द्वारा प्रस्वेद लानेका रिवाज है। परन्तु यह स्वेद वातप्रकृतिके लिये स्निग्ध, कफ प्रकृतिके लिए रूक्ष और वात-पित्त मिश्रित प्रकृतिवालोको रूक्ष स्निग्ध दिया जाता है।

स्वेद क्रियामें सार्वाङ्गिक और स्थानिक ऐसे दो भेद है। रोग भेद और प्रकृति भेदसे सर्वाङ्गिक स्वेदमे औषधि और क्रियामें भेद किया जाता है। स्थानिक स्वेदन (सेक) क्रियामे भी आमाशय, अन्त्र, हृदय आदि स्थान भेदमे अन्तर हो जाता है।

इस स्वेदन क्रियाके अधिकारी, विधि, फल, आदिका विस्तृत वर्णन "चिकित्सातत्त्व प्रदीप" के प्रथम खण्ड पृष्ठ ४७ से ५६ तकमे किया गया है।

स्वेदवर्द्धक औषधियोंकी क्रिया—

१ केन्द्रको प्रत्यक्ष उत्तेजित करनेवाली औषधियां—कपूर, अम्लप्रधान नौसादर (एमोनिया एसिटेट) आदि, यह शिराओंके रक्तकी उष्णता वृद्धि द्वारा उत्तेजित होता है।

२ नाडी तन्तुओके सिरे द्वारा उत्तेजित करनेवाली—पाइलोकार्पिन, फाइसोस्टिग्माइन, एसिटिलकोलिन आदि।

३ त्वचागत रक्तवाहिनियोंके प्रसारण द्वारा—सूर्यका ताप, उष्णता, उष्ण स्वेद, टर्किश बाथ, गरम पेय, त्वचागत रक्तवाहिनी प्रसारक विशेष औषधिया मद्यार्क, अफीम, (डोवर्स पाउडर-अफीम, नीलाथोथा, इपिकाक्युआना मिश्रण), क्लोरल, हाइड्रेट, सेलिसिलेट आदि।

४ केन्द्रकी प्रतिफलित उत्तेजना—कण्ठ, आमाशयकी उत्तेजना द्वारा जैसे गलेपर गुलगुली करने और वमन औषध-अर्कमूलत्वक, सुरमा, इपिकाक्युआना आदिका सेवन करनेपर प्रतिफलित क्रिया द्वारा स्वेद लाता है। इस तरह हृत्रास आनेपर और भय उद्वेग आदि मानस उत्तेजना द्वारा भी स्वेद आ जाता है।

इनके अतिरिक्त वच्छनाग, द्रोणपुष्पी, सहदेवी, सारिवा, शीतल मिर्च और अनेक मूत्रल औषधियां भी स्वेद लाती है परन्तु उनकी क्रिया किस नियमानुसार होती है, यह निर्णीत नही हुआ है।

दुर्बलावस्थामें प्रस्वेद आता है, वह चर्मस्थ शिराएँ शिथिल होनेपर आता है। एवं जब वमन होने लगती हैं, तभी प्रस्वेद आ जाता है। वमन भी दुर्बलता और शिथिलता लाता है। इस हेतुसे वमन कारक और अव-

सादक औषधियोंमे धर्मकारक गुण अवस्थित है।

चर्मस्थ शिराएँ अधिक परिमाणमे रक्त संचालन करके स्वेद लाती हैं। परिश्रम, व्यायाम, उष्ण जलसे स्नान, गात्रमर्दन, उष्ण जलपान आदि। इनके अतिरिक्त स्वेदन क्रिया आदिसे भी चर्मस्थ शिराओमे रक्तसंचालन अधिक वेगपूर्वक होने लगना है। कतिपय औषधिया और क्रिया अनेक प्रकारसे धर्म लाती है; एव उत्तेजना, रक्ताभिसरण क्रिया वृद्धि आदि गुण भी दर्शाती है।

धर्मकारक औषधियोंके सेवनमें उद्देश्य—

१ त्वचाकी उष्णता और शुष्कताका निवारण।

२ विशेष प्रकारके विषप्रकोप अथवा सेन्द्रिय विषज (चयापचयमे उत्पन्न Metabolic Products) आपत्तिकर-प्रसेक अथवा प्रदाहको नष्ट करना।

३ सस्थामे सगृहीत तरलका ह्रास कराना। जैसे जलोदर और शोथ मे मल त्याग करनेवाले अवयवको सहायता पहुँचानेके लिये यथा लसीका-मेहमे वृक्कोंको।

अतिसार होनेपर अन्त्रको तथा आम-संग्रहजन्य धर्मरोध और शीतके निवारणार्थ पचन-संस्था और उष्णता उत्पादक केन्द्रको सहायता पहुँचाने के लिये।

४. जब वृक्क कर्मच्युत होते है (जैसे वृक्क संन्यास Uraemia मे) तब त्याज्य मलका परित्याग करनेके लिये। इस कार्यके लिये पिलोकार्पाइन श्रेष्ठ है।

५ अनेक चिरकारी त्वचा रोगोमे त्वचागत रक्ताभिसरणको उन्नत करनेके लिये। उदा० किटिभ कुष्ट—(Psoriasis) मे गरम जल या टर्किश-बाथ। एवं त्रिफला क्वाथकी बाष्प।

सूचना—मूत्रल औषधि, विरेचन और शीतल प्रयोग करनेपर स्वेदल क्रियामे प्रतिबन्ध होता है।

गरम जल, गरम वस्त्र धारण और उष्ण वायुके सेवनसे स्वेदल क्रियामे वृद्धि होती है।

(२५) स्वेदावरोधक।

स्वेदापनयन—धर्मरोधक—अन्हाइड्रोटिक्स—एन्टिहाईड्रोटिक्स।

(Anhrdrotics–Antihidrotics)

अति प्रस्वेद नि.सरणका ह्रास कराने वाली औषधिया—जसद भस्म, कुचिला, स्वल्प मात्रामे क्विनाइन, पद्मकाष्ठ, कुलथी लोध, वंशलोचन, खुरासानी अजवायन, धतूरा, सूची बूटी, ब्रह्मदण्डी और अम्ल-कषाय गुण-युक्त औषधिया आदि।

राजयक्ष्मा रोगमें निशाधर्म (रात्रिको अति पसीना आना) एवं ज्वर

आदिमे अत्यन्त प्रस्वेद और निर्बलता आनेपर उसका रोध करानेके लिये जसद भस्म, फिटकरी, आदि औषधियोको प्रयोगमे लाया जाता है। डाक्टरीमे क्विनाइन, जसद घटित औषधि, सूचीबूटीका सत्व (Atropine) आदि व्यवहृत होते हैं।

ज्वरावस्थामे घर्मरोधक औषधियोंकी मालिश भी की जाती है। इसका वर्णन "चिकित्सातत्वप्रदीप" प्रथम खण्ड सन्निपात चिकित्सामे किया गया है।

डाक्टरी मतानुसार स्वेदावरोधक क्रिया प्रकार :—

(१) घर्मोत्पादक वातनाडी केन्द्रकी उग्रताका शमन या उग्रताके कारण का निवारण। इस उपाय द्वारा रक्तकी सैरिक अवस्थाका ह्रास होता है। यथा क्षीणता लाने वाली व्याधियोमे शीतल स्वेद आता है, वह कुचिला, लोहभस्म, द्राक्षारिष्ट, शराब, नौसादर, अभ्रक भस्म, रससिन्दूर, विशुद्ध वायुके सेवन, पौष्टिक भोजन आदिमे निवृत्त होता है।

(२) केन्द्राभिमुखी स्रावक वातवाहिनियोकी क्रिया शमन द्वारा। यथा राजयक्ष्मामे निशाघर्मका ह्रास करानेके लिये गन्धक-द्रावके साथ अफीम दिया जाता है। एवं जसद भस्म प्रयोजित होती है।

(३) वातनाडियोके चर्मस्थ अन्त भागका अवसादन द्वारा। इस क्रिया के लिये खुरासानी अजवायन, सूचीबूटी, धतूरा आदि हितकारक हैं। एवं गन्धक-द्रावके जलमे कपडा भिगोकर शरीरको पोंछ लेनेसे या खसका लेप करनेपर चर्मस्थ रक्तप्रणालियां संकुचित होती है। इस हेतुसे स्वेदावरोध होता है।

(४) केण्द्राभिमुखी सब वातवाहिनियोकी क्रिया ह्रास करानेसे प्रस्वेद कम हो जाता है। यथा स्थानिक शैत्यप्रयोग, पखा तथा शीतल वायु सेवन आदिसे।

मेटेरिया मेडिकाकार डाक्टर घोषने निम्नानुसार २ विभाग दर्शाये हैं।

१ स्रावक नाड़ियो (परिस्वतन्त्र नाड़ियो) के सिरेका अवसादन कराके स्वेदापनयन कराने वाली। इस प्रकार मे सूचीबूटी सत्व (Atropine) का असर अत्यन्त प्रबल है।

संज्ञावाही नाडियोकी उग्रताके ह्रास द्वारा, उदाहरणार्थ शीतल कपडे की पट्टी बॉधना, शीतल जलवायु आदि। अम्ल, क्विनाइन, कुचिला आदि अनेक औषधिया व्यवहृत होती है, किन्तु इनकी क्रिया किस नियमानुसार होती है, वह निर्णीत नही हुआ।

(२६) रसायन।

आल्टरेटिव्स—Alteratives

दीर्घमायु स्मृति मेधामारोग्यं तरुणं वय।
प्रभावर्णस्वरोदार्यं देहेन्द्रियबलं परम् ॥

वाक्सिद्धि प्रणतिं कान्ति लभते ना रसायनात् ।
लाभोपायो हि शस्तानां रसादीना रसायनम् ।।

जिस द्रव्यके सेवनसे दीर्घ आयु, स्मरणशक्ति, मेधा (धारण और विवेक शक्ति बुद्धि), आरोग्य, तारुण्य, सुदृढता, प्रभा, वर्ण और स्वर, तीनोकी सुन्दरता, देह और इन्द्रियोके बलकी वृद्धि, प्रभावशाली वाणी, जनतामे सम्मान और कान्तिकी प्राप्ति हो, उसे रसायन कहते है । रसायन सेवनसे रस, रक्त आदि धातु श्रेष्ठ बनती है तथा रस, वीर्य, विपाक आदि, जो आयुको सुदृढ रखने वाले है, उनकी विशेष प्राप्ति होती है ।

सक्षेपमें रसायन स्वस्थ मनुष्यके बलको बढाने वाला, रस रक्त आदिकी निर्बलता जन्य रोगोको तथा वृद्धावस्थाकी निर्बलताको दूर करने वाला है। शार्ङ्गधराचार्य ने रसायनको जराव्याधिनाशन कहा है ।

वय स्थापन गण – तरुणावस्थाकी स्थापना करने वाली ओषधियां— गिलोय, हरड, आवला, मुक्ता, रास्ना, श्वेत अपराजिता, जीवन्ती, शतावरी, मण्डूकपर्णी, शालपर्णी और पुनर्नवा ये १० ओषधिया है ।

अन्य औषधिया—सुवर्ण, अभ्रक, लोह, पारद, हिगूल, सुरमा, सोमल, वंग, यशद, नाग (शीशा), हरताल, मन शिल, हीरा, माणिक्य, पन्ना, पुखराज, वैक्रान्त, मोती, प्रवाल, गूगल, अष्टवर्ग, जीवनीयगणकी औषधियां; असगन्ध, शालवमिश्री, विधारा, शिलाजीत, रुद्रवन्ती आदि ।

इन औषधियोका सेवन आयुर्वेद कथित मात्रामे करते रहनेसे किसी यन्त्र विशेषपर तत्काल प्रत्यक्ष क्रिया प्रकाशित नही होती, किन्तु शनैः शनै चयापचय क्रिया सुधरती है; रक्तमे उपस्थित मृत अणु नष्ट होकर शरीर पूर्व स्थितिमे आ जाता है ।

चरकसहिता, सुश्रुतसहिता, शार्ङ्ग सहिता आदि ग्रन्थोमे कुटी प्रावेशिक, वातातपिक भेदसे द्विविध काम्य (देह, बुद्धि बल आदिकी वृद्धि रूप कामना सहित), नैमित्तिक (व्याधि नाशके लिये) और आज-स्त्रिक (घी, दूधके अभ्यास आदि) त्रिविध, तथा सशोधन । सशमन भेदसे द्विविध, ये विभाग किये है । इन सबका वर्णन चरकसहिताके चिकित्सा स्थान प्रथम अध्यायमे तथा सुश्रुत सहिताके चिकित्सा स्थानके २७ वे अध्यायमें वर्णन किया है ।

कृमि, अर्श पीड़ितोके लिये छिले हुए वायविडङ्ग और भिलावा आदि, क्षय, रक्तपित्त, रक्तवमन पीडितोके लिये खरैटी, विदारीकन्द, शतावरी आदि, चक्षु काम और प्राण कामकी चाहना वालोको विजयसार, अरणी, चित्रकमूल, आवला, नागवला आदि, बुद्धि और आयु वृद्धिकी कामना वालोको वेलचूर्ण, सुवर्ण शतावरी, पिप्पली, नागवला, लोह, बावची.

चित्रकमूल, आवला आदि, हृदय विकृति शमनार्थ मण्डूकपर्णी, ब्राह्मी, श्वेत वचादि, व्याधि शमनार्थ सोम शिलाजतु आदि, रोगनिवृत्तिके पश्चात् मनकी प्रसन्नता (हर्षवर्द्धन) के लिये अजगरी, कापोती, गोनासी आदि कतिपय अप्रसिद्ध दिव्य ओषधियाँ दर्शायी है। वर्तमानमे तिव्वतमे अनेक दिव्य ओषधियाँ मिलती है। रशियाका वनस्पति संशोधक डॉ० वेण्डमेफ अनेक वर्षोंसे तिव्वतमे रहता है, जिसने अनेक प्रकारकी दिव्य औषधियोकी रशियां भेजी हे।

रशियाके सशोधक मण्डलने शहद तथा शहदके साथमे शहदके नीचे रहने वाले कंकड सदृश टुकडोमे दीर्घायुषी करनेका गुण वतलाया है।

डाक्टरी मतानुसार, रक्तरस (Blood Plasma) की सहायतासे पौष्टिक पदार्थ देहके विविध घटकोंमे पहुचता है, एवं शारीरिक घटक परिवर्तन क्रियाजन्य पदार्थका भी रक्तरसके द्वारा ही वहन होता है। इसलिये यदि रक्तरसके उपादानमे कुछ विलणता हो जाय, तो साक्षात् सम्बन्धसे देहके पोषण, सर्व विधान और घटकोकी जीवन क्रियामें विकृति हो जाती है।

पथ्य भोजन, औषध द्रव्य या रक्तमोक्षण द्वारा रक्तवारिके उपादानमे कुछ अंशमें परिवर्त्तन हो सकता है। शरीरमे प्रवेशित अनेकानेक पदार्थ शोषण होनेके पश्चात् वे रक्तरसमे द्रवरूप होकर अवस्थिति करते है, किन्तु विरेचक मूत्रल और स्वेदल औषधियाँ रक्तरसमे प्रवेशित होकर इनमेसे अनेक पदार्थोंके परमाणुओको निर्गत करा देती है। इस हेतुसे रक्तवारिके उपादानमे रूपान्तर हो जाता है। फिर रक्तजलपर कार्यकारी औषधियाँ उसमे क्षारत्वकी वृद्धि करानेके उद्देश्यसे दी जाती है। यथार्थमें रक्तरसको अम्ल गुण विशिष्ट वनाने वाली अथवा इसके क्षारत्वका ह्रास कराने वाली औषधि एक भी नही है। सव धातव अम्ल रक्तरसमे समक्षाराम्ल लवण रूपमे अवस्थित होते है।

रक्तावारिमे क्षारवर्द्धक औषधियाँ—शिलाजीत, प्रवाल, मौक्तिक, शुक्ति। वराटिका, शंख, पापडाखार, सज्जीखार, जवाखार, नौसादर, विविध लवण, चूना, मेगनेशिया, केलेका क्षार आदि रक्तरसमे प्रवेश होकर क्षारकी वृद्धि कराते है। फिर ये क्षार मूत्रल गुण दर्शा मूत्राम्लके साथ सम्मिलित कर देहके वाहर निकल जाते है।

जव रक्तरसमे अधिक मात्रामे मूत्राम्ल हो जाता है, तव क्षार घटित औषधिका अवलम्बन किया जाता है। परन्तु जव दीर्घकाल तक औषधि सेवन कराना हो, तव पाचन क्रियामे विकृति करने वाला औपधियोंका व्यवहार नही किया जाता। ऐसे समयपर शिलाजीत, जवाखार, केलेका क्षार प्रवाल आदि विशेष हितकारक है।

वातरक्त, सीसेका विष, विविध प्रमेह आदि रोगोमे इस प्रकारकी औषधियोका प्रयोग किया जाता है। एव जीर्ण आमवातजन्य सांधे जकड जाने (Rheumatoid aithritis) पर भी इस प्रकारकी औषधियोका सेवन कराया जाता है।

जब शरीरमे किसी स्थानपर अधिक शोथ होनेपर या किसी व्याधि विशेषके हेतुसे लसीका गह्वर (Serous Cavity) मे रक्तरसका उत्सृजन होता है, तब विरेचन, मूत्रल या स्वेदन औषधिका सेवन कराया जाता है, जिससे रसका सत्वर निराकरण होता है। इसके अतिरिक्त रक्तमे मूत्र-विष वृद्धि (वृक्क सन्यास–Uraemia) होनेपर रक्त विषमय बन जाता है, इस विषको निकाल देनेके लिये भी विरेचन, मूत्रल या स्वेदल औषधि ही दी जाती है। इन औषधियो द्वारा रक्त जलमे रहे हुए विविध क्षार और जलीय अंश निकल जाते है।

रक्तके रक्ताणुओपर कार्यकारी औषधियाँ—स्वस्थावस्थामे सब रक्ताणुओ (Red Corpuscles) के भीतर वर्ण द्रव्य (Hemoglobin) सम परिमाणमे रहता है। इसका प्रधान उपादान लोह है। स्वस्थावस्थामे रक्त रक्ताणुओके भीतर रक्तकी वृद्धि करे, ऐसी कोई औषधि नही है। किन्तु व्याधि विशेषके हेतुसे रक्तके रक्ताणुओमे वर्ण द्रव्यका परिमाण न्यून हो जानेपर रक्तपर साक्षात् कार्यकारी और परोक्ष कार्यकारी ऐसे २ विभाग होते है। साक्षात् कार्यकारी औषधियाँ (Direat Hematics or Hematinies)—लोहभस्म, अभ्रक भस्म, मण्डूर भस्म, रससिन्दूर, सुवर्णमाक्षिक भस्म, आंवला आदिके सेवन द्वारा इस क्षतिकी पूर्ति हो सकती है।

इन औषधियोके सेवनसे केवल रक्तव्रणके वर्णका परिवर्तन ही नही होता अपितु रक्त-कणिकाओंकी भी वृद्धि होती है। रक्त-वृद्धिमे पौष्टिक पथ्य, सूर्यके ताप और विशुद्ध वायुका सेवन, व्यायाम, ब्रह्मचर्य आदिका पालन नियमित जीवनचर्या आदि क्रिया सहायक होती है।

परोक्ष कार्यकारी (Indirect Hematics)—सप्तपर्ण, गिलोय, सुवर्ण मालिनी वसन्त, क्विनाइन आदि औषधियां ज्वर और निर्बलताको दूर कर परम्परया लाभ पहुँचाती है।

सूचना—कितनी ही औषधिया रक्तके भीतर रक्तवर्णद्रव्य और प्राणवायुको घटाती है। उनका प्रयोग रक्तवर्णद्रव्य कम होनेपर नही करना चाहिये। उदाहरणार्थ सोमल प्रधान अम्ल, फॉस्फरस, तार्पिन तैल आयोडीन आदि।

रक्तके श्वेताणुओपर कार्यकारी औषध—जब उत्तानाधक औषध द्वारा या इतर हेतुसे पीडा होकर प्रदाह उत्पन्न होता है, तब रक्तमे अवस्थित श्वेताणु (White Corpuscles) समीपकी केशिकाओंकी दीवारका भेदनकर

उस स्थानपर सगृहीत हो जाते हैं। इन श्वेताणुओका स्थानान्तरित होना यह स्वभावसिद्ध है। इस स्वभाविक क्रियाका क्विनाइन और सिंकोनाइन दमन करती है, अर्थात् इनका आभ्यन्तरिक या स्थानिक प्रयोग करनेपर श्वेताणुओंका रक्तप्रणालियोमे बाहर निकलनेमे प्रतिवन्ध हो जाता है।

कपूर, अगर, श्वेत चन्दन, इलायची आदि सुगन्धित द्रव्य तथा लाल वोल आदि औषधियोके अन्त्रमे शोपित होनेपर, रक्तमे श्वेत रक्ताणुओकी संख्या वढ़ जाती है।

मौक्तिक शुक्ति, प्रवाल, शंख, वराटिका, सगजराहतभस्म और चूना आदि औषधियोके सेवनसे रक्तकी संयमशीलताकी वृद्धि होती है। सोमल, रसकपूर, दालचिकना आदिकी मात्रा अधिक लेनेपर रक्तकी संयमशीलताका ह्रास होता है, कठिन उपादानमे कमी होती है और रक्तकी तरलताकी वृद्धि होती है। वादाम, पिस्ता और मूंगफली आदिके तैलके सेवनसे रक्तका कठिन उपादान वढ जाता है।

(२७) जीवनीय।

रेस्टोरेटिव्स-Restoratives

जो द्रव्य जीवन (प्राणधारण) के लिये हितकर हो, जो जीवनको स्थिर रखनेवाला और आयुवर्द्धक हो, उसे जीवनीय कहते है। जोवनीव औषधि पृथ्वी जल प्रधान गुणयुक्त और विशेपत. मधुररस-विपाकवाली होती है। मधुर रससे रस, रक्त और मास आदि धातुओका पोपण होता है। ये धातुएँ सवल होनेपर रोगोके आक्रमणका भय प्रायः नही रहता।

जव योग्य पथ्य आहारविहारका सेवन न होनेसे या व्याधि विशेषके हेतुसे धातुओमेसे लोह आदि द्रव्यो और प्राणवायुका ह्रास हो जाता है, तव न्यूनताकी पूर्ति करने और चयापचय क्रियाको नियमित वनानेके लिये जीवनीय औषधियोका सेवन किया जाता है।

जीवनीय गण—जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, जीवन्ती और मुलहठी, ये १० औषधिया जीवनशक्ति (Vitality) की वृद्धि कराती हैं।

सुश्रुताचार्यने काकोल्यादि गणको जीवनीय कहा है। उसका वर्णन पहिले पित्तशामक रूपसे किया गया है। इनके अतिरिक्त रसायन वर्ग नं० २६ मे कही हुई सुवर्ण आदि धातु विविधरत्न और वय स्थापन गणकी औषधियोंमे भी जीवनीय गुण अवस्थित है।

(२८) मूत्रल।

मूत्रजनन-डाइयूरेटिक्स-Diuretics।

जो द्रव्य मूत्रकी उत्पत्तिकी कर वृद्धि करा देहमेसे जल तथा रक्तमें

रहे हुए विजातीय द्रव्य और हानिकर विपको पेशावके साथ बाहर निकाल नेमे सहायता पहुँचाते है, उनको मूत्रल कहते है । वृक्षादनी (बन्दाक), गोखरू अनन्तमूल, शीतल मिर्च, मोलसरीके बीज, कलमी सोरा, नौसादर, सोहागा, अपामार्गके पान, जवाखार, लोबानके फूल, पाषाणभेद, खरेंटी, वनगोभी, हुलहुल, बच्छनाग, बहुफली, सहदेवी, कमलगट्टा, पाढ, पलाशपुष्प (केसूला), नरसल, कुश, कास, दर्भमूल, इत्कट (इकडवनजयन्ती), काकमाची, सागके बीज, अपराजिता, देवदारु, नागरमोथा, नारियल, सुहिजना, पुनर्नवा तापिन तैल, वनपलाण्डु (Urginea), सप्तपर्ण, कुसुम्भ, ऊँटकटारा, देवदाली, सोमलता, भुई आवला, पत्थरपूल, कडुवी तोरईका पचाग अलसी, दूध अधिक जलपान आदि ।

मूत्रल और पौष्टिक—मूत्रल गुणके साथ मूत्रयन्त्र, वीर्यस्थान और वीर्य को लाभ पहुंचानेवाली औषधियां --शिलाजीत, तालमखाना, गोखरू विरदारीकन्द, शतावर, ऊँटकटारेकी जडकी छाल, सेमल, इस्सबगोलकी भूसी, गुंजा, अगस्तके पूल, पञ्चतृण आदि ये सब औषधिया शीतल तथा मूत्रल हैं ।

मूत्रविरजनीय कषाय—मूत्रविकृतिको दूर करके उसका वर्ण स्वाभाविक बना देनेवाली औषधिया—श्वेताभकमल, नीलकलम, नलिन (रक्त कमल), कुमुद अति सुगन्धवाला नीलकमल, पुण्डरीक (श्वेत कमल), शतपत्र कमल, मुलहठो, प्रियंगु और धायके फूल, इन सबके पुष्प ।

डाक्टरी विभाग—१ शीतल मूत्रल और २ उत्तेजक मूत्रल ।

(१) शीतल मूत्रल—(Refrigerant diuretics)—इस वर्ग की औषधिया वृक्कोको धोकर स्वच्छ बनाती है । आयुर्वेदमे इनको मूत्रविरजनीय सज्ञा दी है । शीतल जलपान, दूध-जलकी लस्सी, सोडावाटर, जल मिश्रित कार्बोलिक एसिड जवाखार, शिलाजीत, बादाम आदिकी ठण्डाई, सोरा, बाँदा, गोखरू, खस, खरेंटी, पञ्चतृणमूलका हिम, चावलका धोवन, ब्राह्मी, तालमखाना, इस्सबगोल और अलमीका जल आदि, ये सब औषधिया अधिक परिमाणमे सेवन करनेपर रक्तमे अधिक तरलता (Diluent) उत्पन्न करके कार्य करती है ।

उत्तेजक मूत्रल —(Stimulant Diuretics) गंधाविरोजा, तापिन तैल, शीतल मिर्च, सागके बीज, अलसीका तैल, सारिवा छोटी दूधी, पुनर्नवा, काकमाची, वच्छनाग, बुंददाणा (कॉफी) जगली प्याज आदि । ये सब औषधियां वृक्कोको उत्तेजित करके कार्य करती है ।

यदि उक्त औषधियोकी मात्रा अधिक दी जाय, तो ये मूत्रविरेचन (Hydragogue diuretics) का कार्य करती है ।

डाक्टर घोषके मतानुसार वर्गीकरण—

(१) वृक्कस्थ ऋजुका धमनीके गुच्छ (Glomeruli) की क्रिया बढ़ाकर

इनकी क्रिया द्वारा केफाइन (कॉफी, चाय आदिमें अवस्थित मूत्रलद्रव्य और मूत्रीया छनता) जाता है।

(२) वृक्कोमें रक्तप्रवाहकी वृद्धि करा या ऋजुकाओमें रक्तदबाव वढ़ाकर मूत्रस्रावकी विशेष मात्राका आधार ऋजुकाओमे रक्तदाव और वृक्कोंमे रक्त की आयपर अवलंबित है। जव वृक्की शिराएँ रक्तको वापस करनेमे असमर्थ होती है, तव उनमे रक्त संग्रह होता हे और मूत्रोत्पत्तिका ह्रास हो जाता है। जव हृद्य ओपधिया-डिजिटेलिस समूह, केफाइन, मद्यार्क, ईथर आदिकी क्रियावृद्धि द्वारा रक्तभिसरण क्रिया बढाकर मूत्रल गुण उत्पन्न कराती है, तव वृक्कशिराएँ प्रसारित होती है और फिर ऋजुकाओंमें रक्तदवाव वढ़ जाता है।

उदर्यकलामें जब तरल संग्रह होता है, तब वृक्कशिराओंमेंसे रक्तप्रवाह की गतिमें वाधा पहुचती है। फिर उदरमें छिद्रकर, विरेचन देकर या मूत्र वृद्धि कराकर रक्तको दूर किया जाता है।

रक्तमें जलकी वृद्धि अर्थात् रक्तवारि प्रथिनके एकीकरणमे ह्रास होनेपर ऋजुकाओंमे दवाव वढता है। इसके २ कारण है। १. अधिक जलपान, २. सामान्य लवण जलका गुदा, त्वचा या शिरा द्वारा अन्तःक्षेपण।

३. क्षारके ह्रास, (Acidosis) द्वारा एमोनिया क्लोराइड और केलशियम क्लोराइडमे देनेपर मूत्रल असर पहुँचकर रक्तवारिमेसे संगृहीत क्षारका ह्रास होता है।

वे रक्तवारिक अपिच्छिल (Non Colloidal) विधानकी वृद्धि और रक्तवारि प्रथिनके केन्द्रीकरणका ह्रास कराते है।

(४) वृक्कपरस्थानिक क्रिया—जव धमनी संस्थामें दवाव और वृक्कशिराओंमे (प्रतिबन्ध परिवर्तन हुए विना) होता है, तव वृक्कके धमनी प्रतानोको सामान्य क्षोभ पहुचनेपर वे प्रसारित होते है और ऋजुकाओंमें दवाव वढता है। वे वृक्कोके घटकोको उत्तेजित करते हैं। फिर वृक्कोके कुण्डली स्रोतोका स्राव वढाकर या उन स्रोतोंमे पुन शोषण होनेमें प्रतिबन्ध करके मूत्रल असर उत्पन्न कराते है। इस हेतुसे इसे क्षोभक मूत्रल (Irritant diuretics) संज्ञा भी दी है। केफाइन और इसके सम्बन्धवाले द्रव्योके अतिरिक्त शेष औपधियोंमेसे अत्यधिक मूत्रल ओपधिया वृक्क घटकोमें क्षोभ कराती है। जिससे अधिक मात्रा देनेपर रक्तसंग्रह और वृक्कप्रदाह भी होता है। इस प्रकारसे निम्न ३ उपविभाग है।

अ—मधुजन (Glycosides)—सुगन्ध द्रव्य, ब्रूम (स्कोपेरिन), केन्थारिडिन आदि।

आ—अम्ल, क्षार और कतिपय लवण-केफाइन, थियोब्रोमाइन, पारद प्रधान केलोमल आदि।

इ—कतिपय उड्डयनशील तैल, कोपायवा, जुनिपर, चन्दन, बकू (Buchu) शीतलमिर्च आदि।

(५) लवण क्रिया द्वारा—इस प्रकारकी औषधिया रक्तमेसे चिपचिपापन कम करा छननेकी क्रिया बढा और ऋजुकाओमे दबाय बढाकर मूत्रल गुण दर्शाती हैं। ये कुण्डलियोके भीतर पुन शोषण होनेसे रक्षण करते है। जल, मूत्रीया, एमोनिया ऐसिटेट, एमोनिया साइट्रेट, लवण, शर्करा, दूध, ग्रैवेयक ग्रन्थिसत्व आदि इस प्रकारकी क्रिया द्वारा फल दर्शाते है।

मूत्रल प्रयोग हेतु—

१. हृदय और फुफ्फुस क्रियाकी अव्यवस्थासे मूत्रपरिमाणका ह्रास हो जाने पर।

२ रक्ताभिसरणमे हानिकर त्याज्य द्रव्य और विष द्रव्योको बाहर निकाल देनेके लिये, अर्थात् रक्तशोधन और प्रदाह निवारणार्थ।

३. किसी स्वाभाविक गुहामे तरल संग्रह हो जानेपर। उदाहरणार्थ जलोदर और उरस्तोयमे।

४ मूत्राशय और मूत्रप्रसेकके प्रदाहमे मूत्रको तरल बनाने और क्षोभका ह्रास करानेके लिये। इसके अतिरिक्त अश्मरीकी रचना या कठोर द्रव्य संग्रह होनेपर।

शिरासमूहमे रक्तसंग्रह (Venous Congestion) होनेपर जलोदर या शोथ (हृदय विकृति या फुफ्फुस विकृति जन्य शोथ) होनेपर सार्वाङ्गिक रक्त प्रणाली विधानपर कार्यकारी पुनर्नवा, काकमाची आदि मूत्रल औषधि की योजना करनी चाहिये।

यकृत् विकृत् जनित शोथ रोगमे शीतल मिर्च और वृक्कविकार जनित शोथ रोगमे शिलाजीत गोखरू, पुनर्नवा आदि लाभदायक है। यदि ज्वर रोगसे वृक्कविकृति हुई हो, तो तार्पिन तैल, चाय, शोरा, नागरमोथा आदि औषधिया प्रयोजितकी जाती हे।

जब वृक्क या मूत्राशयमे अश्मरी, शर्करा, सिकता आदि पदार्थ संगृहीत हो जाते हैं, तब मूत्र परिमाणकी वृद्धि करानेके लिये शीतल मूत्रल औषधि दी जाती है।

मूत्र वृद्धि करानेके लिये सरल उपाय अधिक शीतल जलपान है। शरीर भी शीतल रखना चाहिये। ताकि जल मूत्रग्रन्थियो द्वारा निर्गत होकर मूत्र बढ जाय। इस उपयोगसे वृक्क उत्तेजित नही होते। इतर उपायोमे रक्तसचालन गति बढ जाती है। परन्तु उनमे भी शरीर शीतल रखना चाहिये, और प्रस्वेद वृद्धि नही कराना चाहिये।

सूचना—मूत्रल औषध प्रयोगकालमे प्रदाह हो, तो प्रदाहनाशक चिकित्सा द्वारा उसका दमन करना चाहिये।

जिन पदार्थोके सेवनसे अधिक प्रस्वेद या अधिक पतले दस्त हों, उनका सेवन नही करना चाहिये। तात्पर्य यह है कि, इतर यन्त्रोंकी क्रियाका ह्रास न करानेपर मूत्रल गुण पूर्णांगमे नही मिल सकता।

अफीम सेवन करनेपर मूत्रल औषधियोकी क्रियाका ह्रास होता है। तार्पिन तैल और फास्फरस आदि औषधियोसे वृक्कप्रदाहकी प्राप्ति होती है। अतः वृक्कप्रदाह कारक औपधियोका सेवन नही करना चाहिये।

(२९) मूत्रविरेचन।

मूत्रकृच्छ्रनाशक—Hydragogue diuretics-बलात्कारसे मूत्र उत्पन्न करा मूत्राशय और मूत्रमार्गके प्रदाह, विषसग्रह, अश्मरीद्रव्य संग्रह और इतर कारणोसे उत्पन्न मूत्रानरोधको दूर करनेवाली औषधियां।

मूत्रविरेचनीय कपाय—बांदा, गोखरू, वमुक, (बंकपुष्प), वशिर (सूरजमुखी पुष्प), पाषाणभेद, दर्भ, कुश, काश, गुद्रा (शर), इत्कट (इकड़, वन जयन्ती), ये १० ओषधिया चरक सहितामे लिखी है।

सुश्रुताचार्यने परुषकादि वर्ग और पञ्चतृणमूलको मूत्रदोषहर कहा है। परुषकादि वर्गका वर्णन न० ५१ दाह शामक प्रकरणमे किया जायगा।

और औषधियां—सफेद चन्दन, शीतल मिर्च, वशलोचन, अरनी, अलसी, छोटी इलायची, गंधाविरोजा, कुलथी, गूगल, कपोतविष्ठा, छोटी दूधी, सागके वीज, वकलके वीज आदि।

विविध कारणोसे उत्पन्न मूत्रावरोध मे भिन्न भिन्न चिकित्सा की जाती है।

अश्मरीजन्य मत्रावरोध होनेपर अश्मरीद्रावक औषधियां (Lithontripties or Antilithics) दी जाती है। दूध-जलकी लस्सी, गोखरू, कुलथी, जवाखार, शिलाजीत, लोवान सत्व, पाषाणभेद, मोलसरी पुष्प, पञ्चतृण, केलेका क्षार, संगयहूद आदि।

मूत्रकी प्रतिक्रिया अम्ल हो, तो जवाखार केलेका क्षार, शिलाजीत संगयहूद आदि तथा प्रतिक्रिया क्षारीय होनेपर लोवान सत्व, कुलथी नीबू सत्व, इमली सत्व, पञ्चतृण आदि लाभदायक होते हैं।

अश्मरीजन्य मूत्रावरोधमे विशेषत स्निग्ध और मूत्रल औषधि की योजनाकी जाती है। एवं निवाये जलमे बेठाना, वृक्क स्थानमे शूल हो तो वृक्क स्थानपर हींगका लेप, मूत्राशयमे अवरोध हो, तो पलाश पुष्पका लेप या पुल्टिस आदि सहायक चिकित्साकी जाती है।

मूत्राशयप्रदाहसे मूत्रकृच्छ्रता हुई हो, तो मूत्रल औषधियादी जाती हैं। सुजाकके हेतुसे मूत्रकृच्छ्रता हो, तो चन्दनका तैल, शीतल मिर्च या प्रत्युग्रता साधक गन्धाविरोजा आदिकी योजना करनी चाहिये।

विसूचिका रोगकी प्रथमावस्थामे मूत्रस्तम्भ होनेपर मूत्रोत्पत्ति करानें

वाली औषधिया—यवक्षार, सोरा, संगयहूद आदि अति सूक्ष्म परिमाणमे देनी चाहिये, एव वृक्कोपर नारायण तैलकी मालिश और उष्ण जलसे सेक तथा मूत्राशयप्रदाह निवारणार्थ सोरा और केसूलाको जलमे घिसकर मूत्राशयपर लेप भी करना चाहिये। अन्तिमावस्थामे तो रक्तके भीतर जल और लवणकी अति कमी हो जाती है। इस हेतुसे मूत्रोत्पत्ति नही होती। इस अवस्थामे लवण जलका अन्तःक्षेपण करना चाहिये।

अश्मरी जन्य मूत्रावरोधक होनेपर सुश्रुत संहिता कथित निम्न वीरतर्वादि गणकी औषधिया विशेष लाभप्रद मानी गई है।

वीरतर्वादि गण—वीरतरु (बेलतरु), नीलेफूलका पियावासा, पीलेफूलका पियाबांसा, दर्भ-मूल, बांदा, नागरमोथा, नरसल, कुशकी जड़, कासकी जड, पाषाणभेद अरणीकी छाल, मोरटा (ईखकी जड़ या अकोल पुष्प), वसुक (बक पुष्प), वसिर (अपामार्ग या सूर्यावर्त), भल्लूक (श्योनाक), कुरटका (लाल फूलकापियाबासा), इन्दावर (स्थलपद्म), कपोतवका (ब्राह्मी) और गोखरू, ये १९ औषधिया कही है। यह गण वातविकार, अश्मरी, शर्करा, मूत्रकृच्छ्र और मूत्राघातका नाश करता है।

मूत्रकी अम्ल प्रतिक्रियाकी वृद्धि करने वाली औषधियाँ—अम्ल लवण साइट्रिक एसिड टार्टरिक एसिड आदि, एमोनियम क्लोराइड, केल्शियम क्लोराइड, लोहबान अम्ल (बेन्झोइक एसिड), सोहागे का अम्ल (बोरिक एसिड) सेलीसिलिक एसिड, चावल कुलथी, अम्ल अनारदाने, कच्ची इमली, अति खट्टे हो ऐसे फल आदि।

मूत्रकी क्षारीय प्रतिक्रियाकी वृद्धि करानेवाली औषधिया—नमक, सोडा, पोटास, यवक्षार, केलेका क्षार, अपामार्ग क्षार आदि। मुक्ता, प्रवाल, शुक्ति, शख, वराटिका और चूना भी मूत्रकी अम्लताका ह्रास कराते है।

(३०) मूत्रसंग्रहणीय।

मूत्ररोधक —एण्टीडाइयूरेटिक्स- (Antidiuretics)

जो द्रव्य वार वार और अति मात्रामे होने वाले मूत्रको रोके (कम-करावे) उसे मूत्ररोधक कहते हैं।

मूत्रसंग्रहणीय कषाय —जामुन, आम, पिलखन, वट कपीतन (अम्बाडा), गूलर पीपल, भिलावा, अश्मन्तक (कोविदार वृक्ष), सोमवल्क (खैर) ये १० औषधिया चरकसंहितामे कही है।

और औषधिया—वंगभस्म, जसद भस्म अफीम, तगर आदि। लवण विरेचन, जलवत् भेदन करानेवाली औषधिया, सूर्यके तापका सेवन, परिश्रम और मार्गगमन आदिसे भी उस समयके लिये मूत्रोत्पत्ति कम हो जाती है। तैल और तैली पदार्थ—बादाम, मूगफली, तिल, काजू आदि तथा अजवायन, पिप्पलीमूल आदिके सेवनसे भी मूत्रोत्पत्तिका ह्रास होता है।

जब प्रथमावस्थामे वृक्ककी रक्तवाहिनियां आकुंचित होनेसे मूत्रोत्पत्ति नही होती, तब डाक्टरोमे एड्रिननलिका अन्त क्षेपण करते है। इस तरह पोषणिका ग्रन्थिके सत्वका प्रयोग जीर्णावस्थामे करते हैं।

तार्पिन तैल, केन्थारिडिन और फोस्फरस मूत्रपरिमाणका ह्रास कराती है, किन्तु इस उद्देश्यसे ये व्यवहृत नही होती। क्योकि अधिक मात्रामें प्रयोग करनेपर वृक्कप्रदाह हो जाता है।

वग भस्म, जसद भस्म और कषाय रसवाली औषधिया वृक्कपर अवसादक गुण उत्पादक करा शनैः शनैः मूत्रोत्पत्तिको कम कराती हैं।

(३१) शोथहर।

श्वयथुहर—एण्टहाइड्रोपिक्स—Anthydropics।

जो औषधिया रक्तरसके सग्रहज शोथको (आयुर्वेद कथित निज श्वयथुको) दूर करे, उसे शोथहर कहते है। इसके २ प्रकारहै। १ स्थानिक, २. सर्वाङ्गिक। इसकी चिकित्सामे मुख्य २ बातोपर लक्ष्य दिया जाता है।

१. रक्तरसके दूरिकरणार्थ—पुनर्नवा, काकमाची, निसोथ, हरड़, रेवन्दा चीनी आदि मूत्रल, विरेचन और धर्मकारक औषधियोका सेवन।

२. शोथोत्पादक कारण शमनार्थ—हृदय, यकृत, वृक्क इनमेसे जिसकी विकृति हुई हो, उसके अनुरूप उपचार करना।

इनके अतिरिक्त रक्तपौष्टिक और रक्तसस्थापौष्टिक लोह, मण्डूर, सुवर्ण, अभ्रक, मुक्ता, प्रवाल आदिका सेवन कराना चाहिये। एव अग्निप्रदीप्तकर स्रोतोकी शुद्धि करनी चाहिये।

चरक सहितामे दशमूलको शोथहर लिखा है। यह वातवाहिनीके दोष को दूर कर हृदय आदि इन्द्रियोको लाभ पहुँचाता है।

सुश्रुतसहिता मे विदार्यादिगण और करमर्दादि गण को शोथहर दर्शाया है।

विदार्यादि गण—विदारी (विदारीकंद) सारिवा, हल्दी, गुडूची, अजशृंगी (मेढासिंगी), ये ५ वल्ली पञ्चमूल रक्तपित्त, तीनो दोषोसे उत्पन्न शोथ, सब प्रकारके प्रमेह और शुक्रदोषके नाशक, विशेषतः कफ प्रधान शोथ नाशक है।

करमर्दादि गण—करौंदा, गोखरू पियावांसा, गृध्रनखी (कण्ठकपाली) और शतावरी, ये ५ कण्टक पञ्चमूल कफवातप्रधान शोथ, रक्तपित्त, प्रमेह तथा शुक्र दोषके नाशक है।

और औषधियां—पुनर्नवा, बच्छनाग, कलिहारी, रोहिडा देवदारू, सोंठ, मिर्च, पीपल, चित्रकमूल, दन्तीमूल, मकोय, पाठा, यवक्षार, शिलाजतु, हरड़, परवलकी जड, कुटकी आदि।

निज शोथके अतिरिक्त जन्तुके काटने, आगन्तुक चोटसे या व्रण होनेपर

जो शोथ होता है, उन सबको आगन्तुक शोथ कहा गया है। उसका वर्णन आगे नं० ४३ व्रणशोथघ्नमे किया जायगा।

(३२) उदरकृमिघ्न।

एन्थेलमिण्टिक्स-वर्मिफ्यूग्स वर्मिसाइड्स।

Anthelmintics—Vermifuges-Vermicides।

पचन संस्थागत--नाना प्रकारके कृमियोको मारने या गिराने तथा उनसे उत्पन्न होनेवाले विकारोको नष्ट करनेवाली (किन्तु शरीरको हानि-न पहुँचानेवाली) औषधियोको कृमिघ्न संज्ञा दी है।

सुश्रुतसंहितामे अर्कादि गण, सुरसादि गण, त्रप्वादि गण और लाक्षादि गणको कृमिघ्न लिखा है। इनमेसे अर्कादि गण न० ४३ व्रणशोधनमे, सुरसादि गण नं० ९ कफदोषघ्नमे, त्रप्वादिगण न० ३९ विषशामकमे तथा लाक्षादि गणको नं० ४३ व्रण शोधनमे देखे।

कृमिघ्न औषधियाँ—पारद, गन्धक, सोमल, हरताल, हिंगुल, मैनशिल, करंज, अजवायन, पलाशके बीज, अनारके मूलकी छाल, अतीस, वायविडग, काली जीरी, कटभी (वायगुवा), सुहिजनाके बीज कपिला, हीग, कचूर. पोदीना, जगली प्याज, भिलावा, कीडामारी, कौचकी फलीके कांटे, गोकर्णी कुचिला, डीकामाली, नीम, सम्हालू, मूसाकानी, गोखरू, अपामार्ग, थूहर, धतूरा, कपूर, नीलगिरी तैल, तार्पिन तैल मालगॉगनी, कालीमिर्च, इन्द्रजौ पपोतेका रस, कडुवी जीरी, सुपारी, बावर्चा, पारसीक यमानी (किरमाणी अजवायन जिसमेसे सेन्टोनीन निकलता है) एरण्ड तैल आदि।

मुख्य उदरकृमि—

१. गोल कृमि (गण्डूपदोपमा महागुदा कैंचवे सदृश Round Worms) ये कृमि छोटी और बडी आतमे रहते है। इनमे ३ जाती है।

२ जजीर सदृश लम्बे (पृथुव्रध्ननिमा उदरावेष्टा—१ इञ्च से २४ फीट तक लम्बे कद्दू दाना Tape worms) ये छोटी आतमे रहते है। इस प्रकारके कृमियोमे मुख्य ३ जाति है।

३ सूक्ष्म कृमि (रूट धान्याकुर—Flukes)--इस प्रकारके कृमियोमे अनेक जाति है। सूत्र कृमि और वडिश कृमि मुख्य है।

गोल कृमिके लिये बूँई बूँटी सेन्टोनीन, खुरासानी अजवायन, कोल-कन्द, सोया, तार्पिन तैल आदि।

जजीर सदृश लम्बे कृमिके लिये कपिला, अनार, मूलकी छाल, तार्पिन तैल, सुपारी, कद्दू बीजका मगज आदि।

सूक्ष्म कृमियोके लिये फिटकरी, लोह घटित औषधि, चूनेका जल नील-गिरी तैल, वायविडग, कीडामारी, निर्गुण्डी, गोखरू, मूसाकानी, काली मिर्च, डीकामाली, कौचकी फलीके कांटे, नागरमोथा. वगभस्म, नमकीन

जलकी वस्ति, त्रिफला, अतीस, कूठ, कपूर, केसर, अजवायन, इन्द्रजौ, कड़वी तुम्वी, कुचिला, पलाश बीज, सत्यानाशीकी जड़, एरण्ड तैल आदि इनके अतिरिक्त एरण्ड तैल, तार्पिन तैल, हीग, फिटकरी मिश्रितजल आदि औषधियोकी एनिमा भी दी जाती है।

कृमि नष्ट होकर फिर उत्पत्ति न होनेके लिए हिंगुल, सुवर्ण या लोह घटित और कड़वी-आमाशय पौष्टिक (दीपन-पाचन) औषधि या शराब का सेवन कराना चाहिये।

कृमिरोगकी उत्पत्ति, निदान और चिकित्सा आदिका विस्तृत विवेचन "चिकित्सातत्त्वप्रदीप" प्रथमखण्डमे किया गया है।

डाक्टरी विभाग—

(१) विशेष कृमिघ्न (Specific Anthelmintics)—इस प्रकारकी औषधियोंके सेवनसे कृमि विषाक्त होकर मर जाते है। फिर विरेचन देखकर मृत कृमियोको निकाल दिया जाता है।

उदाहरणार्थ गोल कृमिके लिये सेन्टोनीन, चेनोपोडियम तैल कद्दूदाना के लिये मैलफर्म, हूकवर्मके लिये अजवायन फूल, वेटानेफथोल; सूत सदृश छोटे कृमियोके लिये लवण जलकी वस्ति।

(२) यान्त्रिक कृमिघ्न (Mechanical Anthelmintics)—इस प्रकारकी औषधियोंसे कृमियोके शरीर विंध जाते है, और फिर वे गिर जाते हैं, जिससे वे अन्त्रमे नही रह सकते। वगभस्म, कलईका मिश्रो मिला चूर्ण, कौंचकी फलीके वाल इत्यादि।

कलई १ तोलेके पतले पतरे करा, ५ तोले मिश्री मिलाकर खरल करें। मात्रा १—१ माशा दिनमे दो वार जलके साथ देवें। यूनानी हकीम इस प्रयोगको विशेष वर्तते हैं।

(३) विरेचन कृमिघ्न (Purgative Anthelmintics)—कपिला, इन्द्रायण, उसारेरेवन्द आदि तीव्र विरेचन औषधियोके वेगसे सव कृमि गिर जाते हैं, परन्तु वहुधा उनमेसे कुछ जीवित रह जाते है।

(४) कृमि विकारघ्न कृमि उत्पत्ति निवारक (Preventive Anthelmintics)—इस प्रकारकी औषधिया अन्त्रकी श्लैष्मिक कलाका संशोधन करती है। जव अपथ्य आहारका अधिक सेवन होता है, तव यह कला दूषित हो जाती है; फिर उसमेंसे अधिक श्लेष्मा निकलता रहता है। ऐसी स्थितिमें कृमियोंके लिए अनुकूल उत्पत्ति स्थान और निवास स्थान मिल जाता है। यदि इस कलाका संशोधन हो जाय, तो फिर कृमिकी उत्पत्ति नही होती। इसका वर्णन आगे न० ३४ मे किया जायगा।

सेण्टोनीन आदि कतिपय कृमिघ्न औषधियोंकी योग्य मात्राने कृमि नही मरते, किन्तु उनके स्वापजनक प्रभावसे वेहोश हो जाते हैं। यदि उनको

अन्त्रसे न निकाला जाय, तो फिर वे स्वस्थ हो जाते है। इस हेतुसे इन ओषधियोके पश्चात विरेचन देना पडता है। जिससे कृमि गिर जाते और औषध विष नष्ट हो जाता है।

सेण्टोनीन नेत्रदर्पण (Retina) को हानि पहुँचाता है। इस हेतुसे इसका प्रयोग रात्रिको ही सोनेके समय किया जाता है।

कितनी ही कृमिघ्न औषधियाँ–मेलफर्न, अजवायन पुष्प, कार्बोन टेट्राक्लोराइडका सेवन प्रातःकालको लवण विरेचनके साथ कराया जाता है, एव इनके प्रयोगके पहिले अन्त्रमेसे आमको निकाल देनेके लिये भी विरेचन दिया जाता है।

लंघनसह कृमिघ्न ओषधिका प्रयोग करनेपर कद्दूदाना और वडिश कृमि (Hook Worms) अन्त्रद्रव्य द्वारा अपना सरक्षण नही कर सकते; किन्तु इससे रोगीको कुछ क्षीणता आती और औषधि शोषण होनेमे सहायता मिल जाती है, अत. लघन गम्भीर न होना चाहिये।

(३३) उदरकृमिघ्न और विरेचन।

परगेटिव एन्थेलमिन्टिक्स—Purgative Anthelmintics।

उदरके कृमियोंको मारने और विरेचन करा कर वाहर निकालनेवाली औषधिया—कपिला, इन्द्रायण, उसारेरेवन्द (रेवन्दचीनी सत्व) आदि।

कपिला कृमिनाशक और विरेचक है। मात्रा २ से ८ माशे। नैनीताल आदि पहाडी स्थानोमे इसकी अधिक उत्पत्ति होती है। कपिला विशेषत गुड़के साथ मिला कर दिया जाता है, खाने पर कुछ वेचैनी रहती है, परन्तु वमन नही होती। विशेषत यह गोलकृमि और सूक्ष्म कृमिको वाहर निकालनेके लिये उपयोगमे लिया जाता है।

इन्द्रायण—अति विरेचन कृमिघ्न, जलोदरनाशक है। इस इन्द्रवारुणीमे मुख्य तीन जाति है। इसका जुलाव लेनेपर उदरमे दर्द वहुत होता है। एवं अधिक मात्रामे लेनेपर आतोमे दाह शोथ हो जाता है। (अंगुली पककर भयंकर वेदना होनेपर इन्द्रायणके फलमे छिद्र कर उसमे अंगुली प्रवेश करा देनेसे वेदना कम हो जाती है। जलोदर और शोथ रोगीको इन्द्रायणका जुलाब देनेसे दस्तमे वहुत पानी निकल कर व्याधिवल कम हो जाता है)।

उसारेरेवन्द (Gambog)—अतिविरेचन, कृमिघ्न। मात्रा-१ चौथाई से १ रत्ती। यह नष्टार्तव और उदर रोगको दूर करता है। इसके सेवनसे विरेचनके साथ वमन और उदरमे वेदना उपस्थित होती है। साबुन और क्षारके साथ मिलाकर सेवन करनेपर ये उपद्रव कम होते है। अधिक मात्रामे सेवन करनेपर अन्त्रप्रदाह और विषलक्षण प्रकाशित होते हैं। इसके सेवनसे मूत्रकी वृद्धि होती है, और इसका वर्ण मूत्रमे शोषित हो जाता है। यह कृमिनाशके लिये लाभदायक है।

(३४) कृमि विकारघ्न

प्रिवेण्टिव एन्थेलमिण्टिक्स—Preuentive Anthelmintics ।

कृमियोकी उत्पत्तिके कारणरूप रक्त आदि धातु और आमाशय अन्त्र आदिमे रहे हुए सूक्ष्म बीजको नष्ट करनेवाली औषधिया—पारद, गन्धक, हिंगुल, सोमल, हरताल, सुवर्ण, मौक्तिक प्रवाल शिलाजीत, भिलावा, कुचिला, इन्द्रजौ, सर्पगन्धा, चिरायता, नीम, हीग, बच, डीकामाली, कीडामारी, अतीस, पलाशबीज, कडुवी जीरी लोहघटित औषधियां, कासीस, अभ्रक, अजवायन, गोमूत्र, शिलाजीत, बायविडङ्ग और एलवा आदि कडुवे रस प्रधान औषधिया। इसका वर्णन पहिले न० ३२ उदर कृमिघ्नमे किया गया है।

पलाश बीज—मृदु विरेचन कृमिनाशक और रसायन, बाहर लगानेपर उत्तेजक है। नीवूके रसमे घिसकर पामा, दद्रू और इतर चर्म रोगपर वाह्य कृमिघ्न (Insecticides) गुणके लिये लगाया जाता है।

डाक्टरी मतानुतार मात्रा १० से २० ग्रेन है। खानेके लिये पलाश बीजको जल या गोमूत्रने भिगोकर ऊपरकी छाल निकाल देवे। केवल भीतर की गिरी लेनी चाहिये। गोल कृमियोके लिये यह लाभदायक है। यह सेन्टोनिनके प्रतिनिधी रूपसे व्यवहृत होती है।

कीटमारी (कीडामारी)—इसको कडू भी कहते है। यह कडुवी, उष्णवीर्य, ज्वर, शोथ और कृमिकी नाशक है। अग्नि प्रदीप्त करती है और आहारपर रुचि उत्पन्न करती है। शोथपर इसके रसका लेप होता है। बालकोकी नाभिपर इसके पत्ते बाधनेपर मलशुद्धि हो जाती है। मासिक धर्म लानेके लिए और प्रसवकालमे गर्भाशयमे सङ्कोच करानेके लिये इसका उपयोग होता है। कीडामारीका रस दूधमे मिला कर उपदंशके घावपर लगाया जाता है, एवं सुजाकके रोगीको अफीम मिलाकर पिलाया जाता है। यह वृश्चिक विषपर भी लाभदायक है।

हिंगुपत्री (डीकामाली)—उष्ण, कटु, तीक्ष्ण, दीपक, कफघ्न, वातहर विवन्धनाशक और बेहोशीहर है। बाजारमे इस वृक्षका गोद मिलता है, वही औषध रूपसे व्यहृत होता है। इसके सेवनसे अन्त्रकी शुद्धि होकर पचन क्रिया प्रबल बनती है। मात्रा आधसे दो रत्ती।

अनेक बार व्रण, केश, रोम और बाह्य त्वचापर कृमि, जूं, चामजूं आदिकी उत्पत्ति होजाती है। उस समयपर बाह्य कृमिघ्न(Insecticides) औषधियोका उपयोग किया जाता है। इस प्रकारमे कायफल, कडुवी जीरी, बच, मिर्च, नीमतैल, कमलकी जड, तमाखू, गन्धक, चूनेका जल, अफीम, नीलगिरी तैल, फिटकरीका जल, नौसादरका जल, धतूरेका रस आदि अनेक औषधियां व्यवहृत होती हैं।

(३५) अपक्षयरोधक और कीटाणुनाशक

एण्टीसेप्टिक्स, डिसिन्फेक्टण्ट्स और पेरासाइटिसाइड्स।

Antiseptics, Disinfectants and Parasiticides।

अपक्षयरोधक (Antiseptics) जो द्रव्य सूक्ष्म कीटाणुओकी वृद्धिका अवरोध करे अथवा उनकी प्रगतिमे विलम्ब करे, फैलनेमे प्रतिबन्ध करे, किन्तु, नष्ट न कर सके, उनको अपक्षयरोधक सज्ञा दी है।

सक्रामक कीटाणु नाशक (Disinfectants or Germicides) इस प्रकारके द्रव्य रोगोत्पादक कीटाणु, जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष एक व्यक्तिसे दूसरोपर आक्रमणके हेतु होते है उनको नष्ट करते है।

दुर्गन्धहर— (Deodorizers or deodorants)— द्रव्य दुर्गन्ध और अप्रिय गन्धको दूर करते है। ये द्रव्य भी कीटाणुनाशक माने जाते है।

परोपजीवी कृमिघ्न - (Parasiticdes or Antiparasitics)— जो कृमि अन्य जीवोके आधारसे अपना जीवन निर्वाह करते है, उनको परोपजीवी सज्ञा दी है। उदाहरणार्थ जूं, खटमल, उदरकृमि आदि। उन कृमियोके नाशक द्रव्यको परोपजीवी कृमिघ्न कहते है। इस प्रकारके द्रव्योके बाह्य प्रयोगोका वर्णन आगे न० ३६ कुष्ठघ्न प्रकरणमे किया जायगा।

आमाशयपर लाभदायक औषध वातादि दोषोकी मल रूप विकृति या आमाशय आदिमे कीटाणु उत्पन्न होकर विविध रोगोकी उत्पत्ति करते है, इन विकृति या कीटाणुओकी वृद्धिको रोकनेवाली औषधिया-पारद, गन्धक, रसकपूर, सुवर्ण भस्म, नीलाथोथा, ताम्र भस्म, कासीस भस्म, मौक्तिक, शुक्ति, प्रवाल, शख, वराटिका, सोहागा, चूना नीम, कुचिला, वच्छनाग, अजवायनके फूल, पीपरमेण्टके फूल, नीलगिरी तैल, लौग, दालचीनी और सौफ आदिके तैल तथा मिर्च, सोठ, पीपल आदि दीपन-पाचन औषधिया।

यद्यपि आमाशयका अम्लस्राव अनेक प्रकारके सूक्ष्म कीटाणुओको नष्ट कर देता है। भोजनके साथ निगलनेमे आये हुए कितनेक जातिके कीटाणुओ (स्ट्रेप्टोकोकाई तथा प्रवाहिका, मधुरा, विसूचिका आदिके कीटाणुओ) को भी न्यूनाधिक अंशमें नष्ट कर देता है, तथापि आमाशयिक अम्ल अपूर्ण होनेसे या निर्बल होनेपर आमाशयमे आमोत्पत्ति सूक्ष्म-कीटाणुओकी उत्पत्ति होकर विविध विकारोकी उत्पत्ति होती है। फिर अपक्षयरोधक और कीटाणु नाशक औषधिका सेवन करनेकी आवश्यकता होती है।

अन्त्र चिकित्सामे अनेक रोगोकी उत्पत्तिको रोकने और उत्पन्न रोगोंमें कीटाणु नाशके हेतुसे औषध प्रयोग किया जाता है। यदि भुक्त द्रव्यके आम और विदाह (फेनीभवन क्रिया या मेन्द्रिय विष) की उत्पत्तिके दमनार्थ प्रयोग किया जाता है, तो इस कार्यके लिये आमाशयकी उग्रताका दमन करके वमनका निवारण करनेवाली औषधिया व्यवहृत होती हैं। गन्धक,

गन्धकका तेजाब, प्रवाल, शुक्ति, शख, वराटिका, कामीस भस्म और इतर आमाशयप्रदाहशामक औषधियाँ हितकारक है।

अग्निमान्द्य और अजीर्ण रोग का विवेचन 'चिकित्सातत्त्वप्रदीप' के प्रथम खण्ड मे और वमन रोगका विवेचन 'चिकित्सातत्त्वप्रदीप' द्वितीय खण्डमे किया गया है।

अन्त्रपर लाभदायक औषधिया—सोंठ, मिर्च, पीपल, अजवायन, अजमोद, अजवायनका फूल, पीपरमेण्टका फूल, सेलिसिलिक एसिड, ताम्र, हिंगुल, पारद, गन्धक, इन्द्रजव हरड और विविध विरेचन और ग्राही औषधिया। घृत, तैल आदिके आश्रयमे रहनेवाले कितनेक कीटाणु आमाशयके अम्लरसमे नष्ट नही होते और अन्त्रके भीतर क्षारीय पित्त मिश्रणके योगसे नष्ट हो जाते है। कभी कभी आमाशय रसकी तीक्ष्णता कम होने पर आम विषकी उत्पत्ति हो जाती है। यदि यकृत् पित्त पूरी मात्रामे न मिले तो अन्त्रमे दुर्गन्ध उत्पन्न हो जाती है। ऐसी अवस्थामे अन्त्र पर कार्यकारी औषधियोंका सेवन किया जाता है। डाक्टरीमे पारद प्रधान विरेचन केलोमलका प्रयोग अन्त्रमे अपक्षयरोधक क्रिया करानेके लिये ही किया जाता है। आयुर्वेदमे तो पारदके बहुसख्यककल्प है। जिसमेसे वृहद्क्रव्याद रस, अग्निकुमार, क्षुद्‌बोधक आदि मुख्य है।

कभी कभी विसूचिका आदि रोगोके प्रबल कीटाणु अन्त्रकी श्लैष्मिक कला को क्षति पहुँचा देते है, तब विषघ्न और कलापोषक रूपसे केओलीन, बादाम तैल, इस्सबगोल, बिहदाना आदिका प्रयोग किया जाता है। अतिसार, और प्रवाहिकामे श्लैष्मिक कलाके संरक्षणार्थ स्नेहोपग, औषधियो का प्रयोग होता है। उनका वर्णन नं० ९२ मे किया जायगा।

अन्त्रमे विदाह, दूषित विपाक या उत्पन्न विषका शोषण न होने और आहारका सम्यक् पचन होनेके लिये तथा अतिसार, आमातिसार, रक्तातिसार प्रवाहिका ग्रहणी रोग आदिका निरोध करनेके लिये पारदघटित पर्पटियां, हिंगुलभस्म, शंख भस्म, इन्द्रयव, हरड़ आदि औषधिया प्रयोजित होती हैं।

इन अतिसार आदि रोगोका विवेचन "चिकित्सातत्त्वप्रदीप" के प्रथम खण्डमे किया गया है।

कोष्ठबद्धता और ज्वरावस्थामे हरड, नीलगिरि तैल, अमलतास, एलुवा, रेवन्दचीनी, सप्तपर्ण, लहशुन, धतूरा आदि देनेसे रक्त शोषित विष और कीटाणुओं का नाश और दमन कार्यकी सिद्धि होती है।

इनके अतिरिक्त फुफ्फुस, मूत्राशय आदिको ज्वर आदि विविध रोगोंमें हानि पहुँच जाती है। फिर उनके संरक्षणार्थ अपक्षयरोधक और कीटाणु नाशक औषधकी योजनाकी जाती है। कितनेक क्षय, न्युमोनिया आदि रोगोंके कीटाणु श्वासग्रहणके साथ भी श्वसन यन्त्रमे प्रवेश कर जाते हैं,

उन कीटाणुओके सामान्यत उड्डयनशील तैलका उपयोग होता है । विशेष प्रयोग कीटाणु अनुरूप पृथक् पृथक् होता है । विशेष विचार नं० १० कफघ्न प्रकरणमे देखे ।

मूत्राशयपर कार्यकर चन्दन तैल, वकू तैल, लोहवान पुष्प, शीतल मिर्च आदि औषधिया है । विशेष विचार नं० २९ मूत्रविरेचनमे देखे ।

इस तरह कितनीक औषधियोका वाह्य प्रयोग भी अपक्षयरोधक और कीटाणुनाशक रूपसे होता है । ब्राह्य प्रयोग व्रणविद्रधि आदिके लिये होता है । उसका वर्णन नं० ४४ व्रणशोधन और व्रणरोपण प्रकरणमे देखे ।

कितनीक औषधिया लोहवान, कपूर, नीलगिरी तैल, पीपरमेण्ट, गूगल आदि सक्रामकता और स्पर्शाक्रमताके संरक्षणार्थ तथा संक्रामक रोगग्रस्त रोगीके थूक, श्लेष्म, मल, मूत्र और वस्त्र आदिमेसे निकले हुए कीटाणु श्वासोच्छ्वास क्रिया द्वारा बाहर आये हुए कीटाणु और वातावरणमे घूमने वाले कीटाणु, इन सबको नष्ट करने और गृह आदिकी वायुको विशुद्ध बनानेके लिये प्रयोजित होती है ।

जल मिलाकर निर्बल किया हुआ कीटाणुनाशक धावन अपक्षयरोधक क्रिया करता है । अनेक अपक्षयरोधक द्रव्य सूक्ष्म कीटाणुओकी उत्पत्तिमे विलम्ब तो करते है, किन्तु वे सबल कीटाणुनाशकके समान क्रिया नही कर सकते । क्यों कि जब वे सेन्द्रिय द्रव्यके सम्बन्धमे आते है, तब वे निष्क्रिय हो जाते है; अथवा इसकी सौम्यताके हेतुसे कार्य नही होता ।

अनेक कीटाणुनाशक औषधियां यद्यपि अधिकतम जीवित द्रव्यों तथा सर्व सामान्य जीवन रसके विषपर क्रिया दर्शाती है; किन्तु तन्तुओकी प्रधानता होनेसे सूक्ष्म कीटाणुओंपर क्रिया नही कर सकती । कितने ही सामान्य कीटाणुनाशक द्रव्य सूक्ष्म कीटाणुओंको नष्ट करते और उन तन्तुओको भी क्षतिग्रस्त करते है, जिनमे वे कीटाणु रहते है । सब कीटाणुनाशक द्रव्य तो चारो औरके घटकोंको भी नष्ट कर देते है ।

अपक्षयरोधक और कीटाणुनाशक द्रव्योका उपयोग वर्तमानमे अस्त्र-चिकित्सामें अत्यधिक हो रहा है । जिस स्थानकी अस्त्रचिकित्सा करनी हो, उस स्थानको, शस्त्र बांधनेकी पट्टी तथा औषध आदि सबको पूर्ण सावधानतापूर्वक विशुद्ध किया जाता है । इस सम्बन्धका विचार रुग्ण परिचर्या के पाचवे प्रकरण जन्तु विज्ञानमे किया है ।

दुर्गन्धनाशक औषध—गृहादिमेसे दुर्गन्धको दूर करनेवाली औषधियां— सूर्यका ताप, अग्नि उष्णवायु, गूगल आदिकी धूप, तार्पिन तैल, पोटास परमेगनेट, कार्बोलिक एसिड, फिनाइल, नमकका धूप, कोयला, आदि ।

पुनरोत्पत्तिनिवारक (Antiperiodics) औषध—अर्थात् उत्पन्न

कीटाणु या विषजन्य रोगोके विष, जो रक्त आदि धातुओंमे लीन हों; उनको नष्टकर रोगके पुनराक्रमणको निवारण करनेवाली औषधियां—सप्तपर्णघन इन्द्रजौ, सोमल, हरताल, रसकपूर, सुवर्ण, हिंगुल, गूगल, गिलोय, कुष्ठहर औषधियां आदि। ये कीटाओके बीजको नष्टकर रोगोंका दमन करती है।

विषम ज्वर, पुन पुन. होनेवाला शिरदर्द, उपदंशविकारज रक्तविकार सुजाक, कुष्ठ प्रवाहिका और वातशूल आदि आदि रोगोंमें इस प्रकारकी औषधियां व्यवहृत होती हैं। इन रोगोमे औषध प्रयोग करनेके पहिले पित्त-नि:-सारक, वामक या विरेचक औषधि द्वारा यकृत् क्रिया वृद्धि करानी चाहिये; और उदरकी शुद्धि करा लेनी चाहिये।

सोहागा (Borax)—शैत्यकारक, मूत्रल, रजोनि:सारक गर्भाशयसंकोचक, अम्लनाशक, कीटाणुनाशक अपक्षयरोधक, दुर्गन्धहर और स्थानिक प्रयोगमे उग्रतासाधक है। मात्रा ५ ग्रेनसे २० ग्रेन। अधिक मात्रामे सेवन करनेपर उवाक, वमन ओर आमाशयमे भारीपन आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। वार वार अधिक मात्रामे सेवन करनेपर इतर क्षारोके समान यह भी हानि पहुँचाता है। अजीर्ण, रक्तपित्तका पूर्वरूप, कभी कभी देहपर छोटी छोटी पिटिका निकलना इत्यादि लक्षण प्रकाशित होते है। गर्भाशय के विविध रोगोमे यह प्रयोजित होता है। मूत्रमे मूत्राम्ल (Uric Acid) बढ़नेपर उसे द्रवीभूत करानेके लिये यह अति उपयोगी है पारद सेवनसे मुँह आनेपर इसके कुल्ले कराये जाते है। एवं मुखपाक (क्षत) पर शहदके साथ मिलाकर लगाया जाता है। पूय प्रमेह और प्रदररोगमें इस औषधिका उपयोग उत्तर वस्तिरूपसे किया जाता है। विसर्पमे और स्तन फटनेपर शहद के साथ मिलाकर इसका लेप किया जाता है। स्वरभंगमें मुँहमे रखनेके लिये दिया जाता है।

सोहागामे गन्धक द्राव मिलाकर बोरिक एसिड (Boric Acid) बनाया जाता है। इसे डाक्टरीमें अत्यधिक उपयोगमें लेते हैं। यह सूक्ष्म कीटाणुओको नष्ट करनेके लिये उत्कृष्ट औषधि है। इसमे यह विशेष गुण है, कि प्रयोग करनेपर शारीरिक घटकोंपर उग्रता उत्पन्न नही करता। अधिक मात्रामें सेवन करनेपर आमाशय और अन्त्रमे प्रदाह हो जाती है, फिर भी विष क्रिया नही दर्शाता। मात्रा ५ से १५ ग्रेन। इसका अस्त्र चिकित्सामे अत्यधिक व्यवहार होता है। एवं क्षत आदिपर इसके स्वेद, द्रव, मलहम आदि प्रयोगोंको उपयोगमें लिया जाता है। पूययुक्त चक्षुप्रदाह स्त्रियोके जननेन्द्रियके समीप खूजली, कण्ठरोहिणी, मुख, नासिका, कण्ठ आदिमे क्षत और विविध चर्मरोगोमें स्थानिक प्रयोगरूपसे उपयोगमें आता है। मूत्राशयप्रदाह ५ रत्ती मात्रामे दिनमें २ से ३ बार खानेको दिया जाता है।

(नं० ३६) कुष्ठघ्न ।

एण्टिपेरेसाइक्सि—Antiparasitics ।

जो औषधियां त्वचापर उत्पन्न हुए विकार और कुष्ठ रोगके उत्पादक विषको नष्ट करे, उनको कुष्ठघ्न संज्ञा दी है ।

कुष्ठघ्न गण—चरक संहितामें खैरछाल, हरड आँवला, हल्दी, भिलावा, सप्तपर्ण (सतौनेकी छाल), अमलताशके पत्ते, सफेद कनेरकी जड़, वायविडङ्ग, चमेलीके पत्ते, ये १० औषधियां लिखी है ।

इनके अतिरिक्त चरक सहिता सूत्रस्थान तृतीत अध्यायमे कुष्ठहर अनेक सिद्ध प्रयोग दर्शाये है । जिनमे अनेक औषधियां कही है ।

सालसारादि गण साल वृक्षका सार, अजकर्ण (सालभेद), खैर, सफेद खैर, उदुम्बर, सुपारी, भोजपत्र, मेंढासींगी, तिनीश, सफेद चन्दन, रक्तचन्दन, शीशम शिरस, असन (विजयसार), धव, अर्जुन, ताड, सागवान, कटकरज, करंजुवा, अश्वकर्ण (सालवृक्ष भेद) अगर, पीलाचन्दन । इन २३ औषधियोको सालसारादि गण कहते है । ये गण कुष्ट, प्रमेह और पाण्डुका नाश करता है, तथा कफ मेदका शोषण करता है ।

इनके अतिरिक्त सुश्रुत सहितामे आरग्वधादि गण, लाक्षादि गण; त्रिफला और त्रिकटुको कुष्ठहर लिखा है । आरग्वधादि गणका वर्णन न० ३७ कण्डूघ्न में तथा लाक्षादि गणका वर्णन नं० ४३ व्रणशोधनमे देखे ।

त्रिफलाको कफपित्तहर, प्रमेहनाशक, कुष्ठविनाशक, चक्षुष्य, दीपन और विषमज्वरनाशक कहा है । पुन. आगे सर्वरोगहर और वयस्स्थापन गुण भी दर्शाया है ।

त्रिकटुको कफ, मेद, प्रमेह, कुष्ठ, त्वचारोग, गुल्म, पीनस, अग्निमान्द्य आदिका नाशक तथा अग्निप्रदीपक कहा है ।

और औषधियाँ—सोमल, हरताल, पारद, गन्धक रसकपूर, दालचिकना सीसा (नाग), सर्पविष लोहभस्म चालमोगराका तैल, पीला चम्पा, उश्वा, चोबचीनी, गोकर्णी, सत्यानाशी, सरफोका, कसौदी, नीम, रक्तशोधनार्थ निशोथ आदि विरेचन द्रव्य रसके शोषणार्थ रसकपूर, नाग (सीसा) और चना आदि ।

आयुर्वेदमे कुष्ठके मुख्य और गौण, ऐसे दो विभाग हैं । मुख्य कुष्ठ (Leprosy) मे भी वात, पित्त, कफ, वातपित्त, श्लेष्मपित्त, वातकफ, और त्रिदोषके प्रधान्यके भेदानुसार ७ भेद किये हैं । इनको क्रमशः कपाल, औदुम्बर, मण्डल, ऋष्यजिह्व, पुण्डरिक, सिध्म और काकण संज्ञा दी है । सबसे स्वरूप, लक्षण और परिणाममे भेद है ।

क्वचित् यह कुष्ठ रोग उपदंश रोगजनित विष रक्तमे लीन होनेपर उत्पन्न हो जाता है । इस कुष्ठमे जाति या अवस्था और लक्षणके अनुरोधसे

भेद नही होता। इस उपद्रव रूप कुष्ठके लक्षण सब रोगियोंमे बहुधा समान ही होते है।

रोग जीर्ण होनेपर गलित्कुष्ठकी प्राप्ति हो जाती है। प्रारम्भमे कान, नाक, गाल आदि पर लाल चकते होते है। फिर हाथ-पैरकी अँगुलियो पर शोथ आता है। पश्चात् संवेदना शक्तिका शनैःशनै लोप हो जाता है। ऐसे समय पर अग्नि स्पर्शका भी पूरा बोध नही होता। तत्पश्चात् स्थान-स्थानपर शोथ फूटने लगता है, उसमेसे पीप निकलने लगता है। सपूर्ण शरीर सूज जाता है। मुखमण्डल भयानक बन जाता है। अन्तमे हाथ-पैरकी अँगुलिया टूट-टूट कर गिरने लगती है।

कुष्ठ रोगमे कतिपय चर्मकुष्ठ, किटिभ, विपादिका, अलसक, दद्रु मंडल, चर्मदल, पामा, कच्छु, विस्फोटक, शतारु, विचर्चिका, ये ११ उपकुष्ठ (Diseases of the skin) है। इन सबका अधिक विष अधिक गहराईमे नही जाता। इसके कीटाणु विशेषत' त्वचामें रहते है। इस हेतुसे डाक्टरी ग्रन्थकारोने इन सबको चर्म रोगके भीतर लिखा है।

सोमल, हरताल, पारद भस्म, रसकपूर, दालचिकना, नाग भस्म, सर्पविष, लोहभस्म, खदिर छाल, भिलावा और चौलमोगरा तैल ये सब महाकुष्ठको नाश करनेवाली औषधिया है। शेष उपकुष्ठोमे उपकार है।

सोमल, हरताल, पारद भस्म, रसकपूर, दालचिकना, ये उपदंश जनित कुष्ठमे भी लाभदायक है। पारद भस्म, रसकपूर, दालचिकना आदि प्रथमावस्थामे, हरताल भस्म द्वितीयावस्थामें और तृतीयावस्थाके प्रारम्भ समय तक लाभदायक है, और सोमल अति बढी हुई अवस्थामे भी लाभ पहुँचाता है।

सर्पविषका उपयोग कुष्ठरोग पर यूनानीमे होता है, और परिणाम भी संतोषजनक होता है। अनेक हकीम मृत सर्पका खात डालकर ईख बोते हैं। फिर कुष्ठरोगीको खिलाते है। ऐसा सुना है कि इस प्रयोगमे लाभ पहुँचता है, अनेक सर्पके मुँहमे सोमल, दालचिकना आदि औषधियां भर, सपुट कर भस्म बना लेते है। फिर गलित्कुष्ठ रोगमें प्रयोजित करते है।

महाकुष्ठ रोगपर चौलमोगराके तैलका उपयोग वर्त्तमानमें अत्यधिक हो रहा है। डाक्टरी मतानुसार यह विशेष लाभदायक माना गया है।

नाग भस्म—रस, रक्त, मांस आदि सब दूष्योको सबल बनानेमें लाभदायक है। दूष्य सबल बनने पर कीटाणु और विषकी वृद्धि रुक जाती है, इस हेतुसे इसे कुष्ठनाशक माना है।

भल्लातकपाकका उपयोग गलित्कुष्ठकी प्रथमावस्था (चकता होनेके प्रारंभ) में किया गया है। यह भी रोगके विषको जलाकर रोगीको नीरोग बना देता है।

गन्धक, मजीठ, चोबचीनी, सत्यानाशी, खदिर छाल, सप्तपर्ण, त्रिफला,

मुण्डी, उश्वा, अम्लतास आदि रक्तशोधक और त्वचा रोगहर हैं।

लोह भस्म रक्तमे रहे हुए रक्ताणुकी वृद्धि करती है, तथा मृत अणुओको जला देती है। इस तरह रक्त सबल और निर्दोष होनेपर कुष्ठरोग सरलता पूर्वक दूर हो जाता है।

मुर्दासग, रसकपूर, कपूर, सोहागा, नीलाथोथा, गन्धक, कत्था, गोमूत्र, तमाखू, नीलगिरी, तैल, चक्रमर्द (पुंवाड) के बीज, कसौदी, नीम पचाग, चमेलीके पत्ते, बावविडग, सत्यानाशी आदि औषधिया त्वचामें रहे हुए कीटाणुओको नष्ट करती है।

(३७) कण्डूघ्न।

एण्टिसोरिक—एण्टिप्रुरीजिनस-एण्टिप्रुराइटिक।

Antipsoric—Antipruriginous—Antipruritic।

जो द्रव्य कण्डू (खुजली) को नष्ट करें और उसकी उत्पत्तिको रोके, उनको कण्डूघ्न, कण्डूनाशक और कण्डूरोधक कहते है।

खुजलीकी उत्पत्ति अधिक मिर्च, नमक, अधिक खटाई, या अधिक परिमाणमे मधुर पदार्थका सेवन करने पर और कब्ज अधिकाशमे रहनेसे रक्तमे हानिकर विषका प्रवेश होनेपर होती है। इनके अतिरिक्त बाहरसे कीटाणुके प्रवेशसे भी होती है। दद्रु या कण्डू पीडित रोगीके वस्त्रका उपयोग करना, सुजाक आदि रोगपीडित पुरुष या स्त्रीका समागम, गन्दे जलसे स्नान, गन्दे स्थानमे नंगे पैरसे चलना इत्यादि कारणोसे भी कण्डूकी उत्पत्तिमे होती है। कण्डूकी उत्पत्ति जो हेतु हो, उसका त्याग करनेपर औषधि सत्वर लाभ पहुँचा सकती है।

पारद, गन्धक, विरेचन औषधि, ये सब अन्त्र और रक्तमे अवस्थित विषको नष्ट करनेमे सहायक होती है। सरसोका तेल, नीलगिरी तैल, निम्ब तैल और सत्यानाशीके तैल आदिकी मालिश और इतर औषधियोके लेपसे चर्ममे रहे हुए कीटाणु या कृमि नष्ट हो जाते है। तमाखूका जल या गोमूत्र से कण्डूवाले स्थानको धोना तथा गन्धक मिले जलके स्रोतमे स्नान करना आदि प्रयोगोसे भी खुजली शमन हो जाती है।

कण्डूघ्न—चरक सहितामे चन्दन, जटामांसी, अमलतास, करज, नीम, कुटजत्वक्, सरसो, मुलहठी, दारुहल्दी और नागरमोथा, ये १० औषधियाँ लिखी है।

सुश्रुत सहितामे पटोलादिगण, एलादिगण तथा आरग्वधादि गण कहा है। इनमेसे पटोलादि गणका वर्णन नं० ९० मे किया जायगा।

एलादिगण छोटी इलायची, तगर, कूठ, जटामासी, रोहिषघास दालचीनी, तेजपात, नागकेसर, पियगु, रेणुका, नखी, सीप, चण्डा (गुगलानी अजवायन), स्थौणेयक (ग्रन्थिपर्ण-थुनेर), श्रीवेष्टक (सरलवृक्ष-गूगल) दान्-

चीनी, चोरक (ग्रन्थिपर्ण भेद), नेत्रबाला, गूगल, राल, शिलारस, कुन्दरु, अगरु, स्पृका (कपूरवल्ली), खस, देवदारु, केशर, कमल केशर, ये २८ औषधियां। यह गण वात, कफ, कण्डू, पिटिका, कोढ़ आदि रोगोको नष्ट करता है, और देहके वर्णको सुधारता है।

आरग्वधादि गण—अमलतास, मैनफल, गोपघोण्टा (सुपारी भेद), कुड़ा, पाठा, कण्टकी (बड़ी कटेली), पाढल, मूर्वा, इन्द्रजौ, सप्तपर्ण, नीम, पीलेफूलका कटसरैया, नीले फूलका कठसरैया, गिलोय, चित्रक, शार्ङ्गेष्ठा (काकजंघा मतान्तरमे काकमाची), करज पूतिकरज, परवलके पत्ते, चिरायता और करेला, ये २१ औषधिया। यह गण श्लेष्मप्रकोप, विष, प्रमेह, कुष्ठ, ज्वर, वमन, कण्डू आदिका नाशक और व्रणका शोधक है।

(३८) विषवर्ग— Poisons

तीक्ष्णोष्णरूक्षविशदं व्यवाय्याशुकर लघु।
विकाशि सूक्ष्ममव्यक्तरसं विषमपाकि च॥
ओजसो विपरीतं तत् तीक्ष्णाद्यैरन्वितं गुणै।
वातपित्तोतरं नृणा सद्यो हरति जीवितम्॥
विषं हि देहं सम्प्राप्य प्राग् दूषयति शोणितम्।
कफपित्तानिलांश्चानु समं दोषान्सहाशयान्॥
ततो हृदयमास्थाय देहोच्छेदाय कल्पते।

अ० हृ० उ० अ० ३५।

विषमे तीक्ष्ण, उष्ण, वीर्य, रूक्ष, विशद, व्यवायी, आशुकारी, लघु-विकाशी, सूक्ष्म और अव्यक्त रस आदि १० गुण अवस्थित हैं। इस विषका पाक न होनेसे इसे अपाकी कहा है। विष तीक्ष्ण आदि गुणों युक्त होनेसे ओजके विपरीत (नाशक है। यह वात, पित्त आदि धातुओको नष्ट कर तत्काल जीवनका हरण कर लेता है। पहिले रक्तको दूषित करता है। फिर कफ, पित्त, वात, इन दोषोको और आशयोको विकारी बनाता है। पश्चात् हृदयमे प्रवेश करके जीवनका उच्छेद करता है।

भगवान् आत्रेय कहते हैं कि, विष द्रव्य रूक्षगुणके कारण वायुको, उष्ण होनेसे पित्तको, सूक्ष्म होनेसे रक्तको तथा अव्यक्त रसके कारण कफको प्रकुपित करता है। आशुकारी होनेसे शीघ्र अन्न रसका अनुसरण करता है। व्यवायी होनेसे (सत्वर व्याप्त होनेका स्वभाव होनेसे) संपूर्ण शरीरमे शीघ्र ही व्याप्त हो जाता है। तीक्ष्ण होनेसे मर्मघ्न (हृदय आदि मर्मस्थानोको दूषित करनेवाला) होता है। विकासी गुणके कारण प्राणोंको नष्टकर देता है। लघु (चचल) गुण होनेसे दुश्चिकित्स्य होता है। विशद गुणके कारण दोषोंमे सर्वत्र ही फैल जाता है।

सूक्ष्म होनेसे रक्तवाहिनियोके मार्गमें सरलतापूर्वक प्रवेश करके रक्तको दूषित बना देता है । विषको प्राण नाशक कहा है क्यो कि, प्राण ओजपर अवस्थित हैं और यह ओजको नष्ट करता है; इस हेतुसे इसे प्राणका नाशक कहा है ।

विषको अष्टाङ्ग संग्रह और अष्टाङ्ग हृदयकारने अपाकी (पाक न होने योग्य) कहा है अर्थात् उसकी गति सम स्थितिमे बनी रहती है । इस हेतुसे भी यह देहका विनाश कर देता है । मन्त्र और औषध बलसे विषको शान्त करनेपर भी सुविधा मिलनेपर यह प्रकुपित हो जाता है ।

विष वातप्रधान प्रकृतिके मनुष्योकी देहमें प्रवेशित होनेपर जब वात स्थानमें पहुँचता है. तब वातप्रकोपके लक्षण तृषा, मूर्च्छा, व्याकुलता, मोह, गलग्रह (गलापकडना), वमन और झाग आना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं; तथा कफपित्तके लक्षण कम हो जाते है ।

पित्तप्रधान प्रकृतिवालोके पित्तके आशयोमें विषका प्रवेश होनेपर तृषा, कास, ज्वर, वान्ति, क्लम, दाह, तमःप्रवेश (अन्धेरा आना) और अतिसार आदि पित्तप्रकोपके लक्षण प्रतीत होते है; तथा वात कफके लक्षण कम होते है ।

कफप्रकृतिवालोमे विष कफके स्थानमे पहुँचनेपर श्वास, गलग्रह (कण्ठ मे कफसे रोध होना) कण्डू, लार गिरना और वमन आदि लक्षण प्रधान रूपसे तथा वातपित्तके लक्षण गौण रूपसे होते है ।

एवं वातप्रकोपक पित्त वातस्थानको, पित्तप्रकोपक विष पित्तस्थानको तथा कफप्रकोपक विष कफस्थानको अधिक प्रकुपित करता है ।

विषका प्रवेश त्वचा, श्वासमार्ग, अन्नमार्ग, गुदा और मूत्रमार्गसे होता है कितनेक कीटाणु देह प्रवेशकर विषोत्पत्ति करते है । एव अपचन आदिसे भी देहमें सेन्द्रिय विषकी उत्पत्ति हो जाती है ।

विषद्रव्य—सब प्रकारके नव महाविष (कालकूट, हलाहल, ब्रह्म पुत्र, बच्छनाग, हारिद्रक, सक्तुक, प्रदीपन, सौराष्ट्रिक और शृङ्गक), सप्त उपविष (थूहरका दूध, धतूरा, कलिहारी, कनेर, सफेद गुञ्जा, अफीम, आकका दूध), कुचिला, जमालगोटा, सोमल, हरताल, मैनसिल, रसकपूर, गाजा, केसर, कपूर, नीलाथोथा, सर्प आदि जीवोका जंगम विष आदि । स्थावर और जगम आदि विषयोंका विशेष विचार चरक सहिता चिकित्सा स्थान अध्याय २३ तथा सुश्रुत संहिताके कल्प स्थानमें किया गया है ।

क्वचित् हानिकर औषधि, ऋतु-परिवर्तन, अपथ्य आहार, हितकर औषधिका अत्यधिक मात्रामे सेवन, अत्यधिक पथ्य भोजन, विरुद्ध भोजन, क्रोध, मानसिक चिन्ता, मलावरोध, मूत्रावरोध पूयोत्पत्ति, दुष्ट सकल्प, प्रेरणा आदि कारणोसे भी देहमें विषोत्पत्ति हो जाती है । एव विसूचिका,

ग्रन्थिज्वर, श्लैष्मिक ज्वर, आमवातिक ज्वर आदि व्याधि उत्पादक कीटाणुओके प्रवेश होनेपर कीटाणु-सन्तानोंकी उत्पत्तिके साथ साथ विष वृद्धि भी होने लगती है। इनको छोडकर जो खनिज, उद्भिज और जान्तव मारक विष है, उनके परिणाम अनुरूप डाक्टरीमे उनको तीन श्रेणियोमे विभक्त किया है।

(१) क्षोभ उत्पादक (इरिटण्ट्स Irritants)।

(२) मोहजनक (नार्कोटिक्स Narcotics)।

(३) मोह जनक और क्षोभोत्पादक (नार्कोटिक इरिटण्ट्स ऑर एक्रो-नार्कोटिक्स Narcotic Irritants or Acro-Narcotics)।

(१) क्षोभोत्पादक अर्थात् उग्रता और प्रदाहकारक विष—सोमल, हरताल, मैनसिल,, रसकपूर, दालचिकना, आक, कनेर भिलावा, कलिहारी, एलुवा, जमालगोटा, निशोथ, रेवन्दचीनी, कालादाना, उसारे रेवन्द, इन्द्रायन, चित्रकमूल, शीतल मिर्च, पीपल, तार्पिन तैल आदि। इस प्रकारकी औषधियोके लक्षण कुछ विलम्बसे प्रतीत होते है परन्तु तीक्ष्ण, विनाशकारी (Corrosive) विष—फास्फरस, तेजाब, दाहक क्षार उग्र अम्ल आदिकी क्रिया तत्काल प्रकाशित होती है। इनके सेवनसे आमाशय आदिकी श्लैष्मिक कला कोमलीभूत होकर विनष्ट हो जाती है।

(२) मोहजनक विष—अफीम, धतूरा, गाँजा, शराब, बहेडेकी गिरी, आदि। ये सब वातवहानाडियोपर प्रभाव दर्शाती है। इनके सेवनसे प्रलाप, जडता, चक्कर, शिरदर्द, क्षीणता, तीक्ष्ण आक्षेप और फिर अचेतनाकी उत्पत्ति होती है।

(३) मोह जनक और क्षोभोत्पादक विष—कुचिला, कुचिला सत्व, बच्छनाग, कपूर, तमाखू, कडुवे बादाम आदि। इस प्रकारकी औषधियो द्वारा उग्रता और मोहजनकता (बेहोशी) दोनो परिणामोकी प्राप्ति होती है।

क्षोभोत्पादक गुण नं० ९९, प्रतिक्षोभोत्पादक नं० १०० और मोहजनक नं ७७, इन स्थानोमे विशेष गुण वर्णन देखे।

विषनिर्णायक लक्षण—

१ बलक्षय (Collapse)— क्षोभोत्पादक और तीक्ष्ण दाहक विषका यह प्रधान लक्षण है। इतर प्रकारके विषोंमे शेषावस्था होनेपर बलक्षय होता है।

२. बेहोशी (Coma)—अफीम, शराब, क्लोरोफार्म आदिमे इस लक्षणकी प्राप्ति होती है।

३ उत्तेजना (Srimulation) – शराबकी प्रथमावस्थामे उत्तेजना आती है, एवं कुरासानी अजवायन गाजा, आदि औषधियोंसे अन्तिमावस्थामे उत्तेजना आती है।

४. नेत्र परिवर्त्तन—अफीमसे नेत्रकी कनीनिका आकुञ्चित होती है, और तमाखू, खुरासानी अजवायन एट्रोपिया आदिसे प्रसारित होती है। शराबसे सामान्यतः नेत्रकी पुतली प्रसारित होती है, किन्तु क्वचित् संकुचित भी हो जाती है।

५. त्वचा परिवर्त्तन—बेलोडोना सत्व (एट्रोपाइन) से त्वचा शुष्क हो जाती है। अफीम और बच्छनागसे चर्म आर्द्र हो जाता है, एव अनेक विषोंकी बलक्षयावस्थामें भी त्वचा गीली हो जाती है।

६. निःश्वासमे गन्ध—अफीम, शराब, कार्बोलिक एसिड आदिके विषमे मूल पदार्थकी गध नि.श्वासमे निकलती रहती है। फास्फरस सेवनसे नि.श्वासमे लहशुन सदृश दुर्गन्ध आती रहती है।

७ मुखाभ्यन्तरस्थ श्लैष्मिक कलाविकृति—तेजाब और दाहक क्षारसे कोमलीभूत और श्वेत वर्णकी हो जाती है। अफीम, गाजा, एट्रोपिन आदिसे मुखमे शुष्कता आ जाती है।

८ वमन—क्षोभोत्पादक विषसे वान्त पदार्थ रक्त मिला काफीके चूर्ण सदृश वर्णका हो जाता है। फास्फरससे वमन काली होती है। सोमलमे वान्तद्रव्य हरा सा और क्वचित् रक्तमिश्रित होता है, ताम्र और नीलेथोथे मे वमनका वर्ण नीला-सा हो जाता है।

इनके अतिरिक्त उदरशूल, अतिसार, शिरदर्द, व्याकुलता, आक्षेप, दाह, प्रस्वेद आदि लक्षण भी विष निर्णयमे सहायता पहुँचाते हे।

(३९) विषघ्न—Antidotes

सेन्द्रिय विष, रोगजन्य विष और औषधप्रकोपज विष, जो धातुओंमे लीन हो गया हो, उसे शमन करे, उसे विषशामक (Chemical Antidotes), आमाशयमे प्रवेशित कर्तन, भेदन, विदारण आदि गुणयुक्त विषको शोषित न होने दे, उसे विषरोधक (Mechanical Antidotes), विषको जलाकर स्वेदद्वारा बाहर निकाल दे, उसे विषनाशक (Physiologicalal Antidotes), तथा वमन विरेचन करा विषद्रव्यको बाहर निकाल दे, उसे विषापह (Evacuant) सज्ञा दी है।

विषघ्न गण—चरक सहितामे हल्दी, मजीठ, सुवहा (हारसिंगार या हसपदी). छोटी इलायची, पालिन्दी (श्यामा, काली निशोथ), चदन, कतक (निर्मली), शीरीष, निर्गुण्डी, लिहसाडा, ये १० औषधियां लिखी है।

सुश्रुत सहितामे आरग्वधादि, लोध्रादि, अर्कादि, एलादि, पटोलादि, उत्पलादि, अञ्जनादि और अम्बष्ठादि गणको विषहर कहा है। इनमेंसे आरग्वधादि न० ३७ कण्डूघ्नमे, लोध्रादि गण न० ५० प्रदरनाशकमे, अर्कादि गण न० ४३ व्रणशोधनमे, एलादि गण न० ३७ कण्डूघ्नमे, पटोलादि गण नं० ९० ज्वरघ्नमे तथा अञ्जनादि गण और उत्पलादि गण नं० ५१ दाह

शामक प्रकरणमे देखे ।

त्र्प्वादि गण—वङ्ग, सीसा (नाग), ताम्र, रौप्य, सुवर्ण, लोह और मण्डूर, ये ७ औषधियां । यह गण गर(कृत्रिम विष), कृमि, तृषा, विषप्रकोप, हृद्रोग, पाण्डु और प्रमेहका नाशक है ।

एकसर गण—बावची, मैनफल, नागकेशर, कटभी, सम्हालू, चोरक, (ग्रन्थिपर्ण भेद सुगन्धद्रव्य), वरणा, कूठ, सर्पगन्धा, सातला, पुनर्नवा, शिरीषके फूल (और पञ्चाग), अमलतासकी फली और पुष्प, आकके फूल (ओर मूल), श्यामा (काली निशोथ), पाठा, बायविडङ्ग, आम, अश्मन्तक (अम्लोट), काली मिट्टी और पियाबासा, ये २१ औषधियां । इनमेसे एक एक, दो-दो या तीन-तीन औषधोका प्रयोग करना चाहिये ।

इनके अतिरिक्त मुलहठी, तगर, अगर, देवदारु, पित्तपापडा, छोटी इलायची, एलवालुक, कमल, मिश्री, प्रियंगु, रोहिपतृण, हल्दी, दारुहल्दी, छोटी कटेली, बड़ी कटेली, शालपर्णी, कोपातकी, बला, अजमोद, त्रिकटु, सुवर्ण गेरु, जटामांसी, नागरमोथा, लाख, अतीस. हरड़, गिलोय, पारिभद्र, असन, अश्वकर्ण (शाल), धव (धावड़ा) त्रिफला, हिंगु, लवणवर्ग, सज्जीखार, चित्रक, कुटकी, गुग्गुलु, तालीशपत्र, श्योनाक छरीला, बिजौरा, गोकर्णी, कपित्थ, वचा, करजके बीज, काकमाची, अपामार्गके बीज, तिलपर्णी भारंगी, कपूर, रास्ना, केतकी, चमेली, अरनी आदि अनेक औषधिया सुश्रुत सहिताके कल्पस्थानमे कहे अगदो (विषहर औषधियोमे तथा चरक सहिता चिकित्सा स्थान अध्याय २३ मे लिखी हैं ।

और औषधिया—जसद, पारद, प्रवाल, मुक्ता, राजावर्त, जहरमोहरा खताई, पिरोजा, नीलाथोथा, सोमल, हरताल शोलाजीत, ईसरमूल, कुचिला चूनेका जल, सोहागा, रेवन्दचीनी, उसारे रेवन्द, सत्यानाशी, हस्तीशुण्डो, एरण्डके पत्ते, अंकोल, रीठा, राई, वसु (पुनर्नवा भेद), जद्वार खताई, (निर्विषी), सुहिजना, तमाखू, बकायन केलेके खम्भेका रस, मिरचाकंद, नौसादर आदि । एव घी, शहद, मक्खन, दूध, दही, अण्डेका रस, शीतल जल, उष्ण जल ये सब आवश्यकतानुसार मिलाये जाते है ।

पिरोजा, गन्धक, रेवन्दचीनी सनाय, निसोत, उसारेरेवन्द, कुटकी सत्यानाशी, त्रिफला, नमक, गोकर्णी आदिमे विरेचन गुण, मैनफल, सत्यानाशी, हस्तीशुण्डी, वच, नीलाथोथा, रीठा, आक, तमाखू, अकोल आदिमे वमन गुण, उसारेरेवन्द, नीलाथोथा' वच, सत्यानाशी आदि कतिपय औषधियोमे वमन-विरेचन, दोनो गुण, नौसादर, गरम जल, राई, बकायन, सुहिजना आदिमे स्वेदन गुण, गिलोय, शालपर्णी गूगल- शिलाजीत आदिमे विषशामक गुण, अभ्रतमूल, पुनर्नवा, वसु, सनाय, केलेके खम्भेका रस, छोटी इलायची आदिमे मूत्रल गुण, तथा अनेक औषधियोमे विशेष प्रकार

के विषको नष्ट करनेका गुण है ।

सामान्यत: तिक्त रसमय द्रव्य लघु और सूक्ष्म स्रोतोगामी होनेसे विष के समान सूक्ष्म स्रोतसोंमें सत्वर पहुँच जाते है । फिर अपने विशद गुण और शीतवीर्यके हेतुसे पित्तप्रकोप और श्लेष्मप्रकोपके लक्षणोको शमन करनेमे सहायक होते है ।

सामान्यत: विषका परिणाम सत्वर होता है । रक्तधातु दूषित होनेपर हृदयपर असर पहुँच ही जाता है । अत: हृदयके सरक्षक और बलवर्द्धक द्रव्य सुवर्ण मुक्ता, प्रवाल आदि तथा मूत्र द्वारा विषकोबाहर निकाल कर रक्तको शुद्ध करनेवाले द्रव्य सारिवा, श्वेतचन्दन, मजिष्ठा, पुनर्नवा आदिका प्रयोग भी करना चाहिये ।

कितनेक विष वातनाड़ीयो और रक्तवाहिनियो द्वारा सत्वर मस्तिष्कमे पहुँच जाते है । कितनेक प्रकारके विषो (अफीम, सर्पविष आदि) से बेहोशी आ जाती है । उसे रोकनेके लिये तेज कॉफी पिलायी जाती है । एवं नेत्रमे तीक्ष्ण अञ्जन किया जाता है । पीपल आदिका प्रयोग इस तरह अजन रूपसे होता है ।

सुवर्णमे कीटाणुनाशक और प्रतिविषोत्पादक गुण होनेसे वह सर्प आदिके लीन विष, उपविष और देहमे उत्पन्न सेन्द्रिय विष और विविध कीटाणु तथा इन सबसे उत्पन्न विकृतिको दूर कर, देहको निर्विप बनाता है ।

रौप्य भस्म, नाग भस्म, लोह भस्म, वग भस्म, रससिन्दूर, शिलाजीत आदि औषधिया प्रमेह या मधुमेहसे उत्पन्न सेन्द्रिय विपको नष्ट करती है ।

सोमल, हरताल, पारद भस्म, रसकपूर आदि औपधिया उपदश जनित विषको जलानेमे अति हितकारक है । प्रारम्भिक अवस्थामे पारद भस्म, रसकपूर, मुर्दासग आदि हितकारक है । कुछ भलती औपधिसे उपदश विष कुपित होनेपर प्रथमावस्थामे नीलाथोथा, द्वितीयावस्थामे हरताल और द्वितीय तथा तृतीयावस्थामे सोमलप्रधान औपधिया लाभदायक है ।

वंग भस्म, शृ ग भस्म, जसद भस्म आदिके सेवनमे विद्रधि आदिका पूयजनित विष, जिसका रक्तमे प्रवेश हो गया हो, वह जल जाता है, ज्वर कम हो जाता है और विद्रधि जल्दी भर जाती है ।

लोह भस्म प्रमेहजन्य विप और विविध प्रकारके कुष्ठविपके नाशमे अति हितकारक औपधि है ।

ताम्र भस्म, मोहजनक विप, कृत्रिम विप, सेन्द्रिय विप आदिको दूर करती है ।

शिलाजीतमे दोपको सुखानेका अद्भुत गुण है । मधुमेहमे रक्त, विषमय बनता रहता है । फिर विप अधिक बढनेपर सन्यासकी प्राप्ति हो जाती है, परन्तु शिलाजीतका सेवन करते रहनेसे रक्तमे विपवृद्धि नही हो सकती ।

इसके विपरीत शिलजीतके रसायन गुणके हेतुसे रक्ताणु सुदृढ़ और सबल बनते जाते है ।

कुचिला तम्बाखूके विषको, चूनेका जल तेजाबजन्य दाहक विषको, कपूर विसूचिकाके विषको, क्विनाइन मलेरियाके विषको, सुवर्णमाक्षिक क्विनाइन के विषको, हींग अफीमके विषको तथा दही अथवा कॉफी भाँगके विषको दूर करनेमे उपयोगी माने गये है ।

डाक्टरीमतानुसार विभाग—

(१) रासायनिक (Chemical)—विषमे मिश्रित होकर रासायनिक क्रिया द्वारा विषके स्वभावको नष्टकर देनेवाली औषधियाँ । जैसे गन्धकके तेजाबका विषमय असर होनेपर क्षार या चूनेको जलमे मिलाकर सेवन करना । क्षार द्वारा विषाक्त होनेपर अम्ल रसका प्रयोग करना । उद्भिज विषके असरको नष्ट करनेके लिये जगम विष और जगम विषके असरको नष्ट करनेके लिये स्थावर विषकी योजना करना आदि ।

(२) यान्त्रिक (Mechanical)—जो औषधिया आमाशयकी श्लैष्मिक कला और विषके परमाणुओके चारो ओर आवृत्त होकर यन्त्रोका रक्षण करे और विषको शोषण न होने दे, वे यान्त्रिक कहलाती है । जैसे काँच खानेपर घी तैल, अण्डेका रस, दूध, दही, मक्खन, गोदका जल, मिश्री आदि पिलाना (एवं वमन भी कराना) ।

(३) आधिभौतिक (Physiologic)—विष विरोधी क्रिया करके विषको नष्ट करनेवाली औषधियाँ । जैसे काफी द्वारा अफीमके मोहजनक असरको नष्ट करना । पारद भस्मका सेवनकर जीवनीय शक्तिकी क्रिया द्वारा उपदंशके विषको नष्ट करना । सुवर्णका सेवनकर क्षय कीटाणुका विनाश करना आदि ।

विषचिकित्साके नियम—

(१) विष स्थानान्तरित करण—औषधया कण्ठमे अँगुली डालकर वमन कराना, अथवा यन्त्र (स्टमक पम्प) द्वारा आमाशयमेसे विष खीच लेना ।

दाहक औषध प्रकोपमे वमन करा तरल कारक और शिथिल कारक औषध (दुध, दही), ईसबगोलका लुआब आदिका सेवन कराना ।

उग्र द्रावक या क्षार आदिके विषयमे स्टमक पम्पका प्रयोग निषिद्ध है । सिवाये जलमे नमक मिलाकर अथवा नीलेथोथेका जल पिलाकर वमन करना चाहिये । नीलेथोथेकी मात्रा वमनार्थ २॥ रत्तीसे ५ रत्ती ।

(२) रासायनिक (Chemical) विषशामक प्रयोग ।

(३) विषविकारमे संरक्षणार्थ यान्त्रिक (Mechanical) प्रयोग ।

(४) आधिभौतिक क्रिया द्वारा विषक्रिया लाघवकरण । जैसे तेज काफी द्वारा अफीमका मादक असर कम किया जाता है ।

(५) विषरक्तमें शोपण होनेपर शमन या शोधन औषधि द्वारा निर्गत करण। यथा पारद (रसकर्पूर आदि) के विपशमनार्थ भाँगरेके रस और लस्सीमे सोरा मिलाकर पिलावे। बच्छनागके विपशमनार्थ दूधमे चौलाईका रस मिलाकर पिलावे। अथवा नीलाथोथा जलमे मिलाकर पिलानेसे भी विषका निवारण होता है। सोमल द्वारा विषाक्त होनेपर विरेचन और रासायनिक विषशामक औपधि व्यवहृत होती है। घृत तथा चौलाईका रस, दूध-मिश्री और जल मिला, ठण्डाई बनाकर पिलानेसे विष सत्वर शमन हो जाता है।

(४०) रक्तवर्धक।

रक्तपौष्टिक-हिमेटिनिक्स-ब्लड टॉनिक्स।

Haematinics—Blood tonics।

जो औषधियाँ रक्तमे रक्ताणुओकी संख्या और रक्तरंजनकी वृद्धि करे, उनको रक्तवर्द्धक संज्ञा दी है। रक्ताणु और रक्तरंजनकी वृद्धि होने पर रक्त सबल बन जाता है, इस हेतुसे इन औषधियोको रक्तपौष्टिक भी कहते है।

रक्तके भीतर रक्ताणु, श्वेताणु, रक्तचक्रिका और रक्तवारि, ये ४ द्रव्य होते है। रक्ताणुका ह्रास या रक्तरंजनका ह्रास होने पर पाण्डुरोगकी सम्प्राप्ति होती है। पाण्डुरोगका वर्णन चिकित्सातत्वप्रदीप द्वितीय खण्डमे किया गया है।

रक्तवर्द्धक औषधियाँ— लोह, अभ्रक, सुवर्ण, सुवर्ण माक्षिक, मण्डूर, कासीस, मुक्ता, प्रवाल, शृंग भस्म, फॉस्फरस, आवला और जीवनीय गण काकोल्यादि गण, बृंहणीय गण तथा वय स्थापन वर्गकी औषधिया आदि।

विसूचिकामे रक्तमें जल बहुत निकल जाता है, तब लवण जलका अन्त: सेचन करके रक्त बढा लिया जाता है। अति रक्तस्राव होने पर समान रचना वाले रक्त अथवा लवणजलका अन्त:सेचन कर लिया जाता है। रक्तके अन्त:सेचनार्थ विशेप नियम बनाये गये है और रक्तके ४ विभाग किये गये है, उनका वर्णन रुग्णपरिचर्य्याके सातवे प्रकरणके ३२ वे भाग मे किया गया है।

(४१) रक्तप्रसादन द्रव्य विवेचन।

जो द्रव्य रक्तके भीतर मृत रक्ताणु, विप, कीटाणु, पूर्य अथवा अन्य विजातीय द्रव्य मिलनेसे उत्पन्न विकृतिको दूर करे उसे रक्तप्रसादन और रक्तशोधन कहते है। इसमे २ प्रकार है। १ सर्वाङ्गिक और २ स्थानिक।

सार्वाङ्गिक रक्तप्रसादन— रजत भस्म, सुवर्ण घटित औषधियां, लोह, सुवर्णमाक्षिक, मण्डूर, कासीस।

वंग भस्म, नाग भस्म, गन्धक, पारद, हिंगुल, रसकपूर, हरताल, सोमल, शिलाजीत, मैनसिल, गन्धाविरोजा, भिलावा, कपिला, कुचिला, कपूर,

मजीठ, सत्यानाशी, अनन्तमूल, आवला, रेवन्दचीनी, एलुआ, सनाय, गूगल, चोवचीनी, उश्वा, चोलमूगरा तैल, शतावरी, उन्नाव, असगन्ध, एरंडमूल, अंकोल, कचनार, इन्द्रायण, पुनर्नवा, सिरस, सुवर्ण चम्पा, शरपंखा, सतौना धमासा, रोहेड़ा, रुद्रवन्ती, लजालु, बबूल, चन्दन, हल्दी, कलिहारी, क्विनाइन, फिटकरी आदि ।

स्थानिक रक्तप्रसादन—व्रणपाक, तन्तुदश, चोट आदिसे स्थान विशेषमे रक्त-दूषित होने पर उसे शुद्ध करनेवाली औषधियोका वर्णन नं० ४३ व्रण-शोधन प्रकरणमे किया जायगा ।

यकृद्विकार, पित्तप्रकोप और मूत्रविकृति (मूत्रमे यूरेट्स या ओक्जलेट क्षार अधिक निकलना) आदिसे रक्तविकृति होनेपर पारदघटित और शिला जतुप्रधान औषधिया लाभदायक होती हैं ।

वातरक्तज विकार होने पर हरताल, मजीठ, कलिहारी आदि, उपदंशज विकार होनेपर प्रथमावस्थामे पारद भस्म, सत्यानाशी मूल, सत्यनाशी तैल, द्वितीयावस्थामे रसकपूर, चोवचीनी, उश्वा आदि और तृतीयावस्थामे सोमलघटित औषधियां ।

कण्ठमाल, गलगण्ड, अपची आदि रोगोमे गन्धक, गूगल, जसद भस्म, नागभस्म, सुवर्ण, मन.शिला आदि ।

महाकुष्ठ, उपकुष्ठ, और चर्मरोगज रक्तविकारमें हरताल, सोमल, गंधक, लोह, चोवचीनी, मजीठ, शिलाजीत, चालमोगरा तैल, भिलावा, खदिर, बावची आदि ।

सुजाकमें गन्धाविरोजा, चन्दन तैल, फिटकरी, गूगल, भिलावा, रसकपूर घटित औषधियां ।

आक्षेपोत्पादक कीटाणुओसे उत्पन्न रक्तविकृतिमें सोमल, पारद, गूगल और कीटाणुओंनाशक औषधियां ।

शीतपित्त, पिटिका, काठे आदिमे सोमल, गन्धक, विरेचन औषधियां, त्रिफला कालीमिर्च आदि ।

उदर्दप्रशमन कषाय—चरक संहितामे तिन्दुक, चिरौंजी, बेर, खैर. कदर (सफेद खैर, सतौना, अश्वकर्ण (सर्जभेद), अर्जुन, अरिमेद) (दुर्गन्धयुक्त खैर ये १० औषधियां कही हैं ।

उदरकृमिजन्य रक्तविकृति पर कपूर, कुचिला, कपिला, गन्धक, उश्वा, वायविडङ्ग आदि कृमिघ्न औषधियां ।

विविध प्रकारके घातक ज्वर, शराब, गांजा, ताम्र भस्म आदि उत्तेजक औषधियां, उत्तेजक आहार, बार बार अत्यधिक क्रोध करना और अति गरम गरम आहार या उपदंश आदि रोगोंसे धमनीकी दीवार अति कठोर हो जाना आदि कारणोंसे रक्त अशुद्ध होता है। फिर रक्तदबाव

(Blood Pressure) बढ जाता है। शिरमे भारीपन, व्याकुलता, आदि लक्षण उपस्थित होते है, तब रक्त प्रसादन औषधि दी जाति है।

चरक संहिताकार लिखते है कि—

कुर्याच्छोणितरोगेषु रक्तपित्तहरी क्रियाम् ।
विरेक मुपवास स्रावणं शोणितस्य वा ।।

।। सू० अ० २४-१८ ।।

रक्तदबावको न्यून करनेमे उपवास, विरेचन, शिराव्यध और औषधियों मे सर्पगन्धा सर्वोत्तम मानी जाती है। लहशुन भी रक्तभारके दबावका ह्रास करनेमे अति हितकर है।

रक्तबल, रक्तभारवृद्धि हेतु, रक्तभारक्षय हेतु, रक्तभारमापक यन्त्रसे परीक्षा करनेकी विधि इत्यादि बातोका वर्णन "सिद्ध परीक्षाप्रदीप" मे किया गया है।

शिराव्यधके, विधि, अधिकारी, फल आदिका विचार "चिकित्सातत्व-प्रदीप" प्रथम खण्ड पृ० १०९ से ११५ तक किया है।

उपर्युक्त औषधि के अतिरिक्त सुवर्ण भस्म, लोहघटित औषधियां (ताप्यादि लोह आदि), सुवर्णमाक्षिक भस्म, मौक्तिक, प्रवाल, आदि हित-कारक है।

नेत्रपाक होने पर नेत्रस्थ रक्तके प्रसादनार्थ शतधौत घृतमे कासीस भस्म मिला मलहम बनाकर उपयोग किया जाता है, और खानेके लिए सुवर्ण माक्षिक भस्म, मौक्तिकभस्म, शुक्तिभस्म, प्रवालपिष्टी आदि दी जाति है।

इनके अतिरिक्त नेत्रके प्रसादनार्थ, स्त्रीदुग्ध, मास, मज्जा, घी, गिलोय, अडूसा, परवल, कटेली आदिका पुटपाक बना, रस निचोडकर नेत्रमे डाला जाता है।

(४२) संधानीय ।

संधान—यूनिअन-हीलिंग-Union Healing ।

जो द्रव्य टूटी हुई अस्थि, त्वचा, पेशी आदिको जोडनेमे हितकर हो और जो औषधि जखमको जोड देवे, उसे संधानीय संज्ञा दी है।

संधानीयवर्ग—चरक संहितामे मुलहठी, मधुपर्णी, जलज मुलहठी अथवा गिलोय), पृश्नपर्णी, पाठा लजालु, मोचरस, धातकी, लोध, प्रियंगु और कायफल ये १० औषधिया लिखी हैं।

सुश्रुत संहितामे प्रियग्वादि अम्बष्ठादि और न्यग्रोधादि गणको संधा-नीय कहा है। इनमेसे न्यग्रोधादि गणका वर्णन नं० ६ पित्तशामक प्रकरण मे किया है।

प्रियङ्ग्वादि गण—प्रियगु, लजालु, धायके फूल, पुन्नाग, नागकेशर, चन्दन, हलकी जातिका चन्दन, मोचरस, रसौंत, भोजपत्र, सुरमा, कमल-

केशर, मजीठ और जवासा आदि ।

अम्बष्ठादि गण--पाठा, धायके फूल, लजालु, श्योनाक, मुलहठी, कच्ची वेलगिरी लोध, पलाश, नन्दीवृक्ष (गंभारी) कमलकेसर आदि ।

ये दोनो पक्व अतिसार नाशक, सधानीय, पित्तशामक और व्रणरोपण है।

और औषधियां—माजूफल, कासीस, भिलावा, लहशुन, गूगल, कुन्दरु, बीजाबोल, मैदालकडी, हल्दी, आमाहल्दी, अस्थिसधिनी (हड़जोडी) तथा अन्य कसैली रसवीर्य प्रधान औषधियाँ । इनकाआगे नं० ५७ रक्तस्तम्भक रूपसे पृथक वर्णन किया है । उक्त गुणवाली औषधिया आगन्तुक घावजन्य त्वचाभेदको जोड़ देती है ।

(४३) व्रणशोथहर ।

विम्पालन—एण्टिफ्लोजिस्टिक्स—रिजॉल्वण्ट्स—डिक्युशण्ट्स ।

Antiphlogestics—Resolveuts—Discutients ।

जो द्रव्य व्रणशोथकी प्रथमावस्थामे लेप रूपसे व्यवहृत होनेपर व्रणशोथको विना पकाये बैठा देवे, उसे विम्लापन, प्रदाहहर और व्रणशोथहर (Antiphlogestics) संज्ञा दी है । जो औषधि रक्तजमकर या रसग्रन्थिकी वृद्धि होकर गाठ वन जानेपर उसे विखेर देती है, उसे विम्लापन-ग्रन्थिविलयन (Resolvents Discutients) संज्ञा दी है ।

व्रणशोथहर औषधियां—पारद, वच्छनाग, कुन्दरु, गूगल, रेवन्दचीनी एलवा, कुटकी, दशांगलेप, हरड़, विजौरा, अरणी, देवदारु, सोंठ, रास्ना, चदन, मुलहठी, पीलीमिट्टी, काली मिट्टी, गिले अरमनी, अजमोद, असगंध निशोथ, लोध, जवासा, काकडासिगी आदि ।

चरक संहितामे शोथनिर्वापण प्रलेपमे वड़, गूलर, पीपल, पिलखन, वेतस् इन पंचवृक्षोकी छालका चूर्ण, तथा विजयादिप्रमेह (प्रलेप) मे विजया (हरड) मुलहठी वीरा (काकोली), विसग्रन्थी (भिसकी गाठ, शतावरी, नीला कमल, नागकेशर और सफेद चदन, इन औषधियोको शोथहर दर्शायी है ।

ग्रन्थिविलयनकारी पारद, दारुहल्दी, कूठ, सिरसकी छाल, देवदारु, कुन्दरु, गूगल, गोरुम (मालाकंद—Eulophia nuda), आयोडिन, सेक, पोस्तकेडोडेकी वाष्पसे सेक आदि ।

रक्तको विखेरनेके लिये जो लेप लगाया जाय, उसपर रुई चिपकाकर गरम कपड़ा (ऊनी वस्त्र) बांध लेना चाहिये । एवं लेप सूख जानेपर उसे हटा उस स्थानको गरम जलसे धोकर नया लेप लगाना चाहिये । पहिले वाले लेपके दूषित परमाणु रह न जायँ इसलिये सम्हालपूर्वक रुईको जलमें भिगोकर धोना चाहिये । या साबुन लगाकर भली भांती साफकर लेना चाहिये । इस तरह दिनमे कई वार लेपको हटा देना चाहिये ।

वायुकी शोथपर रात्रिको लेप नही लगाना चाहिये । यदि पहिल लगाया

हुआ लेप गिर जाय तो उसे उठाकर फिरसे नही लगाना चाहिये ।

गाठको बैठानेके लिये गाढा लेप किया हो, उसे रात्रिको रहने देवे । पकाने योग्य गाठपर रात्रिको अवश्य लेप करना चाहिये ।

(४४) व्रणपाचन-शोधन-रोपण ।

पकने योग्य व्रणशोथको जो द्रव्य शीघ्र पकावे, उसे व्रणपाचन (Maturant), जो द्रव्य पकनेपर भी अपने आप न फूटनेवाले व्रणशोथको फोड दे, उसे व्रणदारण (प्रबलदाहक Escharotic or Caustic), जिस व्रणशोथका मुंह फटनेपर अति सूक्ष्म होनेसे पूयस्राव सम्यक न होता हो, उसे पीडितकर मुखको चौडा बनाकर पूयका बाहर वहन करावे, ऐसे द्रव्यको पीडन, पककर फूटे हुए या फोडे हुए व्रणको जो द्रव्य शुद्ध बनावे, कीटाणु पूय और दूषित मास आदि धातुओको आकर्षितकर बाहर निकाल दे, उसे व्रणशोधन, तथा जो द्रव्य शुद्ध व्रणको भर देता है, उसे व्रणरोपण संज्ञा दी है ।

व्रणपाचन—तिल, सत्तू, अलसी, गेहूँ, सरसो, सनके बीज, धतूरा, सज्जीखार, घीकुंवार, प्याज, खट्टा दही, किण्व, (सुराबीज) कूठ, सेंधानमक, सुहिजनेके बीज आदि । उष्ण द्रव्य, इन द्रव्योंका प्रयोग उपनाह (पुल्टिस) के रूपमे होता है । पुल्टिस (Poultice) का वर्णन चिकित्सातत्त्वप्रदीप प्रथमखण्ड पृष्ठ ५० से ५३ तक तथा रुग्णपरिचर्याके २३ वे भागमे किया गया है ।

व्रणदारण—चित्रकमूल, कबूतरकी विष्ठा, सोमल, हाथीदांत और तीव्र क्षार आदि औषधियाँ ।

व्रणपीडन—सोमल, त्वचाको गलानेवाला क्षार, त्वचामे खिचाव करने वाले एलवा, गूगल, राई आदि औषधियां । सुश्रुत संहितामे पिच्छिल द्रव्यों को प्रपीडन कहा है, जैसे सेमलकी छाल, लिहसोडा, बडके पान आदि ।

व्रणशोधन—सुश्रुत संहितामें ८ प्रकार कहे हैं । कषाय, वर्ति, कल्क, घृत, तैल, रसक्रिया, चूर्ण, धूप, (धुआं) ।

वर्तिरूपमे शोधन द्रव्य—अजगन्धा (अजमोद), मजश्रृंगी (मेढासिंगी) इन्द्रायण, कलिहारी, डहरकरंज, चित्रकमूल, पाठा, वायविडङ्ग; इलायची रेणुका, सोठ मिर्च, पीपल, यवक्षार, लवण (सैंधव आदि), मनःशीला, कासीस त्रिवृत (निशोत), दन्तीमूल, हरताल, गोपीचन्दन आदि ।

कल्करूपमे भी वे द्रव्य सब व्यवहृत होते हैं ।

घृत द्रव्य—आकके मूल, त्रिफला, मेंढका दूध, क्षार (यवक्षार, अपामार्गक्षार, पलाश क्षार सज्जीखार आदि), चमेलीकी जड हल्दी, दारुहल्दी, कासीस, कुटकी, गूगल आदि ।

तैल द्रव्य—अपामार्ग, अमलतास, तुरई, नीम, तिल, बडी कटेली, छोटी कटेली, हरताल, मनःशीला आदि ।

शोधन चूर्ण—कासीस, सैंधव, सुराबीज, वचा, हल्दी, दारुहल्दी, आदि (पूय होनेपर छिड़कनेके लिये) ।

रसक्रियाके द्रव्य—सालसारादि गण, पटोल, त्रिफला आदि द्रव्योंका क्वाथ करे, फिर उस क्वाथको छान कर रबडी जैसा गाढा बनाले, इसे रस क्रिया कहते हैं ।

धूप द्रव्य—कुन्दरु, राल, गूगल आदि किटाणुनाशक द्रव्योका धुआ देना।

अर्कादि गण—सुश्रुत संहिता आक, सफेद आक, करंज, पूतिकरंज, नागदन्ती (हस्तीशुण्डी), अपामार्ग भारगी, रास्ना, इन्द्रपुष्पी (ईशरमूल), क्षुद्र श्वेता (लाल आभा वाला अपामार्ग), महा श्वेता (वध्या कर्कोटकी), बिछवा, अलवणा (मालकागनी) और हिगोट, ये १४ औषधिया कही है । यह गण कफ, मेद, विष, कृमि और कुष्ठका नाशक और विशेषतः व्रण शोधक है ।

लाक्षादि गण—लाख, अमलतास इन्द्र जौ, कनेर कायफल, हल्दी दारु-हल्दी, नीम, सतौना, चमेली और त्रायमाण । यह गण कसैला, कडुवा, मधुर, कफ, पित्त और रक्तकी विकृति, कुष्ठ, तथा कृमिका नाशक और दुष्ट व्रणको शुद्ध करने वाला है ।

व्रणशोधन प्रलेप—चरक संहितामे तिलकल्क, सेंधानमक, हल्दी, दारु-हल्दी निसोत, घी, मुलहठी, नीमके पान व्रणशोधन कहे है ।

शोधन कषाय—चरक संहितामें त्रिफला, खैरकी लकडी (या कत्था), दारुहल्दी, बड, आदि पच क्षीर वृक्षोकी छाल, खरैटी, कुश नीमके पत्ते, बेरके पत्ते, इनके क्वाथसे व्रणको शुद्ध किया जाता है ।

मलहम द्रव्य—वर्त्तमानमे विशेषत. मलहम द्वारा शोधन क्रिया करायी जाती है । पारद, रसकपूर, गन्धक, मुर्दासंग, नीलाथोथा, सोमल, हरताल, मनःशिला, जगाल. चूना, गन्धाविरोजा, कासीस, सोहागा, जसदपुष्प, कपूर. सेंधानमक, नीमके पत्ते, हीग, हल्दी, धतूरा, निर्गुण्डी. फिनाइल, समुद्रशोष, अलसी, अफीम, तमाखू' करंज, शहद, एरण्ड तैल घृत, वेसलीन, मोम, लेनोलीन (ऊनका तैल), आदि, इनमेसे—

पारद, गन्धक, चूना, कपूर नीलाथोथा आदिमे कीटाणुनाशक गुण तथा मुर्दासंग, गन्धाविरोजा आदि औषधियोंमे पीपको सुखाना, कीटाणु नाश करना, और घाव भरना ये त्रिविध गुण हैं ।

मलहमकी पट्टी हट जानेपर उसे निकाल देनी चाहिये, एव पूय लग जाने पर भी पट्टीको बदल देनी चाहिये । साफ लकडी या साफ छुरीसे सम्हालपूर्वक मलहम निकाल पट्टीपर लगा कर व्रण-विद्रधि पर चिपका देवें,

या सौम्य मलहमको अँगुलीसे विद्रधि पर लगा लेवे। पूय लगी हुई अँगुली से डिब्बीमेसे मलहम नही निकालना चाहिये। एवं अँगुलीको अच्छी तरह साबुन लगा निवाये जलसे धो लेना चाहिये।

पूयमय व्रण विद्रधिको प्रातः सायं त्रिफलाके क्वाथ, नीमके पत्तोका क्वाथ, कार्बोलिक लोशन या इतर औषधिके जलसे सम्हालपूर्वक धोते रहना चाहिये। परन्तु पूय बन्द हो जानेके पश्चात् और व्रणरोपण क्रिया वर्त्तमान होनेपर व्रणको बार-बार नही धोना चाहिये। अन्यथा आई हुई, नूतन कोमल त्वचा नष्ट हो जाती है।

चरक संहितामे पक्व व्रणके शोधन और भेदनके लिए उमादि गणमे निम्न औषधिया कही है—

उमादी गण—अलसी, गूगल, सेहुडका दूध, मुर्गे और कबूतरकी विष्ठा, पलाशक्षार, हेमक्षीरी, (सत्यानाशी या उसारे रेवन्द) और दन्ती या हाथी दाँत, ये औषधियाँ सुकुमार व्यक्तियोके शोथके शोधन-भेदनार्थ प्रयोजित होती है।

अनेक समय व्रणशोधनार्थ बाह्य प्रयोगके साथ आभ्यन्तरिक संशोधन औषधि भी दी जाती है। शृङ्गभस्म, वगभस्म, गन्धक, शिलाजीत, मृदु-विरेचन और रक्तशोधन औषधियाँ आदि प्रयोजित होती है।

व्रणरोपण कषाय—बड, गूलर, पीपल, कदम्ब, पिलखन, वेतस, इन सबकी छाल, कनेरकी जडकी छाल आककी जडकी छाल और कुटज छाल के कषायको व्रणरोपण कहा है। इन सबका या किसीका कषाय उपयोग मे लेवे।

वणरोपण लेपकी औषधियाँ—चरक संहितामे चन्दन, कमल केशर, दारुहल्दी, नीलकमल, मेदा, मूर्वा, मजीठ, मुलहठी, जीवन्ती, गोजिह्वा, धायके फूल, खरेंटी मूलकी छाल, पुण्डरीक काष्ठ, ये औषधियां कही है।

व्रणरोपण तैल द्रव्य—कम्पिल्लकाद्य तैलमे कपोला, वायविडङ्ग, इन्द्रजौ, त्रिफला बलामूल, पटोलपत्र, नीमके पान, लोध्र, नागरमोथा, प्रियंगु, खैर-छाल, धायके फूल, राल, छोटी इलायची, अगर और रक्तचन्दन प्रपौण्ड-रीकाद्य तैलमे पुण्डरीक काष्ठ, मुलहठी, काकोली, क्षीरकाकोली और रक्तचन्दन, इनके अतिरिक्त दूवस्वरस और दारुहल्दीकी छाल आदि औष-धियां कही हैं।

सुश्रुत संहितामे इनके अतिरिक्त वर्तिद्रव्योमे ब्राह्मी, गिलोय, असगंध, काकोल्यादी गण की औषधियां तथा पंच क्षार वृक्षों के अकुर, कल्क द्रव्योमे लजालु सोम (ब्राह्मी), सरल, कटफल, चंदन और काकोल्यादि गणकी औषधियां; रोपणघृतमे पृश्नपर्णी, कौंच, हल्दी, मालती, शक्कर और काकोल्यादि गणकी औषधियां, तैलमे तगर, अगर, हल्दी, दारुहल्दी और

लोध, रोपणचूर्णमे प्रियगु, त्रिफला, लोध, कासीस, मुण्डी, धव (धामोड़ा), अश्वकर्ण (शाल भेद) और राल, रोपणी रसक्रियामे नारियलकी करोटि, न्यग्रोधवर्गकी औषधियाँ तथा त्रिफलाका उल्लेख किया है।

और रोपण औषधिया—सिंदूर, सफेदा, कुदरु, राल, कत्था, खैरसार, गेरु, मेहदी. विजयसार आदि तैल, घी, मोम और वेसलीन मिला मलहम बनाकर व्यवहृत होती है।

इनके अतिरिक्त व्रणचिकित्सामे उत्सादन अर्थात् शुष्क, अल्पमांसवाले और गम्भीर व्रणोंमे मांसकी वृद्धि करानेवाली औषधियाँ—अपामार्गमूल, असगन्ध, मूसली, सुवर्चला (सूर्यावर्तकी मूल) आदि; तथा अवसादन अर्थात् उभरे हुए मृदु मांसको वैठाकर सम उचाईपर लानेवाली औषधियां–कासीस सेंधानमक, सुरावीज, कुरुविन्द (लाल सोचल नमक या हिंगुल) मन शिला कुक्कुटाण्डत्वक, चमेलीकी कली, शिरीषके फल, करजफल, हरताल, कासीस, खर्पर आदिका उल्लेख किया है।

(४५) वेदना-स्थापन।

वेदनाशामक—पीडाहर—एनोडाइन्स—एनलजेसिक्स—एण्टलजिक्स।

Anodynes—Analgesics—Antalgics।

उत्पन्न हुई वेदनाका नाशकर शरीरको प्रकृतिस्थ बनावे, उसे वेदना-स्थापन कहते है। इन औषधियोको शामक क्रिया मस्तिष्कमें रहे हुए केन्द्र-स्थान या संज्ञावाही वातनाडियोंपर होनेसे वेदना शमन हो जाती है।

वेदनास्थापन वर्ग—चरक संहितामें साल, कायफल, कदम्ब, पद्माख, नागकेशर, मोचरस, सिरस, वेत, एलवालुक, (सुगन्ध द्रव्य विशेष) और अशोक, ये १० औषधियां कही हैं।

अगमर्दप्रशमन वर्ग—चरक संहितामें अगमर्द (फूटनी-मांसपेशियोमें होनेवाले खिचाव) को दूर करनेवाली औषधियां-शालपर्णी, पृश्नपर्णी, बड़ी कटेली, छोटी कटेली, एरण्ड, काकोली, चन्दन, खस, छोटी इलायची और महुआ (मतान्तरमे मुलहठी), ये १० लिखी है।

और औषधियाँ—अफीम गांजा, खुरासानी अजवायन, लौंग तैल, दालचीनी तैल, नीलगिरी तैल, पिपरमेण्ट तैल, वच्छनाग, सूचीबूटी, धतूरा आदि।

वेदनाके दो प्रकार हैं। १. स्थानिक और २ सार्वाङ्गिक।

स्थानिक वेदनाहर द्रव्य (Local Anodynes) ये स्वस्थ त्वचाके ऊपर लगानेमें व्यवहृत होती है। ये वातनाडियोके सिरेको बधिर बनाती हैं अथवा केन्द्र स्थानपर असर पहुँचाकर वेदनाको दूर करती हैं। कितनीक औषधियां आमाशयकी क्रियापर स्थानिक शामक (Local sadative) असर पहुँचाकर वमन अथवा आमाशयको क्षोभको दूर करती है। इनका

वर्णन पहिले नं० २२ छर्दि निग्रहणमे किया गया है ।

स्थानिक वेदनाहर—अतिशीत (बर्फ), उष्ण सेक, रक्तमोक्षण, जलौका-प्रयोग, पुल्टिस, अफीम, मेन्थोल, जायफल, बच्छनाग, भांग कुचिला, केसर कपूर, धतूरा, कटेली, सूचीबूटी (बेलाडोना), बारासिंगेका सींग आदि। इनमें अधिक औषधिया मर्दन, तैल, मलहम, लेप, धूम्र आदि प्रयोग रूपसे व्यवहृत होती है ।

सार्वाङ्गिक वेदनाहर—चेतनाहर (Anaesthetics) औषधिया—अफीम, गाजा, खुरासानी अजवायन, धतूरा आदिका स्वल्प मात्रामे सेवन करनेपर सार्वाङ्गिक पीड़ा शमन होती है । चेतनाहरका विशेष वर्णन आगे नं० ७८ में किया जायगा । एव ज्वरघ्न औषधिया भी सार्वाङ्गिक लाभ पहुंचाती है । उनका वर्णन न० ९० मे देखे ।

अफीम वातवहा नाड़ियोके सिरे, सुषुम्णा और संज्ञावाही नाडियां, तीनोपर परिणाम दर्शाकर कार्य करती है ।

भांग और गाजा मस्तिष्कको वातवहा नाडियोके केन्द्रपर प्रभाव पहुँचाते है ।

खुरासानी अजवायन, धतूरा, बच्छनाग आदि सज्ञावाही नाड़ियोकी उत्तेजनाको दमन करनेवाली औषधिया है ।

वेदना स्थान किसी भी आशयमे हो, जिस वातवहा नाडी द्वारा वेदना का अनुभव होता हो, उसकी चेतनाका हरण होनेपर वेदना निवृत्ति होती है । इस दृष्टिसे अफीम, अफीमसत्व, गाजा आदि औषधिया, वातनाडियोकी मूलपर मोहजनन असर पहुँचाकर दर्दको दूर करती है ।

दही, घृत, तैल, चर्बी आदि स्निग्धता पहुँचाकर मांस आदि अङ्गोको सबल बनाते है, तथा कपूर, केशर, रक्तचन्दन, नेत्रबाला, पीली मिट्टी, गिले अरमनी आदि औषधिया कीटाणु, विषप्रभाव, प्रदाह, शोथ आदिको दूरकर पीड़ाका निवारण करती है ।

संज्ञावाही वातवाहिनियोको बधिर बनानेसे कुछ समयतक व्यथाका बोध नही होता, परन्तु औषधबल दूर होनेपर पुनः वेदना उपस्थित होती है । अत मूल हेतुको दूर करनेके लिए मर्दन, लेप आदि उपचार करना चाहिये ।

(४६) शूलप्रशमन ।

जो द्रव्य पचन संस्थामे उत्पन्न शूलको तथा शूलके कारणरूप आम, कीटाणु, प्रदाह आदिको दूर करे, उसे शूलप्रशमन, या शूलघ्न कहते है ।

पचन संस्थाके अतिरिक्त हृदय, यकृत्, फुफ्फुस, वृक्क, गर्भाशय, बीजाशय आदि अन्य स्थानोमे भी शूल उत्पन्न होते हैं, उनका वर्णन उन अवयवोके रोगोमे पृथक् किया है । पचन संस्थामे आमप्रकोप, अपचन, आमा-

शयकी श्लैष्मिक कलाप्रदाह, वायुसंग्रह, अन्त्रकी श्लैष्मिक कलाका प्रदाह, मल जम जाना, व्रण, विद्रधि, कर्कस्फोट, विजातीय द्रव्य प्रवेश आदिसे शूल उत्पन्न होता है। इनमेसे अपचन, आमविष, श्लैष्मिक कलाप्रदाह, वायुसग्रह, मलावरोध आदिसे उत्पन्न शूलोंको आयुर्वेदने वातज, पित्तज, कफज, द्वन्द्वज संज्ञा दी है। अन्त्र-पुच्छप्रदाहका भी इसमे सग्रह किया गया है। व्रण और विद्रधिजन्य शूलका अन्तर्भाव परिणाम शूलमे और अन्नद्रव शूलमे किया है। कर्कस्फोटज शूलको त्रिदोषज शूल माना है। व्रणविद्रधि-जन्य शूलपर औषध चिकित्सासे लाभ बहुत कम मिलता है। त्रिदोषज शूलको असाध्य माना है। इन सबका वर्णन चिकित्सा तत्व प्रदीप द्वितीय खण्डमे किया गया है।

शूलप्रशमन कषाय—पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्य, चित्रक, सोठ (या अदरख), कालीमिर्च, अजमोद, अजगन्धा (ज ली अजमोद), जीरा, गण्डीर (गमठ शाक), ये १० औषधियां चरक सहितामे लिखी हैं।

सुश्रु त सहितामे पिप्पल्यादि गणको शूलघ्न कहा है। उसका वर्णन न० ९ कफदोषघ्नमे किया गया है।

और औषधियाँ—दोनो ग्रन्थोमे न आई हो ऐसी औषधिया—कुचिला, नीलगिरी तैल, लौंग, दालचीनी, पीपरमेण्टके फूल, अपामार्गक्षार, सज्जी-खार, कालानमक, शुक्तिभस्म, शखभस्म, लवण वर्ग, अर्कक्षार, मण्डूर, लोह, शखद्राव, चनेका क्षार, काटे वाले करजके फल, राई, विरेचन औष-धिया आदि।

(४७) मेदोहर और मेददोषघ्न।

वढी हुई मेदको कम करने वाली और मेदकी उत्पत्तिको रोकने वाली औषधिया—शिलाजीत, गोमूत्र, क्षार, शुष्क भोजन, भांगरा, लोह, गूगल, लाख, अपामार्ग, जलमिश्रित शहद और चरपरी औषधिया इत्यादि। इनके अतिरिक्त नं० ११ लेखनके साथ अनेक औषधियां लिखी है, वे सब मेदोहर क्रिया करती है।

इनमेसे शिलाजीत, जल मिश्रित शहद और गोमूत्रमे मेदोहर गुण अधिक है। आवश्यक व्यायाम करनेसे औषध सत्वर लाभ पहुँचाती है। भोजनमे घी, चावल, शक्कर आदि मेदोवर्द्धक आहार कम देना चाहिये।

सुश्रु त सहिताकारने मेद दोषका शमन करनेके लिये निम्न वरुणादि गण कहा है :—

वरुणादि गण—वरुण, आर्त्तगल (कट सरैया), सहजना, लाल अरणी, मेढासिगी, पूतिकरंज, करज, मोरटा (मूर्वा), बड़ी अरणी, लाल पुष्पका कटसरैया, पीले फूलका कटसरैया, कडूरी, वसुक (एक पुष्प या अगस्तिया का फूल), अपामार्ग, चित्रक, शतावरी, बिल्व, अजशृ गी (मेढासिगी),

कुशकी जड़, छोटी कटेली, बड़ी कटेली इन २२ औषधियोको वरुणादि गण कहते हैं। यह गण कफमेदनाशक है। शिर:शूल, गुल्म और आभ्यन्तरिक विद्रधिमें प्रयोजित होता है।

मेदोवृद्धि विकार (Obesity) अनेकोको कुल परम्परा मिलता है। कइयोको मेदवर्द्धक पदार्थोंके अति सेवन, व्यायामके अभाव आदि कारणो से हो जाता है। इनके अतिरिक्त पोषणिका ग्रन्थि (Pituitary gland) ग्रैवेयक (Thyroid) ग्रन्थि और अधिवृक्क (Suprarenal) ग्रन्थि, इनके अन्त:स्रावका हीनयोग होनेपर भी मेद बढ जाता है। यदि इन ग्रन्थियोकी विकृति हो, तो डाक्टरीमे इन ग्रन्थियोके सत्वका प्रयोग करते है।

क्वचित् हृदय, वृक्क, यकृत् आदि इन्द्रियोमें मेदापक्रान्ति (Fatty degeneration) होकर (जीवित घटक नष्ट होकर) मेद संचय हो जाता है।

(४८) आर्तवजनन।

रजोनि:सारक—ऋतुदोपघ्न—एमेनगोग्स (Emmenagogues)।

जो द्रव्य न्यून, लुप्त, रुद्ध और अनियमित मासिक धर्मको पुन स्वाभाविक नियमानुसार स्थापन करे, उसे आर्तवजनन और रजोनि सारक कहते है। यह द्रव्य श्रोणिगुहामे रक्तको सगृहीत करता है। गर्भाशय आकुंचक द्रव्य (Ecbolics) जो सगर्भा न हो ऐसी स्त्रियोको जब कम मात्रामे दिया जाता है, तब वह भी रजोनि सारक रूपसे कार्य करता है। जो स्त्रिया जीर्ण विषमज्वर, जीर्ण पाण्डु, अन्य रोगजन्य अति निर्बलता आदिसे पीड़ित हो, उनको लोह, सुवर्णमाक्षिक, कासीस, क्विनाइन आदि पौष्टिक औषधिया अवश्य देनी चाहिये। एव मलावरोध हो, तो एलुआ भी मिला देना चाहिये।

औषधियाँ—सोहागा, हीग, कासीस, लोहभस्म, एलुआ, हाऊबेर, लालबोल, आवला, लोध, खिरनी, मेथी, उलट कमल (Abroma Augusta) रुद्रवन्ती, ब्राह्मी, कचनार, कपासमूलत्वक् आदि।

मुख्य प्रकार—१ साक्षात (Direct) और २. परम्परा।

साक्षात् रजोनि सारक औषधियाँ—विद्युत् प्रयोग, सोमल, अरगट, उलट कमल, हीग, सोहागा, कपासमूलत्वक्, दालचीनी, कासीस भस्म आदि। इन औषधियोकी क्रिया साक्षात् गर्भाशयपर होती है।

परम्परा रजोनि सारक औषधियाँ—गर्भाशयमे रक्तसग्रह होनेके लिये पैरोको नितम्ब जलमे डुबोना, उष्ण जलसे कटि स्नान, उदरके नीचे गरमो का सेक, नाभिके नीचे पुल्टिस बांधना, ऊरूके भीतर जननेन्द्रियके पास जलौका प्रयोग तथा एलुआघटित औषधिया आदि। इनके प्रयोगसे गर्भा-

शयमे रक्त सगृहीत होकर मासिकधर्म आने लगता है ।

गर्भपातक (गर्भाशय सकोचक) औषधियाँ (Ecbolics)—गर्भाशयके संकोचकी वृद्धि करा गर्भस्थ सन्तान आदिको बाहर निकालने वाली औषधियोको गर्भपातनी कहते हैं । ये औषधिया उत्तेजना पहुँचाकर गर्भाशयका आकुंचन करती है । इनमे भी साक्षात् और परम्परा फलदर्शक, ऐसे दो विभाग है ।

साक्षात् फलप्रदमें क्विनाइन, वेरियम, सीसा, हिस्टेमीन और पोषणिका ग्रन्थिका पश्चिम भाग, ये गर्भाशय पेशीपर क्रिया करते है । अर्गट स्वतन्त्र नाड़ियो (Arotorsympathetic) के सिरेपर कार्य करता है। कुचिलासत्व (Strychnine) केन्द्रस्थानपर असर पहुँचाता है । इनमेसे हिस्टेमीन, अर्गट और पोषणिका सत्व अत्यन्त प्रबल कार्यकारी और विश्वसनीय औषधियां है । सीसेकी कृतिका प्रयोग प्राय: गर्भस्राव या गर्भपात (Abortifacient) करानेके लिये किया जाता है ।

परम्परा फलदर्शक औषधियां श्रोणिगुहामे रक्तसंग्रह कराती है । इनमे एलवा और जलसदृश पतले विरेचन लाने वाली औषधियां है । कितनेक क्षोभोत्पादक तैल सेवीन (Savine) आदि भी परम्परा असर पहुँचाते है ।

उक्त औषधियोका प्रयोग कम मात्रामे किया जाय, तो वे रजोनि-सारक क्रिया करते हैं । उनके अतिरिक्त सर्पगन्धा, इशरमूल (Aristolochia Indica) सुदाब (Ruta graveolens), सताप (हरमल), सोहागा, गाजा आदिमे भी गर्भपाति गुण है ।

आविजनन (Oxytocics)—जो औषधिया उत्तेजना पहुँचाकर प्रसव करानेमे सहायता पहुँचावे और प्रसव होनेपर गर्भाशयका आकुंचन करावें, उनको आविजनन सज्ञा दी है । क्विनाइन, अर्गट, कीडामारीके मूल, गाजाकी कली, भांग, चित्रकमूल, नव्य, अजवायन, पिप्पलीमूल, सोठ आदि व्यवहृत होते हैं । इनमे रजोनि:सारक गुण भी न्यूनाधिक अंशमे रहता है ।

मासिकधर्मके समय गर्भाशय और दोनो बीजाशयोमे रक्त सगृहीत हो जाता है । फिर बीजाशयोमेसे बीज (डिम्ब) निक्षिप्त होते है और गर्भाशयमेसे रक्त प्रवाहित होने लगता है ।

सार्वाङ्गिक और स्थानिक अवस्था भेदसे इस मासिकधर्मका लोप या ह्रास हो सकता है । जैसे पाण्डु रोग, अतिकृशता, अतिस्थूलता, गर्भाशय और बीजाशयोमे स्वल्प रक्तसग्रह होना आदि कारणोसे युवावस्थामे भी रजोदर्शनमे हीनता आ जाती है ।

सूचना—१. यदि आयु वृद्धि हो जानेसे स्वभावत: रज लुप्त हुआ हो, तो रजोनि:सारक औषधि नहीं देनी चाहिये । यदि औषधि दी जायगी,

तो गर्भाशयप्रदाह आदि रोग उपस्थित होगे, और रज.स्राव भी नही होगा।

२. सगर्भावस्था और गर्भाशयपर कर्कस्फोट होनेपर रज.स्राव कराने वाली औषधि व्यवहृत नही होती ।

३. रजोनि:स्रारक औषधि देनी हो, तो मासिकधर्म आनेके पहिले देनी चाहिये ।

मासिकधर्ममे क्रिया और समय भेदसे प्रकार.—

१ अधिक रज.स्राव (Profuse menses) ।
२ दीर्घकाल स्थायी रज.स्राव (Long menses) ।
३ असमय या अतीतकालमे ऋतुप्रकाश (Premature menses) ।
४ विलम्बसे ऋतुप्रकाश (Delaying or retarded menses) ।
५ अल्पकालस्थायी रज.स्राव (Short menses) ।
६ अल्प रजःस्राव (Scanty menses) ।
७. बार-बार रज स्राव (Again and again menses) ।
८. पाक्षिक ऋतुप्रकाश (Fortnightly menses) ।
९. अनियमित ऋतुप्रकाश (Irregular menses) ।
१०. गर्भावस्थामे ऋतुस्राव (Mense during pregnancy) ।
११, प्रतिबन्धसह ऋतुस्राव (Suppressed Menses) ।

मासिकधर्ममे रजके वर्ण उज्वल लाल (Red), कृष्ण (Black) पाण्डु (Pale), मलिन वर्ण (Brown), और हरित वर्ण (Greenish) होते है ।

इनके अतिरिक्त इस रज.स्रावमे प्रकृति भेद और विकार भेदसे (१) विशुद्ध (Pure blood), (२) जलवत् (Watery), (३) मासक टुकडे (Clots) युक्त जमा हुआ, (४) चिपचिपा (Slimy), (५) दुर्गन्ध (Fetid smell) युक्त, (६) सडा हुआ (Putrid) (७) दाह युक्त (Ardent), (८) अम्ल वासयुक्त (Sour smelling) एव (९) रज्जुवत् (like string) आदि प्रकार प्रतीत होते है ।

किसीको चलने फिरनेसे अधिक रज स्राव, तथा बैठने और शयन करनेपर बन्द हो जाता है । एव किसीको दिनमे अधिक और किसीको रात्रिमे अधिक क्षरण होता है । किसीको शूलरहित ऋतुस्राव होता है । शूलमे भी किसीको ऋतुप्रकाशके पहिले, किसीको ऋतुप्रकाशके प्रारम्भमे, ऋतुप्रकाशके मध्यमे और किसीको ऋतु बन्द हो जानेपर वेदना होती है ।

इनके अतिरिक्त शिरदर्द, उदरस्फाति, कामुवहना, अतिसार, ज्वर, कास, अपस्मार, बेहोशी. हृदयकम्पन, एंठन (Cramps), आक्षेप (Convulsions), अर्श, स्वरभग, वमन, जननेन्द्रियमे दाह, शुष्कता, और जननेन्द्रियमेंसे आवाजसहित वायुनिर्गमन आदि उपद्रव उत्पन्न होते है ।

अतः इन सबको दूर करनेके लिये लक्षण और उपद्रवके विचारपूर्वक मासिकधर्म शोधक चिकित्सा करनी चाहिये ।

(४९) अत्यार्त्तव जननहर ।

स्त्रियोके मासिकधर्म कालमे रजकी विकृति होकर अधिक परिमाणमे रजःस्राव (Menorrhagia-Menorrhea) होने और मासिकधर्म कालके पश्चात् रक्तस्राव (Metrorrhagia) होनेपर विकृतिको दूरकर अति स्राव का ह्रास या दमन करावे, उनको अत्यार्त्तव जननहर संज्ञा दी है । इस कार्यके लिये शामक औषधिया हितकर होती है । एवं शीशियोके डाटकी काली राख, ऊनकी काली राख, अशोक छाल, गूलर, केला, आवला, भाग गाँजा, लालबोल आदि व्यवहृत होती हैं ।

सूचना—यदि स्थानिक कारणके अतिरिक्त हृदयविकार या यकृत्मे रक्त संग्रहके हेतुसे रजःस्राव अधिक होता हो तो मूलकारणको दूर करना चाहिये।

बोल—(बीजाबोल-Myrrh) बोल वृक्षके गोद (श्रीवास-कुन्दरु) को आयुर्वेदमे लघु, उष्ण, विपाकमे कटु, कफ-वातनाशक और विशेषतः रक्त-हन्ता माना है, परन्तु डाक्टरीमे उष्ण, कफघ्न और रजोनिःसारक तथा अपचन, अल्पार्तव, हलीमक (पाण्डु भेद-Chlorosis) और इतर गर्भाशयके विकारमें हितकर माना है ।

आयुर्वेदने रक्तहन्ता मानकर रक्तप्रमेह, रक्तप्रदर, नासिकासे रक्तस्राव और रक्तपित्तमे इसकी योजनाकी है। डाक्टरीमे रजोनिःसारक रूपसे प्रयोजित होता परन्तु कलकत्ताके सुप्रसिद्ध डाक्टर श्री किरणचन्द्र घोप L. M. S. ने लिखा है कि "बोलकी रजोनिःसारक क्षमताके सम्बन्धमे सदेह होता है ।"

(५०) प्रदरहर ।

गर्भाशयप्रदाहहर अर्थात् गर्भाशयकी शिराओका प्रदाह (Metrophlebitis), गर्भाशय और बीजकोषनलिकाका प्रदाह (Metrosalpingitis), तथा योनिमार्ग आदिकी श्लेष्मिककलाकी प्रदाहनाशक औषधियोको प्रदरहर कहते है । लोहभस्म, भाँग, गाजा, कुसुम्भ, राल, चौलाईकी जड, रसोत, लाख, गम्भारी, मुलहठी, कमलकेसर, जामुनकी गुठली, पाठा, आमकी गुठली, सुपारी, लोद आदि ग्राही औषधिया तथा पिचकारी रूपसे फिटकरी आदि ।

गर्भाशय आदिके प्रदाहके हेतुसे श्वेत प्रदर (Leucorrhoea) होता है; अतः प्रदाहशमन होनेपर श्वेत प्रदरका निवारण हो जाता है । गर्भाशय के मध्यसे स्राव होता हो, तो वह जल सदृश पतला और क्वचित् पूय संयुक्त होता है । गर्भाशय ग्रीवासरणी (Cervical canal) मे होनेवाला स्राव चिपचिपा श्लेष्ममय और विशेषतः पूयमिश्रित दुर्गन्धयुक्त पीले रगका

होता है। बीजाशय नलिकामेसे स्राव पूययुक्त दुर्गन्धवाला, पतला और वेदना युक्त होता है तथा भगमेसे होनेवाला स्राव गोंद सदृश चिपचिपा होता है।

रोध्रादि गण—सुश्रुत संहितामे लोध, पठानी लोध, पलाश, श्योनाक, अशोक, भारंगी कायफल, एलवालुक (अभावमे कूठ या नेत्रवाला), सल्लकी (सालभेद), मजीठ, कदम्ब, साल और केला, ये १३ औषधिया कही हैं। यह गण मेद कफ, योनिदोष ओर विपका नाशक, अतिसार आदि का स्तम्भक तथा वर्णकर है।

(५१) दाहप्रशमन।

दाहशामक—रिफ्रिजरण्ट्स—Refrigerants।

जो द्रव्य आमाशय, मस्तिष्क हाथ-पैरोके तल आदिके भीतर और बाहर होनेवाले दाहका निवारण करे, उनको दाहप्रशमन कहते है। मुक्ता, प्रवाल, सुवर्णमाक्षिक, गन्धक, इलायची, केशर, श्वेतचन्दन, बनतुलसीके बीज, त्रिफला, मेहदी, केवडा, कमल, कपूर, शिरस, धानका लावा, गम्भारी के फल, मुलहठी, मिश्री, खस, सौफ, बनफशा, बशलोचन, अगर, अनन्त-मूल, गिलोय, धनिया, पित्तपापडा, मजिष्ठा, ककड़ीके बीज, पद्मकाष्ठ, दूर्वा नेत्रवाला, दारुहल्दी, घी, मक्खन, दूध आदि।

सूचना—इस प्रकारकी औषधिके सेवन कालमे मिर्च, तेल, राई, सरगो आदि दाहक पदार्थ, नमक, आचार, सूर्यके ताप और अग्निका सेवन, तमाखू, गाजा, शराब, गरम चाय, गरम कॉफी, गरम गरम भोजन, गरम मशाला, इत्यादि दाहवर्द्धक आहार विहारका बिल्कुल त्याग करना चाहिये; या हो सके उतना कम करना चाहिये।

न० ६-७ पित्तशामकमे और न० २३ तृष्णाप्रशमनमे कही हुई औष-धिया तथा न० ९० ज्वरघ्नकी कतिपय औषधिया दाहको शमन करती है।

क्वचित् भोजनकर लेनेपर आमाशयिक रस अति तीव्र और अम्ल बन जाता है, तब रोगीको दाह होता है, खट्टी खट्टी डकारे आती है। यदि १-२ घण्टेमे वमन न हो जाय, तो उदरमे भारीपन, अफारा और वेदना उपस्थित होती है। ऐसे समयपर यदि भोजनके पहिले आमाशयमे खट्टा उग्र रस शेष न हो, तो भोजनके २०-३० मिनट पहिले या भोजनकर लेनेपर तुरन्त अम्ल-रस प्रधान औषधि दी जाती है, जिससे आमाशयकी कलामेसे रसस्राव न्यून हो जाता है। किन्तु विशेषत अम्लपित्त या अपचनके रोगीको दहम दूपित रस संगृहीत रहता है, जिससे सुबह वमन क्रिया द्वारा आमाशयका संशोधन और भोजनके २ घण्टे पश्चात् क्षार प्रधान औषधि देनी पड़ती है। यदि आमाशयकी श्लैष्मिक कलामे उग्रता अधिक है, तो उसके शमनार्थ आवला, कूष्माण्ड आदि शामक औषधका भी प्रयोग किया जाता है। इस

तरह आमाशय रसकी अम्लता दूर करानेपर दाह सहज शमन हो जाती है।

क्वचित् विषप्रकोप या उग्र वस्तुके सेवनसे त्वचामे पित्तकी उष्णता पहुँच जानेसे त्वचामे दाह होती है; समस्त शरीरमे मस्तिष्कमे, हाथ पैरों के तलवोंमे या इतर किसी स्थान विशेषपर दाह मालूम पडती है। ऐसे समयपर शीतल जलमे बैठना, रीठा, बेरके पत्ते या नीमके पत्तोके जलकी मालिश की जाती है। सिद्ध तैल, मक्खन, बकरीके दूध आदिसे मर्दन कराया जाता है; या घीकुंवारके गर्भका लेप अथवा चन्दनको जलमे घिसकर लेप कराया जाता है तथा खानेके लिये भी शीतल औषधि दी जाती है।

यदि मिर्च, राई आदि दाहक पदार्थोंके स्पर्शसे स्थानिक दाह होता हो, तो घृत-तैल आदिकी मालिश करानेसे दाहकी निवृत्ति होती है।

अग्नि सेवन, सूर्यके तापका सेवन या उष्ण ऋतुके हेतुसे दाह होता हो, तो मौक्तिक, प्रवाल, दूधकी लस्सी या शीतल जल मिला शर्बत आदिका सेवन कराना चाहिये।

सुश्रुत संहितामें सारिवादि गण, परुषकादि गण, अञ्जनादि गण और उत्पलादि गण दाह शमनार्थ कहे हैं :—

सारिवादि गण—अनन्तमूल, मुलहठी, रक्त चन्दन पद्माख, गम्भारी फल, महुवेका फल और खस, ये ७ औषधियां कही है। यह गण तृषा, रक्तपित्त, पित्तज्वर और दाहका निवारण करता है।

परुषकादि गण—फालसा, दाख, गम्भारी फल, अनार, खिरनी, निर्मलीफल, शाकफल (सागके फल) और त्रिफला (हरड़, बहेड़ा, आंवला), ये १० औषधिया कही है। यह गण वात, मूत्रदोष (मूत्रदाह मूत्रकी लाली आदि) और पिपासाका नाशक, हृद्य और रुचिवर्द्धक है।

अञ्जनादि गण- सुरमा, रसौत, नागकेशर, प्रियगू, नीलोफर, खस, कमलकेशर और मुलहठी, ये ८ औषधिया कही है। यह गण रक्तपित्त, विषदोष और आभ्यन्तरिक दाहको शमन करता है।

उत्पलादि गण—नीलोफर, लालकमल, कुमुदनी, सुगन्धवाला, नीला श्वेत कमल, श्वेत कमल और मुलहठी, ये ७ औषधियां कही है। यह गण दाह, पित्त, रक्तदोष, प्यास, विष, हृद्रोग, वमन और मूर्च्छाको दूर करता है।

दाह शमन सम्बन्धी विशेष विचार "चिकित्सा तत्व प्रदीप" द्वितीय खण्डमे किया गया है।

(५२) दीपन।

अग्नि दीपन—एपिटाइजर्स—Appetisers

जो द्रव्य पचन सम्बन्धी अग्निको बढानेमें हितकर हो, उनको दीपन

संज्ञा दी है। आचार्य क्षारपाणिका वचन अष्टाङ्ग संग्रहके टीकाकार अरुण-दत्ताचार्यने उद्धृत किया है कि, "दीपनं त्वग्निकृच्चाम कदाचित्पाचयेन्न वा" अर्थात् जो द्रव्य अग्निको प्रदीप्त करने वाला हो, नियमपूर्वक आमका पचन करावे या न करावे, वह दीपन कहाता है।

दीपनीय गण--चरक संहितामे पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रकमूल, अदरख (सोंठ), अम्लवेत, कालीमिर्च, अजमोद, गोडम्बी (भिलावेकी गिरी) और हींग, ये १० औषधियाँ कही है।

सुश्रुत संहितामे त्रिफला (हरड, बहेडा, आवला), बिल्वादि गण (बृहत्पचमूल), गुडूच्यादि गण तथा आमलक्यादि गण (आंवला, हरड, पिप्पली, चित्रक) को दीपन कहा है। गुडूच्यादि गणका वर्णन न० ९० ज्वरघ्नमे किया जायगा।

और औषधियाँ—घी, सौंफ, सोया, बिजौरा, सन्तरा, नीबू, धनिया, दालचीनी, जावित्री, जायफल, जीरा, कालाजीरा, मेथी, लहशुन, प्याज, अजवायन, भांग, शराब, सोमल, अभ्रकभस्म, कुलिञ्जन, अम्लफल आदि।

दीपन औषधि प्राय. अम्ल, कटु, लवण, मधुर रसप्रधान होती हैं। अम्लरस वातनाडियोंपर क्रिया दर्शाकर कार्य करता है। कटु रस विशेषत. पाचन होता है। लवण रस मार्गका शोधन करके लाभ पहुचाता है। मधुर रस (घृत, तैल आदि) पाचक रस उत्पादक घटकोके बलकी वृद्धि करता है।

रसवैशेषिक सूत्राकारने दीपन गुणको पृथिवी वायु प्रधान कहा हे तथा ये द्रव्य पित्तप्रधान रस और गुणोंकी वृद्धि करते है। आमाशयगत वात-वाहिनिया उत्तेजित होकर आमाशय रसस्राव अधिक कराती है (पाचन द्रव्य आमाशय रसस्रावको उग्र बनाती है) अग्निमे थोडा-थोडा घृत-तैल आदि डालनेपर जिस तरह वह प्रज्वलित होता है उस तरह मर्यादित घृत, तैल और तैल प्रधान द्रव्यके सेवनसे पचनाग्नि प्रदीप्त होती है। जो द्रव्य रुचिकर होते है, वे भी लालास्राव और आमाशय रसस्राव अधिक कराते है। भांग, सोमल, अभ्रक आदि वातनाड़ियोके उत्तेजक होनेसे आमाशय के रसस्रावको बढाते है।

दीपन क्रियाकी सिद्धि तब होती है, जब आमाशय रिक्त हो, तथा पहिलेके आहारका पचन होकर शौच शुद्धि हो गई हो। यदि अपचन हो तो पाचक औषधि देनी चाहिये। शौच शुद्धि न हुई हो तो उसके लिये प्रबन्ध करना चाहिये। अन्त्रकी शुद्धि होनेपर दीपन औषधिका कार्य सर-लतापूर्वक हो सकता है।

ज्वर, पच्यमान शोथ, कफप्रधान कास, श्वास आदि अनेक रोगोमे अग्निमान्द्य हो जाता है। उन रोगोमे पहिले उन रोगोकी नाशक औषधि

लेनी चाहिये। रस, रक्त, मास आदि धातुएँ निर्बल है, तो उनका बल बढे, ऐसी योजना करनी चाहिये। दीपन पौष्टिक औषधि (विशेषत: दीपन-पाचन-तिक्त रसप्रधान), लघु पौष्टिक आहार और आवश्यक व्यायाम द्वारा धातुओंको लाभ पहुँच सकता है।

डाक्टरी दृष्टिसे विशेष विचार नं० ५४ दीपन-पाचन गुणके साथ किया जायगा।

(५३) पाचन।

डाइजेस्टेण्ट्स—डाइजेस्टिव्स—Digestants—Digestives.

पचत्यामन्न वह्निं च कुर्याद्‌ यत्‌ तद्धि पाचनम्‌।
नागकेशरवद्‌ विद्याच्चित्रो दीपनपाचन: ॥

जो द्रव्य आम (अपक्व आहार रस) का पचन करता है, किन्तु अग्निको प्रदीप्त नही करता, उसे पाचन कहते है। जैसे नागकेशर। पचन गुणके साथ जो द्रव्य जठराग्निको प्रदीप्त भी करता है, उसे दीपन-पाचन संज्ञा दी है।

अन्त्रमे क्षोभ होकर अतिसार होनेपर ग्राही औषध सेवन करायी जाती है। परिणाममे अनेक वार क्षोभ शमन होकर निर्बलों और वृद्धोके अन्त्रमें आम सगृहीन हो जाती है। अन्त्र कुण्डलोकी वातनाड़ियाँ खिच जानेसे स्थान-स्थानपर आकुंचन हो जाता है। जिससे आहार द्रव्यकी योग्य गति नही होती। मल बकरीकी मेगनी या घोडेकी लीदके समान बन जाता है। मलके चारो ओर आम लगा रहता है और आमविषका शोषण भी रक्तमें होता रहता है। ऐसी अवस्थामे आमविषघ्न, आमपाचन और अन्त्रको सबल, बनानेका कार्य दीपनगुण प्रधान औषधिसे नही होता। उसके लिये पाचन गुणकी ही आवश्यकता है। श्री शार्ङ्गधराचार्यने इस गुणवाले द्रव्योंमेसे नागकेशरका उदाहरण दिया है।

चरक सहितामे दीपनीय गणमे ही पाचन औषधियां लिख दी हैं। अत: उस ग्रन्थमे दीपन, पाचन, ये दो विभाग नही किये। सुश्रुत संहितामे वचादि, हरिद्रादि और मुस्तादि गण (तीनो नं० ७० स्तन्यशोधनमे), पिप्पल्यादि गण (नं० ९ कफदोषघ्नमे), दशमूल तथा वृहत्यादि गण (नं० ९ कफदोषघ्नमे) इन सबको पाचन कहा है। यथार्थमे ये सब दीपन-पाचन मिश्रित द्रव्य हैं।

और औपधियाँ—मट्ठा, सज्जीखार, यवक्षार आदि अनेक सोम्य क्षार, भिलावा, सैंधानमक, समुद्रनमक आदि। पाचन औषधि उष्णवीर्य विशेषत. कटु, अम्लरस प्रधान होती हैं। क्षार और लवण भी पाचन गुण दर्शाते हैं।

डाक्टरीमे पेप्सिन (वराह आदि पशुओंके आमाशयमेसे प्राप्त पाचन द्रव्य) पपैन (अर्धपक्व एरण्डककड़ीके दूधका सत्व), यवसत्व (Ext,

Malt) को पाचन कहा है ।

पाचन द्रव्य चक्रदत्ताचार्यके मतमे अग्नि वायु गुण प्रधान है । रसवैशेषिक सूत्रकारने आग्नेयगुण प्रधान दर्शाया है । जो द्रव्य आमाशय रसको तीव्र बनावे, वे आमका पचन कर सकते है । जब आमाशयमे अत्यधिक भोजनसे अपचन हुआ हो, आमाशयकी श्लैष्मिक कलामे चिरकारी प्रदाह होनेसे आमोत्पत्ति अधिक होती रहती हो, तब क्षोभशामक और पाचन गुण युक्त या केवल पाचन गुणयुक्त द्रव्यके सेवनकी आवश्यकता रहती है ।

पाचन गुण प्रधान तथा दीपन-पाचन गुण प्रधान आदि औषधियोका कब प्रयोग करना चाहिये । इस सम्बन्धका विशेष विचार नं० ५४ दीपन-पाचनके डाक्टरी विवेचनमे किया जायगा ।

अनेक बार किसी विशेष द्रव्यके अपचनसे स्वास्थ्य बिगड़ता है, तब उस द्रव्यके विरोधी द्रव्य (दोषशामक द्रव्य) द्वारा उसके विकारको दूर करना चाहिये । जैसे अम्लरसजन्य विकृति होनेपर क्षार सेवन । क्षारजन्य विकार होनेपर अम्लरसका सेवन आदि । इसके कुछ उदाहरण रसवर्णनके अन्तमे दिये है ।

(५४) दीपन-पाचन ।

स्टमकिक्स एण्ड एपिटाइजर्स—Stomachics & Appetisers

दीपन और पाचन, दोनो गुण जिन द्रव्योमे हो, उनको दीपन-पाचन कहते है । चरक संहितामे कहे हुए दीपनीय गण तथा सुश्रुत संहितामें कहे हुए पिप्पल्यादि गणमे दीपन और पाचन दोनो गुण दर्शाये है ।

और औषधिया—ताम्र भस्म, कुचिला, करजबीज, क्विनाइन, सतौना, अतीस, चिरायता, बच, सुवर्ण चम्पाकी छाल, चित्रकमूल, कालानमक आदि लवण, सज्जीखार, नीलगिरीतैल, पीपरमेण्ट तैल, हीग, इन्द्रजौ, प्रवाल, शख, वराटिका, दालचीनी तैल, लौंगका तैल, नौसादर आदि ।

आमाशय गतिपर कार्यकारी औषधियाँ- कुचिला, कुचिला सत्व और चित्रकमूल आदि चरपरी, दीपन पाचन औषधियोके सेवनसे आमाशयस्थ मथन क्रिया प्रवल होकर भोजन सत्वर पचन हो जाता है ।

आहार-सत्वकी शोषण क्रियाको बढानेवाली औषधियाँ—ताम्र भस्म, नौसादर आदि जो औषधिया यकृत् और अन्त्रकी क्रियापर लाभ पहुँचाती है, वे ही परम्परा आमाशयकी शोषण क्रियाको सबल बनाती हैं । इसी हेतुसे यकृत् पित्तनिसारक और विरेचन औषधिया आमाशयकी शोषण क्रियापर उपकारक होती है ।

सोमल, ताम्र, लोहभस्म, पारदघटित औषधिया उसारेरेवन्द, वत्सनाग आदि औषधिया आमाशयकलाको उत्तेजित करती है ।

सोहागा, गन्धक, नीलगिरी तैल आदि आमाशयकी फेनीभवन क्रिया

को निर्दोष बनाती है। इसी हेतुसे अपचन नष्ट होता है।

ताजा मधुर तक्र और क्षार रस लाला स्रावकी कमी और आमाशय रसकी वृद्धि कराते हैं। भोजनके साथ लिये हुए अम्ल तक्र और अम्ल रस आमाशय रस स्राव कम तथा लालास्राव अधिक कराते हैं।

वराटिका आदि भस्म, अफीम, वर्फ, खुरासानी अजवायन, आमाशय रसकी अधिक उत्तेजना होनेपर उग्रताका ह्रास करा आमाशयको लाभ पहुँचाती है। अत ये सब विविध वेदनायुक्त अजीर्ण रोगमें व्यवहृत होती है।

दीपन, पाचन औषधियां क्षुधा प्रदीप्त करती हैं, किन्तु यह आमाशय की विशेष अवस्था और औषध परिमाणपर निर्भर है। आमाशय कला स्वल्प उत्तेजित होनेपर क्षुधाका उद्रेक होता है; अपेक्षाकृत अधिक उत्तेजना होनेपर क्षुधा तिरोहित हो जाती है; और अत्यन्त उत्तेजना होनेपर उवाक और वमन उपस्थित हो जाती है। सामान्यतः स्वस्थावस्थामे आमाशय स्वल्प उत्तेजित होनेपर आमाशयका रसस्राव बढ़ जाता है; और अधिक उत्तेजना होनेपर आमाशयका रसस्राव बन्द हो जाता है।

दुर्बलताजन्य अग्निमान्द्य (Atonic Dyspepsia) मे क्वचित् उत्तेजना होनेपर क्षुधाका उद्रेक हो जाता है।

जब जिह्वा कोमल स्निग्ध हो, तब सोमल, ताम्र और चरपरी औषधिया लाभदायक होती है। परन्तु आमाशयमे उग्रता आ जानेसे जब जिह्वा फटी हुई रक्तवर्ण युक्त प्रतीत होती हो, तब ये सब औषधियां उग्रता बढ़ा देती है। परिणाममें क्षुधाका अधिक ह्रास हो जाता है, और उवाक प्रारम्भ हो जाती है।

पित्ताशय शूलके आक्रमणके पूर्वकालमें आमाशयमें उग्रताकी वृद्धि होती है और यथेष्ट क्षुधा लगती है और भोजन रुचिपूर्वक किया जाता है। फिर उग्रता अधिक बढनेपर भोजनके पहिले अति क्षुधाका भास होता है, परन्तु थोडा-सा भोजन करनेपर क्षुधा लोप हो जाती है। ऐसी अवस्थामे चरपरी औषधियां लाभ नही पहुँचा सकती; प्रत्युत हानि पहुँचाती है। ऐसे समयपर आमाशय शामक प्रवाल, शुक्ति, वराटिका, शंख भस्म, जवाखार, इतर क्षार और सौफ आदि औषधियां उपकारक होती है।

आमाशय क्रिया प्रकार :—

१ पाचक रस नि.सरण करा भुक्त द्रव्यको शोषण और समीकरण योग्य बनाना।

२. आमाशयकी गति द्वारा आहार द्रव्य अणु-अणु रूपमें विभक्त होकर उनका आमाशय रसमे सम्मिलित होना।

३. आहारके कुछ अंशका आमाशयकी पाचनक्रिया द्वारा शोषण योग्य

होनेपर शोषित हो जाना ।

आमाशय रसस्रावपर कार्यकर आहार—भोजनके पहिले क्षारमिश्रित जलका सेवन करनेसे आमाशय रस अधिक निकलता है । भोजनके प्रारम्भ मे किञ्चित् नीबूके रस, सेंधानमक और अदरखके सेवनसे भी रसस्राव अधिक होता है । जलमिश्रित स्वल्प शराबसे भी आमाशयमे उत्तेजना आ जाती है ।

अम्लरस मिश्रित क्षार सेवनसे मुखमे लालास्राव अधिक होता है । लालास्राव विशेष होनेपर भोजन सुस्वादु लगता है एव अच्छी तरह आहार को चबानेसे लालास्राव और आमाशय रस निःसरणमे वृद्धि होती है ।

अजीर्ण रोगके निर्बल आमाशय वालोंको चाहिये कि, भोजनके प्रारम्भ मे शुष्क पदार्थका सेवन करे । जिससे आमाशयमेंसे योग्य मात्रामे रसस्राव हो, स्मरण रक्खे कि तरल पदार्थके अधिक सेवनसे रसस्रावमे न्यूनता होती है ।

निर्बल पचन शक्ति वालोंको भोजन कर लेनेपर जल्दी जलपान नही करना चाहिये । कमसे कम भोजनके १ घण्टे बाद जल पीना चाहिये ।

तीव्र रोगोके अन्तमे सार्वाङ्गिक क्षीणतामे एवं वृद्धावस्थाजनित निर्बलतामे (आमाशयको उत्तेजित करनेसे भी) यथोचित रसस्राव न होता हो, तो भोजनके प्रारम्भमे नीबू रस और नमकमिश्रित अदरख, भोजनके अन्तमे तक्र, भोजनके साथ लहशुन, अनारदाने और पोदीनेकी चटनी या भोजनके दो-तीन घण्टे बाद नीबूका रस या सन्तरा आदि फलोका रस सेवन करना चाहिये ।

जब अपचन रोगमें खट्टी डकार आना, दाह, प्यास आदि लक्षण उपस्थित हों, तब भोजनके दो-तीन घण्टे पश्चात् थोडा सोडा या इतर क्षार अथवा शंखवटी देनेसे उदरमे भारीपन, खट्टी डकार, दाह और बेचैनी आदि दूर होकर भोजन सरलतासे पचन हो जाता है ।

डाक्टरी विशेष विचार

आहारका संग्रह करने वालोंमें आमाशय मुख्य स्थान है । यह देहके लिये उपयोगी हो, उस तरह कुछ पचन द्वारा और कुछ यान्त्रिक रीतिसे तरल और अर्द्ध तरल आहारका परिवर्तन और दमन करता है । कठोर आहार आमाशयमे कुछ घण्टो तक रह जाता है, उस समयके भीतर आमाशयस्थ मांसपेशिया आकुञ्चित होती है और परिचालन क्रिया द्वारा आहार तरल बनता जाता है और वह मुद्रिका द्वारसे ग्रहणीके भीतर फेंका जाता है । हार्दिक द्वार सकोचनी, और मुद्रिकाद्वार संकोचनी, दोनो पेशियोंके दबाव द्वारा आमाशयमेंसे आहार रसको बाहर निकाल दिया जाता है ।

जब आहार द्रव्य अमुक पचनावस्थाको प्राप्त होता है, तब प्रतिफलित क्रिया होकर मुद्रिका द्वार खुलता है। और आहाररसका ग्रहणीमे प्रवेश होता है किन्तु, जो आहाररस अन्त्रमे जाने योग्य न बना हो, उसे आमाशयका अन्तर्भाग रोक लेता है।

आमाशयपर अंकुश रखनेके लिये दो प्रकारकी नाड़ियोके तन्तु फैले हुए है, १. प्राणदानाडी (Vagus or Augmentor neive) यह आमाशय की आकुंचन क्रियाको उत्तेजित करती है; २. आशयिकीनाडी (Splanch nics or inhabitor nerve) यह आमाशयकी गति या उत्तेजना को शात करती है। इस हेतुमे सब परिस्वतन्त्र नाड़ियोंकी उत्तेजना द्वारा आमाशय गतिकी वृद्धि और स्वतन्त्र नाड़ियोकी उत्तेजना द्वारा, सब गति का निवारण होता है। यह एक स्वयं सचालित अवयव है, जो रस स्राव और गतिका सरक्षण करता तथा आमाशयकी पचन क्रिया नियमित करता है।

आमाशयिक रससे होनेवाली क्रिया—

१ पेप्टिक पचन (Peptic digestion)—इस क्रियाके लिये पेपसिन द्रव्य और लवणाम्ल स्रावकी सहायता चाहिये। यह प्रथिन पचनमें सहायक है, लवणाम्लके अभावमे इसका महत्व नही है। क्यों कि, मांस अविकृत (पचन क्रिया रहित) शेष रह जाता है।

२. अपक्षयरोधक क्रिया (Anti-septic action)—यह क्रिया अति महत्वकी है। क्योंकि आमाशयका अम्लरस अनेक जातिके कीटाणुओंको नष्टकर डालता है। प्रसिद्ध स्ट्रेप्टोकोकाईका भी नाश हो जाता है। एवं प्रवाहिका, मधुरा, विसूचिकाके कीटाणु भी न्यूनाधिक अंशमे आमाशयरस द्वारा नष्ट हो जाते हैं। यदि आमाशयके लवणाम्ल स्रावका अभाव हो तो लघु अन्त्रके द्रव्योका क्षारीयपन बढ जाता है। ऐसी स्थितिमे ग्रहणी बेसिलसकोलाईके आक्रमणके अनुकूल बन जाती है। सामान्यत लघु अन्त्रकी ओरसे स्ट्रेप्टोकोकाई द्वारा तथा नीचेकी ओरसे बेसिलसकोलाई द्वारा प्रभावित हो जाता है। यह परिवर्तन लवणाम्लके अभावसे आहार द्रव्य का योग्य भेदन न होनेसे होता है। फिर श्लैष्मिक कलापर क्षोभ होकर चिरकारी अन्त्र प्रदाहकी सम्प्राप्ति हो जाती है।

३. रक्तरचना (Hoemopoisis)—इसके २ विभाग है।

अ. लोहशोषण (Iron absorption)—सामान्यत भोजनमें पूरा लोहद्रव्य रहता है, जो रक्तमे रक्तरंजकका कुछ अंशमें पोषण करता है। लवणाम्लके अभावमें आहार और उसके अनुवर्ति आहार लोहका उपयोग अपूर्ण होता है। यदि रक्तकी कुछ हानि होती है तो लोहकी मात्रा आहार मे शोषित होती है, वह लोहके योग्य अनुपातकी रक्षा नहीकर सकती।

परिणाममें लघु रक्ताणुओकी उत्पत्तिमय पाण्डु उपस्थित होता है। लवणाभावमे आहार लोहका अधिक अनुकूल परिवर्तन करनेमे असफलता मिलनेसे तथा लोहशोषणमे अन्त्रकी असमर्थता हो जानेसे स्वास्थ्यका पतन होता है।

आ रक्तरजन (Hoemopoietin)—की उत्पत्ति आमाशयरसके भीतर आभ्यान्तरिक प्रतिनिधि (Intrinsic factor) जो आहारस्थ प्रथिन (बाह्य प्रतिनिधि-Extrinsic Factoi) पर परिपक्व रक्तद्रव्य बनानेकी क्रिया करता है, जो मज्जामे रक्ताणुओके परिपाकके लिये उपयोगी है। इसके अभावमे घातक (Pernicious) पाण्डु उपस्थित होता है।

४ नाडीजनकी (Neuropoietin) की उत्पत्ति—आमाशयरस जिस तरह रक्तजनकी उत्पत्ति कराता है, उस तरह केन्द्रीय नाडीसस्थाके सामान्य पोषणार्थ नाडीजन भी तैयार कराता है। यह मण्डके स्वभावका है और आमाशयरसमे इसका अभाव होनेपर सुषुम्णाकाण्डकी अपक्रांति होती है।

आमाशयरसके उत्पत्तिवर्द्धन हेतु—आमाशयरसकी उत्पत्तिपर प्राणदानाडी अकुश है, जो रसस्रावी सूत्रो द्वारा दमन करती है। प्राणदानाडियो के परिधिप्रान्तके सिरेकी उत्तेजनाके अनुरूप आमाशयिक रसस्राव होता है। आमाशय रिक्त होनेपर भी अनाजकी सुगन्धमात्रसे आमाशयके भीतर रसस्राव होने लगता है। स्वाद और सुगन्धग्राही नाडीकी उत्तेजना होनेसे प्राणदा नाडीके रसस्रावी तन्तुपर प्रतिफलित क्रिया होती है। इस तरह उत्पन्न रसस्रावको मानसस्राव Psychic Secretion) संज्ञा दी है। मनुष्योमे भी कइयोको इमली आदि पदार्थोंको देखने मात्रसे मुखके भीतर लालास्राव होने लगता है, वह भी मानस स्राव है।

इस तरह मानस उत्तेजना द्वारा आमाशय स्राव और लालास्राव, दोनों की वृद्धि होती है। यदि सूचीबूटी सत्व (Atropine) आदिके प्रयोग द्वारा प्राणदा नाड़ियोंका पक्षवध कराया जाय, तो रसस्रावी सूत्रोंकी उत्तेजना नही होती एव रसस्राव भी नही होता। यह स्राव आमाशयिक पचनका प्रारम्भ करता है, जो आमाशयमे आगे स्रावोत्पत्ति द्वारा स्वमेव पूर्ण हो जाता है। इसलिये यह विदित होता है कि, अतिरिक्त स्राव कतिपय रासायनिक या विशेष प्रकारकी उत्तेजनाका आभारी है। यथार्थमे जब मुद्रिका द्वारकी श्लैष्मिक कलाका गन्व रक्तके भीतर शोपित होता है, तब आमाशयका स्राव बढ जाता है। यह स्रावोत्तेजनाकी उत्पत्तिके लिये आरोपित होता है, जो कतिपय आहारसे उत्पन्न होता है और जो मुद्रिका द्वारकी श्लैष्मिक कलापर क्रिया करके गेस्ट्रिन (Gastrin) अर्थात् आमाशयरसके उत्तेजक द्रव्यकी रचना करता है, जो रक्तमेमे लाया जाता है और वह ग्रन्थियोंपर रासायनिक उत्तेजन किया करता है। कितनेक आहार, मुख्यत।

मांससत्व, सोरवा, आदि रासायनिक उत्तेजक द्रव्यकी उत्पत्तिको उद्दीपित करते है। और अण्डेकी सफेदी, रोटी और सामान्य लवणरस ऐसी क्रिया की उत्पत्ति नही कराते।

आमाशयरस स्राववर्द्धक औषध क्रिया--इसके ५ प्रकार है.—

१. मानस स्राव (Psychic Secietion) मुखकी नाड़ियोंकी उत्तेजनाकी प्रतिफलित क्रिया द्वारा उत्पत्ति जो रुचिकर आहारकी वार्तालाप या दर्शन द्वारा मुखमे रहे हुए गधग्राही या स्वादग्राही नाड़ीतन्तु उत्तेजित होते है। जो क्षुधाकी भावनाको प्रदीप्त करते है और आमाशयमे रसस्रावकी वृद्धि कराते है, इस प्रकारके द्रव्य रुचिकर आहार या पेय हैं। तिक्त और सुगन्धयुक्त औषधियाँ भी भोजनके पहिले मानसस्रावको उत्तेजित करती है, जिनकी प्रतिफलित क्रिया स्वादग्राही नाडियो द्वारा होती है।

२. प्राणदा नाडियोके रसस्रावी सूत्रोंकी उत्तेजना द्वारा—पाइलोकार्पिन, एसिटीलकोलिन और मस्केरिन आदि।

३ आमाशय स्कंधकी प्रत्यक्ष उत्तेजना द्वारा—शराब आदि।

४ मुद्रिका द्वारकी उत्तेजना द्वारा—कतिपय मांसरस, वसाम्ल, सोरवा आदि, रासायनिक उत्तेजकके सदृश कार्य करते है।

क्षार—भोजनके पहिले सेवन करानेपर आमाशयस्राव बढ जाता है।

आमाशयरस स्रावका ह्रास करनेवाली औषधियां इसके ५ प्रकार हैं।

१. ग्राही औषधियाँ—अफीम, टॉनिक प्रधान औषधिया (लोध, माजूफल आदि), धातुओके लवण आदि।

२ प्राणदानाड़ीके सिरेका पक्षवध करानेवाली औषधियाँ—एट्रोपिन, सूचीबूटी, धतूरा आदि।

३. जमनेवाले तैल और वसा।

४. क्षार—ये कतिपय प्रकारके अजीर्णमें दुग्धाम्ल और वसाम्लसे उत्पन्न अत्यधिक अम्लताको उदासीन बनानेके लिये व्यवहृत होते है। इसके सेवनसे पहिले आमाशयरसका ह्रास होता है; किन्तु आरोग्य होने पर ग्रन्थिया अधिकतर अम्लका स्राव कराती है (अत· इसका सेवन सम्हालपूर्वक करना चाहिये)

५ आमाशय स्कन्धपर प्रत्यक्ष क्रिया—पहिले क्षोभकी वृद्धि होती है। फिर आमाशय रसस्रावका ह्रास होता है।

इनके अतिरिक्त जिस तरह मानस प्रभाव द्वारा स्राव बढता है, उसी तरह मानस आघात, चिन्ता आदि द्वारा स्राव घटता है। वर्फजल भी स्रावका ह्रास कराता है। भोजनके पहिले या भोजनके बीचमें बर्फजलका पान करना, यह पचन क्रियामे कुछ बाधा पहुँचाता है।

आमाशयिक रसकी रचनापरिवर्त्तक औषध—आमाशयरसमे विकृति

आनेपर अपूर्ण या अत्यधिक (Hypercrhlohydria) भी होता है। कभी अनेक परिस्थितियोमें लवणाम्लकी न्यूनता होती है और सामान्य स्थितिमे कुछ भी लक्षण प्रकाशित नही होता। लवणाम्लके अभावमे आमाशयके कीटाणुनाशक द्रव्यका ह्रास होता है और इसलिये आमाशयरसमे लवणाम्लका अभाव (Achlorhydria) पचनसस्थाके ऊपरके हिस्सेको रोग विष संचारके अनुकूल बनाता है। आमाशयमे कर्कस्फोट आदि रोगोके हेतुसे या श्लेष्माका अधिक सग्रह होनेपर यह अपूर्णता उपस्थित होती है। परिणाममे चिरकारी आमाशयप्रदाहकी संप्राप्ति होती है। ज्वरावस्था, घातकपाण्डु और अन्य अनेक रोगोमे तथा अन्त्रमेसे क्षारीयस्रावका विपरीतागमन (Regurgitation) होनेपर ऐसी स्थिति प्राप्त होती है।

आमाशयिक व्रणसे पीडितोमे सामान्यतः अत्यधिक रसस्राव होता रहता है। अधिक स्रावकी चिकित्सा क्षार द्वारा होती है। डाक्टरीमे मेगनेशियम ऑक्साइड उत्तम माना है, क्योकि वह कार्वोनिक एसिडकी उत्पत्ति नही कराता जो एसिड आमाशय स्रावकी उत्पत्तिको वढाता है, केलशियम और मेगनेशियम कार्व इसके पश्चात् आते है, जो सोडावाईकार्व और पोटाशियमकी अपेक्षा सबल है। ये अम्लविरोधी कहाते हैं। दूध भी मूल्यवान अम्लविरोधी और अम्लको उदासीन करने वाला हे।

आमाशयिक गतिके परिवर्त्तक औषध—आमाशयकी गति वढी हुई हो, ऐसे समयपर आमाशयकी श्लैष्मिककलापर शामक असर पहुँचाने वाली औषधियोका प्रयोग करना चाहिये। जो चेष्टानाडी यन्त्रिणा द्वारा क्रिया करता है, जो आमाशयशामक (Gastiic Sedatives) द्रव्य है, वे आमाशयकी श्लैष्मिककलापर शामक असर पहुँचाते हैं। कोकीन और वमन औषध, सूचीबूटीसत्व, एड्रेनलिन आदि वढी हुई गतिको कम कराते है। पहिले प्राणदानाडियोपर शामक असर और फिर परिस्वतन्त्र नाड़ियोपर उत्तेजक असर पहुँचाकर कार्य करते है। अफीम मांशपेशियोपर आकुंचन क्रिया करके और मुद्रिका द्वारकी पेशीका आकुञ्चन करके आमाशयकी गतिका ह्रास कराती है। विस्मथका अद्रवीभूत लवण मेगनेशियम और केलशियम आवरणकी रक्षा और आमाशय गतिका ह्रास कराते है। कोकीन, हाइड्रोस्येनिक अम्ल और क्लोरोफार्म आदि औषधिया संवेदना नाडियोके सिरेपर शामक असर पहुँचाती है और प्रतिफलित क्रिया द्वारा आमाशय गतिका ह्रास कराती है।

अम्ल और क्षारका असर आमाशयकी गतिपर अनुभवात्मक मूल्यवान होता है। आमाशयमें मुक्त अम्लकी विद्यमानता हार्दिक द्वारका आकुंचन कराती है, मुद्रिका द्वारकी गति वढाती है, मुद्रिका द्वारकी संकोचक पेशी को खोल देती है और आमाशयिक द्रव्यको ग्रहणीमे प्रवेश करनेकी अनु-

मति देती है। ग्रहणीमे मुक्त अम्लकी विद्यमानता मुद्रिका द्वारको बन्द करनेके लिये प्रतिफलित क्रिया कराती है और जब तक वह अन्त्रके रस-द्वारा उदासीन न हो जाय, तब तक नही खुलता। यह भी विदित हुआ हैं कि, मुद्रिका द्वारकी आकुंचन पेशीपर आमाशयकी अपेक्षा ग्रहणीका अधिक प्रभुत्व है। यद्यपि क्षोभोत्पादक द्रावक मुद्रिका द्वारका आकुंचन कराता है, तथापि यह क्रिया जब वमन द्रव्यका प्रयोग होता है या जब आहार द्रव्य क्षोभ उत्पन्न कराता है, तब ही होती है, अन्य समयमे तो ग्रहणीका ही अधिकार अधिक रहता है। जब आमाशय स्वयमेव वमन द्वारा द्रव्यका परित्याग करता है, तब हार्दिक द्वारको आकुंचनपेशी खुलती है और मुद्रिका द्वारकी बन्द होती है।

क्षार नियमानुसार आमाशयको रिक्त होनेमे विलम्ब कराता है; किन्तु फिर भी द्रव्य जब क्षारयुक्त, अम्ल या उदासीन होते हैं, तब उसी वेगसे रिक्त होते हैं।

५. वातहर औषधियां (Carminatives)—यह क्रिया निम्नानुसार ३ प्रकारसे होती है।

अ. नियमित मथन क्रियाको उत्तेजित करके।

आ. हार्दिक या मुद्रिका द्वारकी आकुंचन पेशीको शिथिल करके।

इ. वातनाडिया या मासपेशियोको उत्तेजित करके।

इसके लिए उड्यनशील तैल उत्तम औषधिया है। सुगन्धवाले द्रव्य, सुगन्धवाले कडुवे द्रव्य, कपूर, पीपरमेण्ट, स्पिरिट आदि आमाशयमेसे गैस को निकालनेके लिये प्रयोजित होते हैं।

डाक्टरीमत अनुसार कडुवे द्रव्योमे आमाशय पौष्टिक (रसस्राव वर्द्धक और पाचक) गुण अधिक है। यद्यपि इनमे विशेष गुण भिन्न भिन्न है, तथापि ये सब आमाशय पौष्टिक गुणवाले हैं। उदाहरणार्थ कुचिला वातनाड़ीपर विशेष कार्यकारी और क्वीनाइन ज्वरघ्न है। कडुवी औषधियोमे २ प्रकार हैं।

१. सामान्य (सुगन्ध रहित) कडुवी औषधियाँ—केलम्बा, क्वासिया, जेन्सन, चिरायता, काँटेवाले करंजके फल आदि।

२. सुगन्धयुक्त कडुवी औषधिया—ईसरमूल (Serpentary), संतराके फलकी छाल आदि उड्यनशील औषधिया।

(५५) तृप्तिघ्न।

अरुचिनाशन—रोचन—भक्तद्वेषहर

जो द्रव्य तृप्ति (अन्नकी इच्छा न होना—अरुचि) को नष्ट करे, उसे तृप्तिघ्न संज्ञा दी है। श्लैष्मिक प्रकोप होनेपर भोजन न करनेपर भी उदर खूब भरा हुआ प्रतीत होना उदरमे भारीपन, आलस्य, मलावरोध, मुंहमे

फीकापन आदि लक्षण मालूम होते हैं। मुंहमे स्वादु अन्नका ग्रास डालनेपर भी वह बेस्वादु लगता है। उदरमे पाचन, शोषण और अभिसरण क्रिया मंद होनेपर, ऐसा होता है, जिससे तृप्तिघ्न अर्थात् पाचन (अधिक रसोत्पादक), शोषण और अभिसरण बढानेवाली औषधिया व्यवहृत होती हैं।

क्वचित् आमविष या कीटाणुविष बढनेपर भी उदरमे भारीपन आ जाता है। ऐसी स्थितिमे विषघ्न औषध प्रयोजित होती है। कभी कभी शोक, चिन्ता आदिसे क्षुधा नष्ट हो जाती है। इन सब प्रकारोका विशेष वर्णन चिकित्सातत्वप्रदीप द्वितीय खण्डमे रोग न०-१-अरोचकमे किया है।

तृप्तिघ्नवर्ग—चरक सहितामे सोठ, चित्रकमूल, चव्य, बायविडङ्ग, मूर्वा, गुडूची, बच, नागरमोथा, पिप्पली, पाढल, (वृद्धवाग्भट्टके मतानुसार पटोल), ये १० औषधियां लिखी है।

सुश्रुत सहितामे बृहत्यादि गण, पिपल्यादि गण, सुरसादि गण (तीनों का वर्णन नं० ९ कफदोषघ्नमे) पटोलादि गण, गुडूच्यादि गण (इन दोनो का वर्णन नं० ९० ज्वरघ्नमे) तथा आमलक्यादि गण (आवला, हरड, पिप्पली और चित्रकमूल), इन सबको अरुचिनाशक कहा है।

और औषधिया—सतरा, नीबू, अनारदाने आदि अम्ल फल, सैंधानमक लगा हुआ अदरख और नीबूरस बच्छनाग, चागेरी, वङ्ग भस्म, सोमल, गन्धक, रससिंदूर, कपूर, पीपरमेन्टके फूल, नीलगिरी तैल आदि।

(५६) ग्राही।

संग्राहिक—पुरीषसग्रहणीय—एस्ट्रिन्जेन्ट्स —Astringents

> दीपन पाचन यत्स्यादुष्णत्वाद् द्रवशोषकम्।
> ग्राही तच्च यथा शुण्ठी जीरक गजपिप्पली॥

जो द्रव्य अग्नि प्रदीपक और आम आदिका पाचन करनेवाला हो तथा उष्ण वीर्यके हेतुसे दोष, धातु और मल आदिके पतलापनका शोषण करनेवाला हो, उसे 'ग्राही' संज्ञा दी है। उदाहरणार्थ सोठ, जीरा, गजपीपल।

ग्राहि द्रव्योको यहा उष्णवीर्य कहा है, किन्तु सुश्रुताचार्यने वातगुणभूयिष्ठ माना है। क्योंकि, वायुका कार्य शोषण करना है। विचार भेदका समाधान करनेके लिये शार्ङ्गधर संहिताके टीकाकार श्री० आढमल्लाचार्यने लिखा है कि, ग्राही द्रव्योके २ प्रकार हैं। १. जो द्रव्य ग्रहणीमे आमको पचन करा, जठराग्निको प्रदीप्त करा वहापर रहे हुए द्रव्यका शोषण करता है, वह उष्ण सग्राहक तथा जो द्रव्य अतिसार आदिमे पक्वमल आदिका स्तम्भन कराके सग्रहण (धारण) करता है, उसे शीत संग्राहक सज्ञा दी है। ये द्रव्य वातगुणभूयिष्ठ होते हैं।

ग्राहि द्रव्य अन्त्रके शिथिल और प्रसारित स्रोतसोंको आकुंचन करते है अन्त्रकी पुरःसरण क्रियाकी उग्रताको शान्त करते और अन्त्रमे उत्पन्न

होनेवाले क्षोभजन्य स्रावका ह्रास कराते है।

पुरीषसंग्रहणीय वर्ग—जो द्रव्य प्रति सरनेवाले पुरीपको धारण करे, उसे पुरिषसंग्रहणीय कहते हैं। प्रियगु, अनन्ता (धमासा) आमकी गुठली, श्योनाक लोध्र, मोचरस, समंगा (लज्जालु), धायके फूल, पद्मा (भारगी) और कमल केशर, ये औपधियां चरक संहितामे कही है।

सुश्रुत सहितामे न्यग्रोधादि गणको संग्राही कहा है। इसका वर्णन न० ६ पित्तसंशमन प्रकरणमे किया है।

और औषधियाँ—अफीम, भांग, खसखस, लिहसोड़ा, राल, शहतूत, शंख, कुचिला, अजमोद, केशर, सोठ, जीरा, गजपीपल, इन्द्रजौ, ईसबगोल, कुड़ाकी छाल, बेलगिरी, नागकेशर, कत्था, जामुनकी गुठली, जायफल, जावित्री, अनार, दारुहल्दी, भारगी, माजूफल फिटकरी, सेमलका गोंद, राल, सेलखड़ी, चाक गेरु, जहरमोहरा, खताई, कमलकेशर, अनन्तमूल, विजयसार, लालबोल, पाठा, मत्स्याक्षी (मछेछी), गोद, हीरादोखी गोद, बहेड़ा, कासीस, सिलारस (हेममेलिग वृक्षका रस), बकुल (मूत्राशय संकोचक और दन्तमूल दृढ करनेमे हितावह), गूलर, कच्चाकपित्थ, पिस्तेके फूल, पलाशगोद, तेंदुगोद, मेंहदीके पान, खैरछाल, बबूलछाल, काकड़ासिंगी, इमलीके बीज, तक्र, चाय, ओक वृक्षकी छाल आदि।

डाक्टरी मतानुसार ग्राहीवर्गके भीतर स्तम्भनगुणका भी अन्तर्भाव किया है। दोनोका विवेचन पृथक् नही किया। इस मतमे ग्राही औषधियो की क्रिया तन्तुओके आकुंचन द्वारा प्रकाशित होती है तथा स्राव द्वारा नष्ट होती है। अन्त्रके भीतर इनका असर मलकी अनिसरण क्रियाके विरुद्ध होता है। ग्राहीवर्गमे धातु, गन्धकाम्ल और उद्भिद ग्राही औपधिया हैं। अफीम और खड़िया मिट्टीका प्रभाव अन्त्रकी गति और स्राव, दोनोपर होता है, गति मन्द होती है और स्रावका भी ह्रास होना है।

उद्भिद् ग्राही औपधिया विशषत उनमे रहे हुए कपायाम्ल (Tannin) द्रव्यके हेतुसे फल दर्शाती हैं। कासीस या लोहप्रधान औपधियां अन्य ग्राही धातुओकी अपेक्षा अधिक सौम्य है।

और निर्दोप होनेसे पचनसंस्थाके रोगमे विशेष व्यवहृत होती हैं।

सब ग्राही औपधियां स्थानिक स्तम्भक (Local hoemostatics) है। उनका लेप करनेपर रक्तवाहिनियोंका आकुंचन होता है। इस तरह इससे श्लैष्मिक कलाकी सतहका और मासपेशियोके सूत्रोका भी संकोच होता है। इस प्रकारकी औपधिया फिटकरी, रौप्य, सीसा, लोह आदि है। ये औपधियाँ और उद्भिद ग्राही औपधिया, सब रक्तवाहिनियोंके चारो और रहे हुए तन्तुओमे प्रथिनको घनीभूत करके फल दर्शाती है। इसका प्रभाव रक्तवाहिनियोकी दीवारकी पेशीकला (Muscularcoat) पर नही होता।

इसका विशेष विचार रक्तस्तम्भक प्रकरण नं० ५७ मे किया जायगा।

कषायाम्ल अथवा कषायाम्लयुक्त द्रव्य अनेकधातु, उपक्षार (Alkaloids) और मधुजन (Glycosides) आदिके साथ न्यूनाधिक अशमे अद्रवणीय मिश्रित होता है। ग्राही औषधियोके २ प्रकार है। १. खनिज प्रधान और २. उद्भिद् प्रधान। १. खनिज द्रव्य—शीशा (मुर्दासग) रौप्य, जसद, ताम्र (नीलाथोथा), फिटकरी आदि। उद्भिद् द्रव्य-कषायाम्ल, कत्था, लोद, माजूफल आदि।

ग्राही औषध प्रयोग प्रकार—१ बाह्य, २. आभ्यन्तरीक। लेप आदि प्रयोगसे लाभ पहुँचावे, वे बाह्य, २. मुखसे सेवन करनेपर आमाशयिक आदिमेसे मिलकर आभ्यान्तरिक यन्त्रोमे कार्य करे, वे आभ्यन्तरिक।

१. बाह्य प्रयोग—मलहमका लेप, द्रव, चूर्ण आदि रूपसे क्षत आदिपर होता है। ये औषधिया रक्तस्राव और श्लेष्मिक कलाके स्रावका दमन करती हैं। सर्पविषका रक्तवाहिनीपर लेप करनेपर वहा रक्तको जमाकर रक्तस्राव को रोक देता है। इतर ग्राही औषधियोका प्रयोग नेत्र और मुँहमे द्रव रूप से, कण्ठनलीमे गण्डूष और छिडकाव (Spray) रूपसे, तथा नासिका, मूत्र प्रसेक नलिका, योनि और गुदा द्वारमे पिचकारी और वर्त्ति (Suppository) रूपसे प्रयोजित होता है।

आभ्यन्तरिक प्रयोग—अतिसार, रक्तवमन, रक्तकास, रक्तस्राव आदि रोगोंके दमनार्थ उपयोग होता है। इस विभागमे फिटकरी, लोध, माजूफल, बेलगिरी, अतीस, शख भस्म आदि अनेक औषधिया है।

अतिसार होनेमे मुख्य हेतु,

१ अन्त्रमे सञ्चालन क्रियाकी अधिकता (इस हेतुसे यथोचित शोषण होनेके पहिले आहार-द्रव्य बाहर निकल जाता है)।

२ शोषण क्रियाका ह्रास। इस हेतुसे मलमे पतलापन रह जाता है।

३. अन्त्रमे रक्तस्रावकी अधिक उत्पत्ति।

इन तीनोमेसे जिस कारणसे अतिसार हुआ हो, उस विकृतिके अनुरूप औषध योजना करनी चाहिये।

कारण भेदसे ३ प्रकार—

१. अन्त्रकी उग्रताशामक—अफीम, आमकी गुठली, एरण्डतैलका दुग्धीकरण, लिहसोडा, शहतूत, ईसबगोल, बिहदाना आदि।

२ आन्त्रिक शोषण क्रियावर्द्धक—नागकेशर, अतीस, भाग, इन्द्रजौ, जीरा, सोठ, गजपीपल, आदि।

३. रसोत्पत्तिकी दमनकारी—फिटकरी, कुडेकी छाल, सोनापाठा, कत्था, लोध, माजूफल, कासीस आदि रसोत्पत्तिका ह्रास कराती है। इसके लिये अफीम भी व्यवहृत होती है।

कषायाम्ल (Tannic Acid)—इसकी प्राप्ति माजूफलमेसे अधिक होती है। लोध, हरड, बहेडा आदिमे भी यह रहता है।

गुणधर्म विज्ञान (Pharmacology)—अच्छी त्वचापर लगानेपर इसकी कुछ भी क्रिया नही होती, किन्तु पीडित श्लैष्मिककला या फटी हुई त्वचाके नीचे रही हुई नग्न श्लैष्मिककलापर लगानेपर श्लेष्मा और प्रथिनस्रावको गाढ़ा बनाता है। फिर वह घनीभूत प्रथिन या चिपचिपा सरेस (Gelatin) विगलन (Putrifaction) होनेमे प्रतिबन्ध करता है। यह तन्तुओमे शोषित होता है और अन्तरस्थ द्रवको (प्रथिन द्रवको) गाढा और सयोजक तन्तुओको मोटा बनाता है, फिर इस हेतुसे रसस्राव का ह्रास हो जाता है।

कषायाम्ल सबल स्थानिक ग्राही औषधि है। यह कुछ अंशमे छोटी रक्तवाहिनियोमें डाटके समान बनकर और कुछ अशमे तन्तुओके चारो ओर घनीभवन कराकर रस स्तम्भन कराती है, किन्तु रक्तवाहिनियोकी मांसमयी कलापर इसका कोई प्रभाव नही पड़ता। इसलिये यह स्थानिक रक्तस्तम्भक है।

मुखसे सेवन करनेपर पहिले मुखके भीतर शुष्कता लाती है तथा श्लैष्मिककलाके स्रावको घनीभूत कराकर जिह्वा और कण्ठका आकुंचन और खिचाव कराती है। यह असर प्रथिनपर प्रत्यक्ष रासायनिक प्रभाव पहुँचकर होता है। आमाशयके भीतर जानेपर उसका रूपान्तर होकर कषायाम्ल क्षार (Tannate) बन जाता है। जब तक उसका ग्राही द्रव्य नष्ट न हो, तब तक प्रथिनका कषायाम्ल क्षार आमाशयरसमे पुन पृथक् होता रहता है और कषायाम्ल भी मुक्त होता रहता है।

यह अन्त्रके भीतर प्रथिनोका निक्षेप और ग्रन्थियोंके स्रावका ह्रासकर मलावरोध करता है। इससे मल कठोर और शुष्क बन जाता है। यह यीस्ट और लघु कीटाणुओंको अध.क्षेपित करता तथा सौम्य अपक्षयरोधक क्रिया करता है एवं उद्भिद कीटाणुओंकी संख्याका ह्रास करा मलमेसे दुर्गन्ध कम करता है। अविशिष्ट कषायाम्ल क्षार और अशोषित उपकषायाम्ल क्षार (गेलेट्स Gallates) मलके साथ फेंक दिये जाते है तथा कषायाम्ल यकृत्स्रावपर बिलकुल असर नही पहुँचाता।

कषायाम्ल रक्तमे उपकषायाम्ल क्षार रूपसे और कुछ अशमे कषायाम्ल क्षार रूपसे प्रवेशित होता तथा उसी रूपमे भ्रमण करता है। यदि कषायाम्लका शिरामे अन्त.क्षेपण किया जाय तो स्थानिक शल्यो(Thrombosis) की उत्पत्ति होकर मृत्यु हो जाती है।

मल रूपसे परित्याग (Elimination)—मानव देहमे यह विश्लेषित होकर शोषित होता है। इसमेसे १ प्रतिशत मात्र ही मूत्र या पुरीषमें

विच्छिन्न होता है।

रोगावस्थामे उपयोग (Therapeutics)—स्थानिक रक्तस्तम्भक रूपसे नासिका, गुदा, मूत्राशय, मूत्रप्रसेक नलिका आदिपर व्यवहृत होता है। नासिकासे स्राव होनेपर तमाखूके समान सुंघाया जाता है; अथवा पिचकारी लगायी जाती है। अर्शमे वर्तिरूपसे प्रयोग किया जाता है। त्वचापर सौम्य प्रकारके आशुकारी या उपाशुकारीप्रदाह (व्यूची आदिमे) होकर उन्नति होने और रसस्राव होनेपर ग्लिसरीनके साथ इसका प्रयोग किया जाता है।

कानमेसे पूयस्राव होनेपर भी ग्लिसरीनमे मिला हुआ कषायाम्ल व्यवहृत होता है। नेत्राभिष्यन्द (Conjunctivities) और शुक्लमण्डलपर रक्तवाहिनियोंकी प्रतीति होनेपर नेत्रबिन्दु (Collyrium) रूपसे प्रयोजित होता है (१ औंस वाष्पजलमे ४ ग्रेन) पीनम (नासिकासे दुर्गन्धमय स्राव (Ozaena) होनेपर तमाखुके सदृश सूंघाया जाता है।

श्वेतप्रदर होनेपर योनिमार्गमे अन्त क्षेपण, वस्ति या छल्ले(Pessary) का उपयोग किया जाता है। गर्भाशयमे क्षत होनेपर ग्लिसरीन युक्त कषायाम्लमें रूईका फोहा भिगोकर या छल्लेको गर्भाशय मुखमे रखवाया जाता है। मूत्राशयप्रदाह होनेपर इसका अन्त.क्षेपण किया जाता है। गुदनलिकामे क्षत या विदारण होनेपर या गुदनलिकाका वहिर्गमन (गुदभ्रंश) होनेपर अन्त.क्षेपण या वर्तिरूपसे प्रयोग होता है।

जले हुएकी चिकित्सामे इसका प्रयोग होता है। इसका पट्टी बाधनेमे प्रयोग किया जाता है। बालकोको ५ प्रतिशत और बडेके लिए १० प्रतिशतके द्रावणका उपयोग होता है। यह वेदना दूर करता है, तरल स्रावसे रक्षा करता और विषप्रयोगका ह्रास करता है। द्वितीय और तृतीय श्रेणीके दग्धपर यदि श्लैष्मिककला हो, तो यह अन्त त्वचाकी उत्पत्ति कराता है। विषशोषणसे सरक्षणार्थ यह चिकित्सा उत्तम है, जो विष आघातके बहुधा २ रे या ३ रे दिन मृत्युका कारण हो जाता है। जब इसका घावपर उत्क्षेप (छिडकाव Spray) किया जाता है, तब पट्टी नही बांधी जाती, जब तक शुष्क पिगल छिलका न बने तब तक प्रत्येक १५-१५ मिनटपर छिड़काव किया जाता है। यद्यपि कषायाम्लके इस उपचारमे कुछ असुविधा है। इसका द्रावण अस्थिर है, इसमे अपक्षयरोधक शक्ति नही है तथा इसमे समान स्थितिका भी अभाव है। इस हेतुसे इसका प्रयोग इतर रग द्रव्य (नीले, पीले आदि)के साथ छिडकाव रूपसे होता है।

इसका आभ्यन्तरिक प्रयोग मुख्य पचन सस्थापर होता है, यह मसूडोसे रक्तस्रावको बन्द करने और क्षतको भिरानेम उत्तम दन्तमजन (Dentifrice) है। मुखपाक, उपाशुकारी या चिरकारी कण्ठक्षत, तालुनदी

शिथिलता या दीर्घता, उपजिह्विकावृद्धि आदिमे ग्लिसरीन युक्त कषायाम्लका लेप किया जाता है। एवं इसका गण्डूष, उत्क्षेप या टिकियारूपसे भी प्रयोग होता है। मुख और स्वरयन्त्रके भीतर वाष्प या धूम्र (Insufflation) रूपसे श्वेतसारके साथ इसका उपयोग किया जाता है।

यह आमाशय और अन्त्रमेसे होने वाले रक्तस्रावको बन्द करनेके लिये मूल्यवान औषध है, किन्तु इसका प्रयोग अधिक मात्रामे ३० या ४० ग्रेन १-१ या २-२ घण्टेपर करना चाहिये, यह उपक्षार और धातव लवणद्वारा विषाक्त होनेपर उत्तम विषघ्न द्रव्य है। इसका प्रयोग अतिसारमे विशेष रूपसे होता है, चाहे आशुकारी हो या चिरकारी, किन्तु अतिसारमें विशेषतः कत्थेका ही प्रयोग होता है।

(५७) स्तम्भन।

रौक्ष्यात् शैत्यात् कषायत्वात् लघुपाकाच्च यत्भवेत्।
वातकृत् स्तम्भनं तत्स्याद्यथा वत्सकटुण्टुकौ॥

जो द्रव्य रूक्ष, शीतल, कसैला और पाकमे लघु होनेसे वायुकी उत्पत्ति करे और रस आदि धातुओंके प्रवाहका अवरोध करे, उसे स्तम्भक संज्ञा दी है। जसदभस्म, नागभस्म, लोहभस्म, सुवर्णमाक्षिक भस्म, नीलाथोथा, अफीम, कुड़ाकी छाल, श्योनाक, ईसबगोल, कत्था, केशर, जामुनकी छाल, वबूलकी छाल, सेमलका गोद इत्यादि।

अफीममे शोषण, ग्राही, कफघ्न, वात-पित्तकारक, स्वापजनक, दाहकारक, शुक्रस्तम्भक, आलस्यकर और मोहजनक गुण है। डाक्टरीमे अफीमके गुण मस्तिष्क उत्तेजक, मादक, निद्राकारक, वेदना निवारक, आक्षेपनिवारक, स्पर्शहारक, सग्राही, स्वेदजनक और पुनरोत्पत्ति निवारक कहे है। यह थोडी मात्रामे सेवन करनेपर पहिले उत्तेजना देती है, फिर स्वापजनक और अवसादक गुणकी प्राप्ति कराती है। मस्तिष्क प्रदाहके अतिरिक्त इतर सब प्रकारकी वेदना कम करनेके लिये अफीम प्रयोजित होती है। जीर्ण अतिसार, रक्तातिसार, प्रवाहिका, संग्रहणी, निद्रानाश, आक्षेपक वात, गृध्रसी, आधा शीशी, कटिवात, त्रिविध प्रकारके शूल, श्वासप्रकोप, विविध आशयोके प्रदाह, अन्त्रवृद्धि, उपान्त्रप्रदाह, मूत्ररोग, शुक्राशय सम्बन्धी रोग, बहुमूत्र, मधुमेह, अधिक लालास्राव, प्रदर, अधिक कफस्राव, दाँतोका दर्द, विसूचिका आदि व्याधियोमे अफीम उत्तम औषधि मानी गई है। मात्रा $\frac{1}{8}$ रत्तीसे $\frac{1}{2}$ रत्ती।

सूचना—वालकको अफीम देनी हो, तो अति कम मात्रामे देनी चाहिये। वेदना और आक्षेप निवारणार्थ अफीम पूर्ण मात्रामे देनी चाहिये। एक मात्रासे लाभ न हो, तो कुछ समय पश्चात् पुनः दूसरी मात्रा देवे। निद्रा लानेके लिये अफीम शयन कालके १ घण्टा पहिले

देनी चाहिये ।

अफीमके साथ पारद मिलानेसे यह कब्ज नही करती । क्विनाइनके साथ मिलाकर देनेसे दोनोंके दोष दूर होते है, तथा अतीसके साथ मिलाकर देनेसे अधिक स्वेद लाती है ।

(५८) रक्त स्तम्भन ।

रक्तस्कन्दन—हिमोस्टेटिक्स-एण्टहेमोरेजिक्स-स्टिपटिक्स ।

Haemostics-Anthemmorrhagics-Styptics

शिरा आदिसे निकलने वाले रक्तका रोध करने वाली औषधिया—लोहभस्म, सुवर्णमाक्षिक भस्म, प्रवाल, अफीम, मोती, सीप, संगमरमर, अशोक, ऊनको राख, लालबोल, गिलोय सत्व, वासा (अडूसा), कमलकी केशर, लाख, फिटकरी, माजूफल, गभारीफल, रक्तचन्दन, कहरवा, बर्फ, कत्था, लोध, सोनापाठा, सतरा, मोसम्बी, नीबू और अनारका रस, कपित्थ, केला, बकरीका दूध, अडूसाके पान, चूना और नौसादरके मिश्रणमेंसे उग्रवायु निकल जानेके पश्चात् रहा हुआ क्षार मिश्रण (Calcium chloride) आदि । इनमेसे आवले, अडूसे आदि अनेक औषधियाँ रक्तपित्तशामक (Anti-scorbutics) रूपसे भी व्यवहृत होती है । इस प्रकारकी औषधियोंमे दो विभाग हैं—आभ्यन्तरिक और बाह्य ।

आभ्यन्तरिक रक्तस्तम्भक (रक्तसंग्राही–Haemostatics) रक्तातिसार, विविध प्रकारके रक्तपित्त, रक्तवमन, रक्तप्रदर, मासिकधर्ममे अधिक रक्तस्राव, अर्श, नासिकासे रक्तस्राव आदि विकारोमे रक्तस्रावको रोकने वाली औषधियाँ—प्रवाल पिष्टी, मौक्तिक पिष्टी, नागभस्म, तृणकान्त मणि (कहरवा) पिष्टी, फिटकरी, अफीम, रक्तबोल, अशोक, गूलर, चन्दन, नेत्र बाला, आंवला आदि ।

बाह्य रक्तस्तम्भक (रक्तस्कन्दन–Styptics)—स्थानिक संकोचक क्रिया द्वारा रक्तस्रावका अवरोध करने वाली अथवा क्षत होकर या रक्तवाहिनी फटकर होने वाले रक्तस्रावका रोध करने वाली औषधियाँ—क्षार या तेजाब आदिसे रक्तवाहिनीको जलाना, बर्फ या शीतल जलधाराका प्रयोग, फिटकरी, रामबाण, मकडीका साफ किया हुआ सफेद जाला, बारहसिंगेके धोये हुए चमडेकी कतरन, लोध, रसोत, धायके फूल, रेशम या अलसीकी भस्म, कासीस, हिंगुल, गन्धक, सोहागेका फूला और पर्णबीज (जख्मे हैयात) आदि औषधियाँ प्रयोगमे लाई जाती है ।

शोणित स्थापन वर्ग—चरक संहितामे लिखी हुई रक्तके स्रावको रोकने वाली या गाढा करने वाली औषधियाँ । शहद, मुलहठी, केशर, मोचरस, मिट्टीका ठीकरा, लोध, सोनागेरू, प्रियंगु, मिश्री और लाजा, ये १० औषधियाँ । रक्तस्तम्भन क्रिया किस नियमानुसार होती है तथा

रक्तके स्तम्भनार्थ किस किस प्रयोगका आश्रय लिया जाता है, इसका विचार नं० ५५ ग्राही गुण और कपायाम्लके उपयोगमे विस्तारपूर्वक कि.ा है।

(५९) वीर्यस्तम्भन।

शुक्रका अधिक समय तक स्तम्भन करनेवाली औषधियाँ—जायफल, जावित्री, अफीम, बडका दूध, भाग, केशर, खसखस आदि।

अनेक जातियोमे वालविवाहका रिवाज है। उन जातियोमें अनेक व्यक्तियोके ब्रह्मचर्यका भंग छोटी आयुमे ही हो जाता है। जिससे वीर्य स्थान सबल नही वन पाता तथा वीर्य भी पतला रह जाता है। एवं कितने ही अबोध विद्यार्थी संगदोषसे अपने अपरिपक्व वीर्यको नष्ट कर देते है। उन सबमे स्तम्भन शक्ति अति कम हो जाती है।

शुक्रजनन यन्त्र निर्बल बननेपर अनेक अज्ञानी धूर्त चिकित्सकोंको जाल मे फंसकर अफीम प्रधान औषधका सेवन तथा अति स्त्रीसमागम करते रहते है, अतः वे कुछ वर्षोंमे शुक्रक्षयमे पीडित हो जाते है।

शुक्रमे उष्णता और पतलापन आनेसे तथा शुक्राशयकी या मूत्रप्रसेक नलिकाकी संज्ञावाहिनियाँ अधिक उत्तेजित होने पर शुक्रपात सत्वर होने लगता है। यदि शुक्रमे अधिक उष्णता आई हो तो मौक्तिक आदि शीतल शुक्रल औपधिका सेवन करना चाहिये। यदि मूत्रप्रसेक नलिकाकी संज्ञावाहिनियाँ अधिक उत्तेजित होगई हो, तो शामक लेप लगाना चाहिये। शुक्राशयकी निर्बलतामे वगभस्म, त्रिवंगभस्म, नागभस्म, सुवर्णभस्म, रौप्यभस्म, प्रवालपिष्टी आदि औषधियाँ हितकारक है।

वंगभस्म और नागभस्म—शुक्रवर्द्धक हैं तथा शुक्राशयके माँस और वात वाहिनियोको दृढ वनाती हैं।

त्रिवगभस्म पुरुष और स्त्री, दोनोको लाभदायक है। इस भस्मका शुक्राशय और गर्भाशय आदि अङ्गोके मास और वातवाहिनियो पर पौष्टिक असर होता है।

सुवर्णभस्म अण्डकोषकी ग्रन्थियोंओर केन्द्रस्थानको वलवान बनाती है।

रौप्यभस्म—अण्डकोष और वातवाहिनियो पर शामक असर पहुँचाकर शुक्राशय और शुक्रको लाभ पहुँचाती है।

प्रवालपिष्टी—शुक्र स्थानके दाहको दूर करनेमे अति हितकर है। अनेक रोगियोको प्रवालपिष्टी और वंगभस्म दोनोको मिलाकर सेवन करानेसे अधिक लाभ पहुँचा है।

(६०) बल्य।

पौष्टिक-टॉनिक्स-Tonics.

सर्वाङ्ग या किसी एक अङ्गके वलको बढ़ानेवाली औषधियाँ। डाक्टरी

मे इन औषधियोके निम्नानुसार अनेक विभाग किये है।

१. सार्वाङ्गिक पौष्टिक (General tonics)
२ रक्तपौष्टिक—रक्तकणवर्द्धक (Hematic tonics)
३ आमाशय पौष्टिक (Stomachics)
४ अन्त्रपौष्टिक (Intestinal tonics)
५ वातवहा नाडी पौष्टिक (Nervines)
६ हृदयपौष्टिक (Cardiac tonics)
७ रक्तसंचालन पौष्टिक (Vascular tonics)

८ मासपौष्टिक (बृंहण) के अस्थिपौष्टिक, लसीका संस्था पौष्टिक आदि आदि विभाग होते है।

९ कितनीक औषधियाँ रोगके पुनराक्रमणसे सरक्षण करती है, वे पुनरोत्पत्ति निवारक Anti-(petiodics)— रोगशमन द्वारा देहको पुष्ट बनाती है।

पौष्टिक—सार्वाङ्गिक बलवर्द्धक औषधियो के सेवन से जीवन क्रिया उत्तेजित होती है तथा रोगनिरोधक शक्ति (Immunity)) बढ जाती है।

इनके अतिरिक्त आमाशय शक्ति सबल होती है, क्षुधा प्रदीप्त होती है, हृदयक्रिया और नाडी बलवती बनती है, शारीरिक उत्ताप बढ जाता है एव वातवाहिनियोकी शक्तिमे भी वृद्धि होती है।

पौष्टिक औषधिया कुछ अशमे आकुचन भी करती है, परन्तु ग्राही औषधि सदृश अति सङ्कोच नही करती। एवं ये औषधिया उत्तेजना भी देती हैं, परन्तु यह उत्तेजना तीव्र और स्थिर नही होती। शनै शनैः स्थिर उत्तेजना देती है। इस उत्तेजनाके पश्चात अवसादकता नही आती।

जब किसी कारणसे जीवनीय शक्ति (Vitality) क्षीण हो जाती है, तब जीवनीय और बल्य औषधिका सेवन करना चाहिये। एवं क्षीणता, अजीर्ण रोग, पाण्डु, आक्षेपक व्याधिया और उलट-उलट कर आक्रमण करनेवाले रोगोमे कारण अनुरूप औषधि सेवन करनी चाहिये।

दुर्वलता विविध कारणवश उपस्थित होती है। यथा-मांसपेशियोकी क्षीणता, रक्तसंचालनकी न्यूनताजन्य क्षीणता, रक्तमे आङ्गारिक वायु-वृद्धि जन्य निर्वलता, अधिक शुक्रस्रावसे क्षय, दूषित जलवायुमे दुर्वलता, लंघन अथवा अनुपयुक्त आहारजन्य कृशता, एवं आमाशय, अन्त्र, फुफ्फुस, हृदय, वृक्क, यकृत्, मूत्राशय आदिमें विकृति होनेसे निर्वलता। इस तरह अनेक हेतुओसे दुर्वलता आ जाती है। अत मूल कारणको दूर कर फिर कारण अनुरूप चिकित्सा करनी चाहिये।

सार्वाङ्गिक क्षीणतामे लोहघटित औषधियां, सुवर्णभस्म, और रसायन औषधियां आदि हितकर है।

रक्तकी न्यूनतामे मण्डूर, लोहभस्म, सुवर्णभस्म, सुवर्णमाक्षिकभस्म, कासीस, आवला, कचनार, शिलाजीत, गूगल, मल्लभस्म आदि ।

वातवहानाडियोकी निर्वलतामे अभ्रकभस्म, रौप्यभस्म, आँवला, जटामासी, ब्राह्मी, शखाहुली आदि हितकारक है। जो वाताक्षेप निवारक औषधियाँ पहिले न० २ मे लिखी है, वे भी सव प्रयोजित होती है ।

फुफ्फुसोकी निर्वलतामे लोहभस्म, अभ्रकभस्म आदि ।

रसायनियोकी क्षीणतामे जसदभस्म आदि ।

मानसिक निर्वलतामे सुवर्णभस्म, कस्तूरी, भाँग तथा सूक्ष्म मात्रामे सुरा आदि ।

पचनेन्द्रिय संस्थाकी निर्वलतामे दीपन-पाचन औषधियां ।

दोषसंचयजन्य दुर्वलतापर स्वेदन और वमन आदि शोधन क्रिया ।

मासिकधर्म विकृतिमे गर्भाशय शोषक औषधियां ।

इस तरह कारण अनुरूप चिकित्सा करनी चाहिये ।

वातवहा नाडी पौष्टिकका विवेचन वात दोषघ्न नं० १ और आमाशय पौष्टिकका विवेचन दीपन-पाचन न० ५४ मे किया गया है। तथा बृंहण नं० १९ मे किया गया और हृदयपौष्टिकका नं० ६७ मे किया जायगा ।

सूचना—पूर्ण स्वस्थ, रक्ताधिक्य और प्रदाहयुक्त व्यक्तियोको इस वर्ग की औषधिया नही देनी चाहिये ।

सुश्रुत सहितामें लघु पञ्चमूल (शालपर्णी, पृश्नपर्णी, छोटी कटेली, वड़ी कटेली, छोटे गोखरू) को वलवर्धन, वातहर, पित्तशामक और बृंहण कहा है। गोखरूके स्थानपर चरक संहिताकारने एरण्डमूल लिया है। यह पञ्चमूल वातनाड़ियोपर पौष्टिक असर पहुँचाता है ।

वल्य वर्ग—ऐन्द्री (गोरक्ष कर्कटी), ऋषभी (कौंच), अतिरसा (शतावरी), ऋष्यप्रोक्ता (माषपर्णी), पयस्या (क्षीरकाकोली), असगन्ध, शालपर्णी, रोहिणी (जटामासी) खरैटी और ककहिया, ये १० औषधियां चरक संहितामे कही हैं ।

(६१) शुक्रल ।

यस्माच्छुक्रस्य वृद्धिः स्याच्छुक्रलं च तदुच्यते ।
यथाऽश्वगन्धा मुसली शर्करा च शतावरी ।।

जो औषधियां शुक्र (वीर्य) की वृद्धि करावे, उनको शुक्रल और शुक्रजनन संज्ञा दी है ।

शुक्रजनन वर्ग—जीवक, ऋषभक, काकोली, क्षीरकाकोली, मुद्गपर्णी, माषपर्णी (मतान्तरमे महामेदा), मेदा, वृद्धकहा (शतावरी), जटिला (उच्चटा या जटामांसी), कुलिङ्गा, ये १० औषधियां चरकसंहितामें कही है।

और औषधियाँ—सुवर्णभस्म, लोहभस्म, वंगभस्म, त्रिवंगभस्म, अण्डेको

छिल्केकी भस्म, असगन्ध, मूसली, मिश्री, बहमन लाल, बहमन सफेद, पातालगरुडी, उडद, जटामासी, आवला, मालवमिश्री, दूध, भिलावेकी गिरी, भिलावे आदि ।

प्रजास्थापन वर्ग - चरक संहिता कथित प्रजानाशक दोषको हटाकर प्रजाकी स्थापना करनेवाली (सन्तानोत्पादक) ओषधिया ऐन्द्री, ब्राह्मी, शतवीर्या (दूब), सहस्रवीर्या (श्वेत दूर्वा) अमोघा (पाढल या लक्ष्मणा), अव्यथा (हरड शिवा), हल्दी. अरिष्टा (खरेटी), वाट्यपुष्पी (गगेरन), बिल्वक्सेन कान्ता (वाराहीकद) ये १० ओपधिया कही है । ये गर्भको स्थिर करनेमे सहायक है ।

ऊपर कही हुई औषधियोमे सुवर्णभस्म, अष्टवर्ग, दूध, आवला, ये शीत-वीर्य है और लोह, कुक्कुटाण्डत्वक् भस्म, भिलावे, असगन्ध, मूसली आदि उष्ण-वीर्य हे ।

असगन्ध—यह कडुवा-कषेला, उष्णवीर्य, मधुर विपाक युक्त है । वात-शामक कफ, कास, श्वास, क्षय, व्रण और शोथका नाशक, वल्य और अति शुक्रल है । इसके अतिरिक्त इसमे कुछ वाजीकरण गुण भी है ।

उष्णवीर्य होनेके कारणसे कम हुआ वीर्य सत्वर पूरा हो जाता है । इसके सेवनसे साथ-साथ कामोत्तेजना भी होती है, जिसमे वृत्तिमे स्त्री-समागमका विचार आता रहता है । अत स्वप्नदोष होनेकी भीति रहती है । आलस्य, हाथ-पैरोकी फूटनी, निरुत्साह आदि दूर होते है । रस, रक्त, मास आदि धातुओकी वृद्धि होती है । यह तरुण, वृद्ध, स्त्री, बालक आदि सबके लिये हितकारक है ।

श्री वाग्भटाचार्यजी ने अष्टाङ्गहृदय उत्तरस्थानमे लिखा है कि —

पीतऽश्वगन्धा पयसार्धमास घृतेन तैलेन सुखाम्बुना वा ।
कृशस्य पुष्टिं वपुषो विधत्ते बालस्य शस्यस्य यथा सुवृष्टि ॥

जिस तरह वृष्टि होनेपर घास पुष्ट बन जाता है, उस तरह असगन्धका सेवन घी, तैल, दूध या निवाये जलके साथ करानेसे कृश बालक पुष्ट बन जाता है ।

(६२) शुक्रल और शीतल

शीतल वीर्यवर्द्धक औपधिया—सुवर्ण, रौप्य, वङ्ग, जस्ता, शीशा, अभ्रक, मोती, प्रवाल, आवला, गोखरू, मुलहठी, गिलोयसत्व गुञ्जा, बादाम, वशलोचन, शतावर, तालमखाना, मूसली, जीवन्ती, सिघाडा चिरोजी, नारियल, कटहरके पक्के फल, बबूलकी फली, सेमलका मूल, सेमलका गोद, बलाचतुष्टय आदि ।

इन औपधियोमे शुक्रल गुण शीतल होनेसे पित्तप्रधान प्रकृतिवालोंके

लिये विशेष उपकारक है। इन औषधियोका उपयोग उष्णऋतुमे किया जाय, तो भी बाधा नही पहुँचती।

(६३) शुक्रशोधन।

शुक्रमे रहे हुए मृत, निर्बल, दूषित और, विजातीय अणुओको दूरकर शुक्रको विशुद्ध बनानेवाली औषधिया–पारद, हिंगुल, सुवर्ण, रौप्य, मौक्तिक हरताल, सोमल, शिलाजीत, वग, सेमलका गोद, प्रवाल, वशलोचन, शतावरी, गिलोयसत्व, गूगल, कपूर, कुठ, एलवालुक, नेत्रवाला, कायफल, समुद्रफेन, कदम्बका गोद, ईखकी जड, तालमखाना, अगस्त्यके फूल, खस, बबूलकी कच्ची फली आदि।

सुश्रुत सहितामे मुष्ककादि गण (न० ९ कफदोषघ्नमे), विदार्यादि गण तथा करमर्दादि गण (न० ३७ शोथहरमे), इन ३ गणोको शुक्रदोष-विनाशन कहा है।

उपदंश, सुजाक आदि रोगोके विष, सक्रामक ज्वर दीर्घकाल तक रह जाना वृद्धावस्था, वीर्यका अत्यन्त दुरुपयोग, इतर अनेक व्याधियां आदि कारणोसे वीर्य दूषित हो जाता है; ऐसे समयपर मूल हेतुको भी दूर करना चाहिये।

यदि उपदंश विषरक्तमे हो, तो पारद या सोमलप्रधान औषधि सेवन करनी चाहिये। सूजाकके विषमे मल्लसिंदूर, गन्धाबिरौजा, रौप्यभस्म, प्रवाल आदिका सेवन हितकर माना है।

क्षय, जीर्ण ज्वर आदिसे वीर्यमे निर्बलता आ गई हो, तो सुवर्णभस्म, वगभस्म, गूगल, शिलाजीत आदि हितकारक हैं।

उष्णता शमनार्थ मौक्तिक, प्रवाल, सुवर्ण, गिलोयसत्व, वंशलोचन, तालमखाना आदि विशेष रूपमे व्यवहृत होते है।

(६४) वाजीकरण।

कामोत्तेजक—वृष्य—ॲफ्रोडिजियाक्स—Aphrodisiacs

> येन नारीषु सामर्थ्यं वाजीवल्लभते नरः।
> व्रजेच्चाभ्यधिकं येन वाजीकरणमेव तत्॥

जिस आहार, विहार या औषधसे पुरुष स्त्रियोमे (सुरतके विषयमे) वाजी (घोडे)के समान सामर्थ्यको प्राप्त होता है और जिसके द्वारा अधिक काल तक मैथुनकर सकता है, उसे वाजीकरण संज्ञा दी है (चरकसंहिता)

वृष्य प्रकार—१ शुक्रस्रुतिकर, २ शुक्रवर्द्धन; ३ शुक्रस्रुतिकर और शुक्र वर्द्धन।

१. शुक्रस्रुतिकर (शुक्रप्रवर्तक-कामोत्तेजक)—स्त्रियोंका स्पर्श, मानस संकल्प, शराब, अफीम, कर्पूर, धतूरा आदि।

२ शुक्रवर्द्धन (शुक्रल)—दूध, घी, मास, रसायन और जीवनीय औषधिया आदि।

३ स्रुति वृद्धिकर (कामोत्तेजक और शुक्रवर्द्धन)—उडद, गोडंबी (भिलावेका मगज), कौचबीज, जुन्दबेदस्तर, पजेकी सालवमिश्री आदि।

सुश्रुतसंहिताके टीकाकार डल्हणाचार्यने जनक, प्रवर्त्तक तथा जनक-प्रवर्तक, ये ३ नाम दिये है। जनक—मास, घृत, आदि। ये औपधिया रस, रक्त आदि धातुक्रमसे परिणत होकर प्रधान धातु-शुक्रको पुष्ट बनाती है। प्रवर्त्तक—उच्चटाचूर्ण आदि शुक्रका विरेचन करनेवाली औपधिया, किन्तु ये शुक्र क्षयकारी नही अर्थात् शुक्रको केवल पतनके अभिमुख कराती है। जनकप्रवर्तक—गो घृत, गेहु, उडद, कौंचबीज आदि। गेहु आदि देह वलकर—जनकमात्र। केवल मनोबलकर संकल्प आदि—प्रवर्तक, घी, दूध आदि देह और मन, दोनोके वलको बढानेवाले है।

शार्ङ्गधर सहिताके टीकाकार आढमल्लाचार्यने शुक्रविरेचन वडी कटेली के फलको, स्तम्भक जायफलको, शोषण (वीर्य हीनकारक) हरीतकीको कहा है। पाठातरमे तरबूजको क्षयकारी कहा है।

और औषधियाँ—कस्तूरो, अम्बर, कुचिला, थोडी मात्रामे अफीम, सुवर्ण, लोह, अभ्रक, प्याज, मूसली, भाग, गाँजा, अकरकरा, फास्फरस, उत्कण्ठामूल, उच्चटा, रससिंदूर, हिंगुल आदि।

रतिक्रिया मस्तिष्क और सुषुम्णाकाण्डकी वातवहा नाड़ियोके केन्द्र स्थानके अधीन है। स्त्री समागमकी लालसा उत्पादक और रतिप्रवर्तक केन्द्र मस्तिष्कमे है, और उपस्थ उत्थान क्रिया सुषुम्णाकाण्डकी मूलपर निर्भर है। ये दोनो मूल एक दूसरेके प्रतिकूल स्वतन्त्र कार्य करती है। इनमेसे सुषुम्णाकाण्डकी मूलको उत्तेजित करनेपर मस्तिष्कस्थ मूलमे प्रति-क्रिया (विरुद्ध क्रिया) होकर सम्भोग इच्छा उत्तेजित होती है। एव मस्तिष्क मूल उत्तेजित होनेपर सुषुम्णाके मूलमे प्रतिक्रिया (अवसादन क्रिया) होकर लिङ्गोत्थानका ह्रास हो जाता है।

लिङ्गकी धमनीका प्रसारण और शिराके सकोचके हेतुमे लिङ्गोत्थान होता है। जब धमनी द्वारा लिङ्गमे रक्त प्रवेश हो जाता है, और रक्तकी प्रत्यावर्त्तन क्रियामे व्याघात पहुचा है, तब लिङ्ग मोटा, दृढ और लाल हो जाता है।

रतिक्रिया कालमे श्वासावरोध करनेपर लिङ्गकी मोटाई बढ जाती है। कारण, श्वासावरोध होनेपर रक्तशर्करा अवस्था (मलिनता) को प्राप्त होता है फिर जब इस मलिन रक्तका रक्तवहानाडियोमे संचालन होनेपर सचालन विधायक वातवहा नाडीकेन्द्र (Vaso-Motor-Centre) में उत्तेजना होती है, तब सर्वाङ्गमे (विशेषतः उत्थानशील विधानमे)

रक्तसंचापकी वृद्धि हो जाती है।

यह लिङ्गोत्थान उपस्थ स्थित धमनियोके प्रसारणसे होता है। यह प्रसारण दो हेतुओंसे होता है। सुषुम्णाकी कटिकशेरुकाओं (Lumbar Vertebrae) मे अवस्थित जनन यन्त्र केन्द्रमे उत्तेजना होनेसे अथवा लिङ्गमें रही हुई धमनियोंकी प्रसारणकारी वातवहानाडियों (ग्रथित्यकर स्वतन्त्र नाडियां Vasodilator Nerves) के केन्द्रस्थानकी उत्तेजना होनेसे धमनी प्रसारित होती है।

लिङ्गके या लिङ्ग समीपस्थ स्थानकी संज्ञावाही नाडियोंकी उत्तेजना अथवा मस्तिष्कमे मानसिक उत्तेजना अनुकटिका नाड़ियों (Lumbar Nerves) के केन्द्रमे प्रतिफलित होकर कार्य करती है।

विविध इन्द्रियोंकी वातनाडियोंमे उत्तेजना आनेपर जननयन्त्र सम्बन्धी मस्तिष्कस्थ वातवहा नाडीकेन्द्र उत्तेजित होकर कामोत्तेजना हो जाती है। इस तरह व्यक्ति विशेषका दर्शन अश्लील कामोत्तेजक बात सुनने, पढने या स्मरण करने अथवा उरूदेश, ग्रीवा, स्तन आदि स्थान विशेषमे स्पर्श, घर्षण या मर्दन आदि होनेपर भी कामोद्दीपन हो जाता है।

मूत्रप्रसेक नलिकाकी श्लैष्मिक कलामें मर्दन या लेप आदिसे या किसी तरह भौतिक उत्तेजना होनेपर सुषुम्णास्थ अनुकटिका नाड़ियोंके केन्द्रमे उत्तेजना आ जाती है। फिर लिङ्गोत्थान हो जाता है। बृहदन्त्रमे मल संगृहीत हो जानेपर या इतर हेतुओंसे भी अनुकटिका नाडियोंके केन्द्रमे उत्तेजना आकर विना सम्भोग किये स्वप्नावस्थामे शुक्रपात हो जाता है।

अन्त्रमे मल या कृमि रहना और अर्श आदि कारणोंसे कामोत्तेजना होती है। परन्तु जाग्रतावस्थामे मन इतर कार्योंमे नियुक्त होनेसे कामोत्तेजना दबी हुई रहती है, जिससे मस्तिष्कस्थ वातवहा नाडीकेन्द्र उत्तेजित नही होता। फिर स्वप्नावस्थामे मानसिक वृत्ति इच्छा न होनेपर भी उस ओर प्रेरित हो जाती है, और शुक्रपात करा देती है।

कामोत्तेजक औषधियोंके कार्य भेदसे विभाग--

१ कुचिला, कुचिलासत्व, फास्फरस आदि औषधियाँ जननेन्द्रिय केन्द्र या जननेन्द्रियकी सब वातवाहिनिया अथवा जननयन्त्र, इनमेसे गमनागमन करते हैं, जिससे कामोत्तेजक केन्द्र उत्तेजित होता है।

ग्रैवेयक ग्रन्थि और पोषणिका ग्रन्थिके अन्तःस्राव भी जननयन्त्रपर वृष्य असर पहुँचानेमे सहायक होते है।

२. अफीम, गांजा, शराब, कस्तूरी, कपूर आदिसे मस्तिष्कस्थ केन्द्र और प्रतिफलित रूपसे जननेन्द्रिय और सम्बन्धवाला कामोत्तेजक केन्द्र ये दोनो उत्तेजित होते हैं।

कौंच, प्याज, अकरकरा, मूसली आदि जननेन्द्रिय, मूत्रेन्द्रिय और

इनके समीपके यन्त्रोकी वातवहा नाडियोको उत्तेजित करते है। फिर उत्तेजना जननेन्द्रियके वातनाडी केन्द्रमे प्रतिफलित होती है।

३ इनके अतिरिक्त जीर्ण विषमज्वर, लसीकामेह, मधुमेह, वातरक्त, क्षय आदि विकार और शारीरिक क्षीणता दूर करनेपर रतिशक्ति स्वयमेव उन्नत हो जाती है। पौष्टिक औषधि, पौष्टिक आहार—दूध, मांस आदि द्वारा स्वास्थ्यकी वृद्धि होनेपर सहज कामोत्तेजना होने लगती है।

(६५) शुक्रल और वाजीकरण।

शुक्रल और वाजीकरण—दो गुणयुक्त औषधियाँ—सुवर्ण, अभ्रक, पारद, कौचके बीज, विदारीकन्द, सालबमिश्री, खरैंटी, जायफल, जावित्री, असगन्ध, उड़द, जुन्देबेदस्तर, दूध, घी, गेहूँ इत्यादि वीर्यवर्द्धक और कामोत्तेजक है। इनमेसे जुन्देबेदस्तरमे कामोत्तेजक गुण अधिक है। सुवर्णभस्म, कौच बीज और सालबमिश्रीमे दोनो गुण लगभग समान है। शेष औषधियो मे कामोत्तेजक गुण कुछ कम रहता है।

(६६) कामशामक।

अवृष्य पाढचकर अनेफ्रोडिजियाक्स Anaphrodisiacs

कामवासना और रतिशक्तिका ह्रास कराने वाली औषधिया—वर्फ, शीतल जलसे स्नान (स्थानिक या सार्वाङ्गिक स्नान), विरेचन, केलेके खम्भेका रस, सिद्धासनमे बैठना, नौसादर पुष्प, सारिवा, ब्राह्मी, जटामासी, शंखाहूली, विशेष मात्रामे कपूरका वार-वार सेवन, सोहागा तथा उबाक उत्पादक औषधिया आदि।

इनके अतिरिक्त अधिक मात्रामे क्षार, अफीम, खुरासानी अजवायन, तमाखू, आयोडाइड, ब्रोमाइड, सूचीबूटी और धतूरा आदिके सेवनसे भी कामोत्तेजना मन्द होती जाती है। कपास मूलत्वक् आदि जो जननयन्त्रके सुषुम्णा सम्बन्ध वाले, रक्त सञ्चालनको कम करती है; वे भी परम्परागत कामको शमन करती है।

इन औषधियोमेसे कितनी ही स्थानिक क्रिया (जननेन्द्रियके वात नाडियोकी उत्तेजन शीलताका ह्रास) कराती है, और कितनी ही वातवहा नाडियोके केन्द्रपर शामक असर पहुंचा कर काम शमन कराती है।

नैतिक और मानसिक शुद्धि, प्रतिदिन देहके उर्ध्व भागको उचित श्रम पहुंचाना, सामान्य सात्विक भोजन, सात्विक विहार, भक्ति, प्राणायाम, धर्म ग्रन्थोंका पठन, पुरुषोंकी सेवा, एकान्त सेवनका त्याग [illegible] त्याग, विषय भोगमे उपराम वृत्ति आदि काम शमनमे सहायक होते है।

सूचना—काम निवारणार्थ प्रयत्न करनेके पहिले [illegible] और [illegible] मन, [illegible] कामो-

त्तेजक आहार-विहार और पाचन आदिमेसे जो हेतु हो, उसे दूर करना चाहिये। अन्यथा कामनिवारक औपधियोके उपयोगसे उचित लाभ नही होता।

तीक्ष्ण कामोत्तेजक औषधियोका वारवार अति मात्रामे उपयोग, सुरा पान और कामोत्तेजक आहार-विहारका अति सेवन, क्वचित् गुदामेसे निकले सूक्ष्म कृमिसमूहोका योनि मार्गमे प्रवेश अथवा किसी कारणवश रति लालसाकी तृप्ति न होनेपर स्त्रियोकी (पुरुषोकी भी) कामोत्तेजना अत्यधिक वढ जाती है। उसे आयुर्वेदमे तीव्र कामोत्तेजना कही है। डाक्टरीमे पुरुषो की कामोत्तेजनाको सेटिरियासिस (Satyriasis) और स्त्रियोकी कामोत्तेजनाको (उन्माद) को निम्फोमेनिया (Nymphomania) सज्ञा दी है। क्वचित् स्त्रियोमे मानसिक उन्मत्तताके लक्षण भी हो जाते हैं, उसे कामोन्माद-इरोटोमेनिया (Erotomania) कहा जाता है।

ऐसा होनेपर लज्जाशील कुमारिका उन्मत्त वेश्याके समान निर्लज्ज वन जाती है (The timid girl becomes like a mad prostitute)। फिर व्यभिचार या आत्ममैथुन (Self abuse) मे प्रवृत्त हो जाती है। प्रारम्भमे इस विकारके लक्षण विविध वातविकार, निद्रानाश, अश्लील स्वप्न दर्शन, वेहोशी, दीर्घ नि स्वास आदि होते हैं। तत्पश्चात् ज्वर, अतिसार और क्षय आदि रोगोका भोग होकर मरणके मुखमे चली जाती है।

इस विकारमे प्राथमिक या द्वितिय अवस्थामे कामशामक औपधिका प्रयोग किया जाय, तो लाभ पहुंच जाता है। तृतीयावस्थाकी प्राप्ति हो जानेपर आरोग्यताकी आशा कम रहती है।

(६७) हृद्य।

हृदयपौष्टिक-कार्डियाक टॉनिक्स ऐण्ड वेसक्युलर टॉनिक्स।

Cardiae tonics and Vaseulai tonics

हृदय और रक्तवाहिनियोको सवल वनाने वाली औपधियाँ—सुवर्णभस्म अभ्रकभस्म, लोहभस्म, मण्डूरभस्म, संगयसव, माणिक्य, मोती, जहरमोहरा खताई, अकीक, पन्ना रससिंदूर, सालवमिश्री, सुवर्णमाक्षिक भस्म, अर्जुन छाल, लाक्षा, पर्णवीज, पीपल, शहद, घृत, दूध, डिजिटिलिस आदि।

इस प्रकारकी औपधियोका सेवन वहुधा हृद्य गुणके लिये अत्यन्त कम मात्रामे करना चाहिये। मात्रा अधिक होनेपर हृदयके आकुचनमे अनियमितता उपस्थित होती है। आवश्यक मात्रामे सेवन करने पर वहुधा इन औपधियोंकी क्रिया सत्वर प्रतीत नही होती। दीर्घकाल सेवन करने पर हृत्स्पन्दन अधिकतर सवल होता है, और हृत्स्पन्दन सख्याका ह्रास हो जाता है। ये औपधियाँ हृदयकी मासपेशीको सवल वनाती हैं, एवं हृत्संकोच वलकी वृद्धि और उसकी मृदुगति होती है।

कपूर, क्षार, धातुघटित लक्षण आदि औषधियाँ हृद्य है, परन्तु इनका नाड़ीस्पन्दन पर प्रभाव नही पडता। इनके हृदयाकुंचन बलकी वृद्धि होती है।

विशेषत. हृदयके वाम निलय खण्ड (Left Ventricle) शिथिल हो जाने पर जब वह महाधमनी (Aorta) मे यथोचित बलपूर्वक रस प्रेरणा नही कर सकता, तब इस श्रेणीकी औषधिकी आवश्यकता रहती है। क्वचित् श्वास, कास आदि हेतुसे हृदयके दक्षिण खण्डका प्रसारण होने पर भी हृद्य औषधि व्यवहारमे लाई जाती है।

हृदयविकृतिके अनेक हेतु है। यथा-आशुकारी ज्वर, आम-वातिक ज्वर, शुक्रक्षय, पाण्डु, अधिक व्यायाम, हृदयके कपाटकी विकृति, विविध यन्त्रोकी अनियमित क्रिया, श्वास, कास आदि व्याधियाँ, मानसिक आघात, अधिक प्राणायाम, गरम चाय आदिका अधिक सेवन इत्यादि।

अनेक बार क्षुद्र धमनी प्रशाखाओ और कैशिकाओका प्रसारण हो जाने पर शोथ या जलोदरकी सम्प्राति होती है, तब रक्तवाहिनी पौष्टिक (Vascular tonics) औषधियाँ—लोहभस्म, मण्डूरभस्म, कुचिला, आदि व्यवहृत होती है। इन औषधियोके सेवनसे क्षुद्र रक्तप्रणालिकाओका आकुंचन होकर रोगकी निवृत्ति हो जाती है। धमनीका सम्बन्ध हृदयके साथ रहता है। इस हेतुसे इसका विवेचन भी हृद्य वर्गमे ही किया गया है।

उपर्युक्त औषधियोके अतिरिक्त चरकसंहितामे हृद्य कषाय तथा सुश्रुत संहितामे पुरुषकादि गण और उत्पलादि गण (नं० ५१दाहशमनमे)कहे है। ये औषधिया पचनक्रियापर लाभ पहुँचाकर, हृदयको लाभ पहुचाती है।

हृद्यवर्ग—आम, आम्रातक (अम्बाडा), लकुच, करौदा, वृक्षाम्ल (कोकम आमचूर), अम्लवेत, छोटे बेर, बडेबेर मीठेअनार और बिजौरा, ये १० औषधियाँ हृद्य मानी गई है।

डाक्टरी मतानुसार हृदय यन्त्रकी क्रियाको दो नाड़ीकेन्द्रो द्वारा होती है। एक केन्द्र हृदय क्रिया दमन करता है, उसे हृदय दमनकारी केन्द्र (कार्डियो इन्हिबिटरी सेन्टर (Cardio Inhibitory Centre) कहते है। दूसरा केन्द्र हृदय क्रिया वृद्धि करता है, उसे हृदय क्रिया वर्द्धक केन्द्र (एक्सिलरेटिग सेन्टर Accilerating Centre) संज्ञा दी है। ये दोनो केन्द्र सुषुम्णा मे अवस्थित है। मन, हृत्पिण्ड और शरीरके विभिन्न स्थानोमे आघात या संस्कार होने पर, वातवहा नाडियो द्वारा समाचार सुषुम्णामे पहुँचता है। फिर वहाँसे यह आवेग हृदय पर प्रतिफलित होता है।

यह क्रिया दो प्रकारकी वातनाडियो द्वारा साधित होती है। १ प्राणदा नाडियो (Vagus Nerves) द्वारा हृदय, फुफ्फुस, आमाशय आदि से उत्तेजना केन्द्र स्थानमे पहुँचती है, एवं इनके द्वारा हृदय क्रियाका दमन भी होता है। नं० २ क्रियावर्द्धक केन्द्रसे उत्पन्न क्रिया बढाने वाली वात-

नाड़ियां (इड़ापिङ्गला नाड़ियो Sympathetic Nerve-fibres) द्वारा हृदयकी क्रिया उत्तेजित होती है।

जो ओषधिया प्राणदा नाडियोको उत्तेजित करती है, वे सब नाडीकी गतिको मन्द करती है। यदि प्राणदा नाडियोको काट दिया जाय, तो नाडी के स्पन्दनकी मन्दता निवृत्त हो जाती है। बच्छनाग, क्लोरोफॉर्म, खुरासानी अजवायन, सूचीबूटीसत्व (Atropine), रक्तसचापकी वृद्धि, धमनी के रक्तको शैरिक अवस्थाकी प्राप्ति होना इत्यादि औषधि और क्रिया प्राणदा नाडियोको उत्तेजित करती है।

सर्पगन्धा, लहसुन, विरेचन आदि जो रक्तसंचापका ह्रास कराती हैं, वे सब प्राणदा नाडियोको अवसादित करती है, तथा उपर्युक्त बच्छनाग आदि उत्तेजक औषधियोका प्रयोग अधिक मात्रामे किया जाय, तो वे भी प्राणदा नाड़ियोपर अवसादक असर पहुंचाती है।

हृदयको उत्तेजना देनेवाली (Cardiac Stimulants)औषधियाँ–शराब, क्लोरोफॉर्म, कुचिला, सोमल, कस्तूरी, नीलगिरी तैल और वायुमे उडनेवाले सब तैल इत्यादिके प्रयोगसे हृत्स्पन्दन बल और सख्याकी वृद्धि होती है, तथा खुरासानी अजवायन, सूचीबूटी, कोकीन आदि औषधियोके सेवनसे भी हृत्स्पन्दन सख्याकी वृद्धि हो जाती है, परन्तु यह हृदयोत्तेजना अधिक काल तक नही रहती, अत. इसको हृद्य (हृदयपौष्टिक) नही कह सकेगे।

इनके अतिरिक्त हृदयको अवसादक करनेवाली (Cardiac Depressants) औषधियाँ हृदयके स्पन्दन बल और सख्याका ह्रास कराती है। बच्छनाग, एण्टिमनिवल्लित, लवण, हाइड्रोस्यानिक तेजाब और कडुवे बादाम आदिमे हृदय अवसादक गुण रहता है। इन सबकी क्रिया हृद्य गुण के प्रतिकूल मानी गई है। अवसादकका वर्णन आगे न० ७४मे किया जायगा।

(६८) मेधाकर।

वृद्धिवर्द्धक--सज्ञावाही नाड़ियो और मस्तिष्कको पुष्ट बनाकर धारण शक्तिकी वृद्धि करने वाली औषधिया–सुवर्ण, रौप्य, वङ्ग, मोती, प्रवाल, जसद, अभ्रक, पूर्णचन्द्रोदय रस, रससिन्दूर, पन्ना, मालकागनी, आवला, गिलोय, शखाहुली, ब्राह्मी, शतावरी, जटामासी, वशलोचन, वच, दूध, घी, बादाम, पिस्ता, खरेंटी, विदारीकन्द, केशर, बनफशा और शुक्रल औषधिया आदि।

बुद्धि वृत्तिमे ज्ञानग्रहण शक्ति (समझ शक्ति), स्मरण शक्ति (धारण शक्ति) और विवेक शक्ति (सत्यासत्य, लाभ-हानि, कर्त्तव्याकर्त्तव्य आदि के निर्णय करनेकी शक्ति), ये तीन विभाग हैं। तीनो विभागोका परस्पर सम्बन्ध है। फिर भी तीनोंका सहचार सर्वदा एक साथ हो, यह नियम

नही है। कतिपय स्थानोमें ये तीनो एक साथ प्रतीत होती है। फिर भी कितने ही व्यक्तियोमे समझ शक्ति प्रबल होती है, तथा अनेको मनुष्योमे धारण शक्ति असाधारण होती है। एव अनेकोमे विवेक शक्तिका विकास अधिक हो जाता है।

समझ शक्ति धारण शक्ति और विवेक शक्ति, ये तीनो शक्तिया मनुष्यो मे जन्मसिद्ध ही होती है। इनका विद्या और अनुभव द्वारा अधिक विकास किया जाता है। इनमेसे धारण शक्तिका सम्बन्ध युवावस्थाके समय अनेक अंशमे शुक्रके साथ भी रहता है। शुक्रका जितने अशमे संरक्षण होता है, उतने अशमे धारण शक्ति भी प्रबल रहती है, और शुक्रके क्षयसे धारण शक्तिका भी ह्रास होता है। अत शीतल और शुक्रल औषधियोके सेवनसे भी मेधाकर गुणकी सम्प्राप्ति होती है। इसी तरह रसायन और जीवनीय गुणयुक्त औषधिया भी लाभ पहुँचाती है।

(६९) योगवाही।

ग्रह्णाति योगवाहि द्रव्य ससर्गिवस्तुगुणान्।
पच्यमान यथैतन्मधु जल-तैलाज्य-सूत-लौहादि॥

इस योगवाही का अर्थ पहिले गुणवर्णनके प्रभावमे विशेष स्पष्टरूपसे दर्शाया है।

पाकके समय साथमे मिली हुई औषधियोके गुणोको ग्रहण करने वाली औषधिया--पारद, सुवर्ण, अभ्रक, लोहा आदि धातु, शहद, घी, तैल, जल आदि।

जैसे मदन फलको शहदके साथ मिलाकर देनेसे शहद मदनफलके वमन कार्यमे सहायता करता है, और निसोथके साथ शहदकी योजना करनेसे निसोथके विरेचन कार्यमे सहायता पहुँचती है। विरेचन औषधिके अनुपान रूपसे शहदकी योजना करनेसे उदरमे पीडा नही होती, और विरेचन क्रिया सरलतापूर्वक होती है। इसी नियमानुसार अभ्रक आदि धातुओके साथ किसी अनुपानकी योजना की जाती है, तब अभ्रक आदि धातुओके गुण लाभके साथ अनुपानके गुण भी विशेष रूपसे प्रकाशित होते है।

(७०) स्तन्य शोधन।

जो द्रव्य दूषित दूधको शुद्ध और मधुर बनावे, उसे [illegible] दी है। सुश्रुतसंहितामे वचादिगण, हरिद्रादि गण और मुस्तादि गणको स्तन्यशोधन कहा है।

वचादिगण—वच, नागरमोथा, अतीस, हरड, देवदारु और नागकेशर, ये ६ औषधियां।

हरिद्रादिगण—हल्दी, दारुहल्दी, पृश्निपर्णी, इन्द्रजौ और मुलहठी, ये ५ औषधिया। वचादि और हरिद्रादि गण [illegible], आम और अतिसार

शामक तथा विशेषत दोष पाचन है ।

मुस्तादिगण—नागरमोथा, हल्दी, दारुहल्दी, हरड़, आवला, बहेड़ा, कूठ, हेमवती (रेणुका मतान्तरमे सफेद वच), लाल वच, पाठा, कुटकी, काकजंघा, अतीस, छोटी इलायची भिलावा और चित्रकमूल, ये १६ औषधियाँ । यह गण श्लेष्महर, योनिदोषहर, स्तन्यशोधन तथा पाचन है । (वच वमनकारक है, उसका उपयोग अति कम मात्रामे करना चाहिये) ।

स्तन्यशोधन कषाय—चरक संहितामे पाठा, सोठ, देवदारु, नागरमोथा, मोरवेल, गिलोय, इन्द्र जौ, चिरायता, कुटकी और अनन्तमूल, ये १० औषधियाँ कही हैं ।

और औषधियाँ—नगर, पित्तपापड़ा, चोबचीनी, उश्बा, सोवा, सतौना गन्धक, पारद, हरताल आदि ।

स्तन्यविकृति कारण—माताकी देहमे १ वातप्रकोप, २ पित्तप्रकोप, ३. कफप्रकोप, ४ उपदंश, सुजाक आदि रोगोका लीन विष, ५ अनुचित आहार-विहार, ६ माताका स्वास्थ्य पहिलेसे ही खराब रहना आदि ।

वातदुष्टि होनेपर दशमूल सोवा आदि, पित्तदुष्टिमे पित्तशामक औषधियाँ—गिलोय, शतावरी, पित्तपापड़ा, सारिवा, रक्तचन्दन, चिरायता, कुटकी, आदि, कफदुष्टिमे सोठ, अजवायन, पीपल, पीपलामूल, कुटकी मुस्तादि गण, आमप्रकोपज विकृति होनेपर वचादि गण, हरिद्रादि गण आदि; त्रिदोपज विकृतिमे स्तन्यशोधन कषाय, उपदंशज दुष्टिमे चोबचीनी, उश्बा, हरताल, रसकर्पूर आदि, सुजाक विकृतिमे भिलावा, श्वेत चदन, सारिवा, वंशलोचन, प्रवाल, गोखरू, शीतलमिर्च आदि । चर्मरोगज विकृति मे गन्धक, त्रिफला, कुटकी आदि औषधिया प्रयुक्त होती है ।

दुग्धकी विकृति होनेपर शिशु पुष्ट नही बन सकते; बहुधा रोगपीडित हो जाते है और अनेक बालक मृत्युके मुखमे चले जाते हैं । अत. दुग्धविकृतिपर माताको स्तन्यशोधक औषधियोका सेवन सत्वर करना चाहिये ।

डाक्टरी दृष्टिसे विचार न० ७२ "स्तन्यपर कार्यकर" औषधके विवेचनमे किया जायगा ।

(७१) स्तन्यजनन ।

स्तन्यवर्द्धक—गेलेक्टेगोग्स—लेक्टेगोग्स ।

Galactagogues—Lactagogues

स्त्रियोके स्तन्यको उत्पन्न करने और बढ़ाने वाले द्रव्योंको स्तन्यजनन संज्ञा दी है ।

स्तन्यजनन कषाय—चरकसहितामे खस, शालि, षष्टिक(साँठी चावल), ईख, इक्षुवालिका (ईख भेद), दर्भ, कुश, कांश, गुंद्रा (पाटरक घास), इत्कट (शरभेद); ये १० औषधियां कही हैं । ईख, दर्भ, कुश आदि सबके

मूल लेना चाहिये ।

सुश्रुत संहितामे काकोल्यादि गणको स्तन्यकर कहा है । इसका वर्णन पहिले नं० ५ पित्तसशमनमे किया है ।

और औषधियाँ—दूध, मीठे जलकी मछली, नारियल, धायका गोंद, सेमलकी जड, अखरोट, असगन्ध, शतावर, सोवा, एरण्डपत्र, उडद, हालोंकी खीर, बिनौलेकी गिरी, मिश्री, मधुरअम्ल औषधिया, क्षीरी वृक्ष (दूधवाले वृक्ष) सीधुको छोडकर अन्य प्रकारकी शराब आदि ।

दूध तथा दूधके समान द्रव्य-क्षीरीवृक्ष, शतावरी, भूमिकुष्माण्ड सत्वर लाभ पहुँचाते हैं । जसद, सुवर्ण, चावल, पचतृणमूल, मधुर-अम्ल फल आदि रसधातुको सबल बनाकर लाभ पहुँचाते हैं । मांसवर्ग आदि औषधिया देहकी मास आदि धातुओको पुष्ट बनाकर दूध बढाते है ।

सूतिकावस्थामे अनेक स्त्रियोके दुग्धके परिमाण अथवा स्वभावमे वैलक्षण्य प्रतीत होता है । कभी-कभी दूध बहुत कम आता है । इसमे अनेक कारण है ।

(१) यदि दुग्धग्रन्थियोके विधानमे योग्य वृद्धि न होनेसे दूध कम उतरता हो, तो उसकी कोई चिकित्सा नही हो सकती ।

(२) गर्भावस्थामे निर्बलता, ज्वर आदिसे क्षीणता, प्रसूताके पोषणमे न्यूनता, रक्तस्राव, अतिसार, ज्वर आदि विविध पीडाके हेतुसे दूधमे न्यूनता हुई हो, तो उससे कारण अनुरूप चिकित्सा की जाती है ।

(३) स्तनोके भीतर श्लैष्मिक आवरण आ जानेसे योग्य दुग्धस्राव नही हो सकता । ऐसे समयपर स्तनोको कुछ दिनोतक मसल कर दूध निकालनेसे फिर स्वाभाविक निःसारण क्रिया होती रहती है ।

(४) मानसिक उद्वेगजनित स्तन्यमे न्यूनता या विलक्षणता हो तो मानसिक उद्वेगको दूर करना चाहिये ।

(५) स्तनमे रही हुई दुग्ध ग्रन्थियोकी क्षीणता होनेपर दूध कम आता हो, तो उपर्युक्त औषधियोसे लाभ होता है, एवं विद्युत्प्रयोगसे भी उपचार होता है ।

(६) शारीरिक बल योग्य मात्रामे होनेपर भी दुग्ध बननेकी क्रिया यथोचित न होती हो, या पित्तकी प्रबलताके हेतुसे दूध सूख जाता हो, तो उपर्युक्त स्तन्यवर्द्धक औषधियोका सेवन कराना हितकर [illegible] है ।

इस स्तन्यका विशेष विचार नं० ७२ "स्तन्यपर कार्यकर" वर्गमे [illegible] ।

(७२) स्तन्यपर कार्यकर ।

दूधमे अपना गुण प्रकाशित करने वाली औषधियां पारदघटित औषधियां, लोहभस्म, जसदभस्म, [illegible], [illegible], नौसादर, [illegible] शीतलमिर्च, तार्पिन तैल, रेवन्दचीनी, [illegible], [illegible], अफीम, [illegible]

इलायची, सुगन्धयुक्त तैल वाले पदार्थ, लहशुन, शिलाजीत, जवाखार आदि विविध क्षार, उड़द, केला इत्यादि। यद्यपि सामान्य रूपसे माताके भोजन का प्रभाव स्तन्यपर होता ही है, तथापि उपर्युक्त औषधियोंके सेवनसे माता का दूध अधिक प्रभावित होकर स्तनपायी शिशुपर विशेष रूपसे परिणाम प्रकाशित करता है।

सौंफ, इलायची, बादाम आदिके सेवनसे दुग्ध मधुर, सुगन्धित और पौष्टिक बनता है। एवं यह दूध बालककी बुद्धिपर भी लाभ पहुँचाता है।

लहशुनसे दुग्ध उग्र, दुर्गन्धयुक्त, बेस्वादु, बुद्धिमान्द्यकारक और वातहर बनता है।

शिलाजीत, जवाखार, केलेका क्षार आदिके सेवनसे बालकको मूत्रल गुणकी प्राप्ति होती है। जब दूधमें क्षारकी न्यूनता हो, तब क्षारप्रधान औषधि दी जाती है।

तार्पिन तैल देनेसे बालकके मूत्रसंस्था और मूत्रपर उग्रता पहुँचती है।

अफीम शिशुपर स्वापजनक असर पहुँचाती है।

उड़द, केला, पक्का भोजन आदि बालककी पचन क्रियाको विकृत कर मलावरोध उत्पन्न करते हैं।

माताको विरेचन औषधि देनेसे बालकको जुलाब लग जाता है।

सौंफ, सोवा आदि देनेसे स्तन्यकी शुद्धि होकर बालककी पचन क्रिया सबल बनती है। बालकको उत्पन्न हुए उदरविकार नष्ट होते हैं।

माताको मल्ल भस्म देनेसे बालकके रक्तमेंसे उपदंशजनित लीन विषकी निवृत्ति हो जाती है।

तेजाब और अम्लरस युक्त औषधि देनेसे बालकको उदरशूल, पेचिस आदि व्याधियाँ हो जाती हैं। अतः ऐसी औषधिया, सिरका, तीव्र अम्लरस प्रधान भोजन आदिका निषेध किया गया है।

चर्बी, (घृत आदि) प्रधान भोजनसे दूधमें शर्कराके अंशकी वृद्धि होती है, परन्तु परिमाण कम होता है। उद्भिद् (अन्न, शाक और फल-फूल आदि) आहारसे दूधमेंसे किलाटजनक सत्व (Casein) का ह्रास होता है, मांस और शराब मिश्रित भोजनसे दुग्धमें चर्बी और किलाटजनक सत्वके परिमाणकी वृद्धि होती है। गोदुग्धका सेवन करनेसे शुद्ध स्वादु और बुद्धि-वर्द्धक दुग्धका परिमाण बढ़ जाता है।

कभी-कभी किसी-किसी स्त्रीको दुग्धका परिमाण अधिक होता है। यदि कुछ अंशमें अधिक हो, तो विरेचन औषधि और नियमित पथ्य देनेसे दूध मर्यादित हो जाता है। क्वचित् दूध अत्यधिक आता रहता है, उसे स्तन्य-क्षरण व्याधि (गेलेक्टोरिया Galactorrhoea) संज्ञा दी है। उसपर अन-न्तमूलके क्वाथके साथ शिलाजीतका सेवन कराया जाता है, तथा स्तनके

ऊपर हल्दी मिली हुई धतूराकी पुल्टिस बाँधनी चाहिये एवं उष्ण जलसे सेक करे या सूचीबूटीका लेप करे। आवश्यकतापर दुग्धचूषक यन्त्र (Breast pump) से दूध खेच लेना चाहिये।

अनेक बार प्रसूताको पुनः मासिकधर्म आनेपर दुग्धस्रावका दमन हो जाता है, अथवा किसी तरह गर्भाशयमेंसे रक्तस्राव होनेपर स्तन्यनिःसरण का ह्रास हो जाता है। निवाया जलका डूश (वस्ति) देनेसे लाभ हो जाता है।

गर्भाशयमें गर्भवृद्धि होनेके साथ-साथ स्तनमें स्तन्य निःसरण क्रिया प्रारम्भ हो जाती है। जैसे-जैसे सगर्भा स्त्रीके स्तनोंके आकारका परिवर्द्धन होता जाता है, वैसे-वैसे भीतर एक प्रकारका दुग्धरस निकलने लगता है। फिर जब सन्तान बाहर आती है, तब वह पहिलो समय गाढे दूध सदृश होकर बाहर निकलता है। इसे पीयूष (Colostrum) कहतेहैं। इसे भाषा में खीस नाम दिया है। यह स्वभाविक स्तनकी अपेक्षा घन, ईषत् पीताभ-वर्णका और मधुर स्वाद युक्त होता है।

कितना आश्चर्य है कि सन्तानका जन्म न होनेके पहिले जगदीश्वर जननीके स्तनोंमें स्तन्य सञ्चारित कर देते हैं। फिर जन्म होनेपर परिपोषण पदार्थ (स्तन्य) की क्षरणक्रियामें जीवनीय शक्ति सहायता करती है। प्रभुने जननयन्त्र इस तरह बनाया है, कि एक अंशकी क्रिया वर्त्तमान होने पर इतर अंश विश्राम लेता है। गर्भावस्थामें जिस तरह गर्भाशयको परिश्रम पहुँचता है, उसी तरह स्तनोंको नहीं पहुँचता। फिर प्रसव होनेके दो दिन बाद स्तन कठोर और स्थूल हो जाते हैं। तब प्रसूताके शरीरमें विविध परिवर्तन हो जाते है। शीत लगना, मुख लाल हो जाना, मस्तिष्कमें वेदना क्षुधालोप, जिह्वापर श्वेत वर्णका लेप, सामान्य ज्वर, तेज नाडी आदि लक्षण प्रतीत होते है। यदि इस अवस्थाकी वृद्धि हो जाती है, तो स्तन्य ज्वर (Milkfever) कहलाता है। यह ज्वर लङ्घन और योग्य उपचार करनेसे २-३ दिनमें शमन हो जाता है।

स्तन्य निःसरण क्रिया प्रारम्भ होने पर नियमपूर्वक होती रहती है। इस हेतुसे जब माता अपने शिशुको स्तनपान कराती है, तब उसके स्तनोंमें गुदगुदी (एक प्रकारकी मधुर वेदना) होती है। किसी किसीको तो सन्तान के सन्मुख आने पर स्नेहाधिक्य होता दुग्ध वेगपूर्वक सञ्चारित होकर स्तन वस्त्रमेंसे बाहर निकलने लग जाता है। यदि बालक बहुत दिनो तक स्तन पान करता रहता है, तो स्तन्य निःसरण क्रिया ४-५ वर्ष तक सतत होती रहती है, और स्तनपान करानेका त्याग कर देवे, तो दूध थोडे ही दिनों में सूख जाता है।

कभी-कभी बालककी माताका देहान्त हो जानेसे बालककी दादी या

नानी सम्हालने लगती है। ऐसे समयपर अप्रसूता वयोवृद्धा स्त्रीके स्तनोंमे भी स्नेहवृद्धिके हेतुसे स्तन्यकी उत्पत्ति हो जाती है।

स्तन्य उत्पत्ति किसी माताके स्तनमे अधिक और किसीके कम होती है। किसीको इतना अधिक दूध आने लग जाता है, कि दूध स्वयमेव बाहर निकलता रहता है।

इस दूधमे जब रोग आदि कारणोमे विकृति हो जाती है, तब यह सन्तानके जीवनका, पोषणके बदले शोषण करता है।

स्वस्थ माताका दुग्ध कुछ नील आभायुक्त होता है। स्वस्थ माताके दुग्धका विश्लेषण करनेपर उसमे निम्नानुसार तत्त्व मिलते है।

शर्करा प्रधान द्रव्य-कर्बोदक (Carbohydrates)	५ ९	१०० भाग
वसा (Fat)	२ ८	
प्रथिन-पौष्टिक तत्व (Protein)	१ २	
लवण	·२४	
जल	८९ ८६	

नीरोगी दूध स्वादमे मधुर होता है। इसमे एक प्रकारकी सुवास आती है। आपेक्षिक गुरुत्व १०२६ से १०३५ पर्यन्त होता है। यदि स्तन्यको किसी पात्रमे कुछ समय रख दिया जाय, तो उसपर मलाई आ जाती है। स्त्रीदुग्ध विशेषत क्षार गुण विशिष्ट होता है। गोदुग्ध भी क्षारयुक्त होता है। वहुधा मासभोजियोका दूध अम्ल गुणविशिष्ट होता है।

अणुवीक्षण यन्त्रद्वारा विशुद्ध स्तन्यकी परीक्षा करनेपर उसमे तरल पदार्थ--किलाटजनक सत्व (Casein) पाया जाता है। इस दुग्धसत्व द्वारा प्रकाश प्रतिक्षिप्त होनेसे दूधका वर्ण श्वेत प्रतीत होता है।

स्तन्य गुण-चरकसहिता और सुश्रुतसहितामे लिखा है कि :—

जीवन बृंहण सात्म्य स्नेहन मानुषं पयः।
नावन रक्तपित्ते च तर्पण चाक्षि शूलिनाम्॥ च० सं०॥
नार्यास्तु मधुर स्तन्यं कषायानुरस हिमम्।
नस्याश्च्योतनयो पथ्य जीवनं लघु दीपनम्॥ सू० सं०॥

स्त्रीदूध जीवनीय, बृंहण, सात्म्य (मनुष्य देहके अनुकूल) तथा स्निग्ध करने वाला है। यह रक्तपित्तमे नस्यरूपसे और नेत्रशूलमे तर्पणरूपसे (नेत्रको दूधमे भर देनेमे) उपयोगी है।

मानुषी दूधमे रस मधुर और अनुरस कषाय है। यह शीतल, लघु, पथ्य और दीपन है, तथा नस्य और आश्च्योतन रूपसे (नेत्रमें बूंद डालनेमे) हितकर है।

स्तन्यको श्रीवाग्भट्टाचार्यने वातप्रकोप, पित्तवृद्धि, रक्तविकार, अभि-

घात और नेत्ररोगका नाशक कहा है।

यदि स्तनको दबानेपर अति कष्टसे दूध निकलता हो, तो उस दूधमे दुग्धकण कम निकलते है और कुछ इतर परमाणु मिश्रित होते है। ऐसा होनेपर उससे शिशुका योग्य पोषण नही होता। इस तरहके दूधमे श्वेतसार (Starch) का अभाव होता है, अत ऐसे अधिक दूधसे भी बच्चो को योग्य लाभ नही मिलता।

सामान्यत प्रसवके पश्चात् द्वितीय मास पर्यन्त दुग्धसत्व और श्वेतसारकी वृद्धि, पाच महीने तक क्षारीय पदार्थकी अधिकता तथा आठवेसे दसवे मास तक शर्कराका परिमाण विशेष होता है। पहिले मासमे शर्करा की मात्रा कम रहती है। पाच मासके बाद क्षारीयतत्व न्यून होने लगता है। दशवे माससे २४ मास तक दुग्धसत्व और पाचवेसे छठे तथा दशवेसे ११ वे मास तक श्वेतसारका परिमाण कम होता है।

जितना दूध अधिक निकलता है, उतने ही दुग्धसत्व और शर्कराकी वृद्धि होती है, तथा इतर पौष्टिक तत्वका ह्रास होता है। प्रारम्भमे प्रसूता के दूधमे जलका अंश कम होता है। उत्तम आहार होनेपर दुग्ध, दुग्धके भीतर दुग्धसत्व, शर्करा और श्वेतसारके परिमाणकी वृद्धि होती हे। यदि कर्बोदक प्रधान (Carbohydrates) भोजनका सेवन अधिक हो, तो दूधमे शर्करा बढ जाती हे।

यदि जननीके दूधकी न्यूनता, अस्वस्थता अथवा मृत्यु होनेपर इतर धात्री नियोजित करनी हो, तो कैसी रखनी चाहिये? इस विषयमे भगवान् आत्रेय कहते है, कि जो धात्री शिशुके समान वर्ण वाली (कुमार गौर हो, तो गौर, और कुमारका वर्ण श्याम हो, तो श्याम वर्णकी) समान जाति वाली, प्रसूताके समान वय वाली, विनय सम्पन्न, नीरोगी, सब अविकृत अङ्गो वाली, दुर्व्यसनसे रहित, जो घृणित न हो, मैली कुचैली न हो, स्वच्छताका पूर्ण लक्ष्य रखने वाली हो, जिस देशका शिशु हो, उस देशकी हो, स्वभावमे दुष्ट न हो, दूषित कर्त्तव्य न करती हो, श्रेष्ठ कुलकी हो, शिशुके प्रति हार्दिक प्रीति रखने वाली हो, जिसकी सन्तान जीवित हो, जिसे पुत्र जन्मा हो (कन्या न हो), जो अधिक दूध देने वाली हो, प्रमादरहित और आलस्यरहित हो, स्फूर्ति वाली हो, बालकके मलमूत्रको तत्काल दूर करने वाली हो, धर्म और सदाचरण युक्त हो, उपचारमे कुशल हो, बच्चोकी सेवा सुश्रूषाका जिसे बोध हो, पवित्र विचारकी हो एवं जिसके स्तन और स्तन्य, दोनो शुभ गुणयुक्त हो, ऐसी स्त्रीको धात्री रूपसे नियोजित करनी चाहिये।

जिस धात्रीके स्तन अधिक ऊँचे या अति लम्बे, लटके हुए, अति कृश या अति मोटे न हों, जिसके चूचुक उन्नत हो, जिससे शिशु सरलतापूर्वक

दुग्धपानकर सके । जो स्त्री अति कृश या अति स्थूल न हो जिसके स्तनोके वृन्त (चूचुक) अति कठोर न हो, एव स्तनवृन्त अति ऊर्ध्वमुख या अधोमुख न हो, ऐसी स्त्रीको धात्रीरूपसे रखनी चाहिये ।

दुग्ध पिलानेके पहिले और पीछे चूचुकोको गरम जलसे धो लेना चाहिये । जिससे प्रस्वेद आदि बालकके उदरमे न जाय, एवं दुग्ध जो बाहर लगा हो वह तुरन्त दूर हो जाय । यदि हो सके तो रासायनिक और अणुवीक्षणयन्त्र द्वारा दुग्धकी परीक्षा करा लेनी चाहिये ।

नीरोगी दूध—जिस दूधके वर्ण, गन्धरस और स्पर्शस्वाभाविक हों, और जल पात्रमे दुहनेपर तत्काल जलमे मिल जाय वह पुष्टिकारक और आरोग्यप्रद माना जाता है ।

वातदुष्ट दूध—जिस स्तन्यमे श्यामता या अरुणता हो, जो स्वादमे कषाय रसविशिष्ट हो, जिसकी वास अच्छी न हो, जिसमे रूक्षता (चिपचिपापनका अभाव) हो, जो झाग युक्त और लघु हो, और जो दूध अतृप्तिकारक, कृशकर हो, उसे वातदुष्ट जानना चाहिये ।

पित्तदुष्ट दूध—जो दूध काला, नीला, पीला, ताम्रवर्णकी आभायुक्त हो, जो तिक्त, अम्ल और कटु रसविशिष्ट हो, जिसमेसे वास रक्तके सदृश आती हो, जो अति उष्ण हो, उसे पित्तप्रकोपक जानना चाहिये ।

कफदुष्ट दूध—जो दूध अति श्वेत, अति मधुर, लवण रसविशिष्ट, घृत, तैल, वसा और मज्जा सदृश गन्धयुक्त पिच्छिल और तन्तुयुक्त हो तथा जलपात्रमे दोहन करनेपर जो जलमे डूब जाय, उसे कफप्रकोपक माना है ।

वात, पित्त या कफके दोष युक्त दूधको दोषप्रशमनकारक आहार-विहार योग्य औषधि या वमन, विरेचन, आस्थापन और अनुवासन बस्तिके प्रयोगो द्वारा सुधार लेना चाहिये ।

वर्तमानमे शहरोमे जो धात्री व्यवसाय करनेवाली स्त्रियां हैं, उनकी धात्री रूपसे योजना नही करनी चाहिये । कारण, वे स्वार्थनिमित्त कृत्रिम उपायो द्वारा स्तन्यको चिरकालतक समान रखनेका प्रयत्न करती हैं । यह विधि स्वास्थ्यप्रद नही है, इसमे बालकको योग्य लाभ नही मिलता ।

दुष्ट दूधवाली धात्रीको जो गेहू, शालि और षष्ठिक चावल, मूँग, मटर, कुलथी सुरा (शराब), सौवीर, तुषोदक, मैरेय, मेदक (ये शरावके भेद है), लहशुन और करजका अधिक प्रयोग करना चाहिये । एव दूधके दोष के अनुसार दोषशामक आहार-विहार और औषधि देनी चाहिये ।

गेहूँ, चावल, मासरस, मछली, लहशुन, कशेरु, सिंघाडे, मीठी तुम्बी आदि शाक, अनेक प्रकारकी शराव, शतावरी, मुलहठी, विदारीकन्द आदि स्तन्योत्पादक आहार माने गये है ।

(७३) स्तन्यनाशन ।

स्तन्यस्रावह्रासकर—लेक्टीफ्युज्स ।

(Lactifuges)

जो औषधियाँ स्तन्यको सुखा देवे, उनको स्तन्यनाशन कहते है । माता की देहको स्तन्य दानसे हानि पहुँचानेका भय हो या शिशुकी मृत्यु हो जाने पर यह प्रयोग करना पडता है । नागरवेलके पान, कपूरके पान या मोगरा के फूल स्तनपर बाँधे जाते है अथवा धतूराके पानोके कल्कका लेप किया जाता है तथा कर्पूर २-२ रत्ती दिनमें ३ समय खिलाया जाता है ।

डाक्टरीमें सूचीबूटीका लेप (Emp Belladonna) लगाया जाता है । इससे दूध सूख जाता और सूजन भी दूर हो जाती है तथा धतूराके लेपसे भी यही लाभ होता है ।

इस तरह स्वेदन औषधि या विरेचनका प्रयोग किया जाता है । दुग्ध-चूषकयन्त्रसे दूध खेच लिया जाता है । दुग्धवाहिनियोको शिथिल करनेके लिये हल्दी, देवदारु पुनर्नवा आदिका लेप भी लगाया जाता है । उष्ण जल से स्तनोपर सेक भी किया जाता है ।

(७४) शामक ।

अवसादक—शैथिल्यकर—सिडेटिव्स—डिप्रेसण्ट्स ।

(Sedatives—Depressants)

जो द्रव्य वातवाहिनियो, नाडीग्रन्थि ओर नाडी केन्द्रकी उग्रताको शमन करे तथा मासपेशियो, रक्तवाहिनियों आदिकी तेज गतिको शिथिल करे, उसे शामक संज्ञा दी है । अफीम, खुरासानी अजवायन, भांग, गांजा, कपूर, धतूरा, सूचीबूटी, तमाखु, सोम, वच्छनाग, पंचतृण, उड्डयनशील तैलमय सुगन्धित शीतलपुष्प आदि वातनाड़ी शामक हैं; तथा अच्छनाग, अम्ल मधुरफल, पद्मकाष्ठ, सुरमा, आंवला, जसद, रौप्य, प्रवाल, मुक्ता, सुवर्ण, सुवर्णमाक्षिक, राजावर्त, सर्पगन्धा, शीतवीर्यग्राही औषधियां आदि रक्त-वहन संस्थापर शामक गुण दर्शाती हैं ।

कितनी ही औषधियां कम मात्रामे उत्तेजना देती तथा अधिक मात्रामे अवसादन कार्य करती है, उदाहरणार्थ, क्लोरोफार्म ।

जिस तरह डाक्टरीमे बहुसंख्यक प्रयोगोके अन्तमें औषध गुणोको निर्णीत किया है, उस तरह आयुर्वेदके लिये निश्चय करनेकी सुविधा अभी तक नही मिली अतः पाठकोके जाननेके लिये डाक्टरी मतानुसार वात-नाडियोंपर कार्य करनेवाली उत्तेजक और शामक गुणदर्शक औषधियोका वर्गीकरण डा० घोषकी मेटेरिया मेडिका (१९४८) के आधारसे यहा लिखा जाता है ।

अ. मस्तिष्कपर कार्यकर द्रव्य—

१. मादक (Intoxicants) शराब, मद्यार्क, ताड़ी आदि।

२ सार्वाङ्गिक चेतनाहर और मोहजनक— General Anaesthe thetics and Narcotics—क्लोरोफार्म ईथर आदि।

३ निद्राप्रद और मोहजनक--Hypnotics and Narcotics—अफीम, भांग, गाजा, क्लोरल हाइड्रास, सल्फोनल, पेरलडीहाइड, बार्बिटोन, ब्रोमाइड आदि।

आ. सुषुम्णाशीर्पपर कार्यकर द्रव्य—उत्तेजक Stimulants कपूर, लेप्टाझोल आदि।

इ. सुषुम्णाकाण्डपर कार्यकर द्रव्य—आक्षेपोत्पादक Convul sants कुचिला सत्व (स्ट्रिक्निन)।

स्वतन्त्रवातनाडी संस्थापर कार्यकर द्रव्य—

१ परिस्वतन्त्र नाड़ियोके सिरेके उत्तेजक—पाइलोकार्पिन, एसिटिल-कोलिन आदि।

२ परिस्वतन्त्र नाड़ियोके सिरके अवसादक—सूचीबूटी, खुरासानी अजवायन (Hyoscyamus), धतूरा आदि।

३ स्वतन्त्र नाड़ियोके सिरेके उत्तेजक—एड्रेनलिन, एफेड्रिन (सोम) आदि।

४. स्वतन्त्र नाड़ियोके सिरेके अवसादक—बड़ी मात्रामे अर्गोटोक्सिन, एपोकोडीन आदि।

उ. चेष्टावाही नाडियां और नाड़ीग्रन्थिपर कार्यकर द्रव्य—जेलसिमि-यमके मूल, निकोटिन, कोनायम (हेमलोक सत्व), लोबेलिन आदि।

ऊ संचेतनावाही नाड़ियोंके सिरेके अवसादक द्रव्य—कोकीन, बेन्जो-कैन, पर्कैन आदि।

ए. सचेतनावाही नाडियोंके सिरेके उत्तेजक द्रव्य—इनका वर्णन प्रति-क्षोभोत्पादक द्रव्य नं० १०० मे आगे किया जायगा।

अन्य प्रकारसे शामक विभाग—१. व्यापक अवसादक, २. मस्तिष्क-शामक, ३. सुषुम्णाशामक, ४. वातनाड़ीशामक, ५ धमनी शामक। यदि स्थानभेदसे विभाग किया जाय, तो हृदयावसादक, फुफ्फुसावसादक, आमा-शयावसादक, यकृदवसादक, मूत्राशयावसादक, गर्भाशयावसादक आदि भेद हो जाते हैं।

(१) व्यापक अवसादक (General Sedatives)— रक्तमोक्षण वायु, वर्फ या जलकी शीतलता और उपवास आदि।

(२) मस्तिष्क अवसादक (Cerebral Sedatives)—इस प्रकारकी औषधियोके अल्प मात्रामें सेवन करने पर, मस्तिष्क, सुषुम्णा और इतर

आशयोमे स्थित वातनाडी मूल, इन सब पर पहिले असर होता है। फिर श्वास यन्त्र और रक्तसचालन यन्त्रकी अवसन्नता उत्पन्न होती है। अधिक मात्रामे ये औषधियाँ सज्ञाहर है। अतः इनके निद्राकारक, मोहजनक, वेदनाशामक और चैतन्यहारक, ये ४ उपविभाग होते है। इनमेसे वेदनाशामक का विवेचन पहिले नं० ४५ मे किया गया है। शेष तीन विभागका विवेचन आगे न० ७६ से ७८ तक मे किया जायगा।

मस्तिष्क उत्तेजक औषधियो के और मस्तिष्क शामक औषधियों के अति सेवनसे चेतनाका हरण हो जाता है। परन्तु दोनोमे यह अन्तर है, कि उत्तेजक औषधिसे रक्ताधिक्य होकर क्रिया लोप होती है, और शामक औषधिसे रक्तहीनता आकर चेतना नष्ट होती है।

(३) सुषुम्णा अवसादक (Spinal Depressants) —सुषुम्णा पर उत्तेजना और अवसादन क्रिया ३ प्रकारसे प्रकाशित होती है। १ संचालन (Conduction), यह क्रिया केन्द्रगामी या केन्द्रत्यागी नाडीद्वारा होती है। २ प्रतिफलित क्रियाद्वारा। ३ विशेषनाडी केन्द्रद्वारा, उदाहरणार्थ स्वेद केन्द्रद्वारा। अवसादनगुण पहुँचानेवाली औषधियोके २ प्रकार है। १ उत्तेजना दिये विना शामक असर पहुँचानेवाली और २ उत्तेजना देकर फिर अवसन्नताकी प्राप्ति करानेवाली।

विना उत्तेजना शामक असर पहुँचानेवाली औषधियाँ—जसद भस्म, रौप्य भस्म, रौप्य लवण, सज्जीखार, मौक्तिक भस्म, प्रवाल भस्म, शुक्तिभस्म, वराटिका भस्म, शंख भस्म, सुवर्णमाक्षिक भस्म, मण्डूर भस्म, राजावर्त्त भस्म आदि।

उत्तेजनाके अन्तमे अवसादक गुण पहुँचानेवाली औषधियाँ—नौसादर सत्व, अफीम, अफीम सत्व, सोमल, सुरावीर्य, शराब, कपूर, क्लोरोफार्म आदि। ये सब सुषुम्णाको प्रारम्भमे कुछ उत्तेजित करती हैं। फिर शिथिल बनाती है।

इनमेसे अफीम, सुषुम्णास्थ धूसर द्रव्य (Gray matter) की क्षमता का ह्रास कराती है। अतः यह वेदनानिवारणार्थ अति उपयोगी है।

उपर्युक्त अफीम, भांग, गांजा आदि औषधिया सुषुम्णाकी प्रतिफलित क्रिया (Reflex) का ह्रास कराती है। अतः सुषुम्णाके विविध स्थानोमें उत्तेजनाकी अधिकतासे उत्पन्न नाना प्रकारके आक्षेपो (धनुर्वात, अन्तरायाम, बहिरायाम, पक्षाघात कम्पवात आदि) पर व्यवहृत होती है। इनके अतिरिक्त कुचिला आदिके विषप्रकोपजके शमनार्थ भी प्रयोजित होती है।

दीर्घकाल तक शराबका व्यसन रहने पर सुषुम्णाकी सब क्रियाओमे न्यूनता आ जाती है, तथा बच्छनाग और अधिक मात्रामे बिचनागका सेवन करने पर सुषुम्णामें रक्तसंचालन क्रिया दमन होकर परम्परागत प्रत्यावर्त्तन

क्रियाका अवसादन होता है।

(४) वातनाडी शामक (Nervous Sedatives)—वातवहा-नाड़ियोके विकारोमे, व्यापक और स्थानिक, ऐसे दो भेद हैं। समस्त शरीरको वातवहानाडियोंमे विकृति हो, तो व्यापक विकार कहलाता है; और मस्तिष्क और सुषुम्णासे सम्बन्धवाली वातवहानाड़ियों शाखाएँ जो विविध यन्त्र या स्थानोमे रहती है, वे सब स्थानिक कहलाती हैं। इन स्थानिक नाड़ियोकी विकृतिको स्थानिक विकार कहा है।

व्यापक वातवहानाडियोपर अवसादक औषधियोंका वर्णन आगे नं० ७६ निद्रा उत्पादक (Hypnotics) विभागमे किया जायगा।

स्थानिक वातनाडी शामक (Local Sedatives)—स्थानिक शामक औषध कुछ समयके लिये चर्मको अवसन्न (मूर्च्छित) सा बनाती है। इस हेतुसे उस भागमेसे स्पर्श बोधका ह्रास हो जाता है। वच्छनाग, अफीम, कार्बोलिक एसिड, क्लोरोफॉर्म आदिका प्रयोग स्थानिक अवसादक रूपसे होता है।

इनके अतिरिक्त स्थानिक स्पर्शहारक-चेतनाहर (Local Anaesth-eties) का प्रयोग करनेपर भी वेदना और स्पर्शानुभव लोप हो जाते है। इस विभाका वर्णन आगे नं० ७८ में किया जायगा।

वातनाडियाँ फुफ्फुस, हृदय, आमाशय आदि प्रदेशोंमे प्रविष्ट हुई है। इनमें उत्तेजनाकी वृद्धि हो जानेपर स्थानका लक्ष्य रखकर शामक औष-धिका प्रयोग करना चाहिये।

(५) धमनी अवसादक (Arterial Sedatives)—इस प्रकारकी औषधियां रक्तसंचालन यन्त्र पर अवसादक क्रिया दर्शाती हैं। इन औषधि-योंद्वारा हृदय और सब धमनियोके स्पन्दनका लाघव होता है। श्वासोच्छ्-वास क्रिया मन्द होती है। एवं शारीरिक उत्तापका ह्रास होता है।

नये बुखार और प्रदाह आदि व्याधियोंमे जब हृदय स्पन्दनकी वृद्धि, धमनीके वेगकी वृद्धि और श्वासोच्छ्वास क्रियाकी वृद्धि हो जाती है, तब शीतल औषध (Refrigerants) द्राक्षासव, अंगूरका सिरका, यवक्षार, केलेका क्षार, बिजौरेका रस, नीबूका सत्व, इमलीका सत्व, बच्छनाग, पद्मकाष्ठ, सुरमा, सुवर्णमाक्षिक, सर्पगन्धा, मुक्ता, प्रवाल, जसदभस्म आदि औषधियाँ दी जाती है। इन औषधियोसे धमनीपर अवसादक असर पहुँचता है।

सब रक्तप्रणालियां वातनाडियोके अधीन हैं। इन वातनाड़ियोंमे दो प्रकार है—एक रक्तप्रणालीसंकोचक (Vaso constrictor) और दूसरा रक्तप्रणालीप्रसारक (Vaso-dilator)। इन दोनों प्रकारकी (वात-वाहिनियोंपर कार्य करनेवाली) औषधियोंके दो विभाग किये हैं। जो

औषधियाँ स्थानिक क्रिया द्वारा रक्तप्रणालियोंको संकुचित या प्रसारित करती हैं, वे सब उक्त वातवाहिनियोंपर कार्य करके क्रिया दर्शाती हैं।

जो औषधियाँ हृदय या विस्तीर्ण रक्तप्रणालीमय स्थानपर कार्य करती है, उनके द्वारा रक्तसंचापमें परिवर्त्तन हो जाता है। सब धमनियोंकी दीवारमें वेग या दबाव बढ़ जाय, उसे रक्तसंचाप कहते है। रक्तसंचापकी ह्रास-वृद्धि उक्त दोनों प्रकारकी वातनाड़ियोंकी क्रियाके तारतम्यके ऊपर निर्भर है। अत: वातनाड़ियोंपर असर पहुँचाने वाली औषधियोंसे भी रक्तप्रणालीपर लाभ-हानि पहुँच जाती हैं।

हृदय अवसादक (Cardiac Sedatives)—हृदयको अवसादन होनेपर आकुंचन बलका ह्रास होता है। संचालन क्रियाप्रद होती है और गति भी कम हो जाती है इस प्रकारकी औषधियोका वर्णन पहिले न० ६७ हृद्य गुण विवेचनके अन्तमे किया गया है।

हृदय अवसादक औषध प्रकार—

१ प्राणदा नाडीके केन्द्रकी उत्तेजना द्वारा कार्यकर-बच्छनाग, अफीम सत्व (Morphine) आदि।

२. प्राणदानाडीके सिरेकी उत्तेजना द्वारा कार्यकर स्वतन्त्र और परिस्वतन्त्र नाडियोंपर उत्तेजना पहुँचाने वाली औषधियाँ-एड्रिनलिन, एफिड्रिन, एसिटिल कोलीन आदि।

३. हार्दिक रक्ताभिसरणके ह्रास द्वारा कार्यकर-पोपणिका ग्रन्थिसत्व (Pituitrin) लघु मात्रामे एड्रिनलिन।

४ हृदयपेशीपर साक्षात् कार्यकर—वच्छनाग, इमेटिन, क्विनाइन, हाइड्रोस्येनक अम्ल,क्लोरल हाइड्रेट और बडी मात्रामें निद्राप्रद औषधियाँ।

मौक्तिक, प्रवाल आदि प्रथम प्रकारकी हृदय अवसादक औषधियां हैं।

महाधमनीकी पीड़ाके हेतुसे हृदयके कम्पकी वृद्धि हुई हो, तो शिलाजीत या इतर मूत्रल औषधि और कफस्रावी गुणयुक्त औषधि दी जाती है।

अजीर्णजनित हृत्कम्प होनेपर प्रवाल भस्म, शुक्ति भस्म आदि औषधियाँ प्रयोजित होती हैं।

गलायुप्रदाहज (Tonsillatis) ज्वरमे हृदय वेगको शिथिल करनेके लिये वारबार अति सूक्ष्म मात्रामे वच्छनागप्रधान औषधिमे अच्छा लाभ पहुच जाता है।

फुफ्फुस अवसादक (Pulmonary Sedatives)—श्वासोच्छ्वासके आधाररूप वातवहानाडियां और उनका केन्द्र, दोनोंकी उग्रताका ह्रास करानेवाली औषधियां। इनमे तीन प्रकार होते है—

१. श्वासकृच्छ्रता और कासको दमन करनेवाली औषधियां। इनमें तीन उपविभाग हैं, जिनका वर्णन आगे किया गया है।

२. ग्रसनिका रक्तवाहिनियां, हृदय आदिपर क्रिया दर्शाकर परम्परा लाभ पहुंचाने वाली औषधियाँ।

३ श्वासप्रणालिकाके आक्षेपको शमन करने वाली औषधियाँ—धतूरा का धूम्रपान, ईथर, क्लोरोफार्म आदि। श्वास-कासके दमनकारी औषधियोमे भी तीन उपविभाग होते है—

अ. कासउद्दीपक कारणको दूर करने वाली औषधियाँ।

आ. वातवाहिनियोके अन्त भागोकी उग्रताका साक्षात् सम्बन्धसे दमन करने वाली औषधियाँ।

इ फुफ्फुसोंकी संज्ञावाही वातवाहिनियोकी उत्तेजनाका साक्षात् सम्बन्धसे दमन करने वाली औषधियाँ।

कितनी ही औषधियाँ ग्रसनिका (Pharynx) और स्वरयन्त्रके रक्ता-वेगजनित कासपर लाभ पहुँचाती है। यथा गोदमिश्रित अफीम प्रधान औषधि, मुलहठी, मिश्री, वच, लौग आदि। इनको मुँहमे रखकर रस चूसते रहनेसे कासका दमन हो जाता है। अफीमसे श्वासयन्त्रस्थ वातवा-हिनियोकी उग्रताका शमन होनेके साथ, श्लेष्मस्राव भी कम हो जाता है।

कफनि:सारक औषधियाँ बहुधा श्वासमार्गके रक्तसचय (Congest-ion) का ह्रास कराकर तथा लोह भस्म आदि औषधियाँ हृदय और रक्तवाहिनियोपर क्रिया दर्शाकर कासरोगमें लाभ पहुँचाती है।

तमाखू, धतूरा, मैनसिल, देवदारु आदि औषधियाँ धूम्रपान करनेपर फुफ्फुस अवसादक होकर कासका निवारण कराती हैं। ये सब सूक्ष्म श्वास प्रणालिकाओके आक्षेपका ह्रास कराती है, अत: कफप्रधान तमक श्वासमे लाभदायक है। एव अफीम, ईथर, क्लोरोफार्म, वच्छनाग, सुरावीर्य आदि श्वासोच्छ्वास नियामक वातवहा केन्द्रपर साक्षात् सम्बन्धसे अवसादन क्रिया करके लाभ पहुँचाती है।

आमाशय अवसादक (Gastric Sedatives) का विवेचन पहिले नं० २२ वमन निवारक औषधियोंके साथ किया गया है।

यकृदवसादक (Hepatic Sedatives) औषधियाँ—मौक्तिक, शुक्ति, शंख, वराटिका, प्रवाल, मीठे अनार, आँवला, चूनेका जल आदि पित्त नि:स्रवण क्रिया की ह्रास करती है।

मूत्राशय अवसादक (Vesial Sedatives)—मूत्राशयकी उग्रताका ह्रास कराने वाली औषधियाँ—निवाये जलमे बैठना, निवाये जलसे कटि-स्नान, अफीम, खुरासानी अजवायन, धतूरा, सूचीबूटी, जवाखार, चूनेका जल, गोखरू, कुलथी शिलाजीत आदि। इस प्रकारकी औषधिया मूत्राशय और मूत्रप्रसेक नलिकामे शामक असर पहुँचाती हैं, जिससे वेदना और बार-बार थोड़ा-थोड़ा मूत्र उतरना, ये विकार दूर होते हैं। मूत्राशयमें

अधिक मूत्र संचय होना, अश्मरीकी उत्पत्ति और मूत्राशयकी श्लैष्मिक कलाका प्रदाह इत्यादि विकारोमें बार-बार पेशाब करनेकी इच्छा होती रहती है। ऐसे समयपर अवसादक औषधियाँ व्यवहृत होती है।

अश्मरीजन्य विकारमे शिलाजीत, जवाखार, केलेकाक्षार, गोखरू आदि उपकारक हैं।

मूत्राशयकी श्लैष्मिक कलाके प्रदाहमे उष्ण जलसे कटिस्नान, शिलाजीत, गन्धाबिरोजा, शीतलमिर्च, इलायची आदि प्रयोजित होती है।

वातवहा नाडियोंकी उग्रता हो, तो अफीम, खुरासानी अजवायन, बेलाडोना, अलसीका क्वाथ, उष्ण जलपान आदि लाभदायक हैं।

मूत्रकी प्रतिक्रिया अत्यधिक अम्ल हो जानेपर श्लैष्मिक कलाका प्रदाह होकर श्लेष्मा (Mucus) निकलता है; और मूत्रत्यागके समय दाह भी होता है। परीक्षा करनेपर यदि मूत्रमे यूरिक एसिडका प्रक्षेप प्रतीत हो, तो जवाखार, प्रवाल, मौक्तिक या इतर मूत्रल औषधि देनी चाहिये।

यदि मूत्राशयकी मासपेशियां शिथिल हो जानेसे मूत्रधारण क्षमताका ह्रास (Incontinence of Urine) हो गया हो, तो मूत्राशय पौष्टिक (VesicalTonics) औषधिया—लोहभस्म, शिलाजीत और वगभस्म मिश्रित औषधि तथा कुचिलासत्व आदि दी जाती है।

सुजाक आदिके कीटाणुओंद्वारा मूत्रप्रसेक नलिका (Urethra) मे प्रदाह होनेपर गन्धाबिरोजा, शीतलमिर्च, चन्दन तैल आदि प्रयोजित होते हैं। एवं बाह्य उपचार रूपसे फिटकरी, मुर्दासङ्ग, त्रिफला क्वाथ आदि संकोचक और प्रदाहशामक औषधियोकी पिचकारी लगाई जाती है।

गर्भाशय शामक (Uterine Sedatives) - गर्भाशय प्रदाह और संकोचका निवारण करने वाली ओषधियां—बाह्य उपचार रूपसे नाभी के नीचे उष्ण सेक, तार्पिन तैलकी मालिश, सरसोंकी पुल्टिस आदि। आभ्यन्तर उपचार रूपसे पारदघटित, विरेचन, मृदु विरेचन, एरण्ड तैल और मूत्रकृच्छ्रनाशक स्निग्ध ओषधिया। परन्तु तीव्र वेदना होनेपर अफीम आदि ओषधिया उपयोगमे ली जाती हैं।

गर्भाशयकी मांसपेशीके आवरण प्रदाह, गर्भाशय सकोच करने वाली ओषधियोका अधिक व्यवहार, सुजाकके उपद्रव रूप गर्भाशयप्रदाह या गर्भाशयमें अति उत्तेजना आनेपर गर्भाशय शामक ओषधिया प्रयोजित होती हैं।

रक्तप्रणाली आकुञ्चक ओषध—इनमे दो प्रकार है। (१) रक्तप्रणालियोके पैशिक आवरणको कुञ्चित करने वाली ओषधियां। (२) रक्तप्रणालीके चारो ओर रक्तजल (Plasma) का सघनन करने वाली, ये ओषधिया इस संयत रक्तको आकुञ्चित कर रक्तप्रणालियोंका अवरोध करके

कार्य करती हैं।

प्रथम प्रकारकी औषधिका बाह्य प्रयोग करनेपर रक्तप्रणालियोके पैशिक आवरणपर कार्य होता है। शीतलता, सीसाघटित लवण, रौप्यघटित लवण गन्धकके तेजाबका हलका द्रव, फिटकरी आदि। लोहघटित लवण (कसीस) सामान्य रूपसे आकुंचन करता है।

द्वितीय प्रकारकी औषधियाँ—जामुनके पत्तोंका रस, कहरवा, हीरा-दोखी गोंद, माजूफल, लोध आदि रक्तरसका निग्रहकर अपना गुण दर्शाती हैं। कसीस और फिटकरीमे रक्तवारिके संयमन करनेका गुण भी रहता है।

रक्तसंचालक वातवाहिनी केन्द्रपर कायकारी—वच्छनाग, सुरावीर्य, सूचीबूटी, क्लोरोफार्म, ईथर, कडवी बादाम, खुरासानी अजवायन, अफ़ीम, तमाखू आदि रक्तप्रणाली संचालक वातवाही केन्द्र (Vaso-motor Centre) पर असर पहुँचाकर रक्तप्रणालियोको प्रसारित करते हैं।

अभ्रकभस्म, नौसादर चूनामिश्रण, कुचिलासत्व, शीशाघटित लवण आदि वातवाहिनी केन्द्रपर क्रिया दर्शाकर रक्तप्रणालियोंका आकुञ्चन करते हैं। इनके अतिरिक्त सूचीबूटी, खुरासानी अजवायन, सुरावीर्य, ईथर, क्लोरोफार्म आदि पहिले रक्तप्रणालियोंका प्रसारण करते हैं; फिर थोडे ही समयमे संकोच करते हैं। सूचीबूटी, खुरासानी अजवायन, गांजा, आदि में प्रलाप, उत्पादक, (Delirifaciets—Deliriant) दोष भी रहता है। अतः इनका उपयोग सम्हालपूर्वक करना चाहिये।

(७५) उत्तेजक।

(स्टिम्युलॅन्टस्—Stimulants)।

देहमे उत्तेजना अथवा तेजी लानेवाली औषधियां—अजवायन, सोठ, अदरख, लौंग, दालचीनी, कस्तूरी, अम्बर, प्याज, लहशुन, पीपल, पीपलामूल, भिलावा, दशमूल, रास्ना, चित्रकमूल, मिर्च, तिल, कुचिला, सखिया; हरताल, वच्छनाग, तालीसपत्र, तेजबल, चोबचीनी, पाठा, आक, हींग, मालकागनी, अकलकरा, समुद्रफल, जावित्री, कालीजीरी, असगन्ध, कटभी (वापु वा), तुलसी, कायफल, उष्णजल, गुड, शक्कर, पृष्टपर्णी, अरनी, गम्भारी वडी कटेली, छोटी कटेली, निर्गुण्डीके पान, हरमलके बीज, मजीठ, शराब, चाय, गाजा, नीलगिरी तेल, रोहिष तैल, रससिंदूर, अभ्रक, ताम्र आदि।

संज्ञास्थापन कषाय—अर्थात् संज्ञा-चेतनाको स्थिर करनेवाली औषधिया हीग, वकायन, दुर्गन्ध खदिर, वच, चोरक (चोर पुष्पी), ब्राह्मी, गोलोमी, (भूतकेशी), जटामांसी, गूगल और कुटकी, ये १० औषधिया। इनका उपयोग, अपतन्त्रक (Hysteria), अपस्मार, वेहोशी आदिमे चेतना लानेके लिये होता है।

स्थान भेदसे वर्गीकरण—

१. मस्तिष्क उत्तेजक—शराब ।
२. सुषुम्णाशीर्ष उत्तेजक—कर्पूर आदि ।
३. सुषुम्णाकाण्ड उत्तेजक—कुचिला, फॉस्फरस आदि ।
४. रक्ताभिसरण उत्तेजक—कपूर, शराब, गरमपेय आदि ।
५. आमाशय उत्तेजक—वमन और दीपन-पाचन औषधियां ।
६. यकृदुत्तेजक—वर्णन नं० ८ पित्तनि:सारक मे ।
७. फुफ्फुसोउत्तेजक—कफस्रावी नं० १० मे ।
८. व्रणशोथ उत्तेजक—पुल्टिस आदि ।

इस तरह वृक्क, गर्भाशय, मूत्राशय, जननयन्त्र, नेत्र, नासिकादि सम्बन्धी उत्तेजक विभाग हो सकते है ।

इस प्रकारकी औषधियों मे स्थायी गुणदर्शक (permanent) और अस्थायी गुणदर्शक (I iffusible), ऐसे दो प्रकार होते है । इनमेसे स्थायी उत्तेजक औषधियोमे कितनी ही ग्राही (Astringents) और कितनी ही पौष्टिक (Tonics) हैं । इनका विवेचन पहिले नं० ५६ और ६० मे किया गया है ।

अस्थायी उत्तेजक औषधियोकी क्रिया सहसा प्रकाशित होती और थोडे ही समयमे समाप्त हो जाती है । जितने परिमाणमे उत्तेजना होती है, उतने ही परिमाणमें क्रियाके अन्तमे अवसादकताकी प्राप्ति होती है । जब किसी कारणवश अकस्मात् जीवनीय शक्ति अवसन्न हो जाती है, तब उसे तत्काल उत्तेजित करनी पडती है । ऐसे समय पर इन अस्थायी उत्तेजक औषधियोंका प्रयोग किया जाता है ।

किसी वृहत् आमाशय या विस्तीर्ण स्थानमे दाह शोथका आरम्भ होने पर उस स्थानमे वातशक्ति विशेष मात्रामे संगृहीत हो जाती है, इस हेतुसे इतर आशयोमेसे इस शक्तिका ह्रास हो जाता है, परिणामसे जीवनीय शक्ति अकस्मात् अवसन्न हो जाती है । ऐसे समय पर उत्तेजक औषधिका प्रयोग किया जाता है, किन्तु इस बातका भी स्मरण रखना चाहिये कि उत्तेजक औषध प्रयोगसे थोड़े ही समयमे प्रदाहके लक्षणोकी वृद्धि हो जाने की संभावना रहती है इसलिये सब उत्तेजक औषधियोंकी क्रिया बहुत कम समयतक ठहरती है, और प्रदाहके लक्षण प्रकाशित होनेके पहिले ही पर्यवसित हो जाती है, अतः नौसादर चूनाका मिश्रण या ईथर आदि औषधियां प्रयोजित होती है तथा बाह्य प्रयोगरूपसे राईका प्लास्टर आदि लगाया जाता है ।

क्वचित् शरीरके किसी प्रधान अवयव पर अकस्मात् अति चोट लग जानेसे बेहोशी आ जाती है, ऐसी अवस्थामे भी उपर्युक्त अस्थायी उत्तेजक

औषधिका प्रयोग किया जाता है, परन्तु आहत स्थानके प्रति जिन उत्तेजक औषधियोंके विशेष प्रवृत्ति होती हो उनका व्यवहार नही किया जाता, जैसे मस्तिष्क पर चोट लगनेके समय अफीमका प्रयोग नहीं किया जाता।

मोतीझरा और शीतला आदि उत्कट ज्वरोंमें कभी कभी घातक शैत्यावस्थाकी प्राप्ति हो जाती है, तब उत्तेजक औषधिका प्रयोग किया जाता है। इनके अतिरिक्त इन रोगोमे रोगीकी दुर्बलता और बेहोशी आ जाने पर जीवन-रक्षाके निमित्त उत्तेजक औषध दी जाती है। यदि कोई स्थानिक प्रदाह (कर्णमूलप्रदाह आदि) उपस्थित हो जाय, तो जलौका आदि प्रयोग द्वारा उसके दमनका तत्काल प्रयत्न करना चाहिये। ऐसे समय पर आवश्यकता हो, तो उत्तेजक औषध प्रयोग भी करना चाहिये, क्योकि, इस अवस्थामें जीवन शक्तिके संरक्षणकी पूर्ण आवश्यकता है।

क्वचित् पूर्व रोगके हेतुसे या अत्याचारके हेतुसे किसी दुर्बल व्यक्तिके प्रदाह आदि विकार उपस्थित हो जाय, तो उत्तेजक और दोहन, दोनों प्रकारकी औषधियोका एक साथ प्रयोग करना चाहिये। शराबीके लिये तो इस प्रकारकी चिकित्सा नितान्त आवश्यक है।

रक्तस्राव अथवा अधिक मात्रामे रस या पूय निःसरणके हेतुसे कृशता और शिथिलताकी प्राप्ति होने पर बल्य औषधिके साथ कस्तूरी आदि उत्तेजक औषधि मिला देनी चाहिये, या बल्य और उत्तेजक गुणयुक्त अभ्रक और रससिंदूर घटित या इतर औषधि देनी चाहिये।

जब रक्तमे पूय या किसी औषधि विशेषका विषमिश्रित होकर वेदना उत्पन्न हो जाती है, तब उत्तेजक औषध द्वारा जीवनीय शक्तिको सबल रखना चाहिये, जिससे रोगनिरोधक शक्ति विषको नष्ट कर प्रकृतिको स्वस्थ बना सके।

वातवहा नाड़ियोकी निर्बलताजनित व्याधिमे इस श्रेणीकी औषधियों द्वारा वातनाड़ियोके बलको कायम रखना चाहिये।

सार्वाङ्गिक उत्तेजक, (General Stimulants)—विद्युत् प्रयोग, उष्णता, गर्म चाय, गर्म दूध, गर्म जलपान, क्रोध, प्रसन्नता आदि मनोवृत्ति और व्यायाम आदि। इनकी क्रिया देहमे सर्वत्र समभावसे प्रकाशित होती है, किसी यन्त्र विशेष या स्थान विशेषका आश्रय नही करती।

मस्तिष्क उत्तेजक (Cerebral Stimulants)—मस्तिष्ककी क्रियामे वृद्धि करा स्फूर्ति कराने वाली औषधियां—शराब, आसव, अरिष्ट, कपूर, चाय काफी, गाजा, चरस, कस्तूरी आदि, इनके शराब उत्कृष्ट है।

इस प्रकारकी औषधियां प्रारम्भमे वातवहा नाड़ी उत्तेजक और धमनी उत्तेजक रूपसे कार्य करती है, फिर थोड़े ही समयमे मस्तिष्क पर विशेष रूपसे क्रिया दर्शाती है। इनका अल्प मात्रामें सेवन करने पर शरीर उष्ण

होता है, धमनीके स्पन्दनोंकी वृद्धि होती है, वातमण्डलसे स्थिरता सम्पादित होती है, मस्तिष्कमें रक्तकी कुछ अधिकता होती है तथा मानसिक वृत्ति प्रफुल्लित और उत्तेजित होती है ।

औषधि सेवन अपेक्षाकृत अधिक मात्रामे करने पर मस्तिष्कमे रक्तवृद्धि अधिक होकर मस्तिष्क क्रियामे विकृति आ जाती है, इसी हेतुसे मत्तताके लक्षण प्रकाशित होते हैं । इसकी अपेक्षा भी अधिक औषधि सेवन की जाय, तो मस्तिष्कमे अत्यन्त रक्ताधिक्य होकर बेहोशी आ जाती है ।

उत्तेजक औषधि भेदसे यह अवस्था १ से १४ घण्टे रहती है । फिर क्रमशः चेतनाका उदय होता जाता है । चैतन्यता आनेके पश्चात् (जिस परिमाणमे उत्तेजना आई हो उतने परिमाणमे) अवसादन क्रिया होती है और आलस्य, ग्लानि, सिरदर्द, क्षुधामान्द्य, वमन, उबाक, दुर्बलता आदि चिन्ह प्रतीत होते है ।

यदि इससे भी अधिक परिमाणमे औषधि सेवनकी हो, तो अचेतनावस्था क्रमश. बढ कर मस्तिष्ककी क्रिया लोप हो जाती है, एव श्वासावरोध (Asphyxia) होकर मृत्यु तक हो जाती है । भाग्यवशात् इस अवस्थासे मुक्त हो जाय, तो भी अवसन्नावस्थाकी अधिकता होती है, और मृत्युकी भीति रहती है ।

मस्तिष्कमे सचालित रक्तके परिमाण और रक्तकी अवस्था पर मस्तिष्क की क्रिया अवलम्बित है । अत. सार्वाङ्गिक रक्त संचालनमे उत्तेजना आने पर मस्तिष्कमे रक्तसंचालन वृद्धि होती है और मस्तिष्कक्रियामे उत्तेजना आ जाती है । मस्तिष्कको नीचा रखने और मुँहसे पान-सुपारी आदि चबाते रहनेसे मस्तिष्कमे रक्तसचालन वृद्धि हो कर उत्तेजना आ जाती है तथा व्यायाम करने पर भी मस्तिष्क उत्तेजित हो जाता है ।

इस देहके लिये यह नियम है, कि जिस यन्त्रमे उत्तेजना उत्पन्न होती है, उसयन्त्रमे उसी हिसाबसे रक्तका अधिक संचालन होता है । मस्तिष्कके लिए भी यही नियम लागू होता है । शराब आदि मस्तिष्क उत्तेजक वस्तुके व्यसनीको क्रमशः मात्रा बढ़ानी ही पड़ती है उसकी अन्यथा शराब आदि सेवनके उद्देश्यकी सिद्धि नही होती । इस तरह अधिक काल तक सेवन करते रहने पर मस्तिष्क और इतर यन्त्रोकी क्रिया बार-बार उत्तेजना शराब आदि मादक द्रव्य होते रहनेसे ह्रास होती रहता है, एव जीवनीय शक्ति अवसन्न होती जाती है । यदि व्यसनी शरीरसे कृश है, तो वह रोगके आक्रमणके अधिक अनुकूल है ।

मस्तिष्क उत्तेजक औषधियां विविध प्रकारकी व्याधियोंके निवारणार्थ और जीवनीय शक्तिके उत्तेजनार्थ प्रयोजित होती है । आक्षेप निवारक औषधियोका विवेचन नं० २ में और वेदनानिवारक (Anodynes) का

विवेचन नं० ४५ में किया गया है, तथा निद्राकारक (Hypnotics) का विवेचन आगे नं० ७६ में किया जायगा।

सूचना—इस प्रकारकी औषधियोका प्रयोग नूतन ज्वर, नूतन प्रदाह और रक्ताधिक्य होनेपर नही करना चाहिये।

सुषुम्णा उत्तेजक (Spinal Stimulants) सुषुम्णाकी प्रत्यावृत्त-क्रिया (Reflax) में वृद्धि कराने वाली ओषधियां—कुचिला, कुचिलेका सत्व, अफीम, अफीमसत्व, रससिंदूर, पूर्णचन्द्रोदय रस, अभ्रक भस्म, फॉस्फरस आदि। इनमेसे कुचिला, अफीम आदि औषधियोंको थोड़ी मात्रामे प्रयोजित किया जाय, तो प्रतिफलित क्रियाकी वृद्धि करती है; और अधिक मात्रामें तीव्र आक्षेप उत्पन्न करती है। रससिंदूर, पूर्णचन्द्रोदय, अभ्रक भस्म आदि औषधियां बिलकुल निर्विघ्न हैं; किंचिद् भी आक्षेप या इतर अपाय नही करती।

स्थानिक पक्षाघात, अर्धाङ्गवात, हाथ-पैरका बन्ध आदि व्याधियोमें इन औषधियोंको उपयोगमे लिया जाता है। पक्षाघात रोगमें कुचिला, सोमल आदिका प्रयोग करनेपर जब औषधिका असर पहुँचता है तब स्वस्थ अङ्गकी अपेक्षा अवसन्न अङ्गकी मांसपेशियोंमें स्पष्ट रूपसे स्पन्दन, स्फूर्त्ति और कम्प होने लगते हैं।

अफीम, कुचिला, कुचिलासत्व, नौसादर-चूनाका मिश्रण, क्लोरोफार्म, ईथर आदिसे सुषुम्णाके सन्मुखशृङ्ग (Anterior Horn) में उग्रता उत्पन्न होती है। सुषुम्णाकी विकृतिजनित पक्षाघातमें आवश्यकतापर इन औषधियोका उपयोग किया जाता है। परन्तु सुषुम्णाकी पीड़ामें इन औषधियोंसे कोई लाभ नही होता।

धमनी उत्तेजक (Arterial Stimulants)--इस प्रकारकी औषधियोकी क्रिया सब धमनी और हृदयपर प्रकाशित होती है। लालमिर्च, तार्पिन तैल, त्रिकटु, फास्फरस, नौसादर आदि औषधियोंके सेवनसे धमनी स्पन्दनमें तेजी आती है, आमाशयमे उष्णता मालूम देती है, एवं शरीर भी उष्ण हो जाता है और बाह्य प्रयोग करनेपर त्वचापर उग्रता आ जाती है।

किसी कारण वश हृदयकी क्रिया निस्तेज हो जानेपर इस प्रकारकी औषधियोंका प्रयोग किया जाता है। यदि आमाशयप्रदाह हो, तो इन औषधियोंका प्रयोग नहीं करना चाहिये। धमनी उत्तेजक औषधियोसे हृदयोत्तेजना होती है। इनके अतिरिक्त रक्ताभिसरण बढ़ाने वाली सुगन्ध-युक्त और उष्ण औषधियां भी हृदयोत्तेजक (Cordial) गुण दर्शाती है।

वातनाड़ी उत्तेजक (Nervous Stimulants)—इस श्रेणीमे कस्तूरी, हीग, जटामांसी, लहशुन, चाय, काफी आदि औषधियां हैं। ये

वातवाहिनियोकी निर्बलता दूर करती है। एवं वाताक्षेपका निवारण करती है। इनकी क्रिया-समग्र शरीरमे समान रूपसे प्रकाशित होती है। मस्तिष्क या किसी वातनाडी केन्द्रपर विशेष रूपसे उत्तेजना नहीं पहुँचाती।

संज्ञावाही नाड़ियोके सिरेकी उत्तेजक—बच्छनाग, बच्छनागसत्व (Aconitine), कलिहारी, बिच्छूबूटी, कौचको फलीके बाल आदि संज्ञावाही वातनाडियोके सिरेको उत्तेजित करते है। इनसे बच्छनाग या बच्छनागसत्व रक्तमे सचारित होनेपर जिह्वा, ओष्ठ, कण्ठ आदिमे झनझनाहट होने लगती है, एव मिर्च, अकलकरा आदिसे जिह्वास्थ सज्ञावाही नाड़ियों के अन्तिम सिरेमे उत्तेजना उत्पन्न हो जाती है।

राई प्रधान आचारके सेवनसे आमाशयस्थ संज्ञावाहिनियोंके सिरे (अन्त भाग) मे उत्तेजना उत्पन्न हो जाती है।

हृद्योत्तेजक (Cardiac Stimulants) औपधियां—पूर्णचन्द्रोदय रस, रससिंदूर, समीरपन्नग, कस्तूरी, शराव, नौसादर, द्राक्षासव, कपूर, तार्पिन तैल, नीलगिरी तैल, वातहर तैल। हृदयपर उत्ताप और नं० १०० अत्युग्रतासाधक औषधियोंका प्रयोग भी रक्ताभिसरण क्रियापर लाभदायक है। इस प्रकारकी औपधियोसे नाडीके बल और वेगकी सत्वर वृद्धि होती है।

जब अतिशय मानसिक उद्वेग, भौतिक आघात या हृदय-अवसादक औषध सेवन होनेसे बेहोशी (Shock) या मूर्च्छा (Syncope) आकर सहसा हृदय क्रिया लोंप होने लगती हो; या सर्पदंश, ज्वर आदि रोगोंसे हृदय अति क्षीण होने लगता है, तव इस प्रकारकी औपधियां प्रयोजित होती हैं।

कपूर—मधुरा या फुफ्फुस प्रदाहसे उत्पन्न ज्वरमे प्रलाप होनेपर कपूर उत्तम हृदयोत्तेजक है। एवं कपूरके अर्कका शक्करके साथ सेवन करानेसे प्रतिश्याय (जुकाम) का भी सत्वर दमन हो जाता है।

उग्र शराव—रक्तमे शोषण होनेपर हृदयको उत्तेजित करती है, परन्तु यह प्रारम्भमे मुख, कण्ठ और आमाशयस्थ वातवहा नाडियोंको उत्तेजित करती है। फिर वहांसे उत्तेजना हृदयमें प्रतिफलित होकर क्रिया दर्शाती है। अत: वेदनावस्थामे शरावका प्रयोग करना हो, तो थोड़ी-थोडी मात्रामे वार-वार करना चाहिये। परन्तु साथ-साथ सम्हालते भी रहना चाहिये कि रक्त-संचालन क्रियामे विकृति तो नही होती। यदि रक्त संचालनमे विकार होने लगे, तो शराव वन्द कर देनी चाहिये।

नौसादर मिश्रण भी उग्र शराव सदृश प्रतिफलित होकर हृदयपर कार्य करता है। इसके अतिरिक्त यह सूक्ष्म धमनी और केशिकाओंके संचालन विधायक वातनाड़ी केन्द्र (Vaso-motor Centre) को भी उत्तेजित

करता है ।

मूर्च्छा होनेपर नौसादर और चूनेका मिश्रण सुंघाया जाता है । एवं सर्पदंश होनेपर नौसादरके अर्कका इञ्जेक्शन दिया जाता है ।

ज्वर आदि रोगोमे हृदयकी निर्बलताको दूर करनेके लिये पूर्णचन्द्रोदय या रससिंदूरका उपयोग अदरखके रसके साथ किया जाता है। जिससे तत्काल नाड़ीकी गति तेज हो जाती है । इस तरह उष्ण जलपान और उष्ण सेक करनेसे भी हृत्पिण्ड सत्वर उत्तेजित हो जाता है ।

रक्तवाहिनी उत्तेजक (Vasculai Stimulants) हृदयसे दूरवर्त्ती रक्तवाहिनीकी दीवार प्रसारित होनेपर उनमे रक्तसंचालन क्रिया अधिक वेगपूर्वक करानेवाली औषधिया—शराब, अफीम, द्राक्षासव, सोरा, नौसादर मिश्रण, पूर्णचन्द्रोदय रस, रससिंदूर, अभ्रकभस्म, लोहभस्म, ताम्रभस्म, उष्णता और उष्ण जलपान आदि ।

रक्त सचालनकी समता सस्थापित करने और आभ्यान्तरिक यन्त्रोंमेसे रक्तके बढे हुए वेगका ह्रास करानेके लिये शराब या इतर मानसिक उत्तेजक औषधिका प्रयोग किया जाता है ।

शीत लगने या शीतकालमे देर तक गीले वस्त्र पहिननेसे श्वासयन्त्र, आमाशय अन्त्र या मूत्राशयमे रक्तसंग्रह हो जाता है, फिर कम्प या स्थानिक वेदना होने लगती है । यदि तुरन्त रक्ताधिक्यका दमन न हुआ, तो दाह-शोथकी उत्पत्ति हो जाती है । ऐसे विकारोमें मृदु भावसे कपूर या अफीम प्रधान औषधियाँ कार्य करती हैं; और शराब, अग्निसेवन, सूर्यके तापका सेवन, चाय, काफी आदि तत्काल लाभ पहुँचाती हैं ।

सोराको निवाये जलमें मिलाकर प्रयोग करनेसे वह रक्तवाहिनियोंको प्रसारित करके उत्तेजना उत्पन्न करता है ।

वाह्य प्रयोग—चिरकारी प्रदाह और अवयवोंकी दृढता अर्थात् घनीभवन (Consolidation) के निवारणार्थ स्थानिक लेप, मर्दन आदि रक्तवाहिनी उत्तेजक क्रिया करनी चाहिये ।

रक्तप्रणालीप्रसारक—नीलाथोथा, सोमल, सुरावीर्य, ईथर, क्लोरोफॉर्म, तार्पिन तैल, कार्वोलिक तेजाब, जमालगोटेका तैल, कपूर, फास्फरस, उष्णता (पुल्टिस, सेक, स्वेदन क्रिया, अग्निसेवन आदि), लोहभस्म, ताम्रभस्म इत्यादि रक्तप्रणालियोको प्रसारित करती हैं; अतः इनको डाक्टरीमे रक्तप्रणालीके लिए क्षोभोत्पादक (Vascular Irritants) कहते हैं ।

जब इस प्रकारकी औषधियोंका स्थानिक प्रयोग किया जाता है, तब रक्तप्रणालियोंका प्रसारण करके त्वचाको लाल बना देते हैं । ऐसे प्रयोगों को चर्मप्रदाहक (Rubefacients) संज्ञा दी है । इनसे अधिक प्रयोगोंको स्फोटकारक, व्रणोत्पादक, तीव्रदाहक, प्रत्युग्रता साधक आदि संज्ञा दी है ।

इन सबका विवेचन आगे नं० ९९ और १०० मे किया जायगा।

(७६) निद्राप्रद।

स्वप्नजनन–हिपनॉटिक्स–सोपोरिफिक्स।

Hypnotics–Sopotifics–

जो औषधियाँ निद्रा ला देवे, उनको निद्राप्रद कहते है। अफीम, अफीमसत्व, भाग, गाजा, खुरासानीअजवायन, शराब, पीपलामूल, सर्पगन्धा, कस्तूरी, ब्राह्मी, शंखाहूली, सहदेवी धतूरा, भैंसका दूध, मक्खन, घी आदि।

निद्राकी उत्पत्ति प्रकार—

१. मस्तिष्कके रक्त सचालनका ह्रास होनेपर निद्रा उत्पन्न होती है। यह कार्य हृदयकी क्रियाकी स्थिरता सम्पादन करने अथवा रक्तको अन्यत्र प्रेरित करनेसे होता है।

२ मस्तिष्ककी क्रियाका ह्रास करानेसे निद्रा आ जाती है।

अन्यत्र स्थानकी शिरा प्रसारित होनेपर मस्तिष्कमेसे रक्तका परिमाण न्यून हो जाता है। शरीरमें कृशता और रक्त सचालनमे क्षीणता आनेपर तथा अधिक काल तक खडे रहने या बैठे रहनेपर तन्द्रा उपस्थित होती है। परन्तु शय्यामे शयन करनेपर मस्तिष्ककी रक्तवाहिनियाँ क्षीण होनेसे, उनमें रक्त अधिक परिमाणमे संचारित हो जाता है, इस हेतुसे थोडे ही समयमें तन्द्रा-निद्रा दूर हो जाती है। ऐसी अवस्थामें यदि मस्तिष्कको ऊँचे सिरहाने (तकिये) पर रखकर शयन कराया जाय, तो निद्रा आजाती है। ऐसे रोगग्रस्त व्यक्तियोंको हृदय और रक्तवाहिनी पौष्टिक लोहघटित औषधि या कुचिला आदि देनेसे शान्त निद्रा आ जाती है।

अनेक बार उदरपर बडी पुल्टिस (रोटी) बांधनेसे या शीतल जलमें फलालेन भिगो उदरपर रख, उसपर दोलड़ (दो तह करके) फलालेन बाँध देनेसे भी निद्रा आ जाती है। एवं उष्ण आहार, उष्ण जलपान, उष्ण चाय, उष्ण दूध आदि भी मस्तिष्कमेसे रक्त नीचे गमन कराकर निद्रा ला देते हैं।

परन्तु हृद्रोग, हृदयकी निर्बलता और वातवहानाडियोकी उग्रता होने पर गरम चाय, गरम दूध आदि पदार्थके सेवनमे वातवहानाडियोके केन्द्र-स्थानमे उत्तेजना पहुँचकर निद्राका नाश हो जाता है। ऐसे रोगियोके लिये शीतल जल, धारोष्ण दूध या गरम करके शीतल किया हुआ दूध, सात्विक ताजा भोजन, ये सब हितकारक है। तमाखू, चाय, सूर्यके तापमें भ्रमण, अग्नि सेवन, ये सब हानिकर है।

ज्वर रोगमे निद्रानाश होनेपर देहपर आर्द्र वस्त्र आच्छादित करनेसे लाभ हो जाता है।

निद्रानाश होने पर यदि दोनो पैरोको गरम जलसे सेक कर या सारे

शरीरको शीतल जलसे मर्दन कर फिर अच्छी तरह पोछकर शयन कराया जाय, तो सत्वर निद्रा आ जाती है ।

वेदनाजन्य निद्रानाश होने पर अफीम और अफीमसत्व अमोघ औषधि हैं । इन औषधियोसे मस्तिष्ककी क्रिया क्षीण होती और वेदना भी निवारण होती है ।

इन निद्राप्रद औपधियोके अतिरिक्त मोहजनक औषधियोके सेवनसे भी निद्रा आ जाती है । इसका विवेचन आगे नं० ७७ में किया जायगा ।

निद्राका सम्बन्ध कन्दाधरिक भाग (Hypothalmu) और स्वतन्त्र नाड़ीसंस्था (Ausonomic nervous system) के साथ गुप्त भावसे सम्बद्ध है । इस हेतुसे मस्तिष्क प्रदाह (Encephalitis Lethargica) मे विकृति अनुरूप निद्रा अधिक आती या बिल्कुल नही आती है ।

शान्तनिद्रा कालमे परिस्वतन्त्रनाडियोंकी दृढता बढ़ जाती है । जिससे मन्द नाडी, कनीनिकाका आकुंचन तथा श्वासनलिकाका संकोच होता है । पाचन रस और अन्त्रकुण्डलीकी गति दृढ बनती हैं । निद्रा दूर होने पर मस्तिष्क, वातनाड़ियो, मासपेशियों आदिकी थकावट दूर होती है तथा मन प्रसन्न होता है ।

सूचना—(१) यदि अन्त्र आदि अवयवोंमे मल, वायु, आम आदि संगृहीत होनेसे निद्रानाश हुआ हो, तो उसे दूर करना चाहिए । इस तरह मांसपेशियाँ, अस्थि, सधिस्थानोंमे दवाव बढा हो, तो उसे कम कराना चाहिये ।

(१) अनेक रोगी निद्रा लानेके लिए डाक्टरी तीव्र औषधियां—ट्रायोनल (Trional), टेट्रोनल (Tetronal) पेरलडीहाइड (Paraldehyde), वारब्रिटोनम (Barbitonum) आदिका बार वार सेवन करते रहते हैं । प्रारम्भमे तो ये औषधियां सत्वर लाभ पहुँचाती हैं । फिर अधिक मात्रामे सेवन करने पर भी निद्रा नही आती, और हृदय भी निर्बल बन जाता है । अतः ऐसी मादक औषधियोंका उपयोग न किया जाय तो अच्छा ।

(७७) मादक ।

मदकारी-मद्य प्रलापोत्पादक-डिलिरियण्ट्स डिलिरिफेशिअण्ट्स ।
Deliriants—Delirifacients

बुद्धिं लुम्पति यद् द्रव्यं मदकारी तदुच्यते ।
तमोगुणप्रधानं च यथा मद्यं सुरादिकम् ॥

जो तमोगुणप्रधान द्रव्य बुद्धि (स्मरण, विचार और विवेक शक्ति) का लोप करती है, उसे मादक कहते हैं । जैसे शराब आदि ।

चरक संहिताकारने लिखा है, कि मद्य हृदयमे प्रवेशकर (मस्तिष्कमें

पहुँचकर) अपने १० गुणों (लघु, उष्ण तीक्ष्ण, सूक्ष्म, अम्ल, व्यवायी आशुग, रूक्ष, विकाशी और विशद) से हृदयाश्रित (मस्तिष्क स्थिति) ओज के १० गुणों (गुरु शीत, मृदु, श्लक्षण, बहल, मधुर, स्थिर, प्रसन्न, पिच्छिल और स्निग्ध) को विक्षुब्धकर ओजश्रित सत्व (अत करणकी बुद्धि वृत्ति) में विकार उत्पन्न कर देती है। फिर थोडे ही समयमे मत्तता आजाती है।

मद्यका अत्यधिक मात्रामे सेवन करने पर प्रारम्भमे आनन्द और प्रसन्नता उपस्थित होती है। कामोत्तेजना होती है तथा मानस संस्कारके अनुरूप नानाप्रकारके चित्रविचित्र विकृत विचार उत्पन्न होते है। फिर मानसकेन्द्रमे शिथिलता आकर मोहनिद्रा (Coma) की प्राप्ति होती है। इस मद्यज मानस विकृतिको मद सज्ञा दी है।

मध्यम मद होनेपर बार बार स्मृति (विवेक ज्ञान) का, ह्रास, बारंबार ज्ञामलोप, कभी वाणी अस्पष्ट, कभी बोलते बोलते रुक जाना कभी वचन युक्तियुक्त और कभी असम्बद्ध प्रलाप तथा चक्कर आना आदि लक्षण उपस्थित होते है। इस अवस्थाकी दृढता होने पर रजोगुणी और तमोगुणी मनुष्योके लिये ऐसा कोई अशुभ कार्य नही है जो वह न कर सके अर्थात् निन्द्य और अनुचित कार्योमेसे जिस जिसके सस्कार उद्भूत होते है, वे कर ही डालते है।

फिर जब तृतीयावस्थाकी प्राप्ति होती है। तब शराबी टूटी हुई लकडी की तरह निश्चेष्ट होकर गिर पडता है और जीवित होते हुए भी मृतके सदृश बन जाता है। उसे संसार-व्यवहार, सुख-दु ख, हित अहित, या अच्छे बुरेका कुछ भी ज्ञान नही होता। इस अवस्थाको मोहजननावस्था (Narcosis) कहते है। इस अवस्थाकी प्राप्तिके पश्चात् थोडे ही समयमे निद्रा (Sleep) या बेहोशी (Coma) की प्राप्ति हो जाती है।

इन्द्रियक्रिया विज्ञानकी दृष्टिसे विचार किया जाय तो जब मादक औषधियोका सेवन करने पर मस्तिष्कमे रक्तसचालन अधिक हो जाता है, तब मनको दमन करनेकी शक्तिका ह्रास होता है। मनोवृत्ति बुद्धिकी अधीनता और सामाजिक मर्यादाका त्यागकर स्वेच्छाचारी बन जाती है। अधिक विकृति होने पर विचार शक्ति और स्मरण शक्तिका लोप हो जाता है किसी किसीको मानसिक विकृति होनेके पहले ऐच्छिक क्रियामें भी विलक्षणता आ जाती है। जिससे वाक्योच्चारणमे जडता और चलनेमे भी विचित्रता प्रतीत होती है। क्रमश सुषुम्णाकी प्रत्यावर्त्तन क्रियाका ह्रास होता जाता है, और अन्तमे श्वासोच्छ्वास क्रिया करने वाली वातवहा नाडियोंकी मूल (सुषुम्णास्थ केन्द्र) मे पक्षाघात उपस्थित होता है।

मादक औषधियाँ—शराब, ताड़ी, अफीम, भाग, गाजा, चरस, सूची

बूटी खुरासानी अजवायन, धतूरा, ईथर, क्लोरोफार्म आदि ।

शराबसे प्रारम्भमे मस्तिष्ककी रक्तसंचालन क्रिया उत्तेजित होती है। फिर मस्तिष्कके भिन्न-भिन्न केन्द्र अवसन्न होने लगते हैं। ताड़ीमे भी शराब के सदृश ही गुण प्रतीत होते है ।

भांग और गाजे द्वारा रक्तसंचालनमे विशेप उत्तेजना नही होती । वे केवल मस्तिष्कके भिन्न-भिन्न अंगमे परस्पर क्रियाका परिवर्तन कराकर कार्य करते हैं ।

खुरासानी अजवायन, सूचीबूटी और धतूरा आदिसे प्रबल प्रलाप उपस्थित होता है । रोगीका मन अति अस्थिर हो जाता है; और वह जड या उन्मत्त-सा बन जाता है ।

संज्ञा (चेतना शक्ति) का लोप कराने वाले ईथर और क्लोरोफार्मकी क्रिया भी अनेक अंशमे उग्र शराबके सदृश होती है ।

विशेषतः अधिक परिश्रमजनित थकावट दूर करने और तीव्र ज्वरोमें प्रलाप आदिके दमनके लिये उपर्युक्त मादक औषधियोंका सेवन कराया जाता है, एवं मस्तिष्क, हृदय, वृक्क, फुफ्फुस आदि स्थानोकी वेदना और मानसिक चिन्ताकी प्रतीति न होनेके लिये भी इन औषधियोका उपयोग किया जाता है ।

(७८) मोहजनन ।

नार्कोटिक्स—Narcotics

जो द्रव्य बेहोशी (Unconsciousness) ला देवे, उसे मोहजनन कहते है । इस द्रव्यकी क्रियाके प्रारम्भमे कुछ अंशमे मादक असर पहुँचता है । यह मोहजननावस्था एक प्रकारकी इन्द्रियोकी अवस्था है, जिसमे जीवित संस्थाके तन्तु या घटकोंकी सामान्य प्रतिक्रिया अथवा यान्त्रिक दृढ़ताका ह्रास या लोप कुछ कालके लिये होता है । यह बेहोशी सर्वदा कुछ अंशमे प्रतिफलित दमन युक्त होती है ।

यद्यपि निद्राजनन औषधिकी मात्रा अधिक होनेपर गम्भीर बेहोशी आनेके हेतुसे मोहजननावस्थाके समान असर प्रतीत होता है, तथापि इन दोनोमे अन्तर है। मोहजनन द्रव्यसे प्रारम्भमे जैसा मद आता है, वैसा असर निद्राजनन औषधिसे नही होता ।

यदि मोहजनन द्रव्यका सेवन सूक्ष्म मात्रामें कराया जाय, तो निस्तब्धता (Quietness) आती है; किन्तु अधिक मात्रामें तन्द्रा (Drowsiness), निद्रा, आंशिक बेहोशी (Stupor) और अन्तमें पूर्ण बेहोशी प्राप्त होती है । इस हेतुसे मोहजनन द्रव्य निद्रा लाने या शस्त्रचिकित्सामें संज्ञालोप करानेके लिये प्रयुक्त होते हैं ।

जब तक द्रव्यका पर्याप्त केन्द्रीकरण रक्तके भीतर रहता है, तब तक

मोहजनन असर दृढ रहता है, कोई भी मोहजनन द्रव्य मस्तिष्क घटकपर सीधा असर नही पहुँचा सकता । यदि मोहजनन द्रव्य उड्डयनशील है, तो उसका शोषण सत्वर होता है और फुफ्फुसप्रयत्न द्वारा त्याग भी जल्दी होता है । इसका असर अस्थिर होता है । दूसरे प्रकारके मोहजनन द्रव्य, जो उड्डयनशील नही है, उसका त्याग केवल वृक्कमार्गसे मर्यादित विस्तार मे होता है, जिससे उसका असर अधिक समय तक टिकता है ।

औषधियां—अफीम, गाजा, शराब आदि । अफीमका गुणधर्म पहिले न० ४ वातशूलघ्नमे लिखा है ।

(७९) संज्ञाहर ।

समोहन—चेतनाहर—अनेस्थैटिक्स—Anaesthetics

जो द्रव्य मस्तिष्क और सुषुम्णाशीर्षमे स्थित ज्ञाततनाडी केन्द्रोपर अथवा वातनाडियोके अन्त भागपर क्रिया करके बेहोशी ला देता है, सुख-दु ख और स्पर्शज्ञानका लोप उत्पन्न कराते है, उसे सज्ञाहर कहते हे । ये द्रव्य उड्ड्यनशील होते हैं इस वर्गमे मादक द्रव्य—शराब, अफीम, गाजा आदि का अन्तर्भाव नही होता । इस प्रकारकी औषधियोमे ३ वर्ग है । १ सार्वाङ्गिक (General) २ स्थानिक (Local) और ३. प्रान्तीक (Regional) चेतनाहर ।

सार्वाङ्गिक चेतनाहर औषधियो द्वारा मस्तिष्क और वातवहानाड़ियो के मूलमे अवसन्नता आकर समस्त शरीरकी चेतनाका लोप हो जाता है । समस्त अग संमोहित होनेपर मस्तिष्कमे बधिरता आ जाती है, फिर हृदय क्रिया, श्वसन आदि मूल क्रियाओको छोड शेष सब संचालन क्रिया और मानस व्यापारको मस्तिष्कसे संचालना नही मिलती; अथवा ज्ञान, संवेदना मस्तिष्क तक पहुँचनेपर भी उसका परिणाम मस्तिष्कपर नही होता ।

स्थान विशेषमे औषध प्रयोग करनेपर स्थानिक स्पर्शज्ञानका लोप होता है । इससे बेहोशी नही आती। वेदनामात्र और स्पर्श सवेदना मस्तिष्क तक नही पहुँचती तथा उनका बोध नही होता ।

किसी बडी नाडीके आसपास बधिरता लानेवाली औषधिका अन्तःक्षेपण द्वारा नाडीके विच्छिन्न भागकी वेदनाका लोप कराया जाता है । फिर चेष्टावाही (Motor) नाडियोका समाचार वहासे मस्तिष्कमें नही पहुँच सकता ।

इस संज्ञाहर द्रव्योके उपयोग, क्रियाविधि आदिका विचार कण परिचर्या प्रकरण ५ के अन्तिम भागमे किया है । सज्ञा और वेदनाका अनुभव होनेके लिये मस्तिष्क केन्द्र संज्ञावाही नाडिया और सुषुम्णा, तीनोकी विशेष अवस्थाकी आवश्यकता है । ये सब योग्य क्रियाशील रहनेपर संज्ञावाही वातवहानाडियोंकी मूलपर संज्ञाहर औषधियोंकी क्रिया समान भावसे

होती है। फिर परिणाममे वेदना, कष्ट, स्पर्शानुभव और प्रत्यावर्त्तन क्रिया, सबका लोप हो जाता है।

स्थानिक चेतनाहर औषधियाँ (Local Anaesthetics)—अधिक शीतलता, बर्फ, ईथर, कोकीन, हाइड्रोक्लोरेट, तार्पिन तैल, जटामांसी, तगर कार्वोलिक एसिड और तपाये हुए लोहा-पत्थर आदिका सेक आदि। आयडोफार्म भी इसी उद्देश्यसे व्यवहृत होता है।

ईथर द्वारा प्रयोग करनेपर शीतलताकी उत्पत्ति होकर सामान्य चिकित्सा करनेपर वेदनाका अनुभव नही होता।

इन औषधियोमें ईथर उत्तेजक चेतनाहर है। जल या वायुकी शीतलता, कोकीन और क्लोरोफार्म आदि अवसादक चेतनाहर हैं।

फोड़ेपर कार्बोलिक एसिड लगानेसे शूलजन्य वेदना लोप हो जाती है।

स्थानिक स्पर्शहारक औषधियां चर्मसे सम्बन्ध वाली वातवहा नाड़ियोंकी अन्त शाखाको अवसन्न करती है। एवं कुछ अंगमें रक्तवाहिनियोंके और इतर विधानके ऊपर भी कार्य करके स्पर्श शक्तिका लोप कराती है। अतः इनंका कण्डू निवारणार्थ और वेदनादमनार्थ व्यवहार किया जाता है। अति प्रबल वेदना और स्पर्शासहत्व यन्त्रणाके निवारणार्थ तथा सामान्य शस्त्र चिकित्साके निमित्त इन औषधियोंद्वारा स्पर्शलोप कराया जाता है।

क्वचित् किसी स्थानमे रक्तका परिमाण अत्यधिक हो जानेपर संज्ञावाही नाड़ियोके अन्तःशिराओमे उत्तेजना आ जाती है। जिससे उस स्थानमे स्पर्शासहत्व वेदना होती है, अर्थात् अंगुली लगानेसे पीड़ा की वृद्धि होती है। जैसे दाह-शोथ (प्रदाह) होनेपर उग्रताजनक औषधियोंका लेप किया जाय, तो उस स्थानपर स्पर्शासहत्व वेदना हो जाती है।

यदि वच्छनाग, वच्छनाग सत्व (Aconitine) या कलिहारीका रक्तमे संचार हो जाता है, तो जिह्वा, ओष्ठ, कण्ठ आदिमे झनझनाहट होने लगती है। ऐसे समयपर वेदनाके दमनार्थ स्थानिक स्पर्शहारक औषधियां प्रयोजित होती हैं।

अग्निमे लोहे, पत्थर आदिको तपाकर वेदना वाले भाग पर जल्दी-जल्दी फिरानेसे संज्ञावाही नाड़ियोके अन्तः भागमें अवसन्नता आकर कष्ट लोप हो जाता है।

सार्वाङ्गिक चेतनाहर औषधियाँ (General Anaesthetics)—संमोहिनी सुरा, क्लोरोफार्म, ईथर आदि। इनमेसे सुरा पिलायी जाती है; क्लोरोफार्म आदि सुंघाये जाते हैं। इस प्रकारकी औषधियोंके उपयोग द्वारा क्रमश. चार अवस्था उत्पन्न की जाती है— १. उत्तेजनावस्था; २. मादक और वेदना निवारणावस्था, अचेतनावस्था, और ४ अवसन्नावस्था।

(१) उत्तेजनावस्था—प्रारम्भमे सबसे उत्तम वृत्ति—कल्पनाशक्ति उत्ते-

जित होती है। रोगीको श्रवर्णनीय विचार उत्पन्न होते है, विविध दृश्योका अवलोकन करता है; एवं अनेक प्रकारके शब्द सुननेमे आते हैं। फिर अनियमित प्रलाप होने लगता है। इसी हेतुसे मस्तिष्कस्थ वल्क (Cerebral Cortex) और इतर संचालनविधायक केन्द्र उत्तेजित होते है। जिससे रोगीकी मुखाकृति विचित्र हो जाती है; एवं अगमे विकृति होती है। हाथ-पैर इधर-उधर पटकने लगता है। इस समयपर संभवत उन्नतर बुद्धि वृत्तिमें जो क्षणिक उत्तेजना आई है, वह स्थगित होती है।

इस अवस्थामें रक्तसंचालनकी वृद्धि होती है; फिर क्रमशः द्वितीयावस्थामें मत्तता उपस्थित होती है। वातशूल आदि रोगोंमे वेदना और आक्षेपके निवारणार्थ इन सार्वाङ्गिक चेतनाहर औषधियोका स्वल्प मात्रा में उपयोग किया जाता है। पित्ताश्मरीजन्य शूल, वृक्कशूल, अन्त्रशूल आदिमें जब तक मुख्य औषधिकी उत्तेजक क्रिया समाप्त होकर मादक अवस्थाका आरम्भ न हो; तब तक क्लोरोफार्म आदि औषधियोके प्रभाव की आवश्यकता है।

(२) मत्तावस्था—उक्त औषधियोंकी उत्तेजनावस्था उत्पन्न होनेकी अपेक्षा अधिक मात्रा देनेसे इस अवस्थाकी प्राप्ति होती है। इस अवस्थामे दर्शन शक्ति, श्रवण शक्ति और स्पर्श शक्तिका लोप हो जाता है, विवेक शक्ति बुद्धिकी अधीनताका त्याग करती है। रोगीको ऐसा भास होता है कि, मस्तिष्क खाली या हलका है। सहज ही बिना विचार हँसता-कूदता है; और स्वच्छन्दी बन कर मर्यादा रहित वर्त्ताव करने लगता है; तथापि प्रत्यावर्त्तन क्रिया नियमित रूपसे हो सकती है।

औषधसेवनकी अधिकतासे सचालन विधायक केन्द्र उत्तेजित होता है; और इसी हेतुसे हृदय क्रिया और श्वासोच्छ्वास क्रियामे भी वृद्धि हो जाती है। नाड़ीके स्पन्दन, श्वास सख्या और रक्तका दवाव, ये सब बढ़ जाते हैं; तथा मुख लाल हो जाता है। इसके पश्चात् उत्तेजनाके अनुरूप सब इन्द्रियोकी क्रिया क्रमशः अवसादित होने लगती है।

क्वचित् अतिशय उत्तेजनाके हेतुसे उग्र प्रलाप उपस्थित होता है, परन्तु यह अवस्था थोड़े ही समयमे अचेतनावस्थामे परिणित हो जाती है। प्रमवावस्थाकी वेदनाका ह्रास करानेके लिये इस द्वितीयावस्था पर्यन्त इन औषधियोका प्रयोग किया जाता है।

(३) अचेतनावस्था—इस अवस्थाकी प्राप्ति होनेपर प्रारम्भमे मस्तिष्कका उन्नतर अंश अवसन्न होता है। तेज प्रकाश, उग्र शब्द और शरीर पर प्रबल आघातका भी रोगीको भान नही होता। रोगी बिलकुल निश्चल हो जाता है, मांसपेशियां पूर्णांशमे शिथिल हो जाती है, श्वसन क्रिया गम्भीर और नियमित होती रहती है, तथा प्रतिफलित क्रिया लोप हो जाती है।

अत रोगीको किसी भी प्रकारकी वेदनाका अनुभव नहीं हो सकता। नाकमें तृण जाने पर छीक आना, कण्ठमे कुछ जाने पर खांसी आना, हिक्का आना, इन सबका लोप हो जाता है। पैरोके तलमें खुजलाने पर भी पैर नही सरकाता, अक्षि झिल्लीको स्पर्श करने पर भी नेत्रपल्लव बन्द नही करता। एवं कनीनिका कुञ्चित होती है, वह तीव्रप्रकाश पड़नेपर भी जैसेकी तैसी ही रहती है।

सावधानतापूर्वक रोगीको इस अवस्थामें कुछ समय तक रक्खा जाता है। औषध प्रयोग इसकी अपेक्षा भी अधिक मात्रामे होने पर चतुर्थी अवस्था अवसन्नताकी प्राप्ति हो जाती है?

धनुर्वात, श्वानविषप्रकोप आदि रोगोमे मासपेशियो के सकोच को शिथिल कराने और वेदना ह्रास करानेके लिये इस तृतीयावस्थाकी प्राप्ति करायी जाती है। पित्तनलिकाने अश्मरीजन्य शूल, वृक्कशूल और प्रसवकाल मे अस्त्रचिकित्साकी पीडाका भान न होनेके लिये इस अवस्थामे रोगीको रक्खा जाता है। एव उतरी हुई हड्डीको यथास्थान स्थापित करने, टूटी हुई हड्डीको जोडने, अन्त्रावतरणको दूर करने तथा उदरमे रहे हुए यन्त्र, आंतरविद्रधि और इतर स्पर्शासहत्व स्थानकी परीक्षा करने आदि हेतुओसे भी इस अवस्थाकी प्राप्ति कराई जाती है।

(४) अवसन्नावस्था—यह अतियोग (Overdose) युक्त अवस्था है। यदि किसी रोगीकी इसो अवसन्नावस्थाकी प्राप्ति हो जाती है, तो शरीरकी सब अनैच्छिक मांसपेशियोका बल और प्रतिफलित उत्तेजनाशीलताका लोप हो जाता है। इस हेतुसे लघु अन्त्र और मूत्राशयअवराधक मांसपेशिया शिथिल हो जाती है। मस्तिष्क और सुषुम्णामे रहा हुआ श्वासोच्छ्वास क्रियाका केन्द्र स्थान दोनो पक्षाघात ग्रसित हो जाते है। फिर श्वासोच्छ्-वास खण्डित और उथला तथा नाडी अतिशय क्षीण, मन्दगामी और अनि-यमित होती है। एव हृत्स्पन्द भी अतिक्षीण हो जाता है, अथवा क्वचित् बन्द हो जाता है।

सूचना—इन औषधियोके प्रयोगो मे निम्नानुसार विपत्तियां उपस्थित हो जाती हैं। अत: रोगीकी शारीरिक शक्तिका विचार कर सम्हालपूर्वक प्रयोग करना चाहिये।

१ मात्रा अधिक हो जानेपर मुखमण्डल नीला होता है। ऐसे समय पर श्वासोच्छ्वास क्रियाका अवलम्बन किया जाता है।

२ क्लोरोफार्मके साथ यथोचित वायु मिश्रित न होनेपर हृदयक्रियाका लोप हो जाता है। ऐसा होनेपर मस्तिष्कसे पैर ऊँचा रहे उस तरह रोगी को शयन करा अमिल नाइट्राइडकी कुछ बूँद वस्त्र या कागज पर डाल श्वास द्वारा फुफ्फुसोमे प्रवेशित करानी चाहिये।

३. बृहदस्त्र चिकित्सामे क्वचित् क्लोरोफार्म जनित मत्तता या अन्त्रके अघातजन्य अवसाद (मूर्च्छा) की प्राप्ति होकर हृदयक्रिया लोप हो जाती है ।

४. औषध प्रयोगकालमें वमन न होनेके लिये अस्त्रचिकित्साके कुछ घटो पहिलेसे रोगीको कुछ भी भोजन नही देना चाहिये और अन्त्रको रिक्त कर लेना चाहिये ।

५. सज्ञाहर प्रयोगके हेतुसे अस्त्रचिकित्साके पश्चात् उबाक, सामान्य-वान्ति, क्लोरोफार्मके विषसे वमन (Delayed Chloroform Poisoning), वेदना व्याकुलता (Resdlessness), श्वसनमार्गमे प्रदाह, श्वास संस्थामे दुर्गन्ध, रक्त, पूय आदिका आकर्षण, महाप्राचीराके निम्न भागमे आघात होकर वेदनासह और अगम्भीर श्वसन, अनियमित श्वसन जमे हुए रक्तका फुफ्फुस मार्गमें प्रवेश होकर उस स्थानको रक्ताभिसरणका निरोध होना, हृदयपेशीकी निर्वलताके हेतुसे फुफ्फुस शोथ होना, अफारा, आमाशयका प्रसारण आदि उपद्रव उपस्थित होते है । इनकी प्राप्ति न होनेके लिये पहिलेसे सम्हाल रखना चाहिये ।

(८०) निद्राहर ।

निद्रानाशक—एण्टहिप्नोटिक्स-एण्टिलेथार्जिक्स ।
Anthypnotics-Antilethargics.

जो द्रव्य अस्वाभाविक निद्रा और अति निद्रा (तन्द्रा) का दमन करे, उसे निद्राहर कहते है ।

औषधियाँ—लोहभस्म, अभ्रकभस्म, पूर्णचन्द्रोदय रस, रससिन्दूर आदि पौष्टिक औषधियां, बादामका तेल, मक्खन, मृदुविरेचन, कुचिला आदि हृद्योत्तेजक औषधियाँ, चाय, कॉफी, गरम जल, विशुद्ध वायु तथा मानसिक विश्रान्ति आदि ।

अति निद्रा तन्द्रा और निद्राकी अस्वाभाविकताके अवरोधार्थ कारणके अनुरूप भिन्न-भिन्न औषधिया, दी जाती हैं । वातवहा नाडियाकी निर्बलता मे अभ्रक, लोह और च्यवनप्राशावलेह आदि पौष्टिक औषधिया, बादामका तैल, एवं मानसिक विश्रान्ति आदि हितकर है ।

कोष्ठवद्धताजनित विकारमे मोटे आटेकी रोटी, लघु पथ्य भोजन, व्यायाम, मृदुविरेचन, और विशुद्ध वायुका सेवन करना चाहिये ।

हृदयकी निर्बलतामे हृदयपौष्टिक औषधिया—सुवर्ण, पूर्णचन्द्रोदय, रस सिंदूर, अभ्रक, कुचिला आदि उपकारक है ।

अफीम, गांजा आदिके विषप्रकोप निद्रा या तन्द्रामे विपन्न औषधिया और कॉफी आदि लाभदायक है ।

(८१) व्यवायी ।

पूर्वं व्याप्याखिलं कायं ततः पाकं च गच्छति ।
व्यवायि तद् यथा भङ्गा फेनं चाहिफेनकम् ॥

जो द्रव्य अपक्वावस्थामें ही देहमे व्याप्त होते हैं, फिर धात्वग्नि द्वारा पचन होते हैं, उनको व्यवायी कहते हैं। जैसे भांग, अफीम शराब, बच्छनाग आदि विष।

आशुकारी, व्यवायी, विकासी आदि गुण-द्रव्य सत्वर रक्तमें शोषित होते हैं और रक्ताभिसरण द्वारा समस्त अगोमे फैल जाते हैं। शराब विष आदि द्रव्य रक्तमे प्रवेशकर फिर सब घटकोंमें पहुँच जाते हैं और अनेक यन्त्र और इन्द्रियोपर अपना प्रभाव दर्शाते हैं। विशेषतः इन व्यवायी औषधियोंका चिकित्साप्रयोग वेदनाशमन और उत्तेजनार्थ किया जाता है। इन दोनों गुणोंकी दृष्टिसे विवेचन पहिले वेदना स्थापन नं० ४५ और उत्तेजक नं० ७५ मे किया है। अनेक वार दुःख और शोक-चिन्ताकी निवृत्तिके अर्थ मोहजनन असर उत्पन्न करानेके लिये भांग, गांजा, अफीम, शराब आदिका सेवन कराया जाता है। इसका विवेचन नं० ७८ मे किया है। इनमेसे अनेक औषधियोका अधिक मात्रामे सेवन करनेपर विषप्रकोपके लक्षण प्रकाशित होते हैं। इसका विवेचन पहिले न० ३८ विषवर्गमें किया है।

भांगको भावप्रकाशकारने कफहर, तिक्त, ग्राही, आमपाचक, लघु तीक्ष्ण, उष्ण, पित्तवर्द्धक, मादक, मोहवर्द्धक, वाणीवर्द्धक और अग्निप्रदीपक कहा है। डाक्टरी मतानुसार भांग और गांजा मस्तिष्क उत्तेजक, मादक, निद्राप्रद, वेदनानिवारक, आक्षेपनिवारक, कामोद्दीपक और गर्भाशय संकोचक हैं।

भांगकी अपेक्षा गांजेमे अधिक उग्रता है। ये आक्षेपक वात (पागल कुत्तेके विषजनित आक्षेप और वेदना), संग्रहणी, अतिसार, आमाशयव्रणजन्य पीड़ा, कालीखांसी, मासिकधर्ममें अधिक रक्तस्राव, मासिकधर्ममे वेदना (पीड़ितार्त्तव), निद्रानाश, शिरदर्द; आशुकारी और चिरकारी वृक्कप्रदाह, विषमज्वर, भूतोन्माद (Catalepsy) और वातशूल आदि रोगोमें प्रयोजित होते हैं। मदात्यय रोगमे ये विलक्षण उपकार दर्शाते हैं। मस्तिष्क कोमल हो जाना (Softening), इस रोगमे रात्रिको प्रलाप होता है। वह प्रलाप भांग या गांजाके सेवनसे सत्वर शमन हो जाता है। अर्शकी पीड़ा शमन करनेके लिये भांगका धुआ दिया जाता है; और भांग की पुल्टिस करके बांधी जाती है।

भांग और गाजेका औषध रूपसे सदुपयोग किया जाय, तो ये दिव्य औषधियां हैं; परन्तु दुरुपयोग करने एव व्यसन करके बद्ध होनेपर विविध प्रकारसे शारीरिक और मानसिक हानियां भी पहुँचाते है।

(८२) विकाशी।

एण्टिस्पेज्मोडिक्स—Antispasmodics.

सन्धिबन्धांस्तु शिथिलान् यत् करोति विकाशि तत् ।
विश्लिष्योजश्च धातुभ्यो यथा क्रमुककोद्रवाः ॥

जो द्रव्य संधिस्थानके बन्धनोको शिथिल करता है तथा धातुओंमेसे ओज (धातुसत्व) को पृथक करता है, उसको विकाशी कहते हैं। जैसे सुपारी और कोदों धान्य ।

विकासीके लिये सुश्रुत संहिताकारने लिखा है कि, "विकासी विकसन्नेवं धातुबन्धान् विमोक्षयेत्" जो द्रव्य अपक्वावस्थामे ही सारे शरीरमे फैलकर धातुबन्धो (धातुओं) को शिथिल करता है, उसे विकासी कहते हैं। व्यवायी द्रव्य भी पचन होनेके पहिले देहमे सर्वत्र फैल जाता है, किन्तु वह सन्धिबन्ध और धातुओंको शिथिल नही करता, यह दोनोमे अन्तर है ।

इस वर्गके द्रव्योंकी क्रिया अनेक प्रकारसे होती है। इस दृष्टिसे इसके अनेक विभाग होते है । इनका वर्णन न० २ वाताक्षेपघ्न प्रकरणमे दर्शाया है ।

औषधियां--सुपारी, कोदों धान्य, बच्छनाग, तमाखू, पद्मकाष्ठ, कस्तूरी, जटामांसी, ब्राह्मी, प्याज, सोमल, कूठ, गाजा, सोम, सूचीबूटी, धतूरा, खुरासानी अजवायन, लौग, इलायची, तगर, हीग, अफीम, कपूर आदि उदरवातहर औषधियां ।

जब आमवात, वातरक्त, उपदंश आदि व्याधिजनित सन्धिवात, अम्लपित्त अधिक प्रवास, व्यायाम, अम्ल विपाकवाले पदार्थोंका अधिक सेवन आदि कारणोसे सन्धि स्थानोंमे क्षार सचित होकर माशपेशियां आक्षेप पीडित होकर या सन्धि स्थानोकी नाडियां खिचकर वेदना होती हो, तव सन्धिबन्धनोमे प्रवेश करनेवाली विकासी औषधि ही लाभ पहुँचा सकती है।

सूचना—शराब, गांजा, धतूरा आदि विकासी, उष्णवीर्य और तीक्ष्ण औषधियोके सेवनसे मस्तिष्क विकृति भी हो जाती है; अतः इन वस्तुओ का उपयोग मर्यादामे ही करना चाहिये ।

(८३) प्रमाथी ।

स्रोतासि दोषलिप्तानि प्रमथ्य विवृणोति यत् ।
प्रविश्य सौक्ष्म्यात् तैक्ष्ण्याच्च तत् प्रमाथीति संज्ञितम् ॥
निज वीर्य्येण यद् द्रव्य स्रोतोभ्यो दोपसंचयम् ।
निरस्यति प्रमाथि स्यात् तद्यथा मरिचं वचा ॥

जो द्रव्य अपने सूक्ष्म, तीक्ष्ण और व्यापक गुणके हेतुसे स्रोतसोंमे प्रवेश कर चिपके हुए मलका मंथनकर पृथक् कर देता है, उसे प्रमाथी संज्ञा दी है।

जो द्रव्य अपने वीर्यसे (प्रभावसे) रस-रक्तादि वाहिनियो द्वारा तथा कर्ण मुख, नासिका, नेत्र आदि मार्गसे संगृहीत मलको निकाल देता है, उसे प्रमाथी कहते है, जैसे कालीमिर्च, वच आदि ।

औषधियां—कालीमिर्च, वच, अकरकरा, पीपल, पीपलामूल, नीलगिरी

तैल, तार्पिन तैल, पीपरमेण्टका तैल, शराव, पारद, मोमल, हरताल आदि।

उपदंश आदि रोगजन्य विकृति और दूषित पारद आदि औषधजनित विषप्रकोप या कीटाणु-कृमि आदि हेतुसे सूक्ष्म-सूक्ष्म नाड़ियोमें मल संगृहीत हो जाता है। तब उसे निकालनेके लिये प्रमाथी गुणयुक्त औषधि दी जाती है।

बच—चिपके हुए कफदोषको उखाड़कर बाहर निकालता है। सोंठ, मिर्च, पीपल आदि दीपन औषधियां दोषोको जलानेवाली हैं; और वे शहद गुड़ आदिके योगसे दोषको बाहर भी निकालती है।

जवाखार, केलेका क्षार आदि औषध दोषोके जलाने तथा प्रस्वेद और मूत्र द्वारा बाहर निकालनेमे सहायक होती है। इन क्षारोमे छेदन (कफघ्न) गुण भी रहता है। इस गुणका वर्णन न० १० मे किया है।

(८४) अभिष्यन्दो।

पैच्छिल्याद् गौरवाद् द्रव्यं रुद्ध्वा रसवहाः शिराः।
धत्ते यद् गौरवं तत् स्यादभिष्यन्दि यथा दधि॥

जो द्रव्य पिच्छिल और गुरु गुणयुक्त होनेसे (या गुरु पाकी होनेसे) रस वाहिनियोके मार्गको रोकर शरीरमे भारीपन ला देवे, उसको अभिष्यन्दी कहते हैं, जैसे दही।

अभिष्यन्दी द्रव्य बहुधा क्लेदकी प्राप्ति कराता है। अतः इसे कफवर्द्धक कह सकेगे। कफ प्रकृति वालोंको तथा कफ प्रकोप वालोको इसका सेवन कम करना चहिये।

औषधियाँ—खट्टा दही, कटहल, केला, मत्स्य, अण्डे, नयें चावलोंकी विलेपी, पिट्ठीके पदार्थ, खोवा, गोदका प्रवाही, तालमखाने, इस्सबगोल, बिहदाना आदि चिपचिपी औषधियोका लुआब, पायस (खीर) आदि स्निग्ध भोजन।

विषप्रकोप, काँच आदिके सेवनसे अन्त्र आदिमें रक्तस्राव; शराव, सिरका या अन्य अन्तर्दाह, पित्तप्रकोप और भस्मकरोग आदि विकारोमें अभिष्यन्दी गुणयुक्त औषधियोका सेवन कराया जाता है।

डाक्टरी मतानुसार विषप्रकोपके सरक्षणार्थ जो औषधि सेवन करायी जाती है, उसे यान्त्रिक विषशामक (Mechanical Antidotes) कहते हैं। इस श्रेणीकी औपधियोका विवेचन पहिले नं० ३९ विषशामक प्रकरण मे किया है।

(८५) वर्ण्य।

जो द्रव्य वर्णकर अर्थात् शरीरके रगको सुधारने वाले हो, उनको वर्ण्य और वर्णप्रसादन कहते हैं। अनेक रोगोमे देहका रंग विगड़ जाता है। तब इस वर्गकी औपधियोका सेवन कराया जाता है। सुश्रुत सहितामे लोध्रादि गण (वर्णन नं० ५० मे) तथा एलादि गण (वर्णन नं० ३७ में) को वर्ण-

प्रसादन लिखा है ।

औषधियाँ—सुवर्णभस्म, बंगभस्म, सुवर्णमाक्षिक भस्म, राजावर्त्त पिष्टी, हीरा आदि रत्नोकी भस्म, रक्तचन्दन, नागकेशर, हल्दी, पद्माख, पुन्नाग, खस, मुलहठी, मजीठ, अनन्तमूल, क्षीरकाकोली, विदारीकन्द, दूब, शक्कर, लोध, कूट, बड़के अंकुर, मसूर, पद्मकेशर गिलोयसत्व, जायफल, जावित्री, केशर इत्यादि तथा सोमल, हरताल, पारद गन्धक आदि कीटाणुनाशक ।

सामान्यतः शीतप्रधान देशवासियोकी त्वचा रक्ताभ-श्वेत, उष्ण प्रधान देशवासियोकी त्वचा कृष्ण तथा मध्यम देशवासियोंकी त्वचा गेहूके रंग जैसी होती है । शीतल देशवासियोकी त्वचा शीत अधिक सह सकती है और उष्ण देश वासियोकी त्वचा उष्णता अधिक सह सकती है । दोनो देशवासियोकी रक्तरचनामे रजन द्रव्यके परिमाणमे अन्तर रहता है । इस हेतुसे भी त्वचा गौर और श्याम भासती है ।

त्वचाके रंगका आधार रक्त, रक्तस्थ रंजनद्रव्य पित्त और ओजपर स्थिर है । रक्तकी स्वस्थता या विकृति रजन द्रव्य या पित्तकी न्यूनाधिकता तथा ओजकी स्थिति अनुरूप त्वचाके रग और कान्तिमे अन्तर हो जाता है। सामान्यतः मुखमण्डल, नेत्र और नाखूनपरसे स्वाभाविकता और अस्वाभाविकताकी कल्पना हो जाती है । अधिक शीत लगनेपर त्वचा फट जाती और निस्तेज हो जाती है । एवं सूर्यका ताप अधिक लगनेपर त्वचा श्याम हो जाती है ।

मधुर रसप्रधान भोजन और औषधि (शतावरी, सारिवा, विदारीकन्द तालमखाना, मूसली, मुलहठी आदि) रसरक्त आदि धातुओको पुष्ट करती है । इस हेतुसे त्वचाको भी पोषण मिल जाता है तथा ओजकी वृद्धि होती है । परिणाममे त्वचा सुन्दर भासती है । मन चिन्ता और शोक-संतप्त रहने पर मुखमण्डल निस्तेज हो जाता है । इसके विपरीत मन प्रफुल्लित रहनेपर त्वचाकी कान्ति बढती है । कितनेही कषाय रसप्रधान, मधुर विपाकी, शीतवीर्य तथा रक्त और पित्तसंशोधक द्रव्य त्वचाका रंग सुधारते है । उदहरणार्थ-कमलकद, वड़के अंकुर, केशर, जावित्री, लोध, हरीतकी, कपूर, चन्दन, खस आदि ।

इस प्रकारकी औषधियोंके सार्वाङ्गिक और स्थानिक, ऐसे दो विभाग है । सार्वाङ्गिक प्रयोगार्थ औषधि खाने या पीने और मर्दन करनेको दी जाती है; तथा स्थानिक प्रयोग रूपमे तैल, लेप मलहम, उबटन, (उद्वर्त्तन) आदिका उपयोग किया जाता है ।

रक्तविकार, अनेक प्रकारके संक्रामक रोग, उपदंश, सुजाक, अम्लपित्त, पित्तप्रकोपजन्य अनेक व्याधियां, चर्मरोग आदि विकारोंमे सारे शरीरकी त्वचा मलिन श्याम हो जाती है । कितनेही रोगोमे मर्दन करनेपर बाह्य

त्वचाके टुकड़े टूट-टूट कर निकलने लगते हैं। मुखमुद्रा काली निस्तेज हो जाती है। ऐसे समयपर औषधका अन्तर्बाह्य दोनों प्रकारसे उपयोग किया जाता है। अन्तर प्रयोगार्थ बहुधा सुवर्ण भस्म, सुवर्णमाक्षिक भस्म, अनन्तमूल, क्षीरकाकोली, विदारीकन्द आदि शीतल और वर्ण्यकर या सोमल आदि कीटाणुहर औषधि तथा बाह्य प्रयोगार्थ रक्तचन्दन, खस, नेत्रवाला, मजीठ, कूठ, पद्मकाष्ठ आदि-आदि औषधियोसे बने हुए सिद्ध तैलका उपयोग होता है। रक्तचन्दन, मसूर आदि औषधिका लेप और उद्वर्त्तन भी लाभदायक है। उद्वर्त्तनका वर्णन चिकित्सातत्व प्रदीप प्रथम खण्ड पृष्ठ १३३-१३४ में देखे।

शरावका अत्यधिक सेवन करनेपर त्वचा काली होगई हो,तो राजावर्त्त पिष्ठी, सुवर्णमाक्षिक भस्म, मौक्तिक भस्म और प्रवालपिष्टी आदि का सेवन लाभदायक है। कुटकी, पुनर्नवा और गिलोयका क्वाथ अनुपान रूपसे दिया जाता है। एवं मालिशके लिये भी चन्दन आदि तैल साबुन और बेर,चमेली, नीम आदिके पत्तोंके जलका मिश्रण (मदात्यय रोगीको), लाभदायक है।

शस्त्र आदिके घाव, व्रण, विद्रधि, तेजाब, अग्नि आदिसे जल जाना, चर्मरोग, मसूरिका आदि व्याधियोंके हेतुसे त्वचा विकृति हो जानेपर रक्त-चन्दन, लोध्र आदि औषधियोका लेप किया जाता है।

मुखकी कान्ति नष्ट हो जानेपर या तारुण्यपिटिका आदि रोग होनेपर मुखमण्डलपर लेप, तैलमर्दन आदि प्रयोग किये जाते हैं। मुख लेप का वर्णन चिकित्सातत्वप्रदीप प्रथम खण्ड पृष्ठ १२८ मे देखे।

तेलाभ्यङ्गसे त्वचाका वर्ण सुन्दर बन जाता है, और त्वचाकी शुष्कता, कण्डू, वातविकार, मैल बढना आदि दोषोकी निवृत्ति हो जाती है।

सूचना—आमसह व्याधियां, कफवृद्धि तरुण ज्वर, अपचन और संत-र्पणजनित रोगोंमे तथा वमन, विरेचन और निरूहण बस्ति करनेपर तैल-मर्दन नही करना चाहिये।

प्रतिदिन स्नान करनेसे देहका वर्ण उज्वल बन जाता है, अग्नि प्रदीप होती है, मनोवृत्ति प्रसन्न रहती है, कण्डू, मैल, प्रस्वेद, परिश्रम, आलस्य, तृषा, दाह, चर्मरोग और रक्तविकारका नाश होता है।

परन्तु स्नान कैसे करना चाहिये, कब करना चाहिये, कौन अधिकारी, कौन अनधिकारी, स्नानके पहिले कर्त्तव्य, स्नानके पश्चात् कर्त्तव्य, इन सब बातोकी भलीभाति समझकर स्नान करनेसे पूरा लाभ मिल सकता है। इस विषयका विस्तृत विवेचन "चिकित्सातत्वप्रदीप प्रथम खण्ड" पृष्ठ १३० से १३३ तक किया गया है।

(८६) कण्ठय।

जो द्रव्य कण्ठस्थ विकृतिको दूर कर उस स्थानको सबल बनावे और

स्वरको सुधारे उसे कण्ठय कहते है। कण्ठ (स्वरयन्त्र) श्वासवाहिनीके ऊपर है। वह श्वसन संस्थाका अवयव होनेसे कफ धातुका स्थान माना जाता है, उस स्थानपर कार्य करने वाली औषधियां विशेषत: कफघ्न होती है। इनके अतिरिक्त स्वर सुधारक कुछ औषधियां शीतवीर्य, पित्तप्रकोपहर और कफधातु रक्षक होती है।

कण्ठय औषधियाँ—चरक संहितामे कण्ठय कषायवर्गमे सारिवा, ईख की जड़, मुलहठी; पीपल, मुनक्का, विदारीकन्द, महानिम्ब, हंसराज, बड़ी कटेली और छोटी कटेली, ये १० औषधियां कही हैं।

इनके अतिरिक्त औषधियाँ—जसद भस्म, सुवर्ण भस्म, मुक्तापिष्टी, प्रवालपिष्टी, कुलिंजन, अदरख, चमेलीके पत्ते, चिरमीके पत्ते, कत्था, मिश्री, सौफ, लौंग, इलायची, दूध, मक्खन, गोघृत, शहद, वासा, बहेडा आदि।

प्रतिफलित कफनि:सारक औषधिया, जिनको मुखमें रखकर रस चूसा जाता है, उनमें भी कण्ठय गुण रहता है।

आवाज विकृति वातप्रकोप, पित्तप्रकोप, कफप्रकोप आदि अनेक कारणोंसे होती है। यदि अधिक देर तक बोलने या बड़ी आवाजसे बोलने के हेतुसे उदान वायु प्रकुपित होकर आवाज बैठ गई हो, तो कत्था, मिश्री, मुलहठी, मुनक्का, चिरमीके पत्ते, शतावरी आदि औषधियां प्रयोजित होती हैं।

पित्तप्रकोप, सूर्यके तापमें भ्रमण, गरम-गरम पेय या भोजनका सेवन, तीक्ष्ण पदार्थोंका सेवन आदि कारणोसे स्वरयन्त्रमे उग्रता उत्पन्न हुई हो, तो दूध, मक्खन, बनफसा, सारिवा मुनक्का, मुलहठी, मिश्री, सौफ, इलायची, वंशलोचन आदि व्यवहृत होते है।

श्वसन संस्थामे या स्वरयन्त्रमें दूषित कफ संगृहीत हुआ हो तो वामक या उत्तेजक कफघ्न औषधियोका प्रयोग होता है। दोनोका वर्णन पहिले नं० २१ और नं० १० मे किया गया है।

कभी कण्ठस्थ मांसपेशीमें शिथिलता आ जाती है, तब उसे सुदृढ़ बनानेके लिये बहेड़ा, लोध, हरड़, कत्था, वंशलोचन आदि कषायरस प्रधान औषधियोंका उपयोग किया जाता है।

यदि अधिजिह्वा, उपजिह्वा अथवा गलशुण्डिका आदि रोगोंमें शुष्क त्रासदायक कास हुई हो और आवाज विकृति हो गई हो तो मौक्तिक और प्रवालपिष्टी उपकारक मानी गई है।

यदि क्षय, कफप्रकोप या लसिका ग्रन्थियोकी विकृति होने पर उपद्रव रूपसे स्वरसाद और स्वरभंग आदि लक्षण उत्पन्न हुए हों, तो जसद भस्म लाभदायक मानी जाती है।

(८७) अर्शोघ्न ।

जो द्रव्य ववासीरमे उत्पन्न मस्सेको नष्ट कर और नूतन उत्पत्तिको रोके उसे अर्शोघ्न या अर्शनाशक कहते है ।

चरक सहिता कथित अर्शोघ्न गण—कुटकी छाल, बेल, चित्रकमूल, सोठ, अतीस, हरड, धमासा, दारुहल्दी, बच और चव्य, ये औषधिया कही हैं।

इतर औषधियाँ—ताम्र भस्म, लोह भस्म, शिलाजीत, नागभस्म, पन्ना, पुखराज, जमीकन्द, भिलावा, कुचिला, रसोत, छोटी दूधी, रीठा, नीमके फल, वकायनके फल, उतरणके पत्ते, वनगोभी, काले तिल, थूहरका दूध, पीलूके फल, कुकरौंधा, मक्खन, मट्ठा आदि ।

मलावरोध हो, तो दूर करनेके लिये हरड, एरण्ड तैल, गुलकन्द, मुनक्का आदि औषधि दी जाती है, पचनक्रिया सबल बनानेके लिये दीपन औषधियाँ—ताम्र भस्म, चित्रकमूल, भिलावा, जमीकन्द, इन्द्रजव, सोठ, अतीस, थूहरक्षार, मट्ठा आदि व्यवहृत होती है । स्थानिक रक्ताभिसरण क्रिया सुधारने और मस्सेको नष्ट करनेके लिये लोहभस्म, जमीकन्द, चित्रकमूल, भिलावा, मट्ठा आदि उपकारक है । रसस्राव होता हो तो रोकनेके लिये मक्खन, मट्ठा, रसोत, कुकरौंधा आदि तथा स्थानिक वेदना दूर करनेके लिये स्थानिक उपचार किया जाता है ।

सामान्यत: इस रोगकी सब औषधियोमे मट्ठा श्रेष्ठ माना है । केवल मट्ठेका सेवन (तक्रकल्प) करनेसे अर्श ग्रहणी आदि अनेक रोग समूल नष्ट हो जाते है ।

इस रोगमें अन्तर-वाह्य दोनों प्रकारकी चिकित्साकी आवश्यकता है । तीक्ष्ण पीडाके शमनार्थ, भाँग, सापकी केचुली, ऊंटके मेंगणे, मनुष्य केश, भैंसके सीगके अकुर, देवदाली, लोवान, कुचिला, बड़ी कटेलीके फल, आदि औषधियोमेसे एक या अनेक मिलाकर धुँआ दिया जाता है । भाँग दैवदालीके फल, वच आदिकी लुगदीसे सेक भी किया जाता है । एव विविध पुल्टिस लेप तैल, मल्हम आदिका प्रयोग किया जाता है तथा हुक्के के सडे हुए जलसे आवदस्त लिया जाता है ।

इस अर्श रोगके निदान, चिकित्सा पथ्यापथ्य आदिका विस्तृत विवेचन 'चिकित्सातत्वप्रदीप' प्रथम खण्डमे किया गया है ।

(८८) कासहर

जो द्रव्य खांसीके वेगको शमन करे उसे कासहर कहते है । सुश्रुत सहितामे विदारी गन्धादि गण (न० १ वातदोषघ्नमे) और सुरसादि गण (नं० २ कफ दोषघ्नमे), इन दोनोंको कासहर कहा है ।

अन्य औषधियाँ—अभ्रक भस्म, शृङ्ग भस्म, शङ्ख भस्म, लोह भस्म, मौक्तिक पिष्टी, प्रवाल पिष्टी, सुवर्ण भस्म, मुनक्का, हरड़, आंवला, पीपल,

धमासा, काकड़ासिंगी, छोटी कटेली, वंसलोचन, सौंफ इलायची, गोंद, वच, बहेडा, कत्था, अफीम, सफेद पुनर्नवा, लाल पुनर्नवा, भुंई आवला, भारंगी लौंग, कालीमिर्च, पीपलामूल, शहद, मिश्री, गुड आदि ।

कासके २ प्रकार है। फुपफुस, फुफ्फुसवाहिनी या स्वरयन्त्र आदिकी स्थानिक श्लैष्मिककलामे उग्रता आनेसे शुष्क कास चलती है। दूसरा प्रकार फुफ्फुसादिमेसे कफ आदि मलको बाहर निकालनेके लिये उत्पन्न कास। इनमें प्रथम प्रकारमे कज्जली, लोहभस्म, मुक्तापिष्टी, प्रवालपिष्टी, सुवर्णभस्म कत्था, गोंद, वंशलोचन, इलायची, सौफ, आदि शामक औषधिया व्यवहृत होती हैं। द्वितीय प्रकारमे अभ्रक भस्म, वच, कटेली, लौंग, आदि उत्तेजक औषधियोंका उपयोग होता है। कभी कभी रात्रिको निद्रामे बाधा न होने के लिये द्वितीय प्रकारमे भी अफीम जैसी शामक औषधि देनी पड़ती है।

फुफ्फुस कोष, श्वास नलिका, स्वरयन्त्र, नासिका आदिमेसे किस स्थान पर विकृति हुई है, और क्या विकृति हुई है ? इस बातका निर्णय कर विकार अनुरूप चिकित्सा करनी चाहिये ।

अनेक बार ज्वर, राजयक्ष्मा, उरस्तोय, हृदावरण प्रदाह, उदर्य्याकला प्रदाह और कण्ठरोग आदि व्याधियोमे गौणव्याधि (लक्षण) रूपसे कास उत्पन्न होती है। ऐसे समयपर मुख्य रोगकी औषधिके अनुकूल कास की चिकित्सा करनी चाहिये ।

इस कास रोगका विशेष विचार 'चिकित्सातत्वप्रदीप' द्वितीय खण्डमे किया गया है।

(८९) श्वासहर

जो द्रव्य श्वासोच्छ्वासमे होने वाले अवरोध और श्वास प्रकोपको दूर करे, उसे श्वासहर कहते हैं। सुश्रुत संहितामे विदारीगन्धादि गण (नं० १ वात दोषघ्नमे), सुरसादि गण (नं० ९ कफ दोषघ्नमे) तथा दशमूल को श्वासहर कहा है।

चरक संहिता कथित श्वासहर कषाय —शठी, पुष्करमूल, अम्लवेत छोटी इलायची, हींग, अगर, तुलसी, भुंईआंवला जीवन्ती और चण्डा (चोरहुली) ये १० औषधियां कही हैं।

इतर औषधियाँ—अभ्रक भस्म, शृंग भस्म, मैनसिल, सोमल, सूची बूटी, अफीम, भारंगी, काकडासिंगी, कटेली, धतूराके बीज, आकके फूल, अडूसा, नौसादर, अपामार्गक्षार, कलमीशोरा, वच और शहद आदि ।

श्वासकृच्छ्रता (Dyspnea) होनेके मुख्य हेतु—

(१) स्वर यन्त्रके विद्रधि, प्रदाह, आक्षेप या इतर विकार ।

(२) स्वर यन्त्र या मुख्य श्वासनलिका पर दबाव ।

(३) हृदय और फुफ्फुसोंकी विविध वेदना ।

(४) आमाशयादि पचनेन्द्रियकी विकृति।

कभी कभी स्वर यन्त्रमे अत्यधिक अवरोध होनेपर श्वासग्रहणमें या श्वासत्यागमे कष्ट होता है। क्वचित् यह कष्ट इतना अधिक हो जाता है कि, रोगीकी स्थिति अति दयाजनक हो जाती है। यदि श्वासोच्छ्वास अत्यन्त तेज हो तथा चेतना और ज्ञानमे कुछ भी विलक्षणता न हो, तो फुफ्फुसोंमे वायुका अभाव होनेसे अत्यन्त वेदना हुई है, ऐसा माना जाता है।

क्वचित् वायुके अभावसे श्वासकृच्छ्रता भी उपस्थित होती है।

लक्षण भेदसे आयुर्वेदमे श्वासरोगके महाश्वास, ऊर्ध्वश्वास, छिन्नश्वास, तमकश्वास, और क्षुद्रश्वास, ऐसे ५ भेद किये हैं। इनमेसे महाश्वास, ऊर्ध्व-श्वास और छिन्नश्वासको घातक माना गया है।

अनेक बार वृक्क संन्यास (Uraemia) और हृदयकी मेदापक्रांन्ति होने पर श्वासके तालमे विलक्षणता हो जाती है। फिर छिन्नश्वास (Cheyne Stoke Respiration) उपस्थित हो जाता है। इस तरह सुषुम्णा शीर्षकके भीतर रहे हुए श्वासोच्छ्वास केन्द्रकी धमनीमे रक्त संचालनका अवरोध होनेपर भी इस छिन्न श्वासकी संप्राप्ति हो जाती है। यह भी असाध्य-सा विकार है।

तमकश्वासकी उत्पत्ति अपचन, अपथ्य आहार-विहार सेवन, त्रिदोष प्रकोप आदि अनेक कारणोंसे हो जाती है। इस श्वासका दौरा बार बार अजीर्ण, शीत लगना, बादल आना, इत्यादि कारणोंसे होता रहता है। तब श्वासोच्छ्वास क्रिया अति कष्टसे होती है। यह प्रयत्न करनेपर दूर हो जाता है।

क्षुद्रश्वासकी उत्पत्ति निर्बलता, वृद्धावस्था, मेदवृद्धि और सामान्य अजीर्ण आदि कारणोंसे हो जाती है। वृद्धों और मेद विकार वालोंका रोग सत्वर दूर नहीं होता। सामान्य कारण या किसी रोग विशेषसे निर्बलता आकर क्षुद्रश्वास हुआ हो, तो सत्वर दूर हो सकता है।

सामान्यावस्थामे अभ्रक, लोह आदि फुफ्फुसपौष्टिक और रक्तपौष्टिक औषधियाँ देनी चाहिये और तीव्रप्रकोपकालमें अफीम धतूरा आदि वेदना-शामक और आक्षेपनिवारक औषधियोका प्रयोग करना चाहिये।

श्वासयन्त्रको, परिवेष्टित वायु, देहमे रहा हुआ रक्त, रक्तसंचालन क्रिया वातनाडी विधान और सुषुम्णामे रहे हुए श्वासोच्छ्वास कराने वाले केन्द्र, इन सबके साथ अति घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है। इन सबमे कुछ भी विकार होनेपर वह श्वासयन्त्रपर प्रतिफलित होता है। जैसे अस्वाभाविक संचाप और उष्ण वायु, धूलि आदिके परमाणुमिश्रित वायु अथवा अत्यन्त वायु श्वास द्वारा ग्रहण होनेपर श्वासोच्छ्वास क्रियामे व्यतिक्रम हो जाता है। इस तरह रक्तमे रहे हुए रक्ताणुओंकी संख्यामें न्यूनता हो, या रक्ताणु विकार

ग्रस्त हो जाय, तो श्वासविकार हो जाता है। रक्ताभिसरण क्रियामे विकृति अथवा श्वासयन्त्र और इतर यन्त्रोके केन्द्राभिमुखी वातवाहिनियो (Afferent) में क्रिया परिवर्त्तन हो जाय, तो भी श्वासोच्छ्वास क्रियामे बाधा पहुँच जाती है। इन सब विकृतियोकी चिकित्सा करनेमे मूलकारणको दूर करना चाहिये।

श्वासाक्षेपके शमनार्थ धतूरा और सूचीबूटीका धूम्रपान रूपसे उपयोग किया जाता है। इस तरह मेनसिल प्रधान औपधिका भी प्रयोग होता है। पूर्णचन्द्रोदय रस, सोमल, अफीम, धतूरा, खुरासानी अजवायन, सूचीबूटी, गाँजा, भाग, आदि औपधिया खानेके लिये भी दी जाती है।

केवल उत्तेजना पहुँचानेके लिये (तमाखूके व्यसनीको) तमाखूका धूम्रपान कराया जाता है। एव शराब, अफीम, वच्छनाग, क्विनाइन, क्लोरोफॉर्म, ईथर आदि औपधियाँ दी जाती है। परन्तु ये सब सुषुम्णामे रहे हुए श्वासकेन्द्रको पहिले उत्तेजित करती है, फिर अवसन्न बनाती है।

यदि नासिकासे दुर्गन्ध निकलती हो, तो मेन्द्रिय विषनाशक नीलगिरी तैल, तार्पिन तैल, लोबानसत्व, अफीम शृङ्गभस्म आदि औपधियोका सेवन कराया जाता है।

यदि कफ अति चिपचिपा हो जानेसे सरलतासे बाहर नही निकल सकता, तो कफको बाहर निकालनेके लिये कटेली, मुलहठी, बहेडा, तार्पिन तैल, कपूर, लोबान, तमाखू क्षार आदि प्रयोजित होते है। ये सब औपधियाँ श्वासनलिकाओकी स्रावण क्रियाको बढाती हैं। इस हेतुसे कफ सरलतासे बाहर निकलता रहता है। एवं वंगक्षार, जवाखार अपामार्ग क्षार, अर्क क्षार, धतूरा, सूचीबूटी, शृङ्गभस्म आदि श्वासनलियोमे स्राव कम कराती है; और कफको गाढा बनाती हैं। फिर कफको बाहर निकालती हैं। इनके अतिरिक्त श्वासनलिकाओके भीतर रक्तावेग, पैशिक क्रिया और स्रावण क्रिया वृद्धि करानेके लिए वाष्प सुंघानेके प्रयोगोका उपयोग भी होता है। लोबानका अर्क, काजुपुटी तेल, कार्बोलिक एसिड आदि औपधियोको उबलते हुए जलमें मिलाकर वाष्प सुंघाई जाती है।

श्वासविकारका निदान, चिकित्सा, पथ्यापथ्य सम्बन्धी विशेष विचार 'चिकित्सातत्त्वप्रदीप' द्वितीय खण्डमे किया है।

(९०) हिक्काहर।

जो द्रव्य हिचकीका दमन करे उसे हिक्का निग्रहण और हिक्काहर कहते है। चरक संहितामे हिक्का निग्रहण रूपसे शटी, पुष्करमूल, बेरकी गुठलीकी गिरी, छोटी कटेली बडी कटेली, वृक्षारुहा (बान्दा), हरड़, पीपल धमासा, काकड़ासिंगी, ये १० औपधियां कही है।

इनके अतिरिक्त सुवर्ण भस्म, ताम्रभस्म, मयूरपुच्छके चन्दलोकी भस्म, रससिंदूर, मैनफल, अजवायन, धतूरा, सुरावीर्य आदि औषधिया भी उपकारक है।

हिक्का क्वचिन् स्वतन्त्र रोग रूपसे और क्वचित् सन्निपात आदि व्याधियोमे मारक उपद्रव रूपसे प्रकाशित होती है। आमाशय विकृति, फुफ्फुसान्तरालमे विद्रधि, मस्तिष्कमे विद्रधि आदि विकार महाप्राचीरा विकृति, इतर अवयवोकी विकृतिसे महाप्राचीरापर दबाव आदि कारणोसे हिक्का रोग उत्पन्न होता है। इन सबका उपचार भिन्न-भिन्न होता है।

श्वासग्रहण क्रिया कराने वालोमे मुख्य महाप्राचीरा पेशी है। इस मांसपेशीमे विकृति होनेपर हिक्का और श्वासकी संप्राप्ति होती है; अत. श्वासरोगपर उपकारक औपधिया भी हिक्काको दमन करती है।

आयुर्वेद और डाक्टरी, दोनो प्रकारके निदान, चिकित्सा, पथ्यापथ्य आदिका विवेचन 'चिकित्सातत्वप्रदीप' द्वितीय खन्डमे किया गया है।

(९१) ज्वरहर।

अण्टिपायरेटिक्स—अण्टिफेब्रिल्स—फेब्रिफ्युग्स।

Antipyretics—Antifebriles— Febrifuges

जो द्रव्य ज्वरको या रोग विशेषमे उत्पन्न शारीरिक उष्णताको शमन करे उसे ज्वरहर, ज्वरघ्न और ज्वरप्रशमन कहते हैं। उक्त ज्वरहर औषधियोमेसे जो एकाहिक आदि विपमज्वरोके कीटाणु और विषको नष्ट करते हैं, उनको नियतकालिक ज्वरहर (अण्टि पिरियोडक्स–Anti periodics) सज्ञा दी है।

सुश्रुत संहितामे पटोलादि गण, गुडूच्यादिगण, आरग्वधादिगण और सारिवादिगणको ज्वरहर लिखा है। इनमेसे आरग्वाधिगणका वर्णन नं० ३७ कण्डूघ्नमे तथा सारिवादि गणका वर्णन पहिले नं० ५१ दाह प्रशमनमे किया है।

पटोलादि गण—इस गणमे पटोल, सफेदचन्दन, रक्तचन्दन, मूर्वा, गिलोय, पाठा और कुटकी, ये ७ औपधियां कही हैं। यह गण पित्त, कफ, अरुचि, ज्वर, व्रण, छर्दि, कण्डू और विषको नष्ट करता है।

गुडूच्यादि गण—इस गणमें गिलोय, निम्ब, धनियां, सफेदचन्दन, रक्तचन्दन और पद्माख ये ६ औषधियां है। यह गण दीपन और सर्वज्वरोंका का नाश करता है। तथा हृल्लास, अरुचि, वमन, प्यास और दाहको भी दूर करता है।

चरक संहिता कथित ज्वरहर कपाय—अनन्तमूल, गिलोय, पाठा, मजीठ, मुनक्का, पीलू, फालसा, हरड़, बहेड़ा, आँवला, ये १० औषधियां चरक संहिता और अष्टांग संग्रहमे लिखी है।

इनके अतिरिक्त बच्छनाग, सप्तपर्ण, कालमेघ, धतूरा. चिरायता, कुटकी, पित्तपापडा, कुडेकी छाल, अतीस, फिटकरी, प्रवाल, मौक्तिक, गोदन्ती, सुरमा, सिरकेके साथ नौसादर, समुद्रफल तुलसी द्रोणपुष्पी, नीमकी अन्तर छाल, वेदमुश्क, सहदेवी, कड़ुवी नाई, पटोलपत्र, नागरमोथा, पीपल, कालीमिर्च, अर्कमूलत्वक, कनेर मूलत्वक आदि ।

नियत कालिक ज्वरहर—क्विनाइन, सोमल, हरताल, धतूरा, सत्यानाशी, भाग, फिटकरी, द्रोणपुष्पी, सप्तपर्ण, अतीस, करजवीज, अफीम, सुवर्ण चम्पा, पीली कनेर, वच, हुलहुल, कीडामारी, इन्द्रजौ, कालीमिर्च आदि ।

इनमेसे कितनी ही उत्ताप उत्पादक केन्द्रकी क्रियाका शमन कराती है । कितनीही औषधिया बढी हुई उष्णताका बलात्कारसे ह्रास कराती हैं, कितनी ही शनै शनै कीटाणुओको नष्ट करा या दोषपचन करा उत्ताप को न्यून कराती है, और कितनी ही सामान्य स्थितिमे रहने वाले शारीरिक उत्तापको कम कराती है । किन्तु आयुर्वेदमे इन सबका योग्य वर्गीकरण अभी तक नही हुआ ।

उत्ताप केन्द्रपर कार्यकर औषधियाँ—वच्छनाग, सप्तपर्ण, कपूर, क्विनाइन, शराब, कड़ुवी नाई, तुलसी, द्रोणपुष्पी, पित्तपापड़ा, पटोलपत्र, वेदमुष्क और गिलोय आदि ।

तीव्र उत्तापनाशक औषधियाँ—वच्छनाग, सुरमा और अर्कमूलत्वक्, कनेरकी छाल, अतीस, सौफ, चिरायता, कुटकी, नौसादर आदि प्रस्वेदवर्द्धक औषधिया, उष्ण जलसे स्नान, शीत सेक (मस्तिष्कपर शीतल जल या बर्फ का सेक), नाभिपर कासीका पात्र रख उसमे जलधारा डालना, गीला वस्त्र लपेटना आदि ।

वच्छनागादिसे रक्तनाहिनिया विकसित होती है, जिससे महज उष्णता का ह्रास हो जाता है । स्नान और प्रस्वेदवर्धक औषधिया त्वचामेसे उष्णताको बलात्कारसे बाहर ला देते है । सोमल, हरताल, क्विनाइन आदि औषधिया ज्वरोत्पादक विषको नष्ट करती है । एवं वेदमुश्क आदि औषधिया मस्तिष्क गत उष्णता उत्पादक केन्द्रपर शामक असर पहुँचाकर ज्वरको दूर करती हैं ।

मन्द उत्तापनाशक औषधियाँ—जीर्ण ज्वरोमे वातवहा नाड़ियोको सबल बनाकर शनै शनै उत्तापका ह्रास कराने वाली औषधियां—अभ्रक भस्म, पिप्पली, कुनिना, यशदभस्म, प्रवाल, गिलोय आदि ।

ज्वरहर औषधिया यदि अत्यधिक मात्रामे न दी जाय तो उनका असर स्वस्थावस्थामे शारीरिक उत्तापपर बहुत कम होता है, किन्तु जब शारीरिक उत्ताप बढा हो,तब वे उत्तापको शमन करनेके लिये सत्वरक्रिया दर्शाती है । सामान्यतः स्वस्थ मनुष्योका शारीरिक उत्ताप लगभग ९८°४ होता

है तथा उत्तापकी उत्पत्ति और व्यय लगभग समान होता रहता है। जिससे साम्यावस्था वनी रहती है, किन्तु जव आमप्रकोप अथवा मल या कीटाणुजन्य विष सग्रह होता है, तव शारीरिक उत्ताप वढ जाता है। फिर जीवनीय शक्ति साम्यावस्था पुनः स्थापित करनेके लिये त्वचा और श्वसनमार्ग से उष्णताको वाहर निकालने लगती है। त्वचामेसे संचालन (Conduction) और ताप विकिरण (Radiation) द्वारा तथा स्वेदका वाष्पीकरण (Evaporation) द्वारा उष्णताका त्याग कराया जाता है। एवं नि.श्वास द्वारा श्वसन मार्गसे भी उष्णता वाहर निकाली जाती है। इनके अतिरिक्त मल-मूत्र मार्गसे भी कुछ अंशमे उष्णता वाहर निकलती है।

सामान्यतः उष्णताके दूरीकरणमे या ह्रास करनेमे दो क्रिया बाधक होती है। १ त्वचागत कैशिकाओका आकुचन, यह स्वेद स्राव कम कराता है; २ तन्तुओंकी दहनक्रियाकी वृद्धि, या उष्णताकी अधिक उत्पत्ति करती है। इन दोनो प्रतिवन्धवाली स्थितिमे साम्यावस्था लानेका कार्य उष्णता नियमन केन्द्र (Heat regulating Center) करता है, जो लघु मस्तिष्कके मस्तिष्कमूल पिण्डद्वय (Basal ganglia) के भीतर और पोषणक वृन्तिका (Tuber Cinerum) के समीपमे रहता है। उनके समीपमे कोई भी क्षति उत्पन्न होती है. तव उसके अनुगमनरूप शारीरिक उत्ताप वढ़ जाता है। जैसे रागिलपिण्ड (Corpus Striatum) को आघात होनेपर उत्ताप वृद्धि होती है। फिर उत्तापका ह्रास होनेके साथ ही स्वेद आता है, तथा त्वचापर तेजी आती है। जो प्राणवायुका शोषण होता है और कार्वन डायोक्साइड (Co2) वाहर निकाली जाती है तथा उनके परिमाणमे भी न्यूनता आ जाती है।

डाक्टरी मतमें जो औषधिया ज्वरावस्थामें उत्तापका ह्रास कराती हैं, फिर स्वेद आनेसे त्वचागत कैशिकाओंका प्रसारण होता है। फिर उष्णता के त्याग द्वारा उत्तापका ह्रास होता है। इन ज्वरहर औपधियोंमेंसे अधिकतमके भीतर वेदनाहर गुण भी प्रतीत होता है।

शारीरिक उत्ताप शामक हेतुः—

१. राजिल पिण्डमे अवस्थित उत्ताप उत्पादक केन्द्र (Thermogentic Centre) पर क्रिया करके उत्तापका ह्रास करानेवाली औपधियां। उदाहरणार्थ एमिडो पाइरिन, एसिटेनलाइड, फेनासिटिन आदि ये सच्ची ज्वरहर औपधियां हैं।

२ त्वचागत कैशिकाओका प्रसारणकर तापका विकरण कराने वाली औपधियां। जैसे अल्कोहाल, नाइट्राइट्स, सेलिसिलेट्स, वाष्प स्नान आदि।

३. स्वेदका परिमाण वढ़ाकर वाष्पीकरण कराकर लाभ पहुँचाने वाली औषधियां। उदाहरणार्थ स्वेदल औषधियां।

४ उत्तापका बाहर आकर्षण करानेवाली क्रिया। उदाहरणार्थ शीतल पट्टी, शीतल जलसे स्नान, गीलाकपड़ा लपेटना, गीले वस्त्रसे पोछना आदि शीतल उपचार।

५. विशेष प्रकारके ज्वरोत्पादक विषको नष्ट करके या निर्विष करके लाभ पहुँचाने वाली औषधिया। उदाहरणार्थ विषमज्वरमे क्विनाइन, कण्ठरोहिणीमे कण्ठरोहिणी-विषहर रक्तरस आदि।

तापकी बढ़ी हुई किरणोंको कम करने वाली औषधियाँ वे है, जो शारीरिक उत्तापको फैलाती है। शारीरिक उत्तापकी वृद्धि दो कारणोसे होती है। या तो उत्तापकी उत्पादनकी वृद्धि या उत्ताप ह्रासमे न्यूनता। जब यह परिवर्तन क्षति पूर्तिकी शक्तिसे बढ जाय, तब जरावस्था उत्पन्न होती है। यह रुग्णावस्थाका चिह्न है, किन्तु चयापचय बढानेवाले पदार्थोंसे भी ऐसी अवस्था उत्पन्न हो सकती है। इसलिये ग्रैवेयक ग्रन्थिकी क्रिया वृद्धि भी शारीरिक उत्ताप वृद्धिके साथ बहुधा सम्बन्धित होती है।

वर्त्तमानमे कितने ही रोगोमे चिकित्साके लिये भी उत्ताप वृद्धि करायी जाती है। जैसे फिरंग और पूयमेहमे संक्रामक कीटाणुओको नष्ट करनेके लिये कुछ घण्टो तक उत्ताप कायम रहे उस तरह उपचार किया जाता है। कुछ उन्मादग्रस्त मनुष्योंको पक्षवध होनेपर विषमज्वर, उत्पन्न कराया जाता है।

ज्वरकी उत्पत्ति अनेक कारणोसे होती है। कारण भेदसे ज्वर रोगमे अनेक जाति है। इन सबके हेतु, लक्षण, चिह्न, संप्राप्ति, चिकित्सा, पथ्यापथ्य आदिका विस्तृत विवेचन 'चिकित्सातत्वप्रदीप, प्रथम खण्डके ज्वर-प्रकरणमे किया है।

(९२) दंत संरक्षक।

डेण्टीफ्राइसिस—Dentifrices.

जो द्रव्य दात, डाढ और मसूडोके ऊपर जमे हुए मलको दूर करते हैं, कीटाणुओको नष्ट करते, दातोको उज्ज्वल बनाते तथा मसूढोको सुदृढ बनाते हैं, उनको दन्तसरंक्षक संज्ञा दी है। इनमे तीन प्रकार है। १ दंतशुद्धिकर; २ कीटाणुनाशक; तथा ३. दन्तव्रणोको दृढ बनानेवाली औषधियां।

(१) दन्त शुद्धिकर औषधियाँ—चाकमिट्टी, सेलखडी, बादामके छिल्केके कोयले या बबूलके कोयलेकी कपडछान की हुई काली राख, गेरू, पीली-मिट्टी, बबूल आदि वृक्षोकी दतौन आदि।

(२) कीटाणुनाशक—पतनविकारनिवारक Antiseptics—सोहागा, कपूर, कसीस, कार्बालिक एसिड, पीपरमेण्ट तैल, नीलगिरी तैल, दालचीनी, लौंग, शीतलमिर्च, अकरकरा, पीपल, नीलाथोथा, हींग, नीमकी दतौन, सरसोंका तैल आदि। इन सबमे दन्तशूलघ्न (Antodontalgics)

अर्थात् दन्तशूलोत्पादक कीटाणुओंका नाश करनेका गुण न्यूनाधिक अंशमें अवस्थित है।

(३) मसूढोंको सबल बनानेवाली औषधियाँ—सुपारी, लोध, कत्था, हरड़, लालबोल, माजूफल, मोलसरीकी छाल, फिटकरीका फूला और बट प्ररोहकी दतौन आदि। इनमें फिटकरीका उपयोग अति सूक्ष्म परिणाममें करना चाहिये।

यदि दातोपर घातव अम्लता (मल) की तरह आई हो, तो उसे अधिक हानिकर मान, उस पर तैल, घी या मक्खनसे कुछ मर्दन कर फिर सज्जी-खार (सोडाबाई कार्ब) मिश्रित जल या साबुनके जलमे दांतोंको साफ कर लेना या कुल्ले करना चाहिये।

यदि तीव्र शूल (Tooth-ache or Odontalgia) चलता हो, तो अफीमका अर्क, कपूरका अर्क, लौंगका तैल, हीग, नौसादर आदि औषधियां दांतोंके नीचे रखी जाती हैं। एव नमक आदि मिले हुए निवाये जलके या तैलके कुल्ले किये जाते हैं।

भोजनके परिपाक होनेमे चर्वण क्रिया करनेकी पूर्णांशमे आवश्यकता है। यद्यपि शैशवास्थामे अचर्वित आहारका परिपाक आमाशय और अन्त्रमे होता है, तथापि वयोवृद्धिके साथ इस क्षमताका ह्रास हो जाता है। फिर चर्वण क्रिया यथोचित न होनेपर अजीर्ण आदि रोगोंकी उत्पत्ति होती है। जिससे दांत भी मलिन होने लगते हैं।

मुख और दांतोके पार्श्व भागमे भुक्त द्रव्यका अंश संगृहीत होता है। फिर इस संचित अन्नमे विक्रिया होकर वह अम्ल बन जाता है। पश्चात् उसमेसे वनस्पति कोटिके कोटाणुओ (Bacterias) की उत्पत्ति हो जाती है। यही दतक्षयका प्रधान कारण है। इस हेतुको दूर करनेके लिये प्रतिदिन दंतमंजन, दतौन या सूक्ष्म पीसे हुए सेंधानमक मिश्रित सरसोके तैलसे दतमार्जन करना चाहिये। दंतमार्जन करते रहनेसे संचित दोषकी निवृत्ति होती रहती है, और दतक्षय नही होता।

दात साफ रखनेके लिये प्रतिदिन दो बार दतौन करनेके लिये शास्त्रमे लिखा है, और यह दतौन इस तरह सम्हालपूर्वक करना चाहिये, कि मसूढो को आघात न पहुँचे। एक समय दतौन प्रातःकाल शौचसे निवृत होनेपर और स्नान करनेके पहिले तथा दूसरी बार सायकालको भोजनके पश्चात् करना चाहिये। दतौन करनेके लिये बड़, असन (विजयसार), आक, खैर, करञ्ज, करीर, सर्ज दुर्गन्धवाला खैर, अपामार्ग, मालती, तेजबल, कदम्ब, गूलर आम. अर्जुन, बबूल आदि वृक्षोकी शाखा ग्रहण करनेको लिखा है।

दतौनके लिये कसैले, कड़ुवे, चरपरे और मधुर रस वाले वृक्षोकी शाखा या मूल (अपामार्ग आदिकी मूल) का उपयोग किया जाता है।

दतौनके लिये कडुवे वृक्षोंमे नीम कसैले रस वालोंमे खैर, मधुर वृक्षोमे महुवा और चरपरे वृक्षोमे करञ्जको श्रेष्ठ माना है। दतौनकी लम्वाई सामान्य रूपसे १२ अँगुल रखी जाती है।

दतौन करनेसे मुखकी दुर्गन्ध, दातो पर लगा हुआ मल, और कफ, ये ये सब दूर होते है, दात उज्वल होते है, तथा अन्न पर रुचि और मानसिक प्रसन्नता होती है। परन्तु कण्ठ, तालु, ओष्ठ और जिह्वाके रोग, मुखपाक, श्वास, कास, हिक्का आदि व्याधियां और वमन होनेपर दतौनका उपयोग नही करना चाहिये। इसी तरह दुर्वल, अजीर्णमें भोजन करने पर, मूर्च्छा पीडित, मदपीडित शिरदर्द युक्त, तृषायुक्त, थका हुआ, शरावसे सुस्त वना हुआ, अर्दित वातके रोगी, कर्णशूल युक्त और दांतोके रोगवाले, इन सवको दतौनकरना निषेध है। इन्हे केवल दतमजन आदि द्वारा दातोको साफकर लेनाचाहिये।

(९३) शिथिलकारक।

मोर्दवक्य—एमोलिएण्ट्स Emollients. त्वचा आदिको शिथिल और मुलायम बनाने वाली औषधिया—विविध औषधि क्वाथको वाष्प (Inhalations) उष्ण सेक पुल्टीस, घृत, चर्वी, तैल, मोम, वेस्लीन शहद, ऊन का तैल (Lanolin), श्वेतसार मिट्टी, सेलखडी, ग्लिसरीन, कोकम, अमचूरकातैल, मलहम, साबुन आदि इन औषधियोका उपयोग किसी स्थान को आर्द्र, उष्ण, शिथिल और आवृत रखनेके लिये होता है। इन औषधियोसे प्रदाहयुक्त स्थानकी पीडा और खिचाव (Tension) का उपशमन होता है। ये सब औषधियाँ संकोचशील घटकोको शिथिल करती है। एवं रक्तप्रणालियोको प्रसारित कर स्थानिक वातवाहिनियोका खिचाव और सचापको दूर करती है। इस वर्गकी औषधिया वायुके आघातसे सरक्षण करती है। इस हेतुसे इनको संरक्षक (Protectives) भी कहते है।

शिथिलकारक औषधिया शिथिलता लानेके साथ त्वचा आदिको कोमल वनाती है, एव स्निग्धकारक औषधिया स्निग्धता लानेके साथ बहुधा अङ्ग को शिथिल वनाती हैं। इस तरह इन दोनो श्रेणियोकी औषधियोंमे विशेष प्रभेद प्रतीत नही होता। तथापि विशेष सूक्ष्म विचार किया जाय, तो कहना होगा, कि वाह्य त्वचा पर कार्य करने वाली औषधियोंको शिथिल कारक और श्लैष्मिक कला पर कार्य करने वाली औषधियोंको स्निग्धकारक कहा जाता है।

श्वासयन्त्रकी विविध वेदना कास, श्वास, प्रतिश्याय, उरस्तुण्डा, क्षय, आदिके निवारणार्थ फुफ्फुसमे स्नान द्वारा विविध औषधियोंकी वाष्प (Vapours) पहुंचाई जाती है। इनके विधिके प्रयोग 'चिकित्सा[illegible] प्रदीप' प्रथम खण्डके पृष्ठ ९४ में दिये जाते है।

घृत तैल मिश्रित शिथिलकारक औषधिसे त्वचा शिथिल और कोमल होती है। आवश्यकता पर इनसे मर्दन भी कराया जाता है। इनका गुण बाह्य त्वचाके नीचे रहनेवाले विधान पर भी हो जाता है। शीत लग जाना, क्षय ज्वर, जीर्ण ज्वर आदि रोग या उष्णतासे ओष्ठ, त्वचा, हाथ-पैर आदि फटनेपर इन औषधियोंका प्रयोग किया जाता है।

स्थानिक शिथिलकारक औषधियोमे पुल्टिस और गरम जलके सेकको उत्तम माना है। प्रदाहजनित वेदनाके निवारणार्थ पुल्टिसका उपयोग किया जाता है। पुल्टिस और गरम जलके सेकमे अनेक प्रकार हैं। बनाने की विधि, उपयोग विधि और फल सम्बन्धी विचार 'चिकित्सातत्वप्रदीप' प्रथम खण्ड पृष्ठ ५० से ५६ तक मे किया गया है।

(९४) स्निग्धकारक।

स्नेहन-डिमलसेण्ट्स—Demulcents

स्नेहन स्नेहविष्यन्दमार्दवक्लेदकारकम् ।
द्रव सूक्ष्मं सरं स्निग्धं पिच्छिलं गुरु शीतलम् ॥
प्रायो मन्दं मृदु च यद् द्रव्यं तत् स्नेहनं स्मृतम् ॥

जो द्रव्य देहमे स्नेह (चर्बी) का विलयन करावे, मृदुता लावे और क्लेद उत्पन्न करावे उसे स्नेहन कहते है। जो द्रव्य द्रव, सूक्ष्म, सर, स्निग्ध, पिच्छिल, गुरु, शीतल, मन्द और मृदुगण युक्त हो वह प्रायः स्नेहन होता है।

स्नेहन औषधियाँ—तिल, मूँगफली, सरसो, काजू, अखरोट, बादाम, नारियल, विनौला, अलसी, जेतून और कोकम अमचूर आदिके तैल, मक्खन, घृत, दूध, दही, अण्डेका श्वेत अश, शहद, सौंफ, श्वेतसार आदि। इनके अतिरिक्त मुलहठी आदि कितनीही स्नेहोपग औषधियोको भी डाक्टरी मे स्निग्धकारक सज्ञा दी है।

स्नेहोपग—स्नेहन औषधियोको सहायता पहुँचाने वाली औषधियां—मुनक्का, मुलहठी, गिलोय, मेदा, विदारीकन्द, काकोली, क्षीरकाकोली, जोवक-जीवन्ती और शालपर्णी, ये १० औषधियां चरक संहितामे कही है।

अन्य स्नेहोपग औषधियाँ—वनतुलसीके बीज, सफेदमूसली, इसबगोल, बिहदाना, गूलर, लेसवा, गुंजामूल, भिण्डीके बीज, तालमखाना, बडे गोखरू, गोंद, मिश्री, साबुदाना, आरारोट, गेहूँ, जो और अन्नका माण्ड आदि।

स्निग्ध औषधियोका प्रयोग श्लैष्मिक कला या त्वचापर करनेपर वहां कोमल आवरण (पर्दा) की तह बन जाती है। जिससे आवरणके नीचे सस्कार प्रक्रिया निर्विघ्न रूपसे सिद्ध होती जाती है। उग्रताजनक चर्म रोगमें त्वचा निकल जाने या फट जानेपर इन औषधियोका प्रयोग हितकारक माना गया है। उग्र विष या इतर पदार्थोंके सेवनसे श्लैष्मिक कला

मे उग्रता उत्पन्न हुई हो, तो इन औषधियोका आभ्यन्तरिक प्रयोग किया जाता है।

जब ग्रसनिका या श्वासनलिकाके ऊर्ध्वांशमे रक्तसग्रह होकर कास उपस्थित होती है, तब कण्ठनलिकाकी वेदना और उग्रताका निवारण करने तथा कासकी तीक्ष्णताका दमन करनेके लिये मुलहठी आदि उपलेपक अर्थात् स्निग्ध और लसदार (Mucilaginous) गुणवाली स्नेहोपग औषधियां उपयोगमे ली जाती है।

क्वचित् तीक्ष्ण दाहक वस्तु खानेमे आ जाती है, तब आमाशय या अन्त्रमे क्षत न होनेके लिये अण्डे, बादामका तैल, जैतूनका तैल, दूध, दही, मक्खन या घृत-पान आदि स्निग्ध वस्तुका सत्वर प्रयोग किया जाता है।

(९५) लाला निःसारक

लाला प्रसेकजनन–लालोत्तेजक–सायलोगोग्स-सायलोगोगिक्स
Sialogogues-Sialogogics.

जो द्रव्य लाला (थूक) स्रावको बढाता है, उसे लालानिःसारक कहते है। यह लालास्राव लालास्रावोत्पादक ग्रन्थियोमेसे होता है। इन ग्रन्थियो पर स्वतन्त्र और परिस्वतन्त्र नाडियोका अधिकार है। इनमे जब स्वतन्त्र नाड़िया उत्तेजित होती है, तब रक्तवाहिनिया आकुंचित होती है, जिससे थोड़ा और पिच्छिल लालास्राव होता है तथा परिस्वतन्त्र नाडिया जब उत्तेजित होती है तब रक्तवाहिनिया प्रसारित होती है और प्रचुर लालास्राव होता है। इन नाडियोकी उत्तेजक और लालानिःसारक औषधियोमे २ विभाग हैं। स्थानिक और विशेष।

जो औषधिया मुँहमे रखनेपर वातवहानाडियोके अन्तको या लाला ग्रन्थियोको उत्तेजित करके उनकी क्रियामे वृद्धि कराती है उनको स्थानिक, जो औषधिया शोषण होनेपर वातवहा नाडियो द्वारा लाला ग्रन्थियोपर कार्य करती है, उनको विशेष कहा गया है।

स्थानिक लाला निःसारक औषधिया—अम्ल रसयुक्त पदार्थ, अम्लक्षार, सरसो, सोठ, पीपल, काली मिर्च, लाल मिर्च, शीतल मिर्च, छोटी इलायची सुपारी, नागरबेलका पान, लौंग, दालचीनी, अकरकरा, तेजबल आदि।

विशेष लाला निःसारक औषधिया - पारदघटित औषधिया, रसकपूर, तमाखू, नमकका तेजाब, नवक्षार और वमनकारक पदार्थ आदि। इन सब औषधियोका आमाशय शोषण होनेपर मुँहमे अधिक लालास्राव और श्लैष्मिक स्राव होता है। परन्तु ये औषधिया लाला स्रावके हेतुसे उपयोगमे नही ली जाती।

अम्ल पदार्थ, अम्ल मिश्रित लवण, सोठ, सरसो आदि मुँहमे रखी हुई जिह्वामूलिका स्पर्श ज्ञानवाही नाड़िया (Gustatory or Lingual

Nerves) और रसना-ग्रसनिकासे सम्बन्ध वाली वात नाड़ियो (Glossopharyngeal Nerves) को उत्तेजित करके विशेष लालास्राव कराती है। ये नाड़ियां परिस्वतन्त्र नाड़ी मंडलकी है।

डाक्टर घोसने मेटेरिया मेडिकामे विशेष स्पष्टीकरणार्थ निम्नानुसार ४ विभाग किये है।

(१) केन्द्राभिमुखी वात नाडियोके शिरेकी उत्तेजना द्वारा—इस प्रकार में अम्ल (Acids), अम्ल लवण (Acid-salts) तीक्ष्ण (Pungents) उड्डयनशील सुगन्धयुक्त तैल, कडुवी औषधियाँ, शराव, ईथर, क्लोरोफार्म आदि। ये सव मुखमेसे प्रतिफलित किया करती हैं। वच, इपिकाक्युहाना आदि उवाक लाने वाली औपधिया आमाशयके भीतर प्राणदानाड़ियोके संवेदन ततुके सिरेकी उत्तेजना द्वारा क्रिया दर्शाती हैं।

(२) परिस्वतन्त्र नाड़ियोके सिरेकी उत्तेजना द्वारा—इस प्रकारकी औषधियाँ कतिपय समय विशेष लालानि सारक द्रव्य कहलाते हैं। उदाहरणार्थ पाइलो कार्पीन, एसिटीलकोलीन आदि।

(३) स्वसचालित वातगण्डकी उत्तेजना द्वारा निकोटिन (तमाखुविष) हेमलोकके पान आदि। ये पहिले उत्तेजना पहुँचाते है फिर अवसादकता ला देते है।

(४) स्वतन्त्र नाड़ियोके सिरेकी उत्तेजना द्वारा —इस तरह कार्य करनेवालोमें एड्रेनलीन, एफेड्रीन (सोमसत्व) आदि द्रव्य है।

इनके अतिरिक्त पारद, पोटास आयोडाइड आदि औपधियां थूंकके प्रवाहको वढ़ा, उनके साथ मलरूपसे वाहर निकलती है; किन्तु यह क्रिया एट्रोपीन द्वारा निवारित होती है।

इनके अतिरिक्त कतिपय पदार्थोके सुगन्ध, दर्शन या श्रवण मात्रसे मानसिक आवेग उत्पन्न होता है। फिर वातवाहिनियोपर प्रतिफलित क्रिया होकर लाला नि.सरणमें वृद्धि होती है।

मुँहमे लाला निकलती रहनेसे मुँहमे आर्द्रता रहती है और हानिकर द्रव्य जो चिपक रहा हो, वह अलग हो जाता है। एव चर्वण क्रियाके हेतुसे भोजनमे लाला मिश्रित होनेसे वह द्रवीभूत और कोमल होकर निगलनेमे साकूल वन जाता है। लालास्रावसे वोलनेमे जिह्वाको विशेष सरलता होती है। एव तालु, जिह्वा आदि आर्द्र रहनेसे तृषाकी उत्पत्ति भी नही होती।

दंतशूल, कर्णशूल, कर्णप्रदाह, नासा दाह, मस्तिष्कप्रदाह, रक्तवेगवृद्धि और इतर वेदना आदि विकारोमे लालानि सारक औपधियाँ प्रत्युग्रता साधक होकर लाभ पहुँचाती है। इनके अतिरिक्त भोजनमें लाला मिल जानेसे भोजनमे रहे हुए श्वेत सारका पचन सत्वर होता है। कारण, लाला नि:सरण वृद्धि होनेपर आमाशय रसकी भी वृद्धि होती है।

(९६) लाल निःसरणरोधक।

लाला प्रसेकापनयन—एण्टिसायलोगोग्स—एण्टिसायलिक्स।
Antisialogogues—Antisialics.

जो द्रव्य लाला स्रावका ह्रास करता है, उसे लालानिःसरणरोधक कहते हैं।

औषधिया—सोहागा, अफीम, सूचीबूटी, धतूरा, हरड, कत्था, बेरके पत्ते, जामुनके पत्ते आदि।

लालास्रावका ह्रास दो प्रकारसे होता है—१. मुखके भीतर क्षोभके शमन द्वारा; २. परिस्वतन्त्र नाडियोके सिरेके अवसाद या पक्षवध द्वारा।

क्षोभशामक औषधियोमे सोहागा, कषायरस प्रधान औषधियो (बबूल छाल, हरड, माजूफल, लोध आदि) के क्वाथसे गण्डूष आदि। परिस्वतन्त्र नाड़ियोके सिरेपर असर पहुँचानेवाली औषधि—सूचीबूटी, सूचीबूटीसत्व (एट्रोपीन) खुरासानी अजवायन, धतूरा आदि। इनके अतिरिक्त अफीम, मोरफिया आदि भी थूकका स्राव कम कराते हैं, किन्तु वे सवेदना नाडियों के केन्द्रकी उत्तेजन क्षमताका ह्रास द्वारा कार्य करते है।

भाँग, गाजा, धतूरा या सूचीबूटीका विषप्रकोप, ज्वर, वृक्कप्रदाह, मधुमेह आदि अनेक व्याधियोमे लालास्राव कम हो जाता है या मुँह सूख जाता है। एवं बार बार अत्यधिक प्यासका भास होता रहता है।

(९७) श्रमहर।

थकावटको हरनेवाली औषधिया—अगूर, पिण्डखजूर, चिरौंजी, बेर, अनार, फल्गु (गूलर या अजीर), फालसे, ईख, जौ, साठी चावल, ये १० औषधियाँ चरक सहितामे श्रमहर लिखी है।

इनके अतिरिक्त सन्तरा, मोसम्बी, सेव आदि फलोका रस, शीतल वायु, शीतल जलपान, धारोष्ण गोदुग्ध, निवाये जलसे पैर धोना, तेलकी मालिस कर स्नान करना, प्रियजनोका मिलाप या मधुर गीत श्रवण आदिसे मानसिक प्रसन्नता द्वारा तथा चन्द्रकी चाँदनीमे या शीतल स्थानमे विश्रान्ति इत्यादि से थकानको दूर करनेमे सहायता मिल जाती है।

इनके अतिरिक्त शराब, ताडी, अफीम, भाग, गाजा आदि मादक और मोहजनन पदार्थोके सेवनसे भी निद्रा, तन्द्रा या मद उत्पन्न होकर परिश्रम की निवृत्ति होती है। इनका विवेचन पाठ नं० ७६, ७७ और ७८ में किया है।

(९८) शीतप्रशमन।

उष्ण अर्थात् शीतको दूर करनेवाली औषधियां—तगर, अगर, धनियां, सोठ, अजवायन, वच, छोटी कटेरी, अरणी, अरलू, पीपल ये १० औषधियां

चरक सहितामे लिखी है। ये सब शीतको दूरकर उष्णता लाती हैं। सामान्यत: लवण और कटुरसप्रधान तीक्ष्ण और उष्ण गुणयुक्त होती है, ये सब कफह्रास तथा पित्तधातुकी वृद्धि कराकर शीतका गमन करती हैं।

इनके अतिरिक्त पहिले न० ७५ मे जो उत्तेजक औषधियोका विवेचन किया है। वे सब उष्ण होनेसे शीतको दूर करनेके लिये प्रयोजित होती हैं।

(९९) चक्षुष्य।

मनुष्योको सासारिक सुखको सिद्धिके अर्थ ५ ज्ञानेन्द्रिय (श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, घ्राण) और ५ कर्मेन्द्रिय (वाक्, पाणि, पाद, पायु और उपस्थ) मिली हैं। इन सबमे नेत्रेन्द्रिय प्रधान है। बिना नेत्र जीवन दु खमय बन जाता है। अत: नेत्रके संरक्षण और जीवन सुखकी प्राप्तिके निमित्त चक्षुष्य गुणके बोधकी आवश्यकता है।

परन्तु पाठकोको इस चक्षुष्य गुण विवेचनका लाभ तभी मिल सकता है, जब चक्षुरचना, चक्षुस्थ विविध अवयवोकी क्रिया और इनकी विकृति आदिका परिचय हो। अत. इनका वर्णन आवश्यक मानकर और ग्रन्थके कलेवरको लक्ष्यमे रखकर सक्षेपमे विवेचन किया जाता है। विशेष जानना हो तो नेत्ररोग विज्ञान ग्रन्थ देखे।

चक्षुष्य अर्थात् नेत्र हितकारी औषधियाँ—सुवर्ण भस्म, रौप्य भस्म, ताम्रभस्म, लोह भस्म, जसद भस्म, नाग भस्म, सुवर्णमाक्षिक भस्म, कांस्य भस्म, मौक्तिक, प्रवाल, शुक्ति, वराटिका, शख, कपूर, नीलाथोथा, सिन्दूर, सुरमा, फिटकरी, सोरा, नौसादर, मैनसिल, कासीस, गिलोय सत्व, दारुहल्दी, रसांजन, हरड़, आवला, पीपल, लोध, विल्वपत्र, एरड पत्र, छोटी कटेली, सत्यानाशी, मुलहठी, अफीम, गोद, धतूरा, सूचीबूटी सेंधानमक, समुद्रफेन, निर्मली, पुनर्नवाकी मूल, छोटी इलायची, जावित्री, बादाम, सफेद मिर्च, अगरतके पुष्प, जीवक, ऋषभक्, चाण्डाल दुग्धिका (उतरण), पलाशमूल अथवा पुष्पका अर्क, शीतल मिर्च, बबूलकी छाल, खखसाकी छाल, कमल, कमलमधु, करज, नीमकी अन्तर छाल, वनकुलत्थ (चासकू), जीवन्ती, तुलसी, स्त्रीदुग्ध, वासाके पत्ते, चमेलीके पत्ते, शहद, मूंग, रक्तशालि, धनिया, गोघृत, अजाघृत, क्षीर घृत (दूधमेसे निकला हुआ घी), सर्पिमण्ड (घृतके ऊपरका तरल अश), मिश्री, खांड, गुलाबजल और धारोष्ण दूध आदि।

इनमेसे कतिपय औषधिया खानेमे, कितनी हो बाहर लगानेमे और कितनी ही खाने और लगानेमे, दोनो प्रकारसे उपयोगमे आती हैं।

सुवर्ण, रौप्य, लोह, जसद, सुवर्णमाक्षिक भस्म, मौक्तिक, प्रवाल, कास्य भस्म, शुक्ति भस्म, गिलोयसत्व और त्रिफला आदिका सेवन आभ्यन्तरिक उष्णता शमनार्थ किया जाता है।

इनमेसे कब्ज होने पर त्रिफला विशेष हितकर है। त्रिफलाका हिम नेत्र पर छिडकने और शिरके धोनेमे भी उपयोगी है।

सुवर्ण विषको नष्ट करता है, रोप्य वातवाहिनियोके शूलको शमन करता है, तथा लोह रक्तदोषका निवारण करता है।

सुवर्णमाक्षिक, मौक्तिक, प्रवाल, गिलोयसत्व, पित्तशामक होनेसे नेत्रकी उष्णता शमन करते है।

अफीम, वनकुलथी, रसोंत, खखसा आदि रक्तावेग होने पर रक्तप्रसादन मे हितकारक है।

नौसादर, सोरा, मैनसिल, सिन्दूर, निर्मली, पीपल, सफेद मिर्च आदि फूला, कुकूणक, पोथकी, मासवृद्धि आदिको हटानेमे उपयोगी हैं।

बिल्वपत्रका स्वरस, एरण्डपत्रका स्वरस, तुलसीका स्वरस, चमेलीपत्रका स्वरस, बबूलपत्रका स्वरस, कमलका रस, गुलाबजल आदि स्थानिक उष्णता शमन करते है, और रक्तसंग्रहको दूर करते है।

पुनर्नवा—सफेद पुनर्नवाकी जड़ विविध दोषो के शमनार्थ प्रयोजित होती है। स्त्री दूधमे घिस पर अजन करने पर कण्डू शहदमे घिसकर लगानेसे नेत्रस्राव, गोघृतमे लगाने पर फूला, तैलमे घिसकर लगानेसे तिमिर और काजीमे घिस कर अजन करनेसे नक्तान्धता (रतौंधी) दूर होती है। इस तरह यह औषधि नेत्रके अनेक विकारोपर आश्चर्यजनक लाभ पहुँचाती है।

प्राचीन आचार्योने पुनर्नवाका उपयोग अनेक व्याधियोंपर किया है। पुनर्नवामे दो जाति है—सफेद और लाल। विशेष विभाग किये जाय, तो इनको ६ अथवा इनसे भी अधिक जाति है। इनमेसे सफेद पुनर्नवा (साठी) मे उष्ण, तिक्त, रूक्ष, कफघ्न (विषनाशक) गुण है। कास, हृद्रोग, शूल, उरःक्षत, रक्तविकार पाण्डु, शोथ और वातविकारको दूर करती है। रक्त पुनर्नवाको तिक्त सारक, शोफनाशक, पित्तशामक, रक्तप्रदरहर और पाण्डु नाशक कहा है।

प्राचीन ग्रन्थकारोने पुनर्नवाका प्रयोग ज्वर, शोथ, मदात्यय, विषदोष, प्लीहोदर, निद्रानाश आमवात, वातव्याधि, योनिशूल, मूढगर्भ, गुल्मशूल, शुक्रविकार, कुष्ठ, अश्मरी, मूषिकविष, विद्रधि आदि अनेक रोगोपर किया है। इनके अतिरिक्त आचार्योने स्वेदन, अनुवासन और वयःस्थापन वर्गमे भी इसका उल्लेख किया है।

नव्य चिकित्सकोंके मतसे पुनर्नवा, पाचक मृदुविरेचक, मूत्रल, कफघ्न और वामक है। जलोदर, शोथ, कामला आभ्यान्तरिक प्रदाह, प्लीहावृद्धि, यकृद्वृद्धि, चक्षुप्रदाह, वृश्चिकदंश, मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह और हृद्रोगमे लाभदायक है। इसका मूत्रल गुण विशेष रूपमे प्रकाशित होता है बिच्छूके विष पर इसकी मूल बाहर लगानेसे और धूम्रपान रूपमे प्रयोजित होती है।

इस तरह चिरकारी पूयमेय नेत्रपाक (Ophthalmia) पर इसकी मूल का क्वाथ शहद मिलाकर विन्दु रूपसे प्रयोजित होता है। पुनर्नवा अधिक मात्रामे सेवन करनेपर वमन कराती है।

सूचना—अनेक वार पित्तप्रकोप, कोष्ठबद्धता, धूम्रपान, शराव आदिके सेवनसे नेत्रको हानि पहुँचती है। ऐसे समयपर मूल कारणको दूर करनेके साथ चिकित्सा करनी चाहिये।

नेत्रशोधन और ज्योतिकी वृद्धिके लिये सेक, आश्च्योतन, पिण्डी, विडाल, तर्पण, पुटपाक और अञ्जन आदि अनेक प्रकारके उपचार किये जाते हैं। इन सबका विवेचन "चिकित्सातत्वप्रदीप" प्रथम खण्ड पृष्ठ १०२ से १०९ तक नेत्रशोधन क्रियाके अन्तर्गत किया गया है।

डाक्टरीमे नेत्ररोग सम्बन्धी भिन्न-भिन्न विकारोपर निम्नानुसार औषध योजना की है:—

(१) श्लैष्मिककलापर कार्यकारी—नेत्रकी श्लैष्मिक या आर्द्रकला (Conjuntiva) पर लाभदायक औषधियां। इसके विकारोमे प्रायः सकोचक (ग्राही) और अवसादक औषधिया व्यवहृत होती है। इन औषधियोंमे सूचीबूटी और रौप्यघटित लवण (Nitrate of Silver) विशेष महत्वकी औषधि है। आयुर्वेदिक औषधियोमे अफीम, रसाजन, पुनर्नवा, कासीस, चाकसू आदि निर्दोष और उत्तम हैं।

सूचना—सीसा और फिटकरीके द्रवका सकोचक गुणके लिये व्यवहार नही करना चाहिये। कारण, सीसा धातुघटित लवण अद्रवणीय एल्व्युमिन मिश्रण (Albuminate) रूपसे परिवर्त्तित हो जाता है, जिससे वह स्थान दीर्घकाल तक अस्वच्छ रह जाता है। एवं फिटकरी द्वारा शुक्लमण्डलका विदारण (Perforation) होनेकी संभावना है।

इस तरह कोकीन (Cocain) कनीनिका (Pupil) के चैतन्यका लोप कराती है। अत यह भी श्लैष्मिककलाके विकारमे प्रयोजित नही होती।

(२) अश्रु नि.सरणपर कार्यकारी—सोरा, लालमिर्च, पीपल, कालीमिर्च, सरसो, प्याजका रस, नीबूका रस आदि डालनेपर नेत्रमे उग्रता उत्पन्न होकर अश्रुस्राव होने लगता है।

सूचीबूटी सत्व (Atropine) डालनेपर अश्रुस्रावका ह्रास होता है। एसेरिन (Aserine) डालनेपर एट्रोपिनकी क्रिया नष्ट होती है और सत्वर अश्रुपात होने लगता है।

(३) कनीनिका पर कार्यकारी—इसके प्रसारण और संकोचन तारामण्डल (Iris) की क्रियापर अवलम्बित है। अतः तारामण्डलपर असर पहुँचाने वाली औषधिया परम्परागत कनीनिकापर लाभ पहुँचाती हैं। इन औषधियोमे दो प्रकार हैं—कनीनिका प्रसारक (Mydriatics) और

कनीनिका संकोचक (Miotics)।

कनीनिका प्रसारक औषध—सूचीबूटी (Belladonna) सूचीबूटी सत्व, खुरासानी अजवायन, धतूरा (Stramonium) जेलसिमियमकी जडका क्षार (Gelseminae) आदि।

कनीनिका संकोचक औषध—अफीम, अफीम सत्व, कालाबारबीन (Calabar Bean) के पक्के बीजका सत्व और जेलसिमियमका क्षार आदि। जेलसिमियम क्षारका आभ्यन्तरिक प्रयोग करनेपर भी कनीनिका संकोचित होती है।

कनीनिका प्रसारक और संकोचक, दोनो प्रकारकी ओषधियोका प्रयोग नेत्रकी श्लैष्मिककलाकी उग्रताके दमन और वेदनाके निवारणके लिये होता है। अवसादन क्रियाके निमित्त प्रयोग करना हो, तब बेलाडोनाका उपयोग किया जाता है।

नेत्रपरीक्षाके निमित्त कनीनिका प्रसारक औषधका उपयोग किया जाता है। इनके अतिरिक्त तारामण्डल निर्गमन (Prolapse) होनेपर उसके निवारणार्थ कनीनिका प्रसारक औषधि प्रयोजित होती है। एवं यह तारामण्डलके प्रदाह (Iritis) मे भी हितकारक है।

कनीनिका संकोचक औषधियां आलोकातङ्क (Photophobia) अर्थात् प्रकाश सहन न होना, इस विकार पर लाभदायक है। एव कनीनिका प्रसारक औषधिकी क्रियाके विरुद्ध असर पहुंचानेके लिये भी व्यवहृत होती है। कण्ठरोहिणी जन्य दृष्टि केन्द्रीकरण (Accommodation) होनेपर तन्तुमय पेशी (Ciliarymuscle) की क्रियाकी क्षीणता एवं अवसन्नता होनेपर और दिवान्धता (Hemeralopia) में भी इसका उपयोग होता है।

तारामण्डलका कोई भाग चिपका हुआ है या नही, इसके निश्चयके लिये और संलग्नता (Adhesion) हो, तो उसे दूर करनेके लिये कनीनिका संकोचक और कनीनिका प्रसारक औषधि क्रमशः व्यवहृत होती है।

तारामण्डल आक्षेपग्रस्त होनेपर, उसको आक्षेप मुक्त या शिथिल करनेके लिये कनीनिका प्रसारक औषधि प्रयोजित होती है।

नेत्र पटलोमे तरलाधिक्यमे द्रवावृद्धि अर्थात् अधिमंथ (Glaucoma) रोगमे कनीनिका संकोचक औषधि उपकार दर्शाती है।

दर्शनेन्द्रियपर कार्यकारी औषध—भिलावा, कुनिला और कुनिलासत्व के सेवनसे दर्शनक्षेत्र (Field of Vision) के आयतनमे वृद्धि होती है; जिससे दूर की वस्तु स्पष्ट दिखलाई देती है।

किरमाणी अजवायन सत्व (Santonin) के सेवनसे पहिले सब वस्तु बैंजनी रंगकी प्रतीत होती हैं, फिर हरी-पीली प्रतीत होती हैं।

कालाबारबीनके बीजका उपक्षार (Physostigmine) का प्रयोग करनेपर नेत्रकी लाल और हरे पदार्थको देखनेकी शक्ति कम हो जाती है ।

शराबके अधिक सेवनसे नेत्रमे लाली आ जाती है । एव तमाखू और गाजा आदिके धूम्रपानसे नेत्रशक्ति कमजोर हो जाती है, परन्तु कभी कभी गाजाके सेवनसे दृष्टिके सामने विविध सुन्दर दृश्य भासमान होते है, और मदात्यय रोगसे रोगीको दृष्टिके समक्ष पिशाच आदि भीषण मूर्ति खड़ी होने का भ्रम होता है ।

अधिक गुड, अधिक मिर्च और कब्ज करनेवाले पदार्थोके अधिक सेवन से नेत्रमे दाह होने लगता है । एवं नेत्रोमे लाली आ जाती है ।

नेत्र रचना—मनुष्योको ईश्वरने दो नेत्र दिये है । दोनो नेत्र नेत्रगुहामे अवस्थित है ! ये नेत्रगुहा भ्रुवोके नीचे नासिकाके दोनो ओर एक एक गड्ढा रूपसे प्रतीत होती हैं । इनको अक्षिखोत (Orbital fossa) भी कहते है । इन गड्ढोमे नेत्रगोलक (Eyeballs) रहते है । इनकी रक्षा सम्यक् प्रकारसे हो इसलिये निसर्गने पूरा प्रबन्ध किया है । अगले भागकी रक्षाके लिये दोनो नेत्रोके ऊपर एक और नीचे एक मिलकर दो नेत्रच्छद अर्थात् पलक (Eyelids) बनाये हैं । इन पलकोके किनारेपर बाल लगे हैं; इनको अक्षिपक्ष्म (Eyelashes) संज्ञा दी है । इन बालोमें धूल, मिट्टी आदिके सूक्ष्म परमाणु और वायुमे घूमने वाले सूक्ष्म कीटाणु बहुधा फँसकर नष्ट हो जाते है । इस तरह दोनो नेत्रगुहाओके ऊपर जो एक-एक भ्रू-भौं(Eyebrow) बनाई गई है, वे प्रस्वेदको कपालमेसे नेत्रमें जानेसे रोकती है । इन नेत्रोंकी रचना अति आश्चर्यजनक है। इस छोटेसे यन्त्रके भीतर अनेक पुरजे रहते हैं।

अक्षिगोलक (Eyeballs or The bulbs of the Eyes)—ये नेत्रगोलक बहुधा कपोतके अण्डे या गेद सदृश गोल होते हैं । इनकी आकृति समझानेके लिये छोटे-बडे दो गेद (Spheres) का दृष्टांत दिया जाता है । इनमेसे छोटे गेदका ⅙ हिस्सा और बडी गेदका ⅚ हिस्सा काट लेवे । फिर बडी गेदके ⅚ हिस्से (Oegment) पर छोटी गेदके ⅙ हिस्सेको रखनेसे जैसी आकृति होती है, वैसी आकृति नेत्रगोलकोकी है । इनमे छोटा अश, जो सन्मुख प्रवर्धित प्रतीत होता है, वह शुक्लमण्डल (Cornea) से निर्मित होता है । इन दोनो नेत्रगोलकोके भीतर एक-एक दृष्टिनाड़ी रहती है। एवं नेत्रगोलकोके चारों ओर ६-६ मासपेशियां लगी हैं।

इस नेत्रगोलकका व्यास (Diameter) उत्तान (Vertical) अर्थात् खडी पंक्तिमें २३॥ मिलीमीटर है, अनुप्रस्थ (Transverse) अर्थात् आडी पंक्तिमें नासिकाके कोनसे कर्णकी ओर रहनेवाले दूसरे कोन तक २४ मिलीमीटर है* । एव अनुलम्ब (Anteroposterior) मोटाईका नाप भी २४

*लगभग २५ मिलीमीटरका एक इंच होता है ।

मिलीमीटर है। सामान्यत. जन्मके समय अनुलम्ब व्यास लगभग १७।। मिलीमीटर होता है, और युवावस्थामें (१८ वर्षकी आयुमे) यह २० से २१ मिलीमीटर हो जाता है। स्त्रियोमे ये तीनों व्यास कुछ कम होते हैं। १८ वर्षके पश्चात् भी व्यास बढकर २४ मिलीमीटर हो जाता है।

ये नेत्रगोलक जिन नेत्रगुहाओमे रहते है, वहापर ये पतली श्लेष्मिक कला से निर्मित दृढ गिलाफ (Sheath) के भीतर रहते है. उसे नेत्रधरकला कोष (Fascia bulbi or Capsule of Tenon) सज्ञा दी है। इसके बाह्य और आभ्यन्तर, ऐसे दो स्तर है। इन दो स्तरोके भीतर लसीका रहती है। जिससे नेत्रगोलक अपनी चेष्टा सरलता पूर्वक कर सकते है।

इन अक्षिगोलकोमे सन्मुख भाग पारदर्शक (Transparent) और पश्चात् भाग अपारदर्शक (Opaque) है। इन नेत्रगोलकोको निसर्गने इस तरह रखा है कि, चारो और फिरने या दबनेपर भी सुरक्षित रह सके।

इन अक्षिगोलकोमे श्वेतपटल शुक्लमण्डल, मध्यपटल, कनीनिका, तारा-मण्डल, नेत्रदर्पण, दृष्टिमणि, पीतक्षेत्र, दृष्टिक्षेत्र, दृष्टिनाडी, नेत्रश्लेष्मिक कला, अग्रिमा जलधानी, पश्चिमा जलधानी, तेजोजल, सान्द्रजल, नेत्र चालनी पेशिया, अश्रुग्रन्थि, धमनी, शिराएँ, रसायनियां आदि आदि अव-यव अवस्थित है, जो विविध जीवनोपयोगी महत्वके व्यापार और संरक्षण कार्य करते है।

अक्षिगोलक प्राचीर—दीवारमे ३ पटल या वृत्ति (Tunics) हैं—बाह्य, मध्य और अन्तर। इनके अतिरिक्त त्रिविध स्वच्छ वस्तु है—तनुजल (तेजावारि), दृष्टिमणि और सान्द्र जल।

बाह्यपटल बहिर्वृत्ति—(External Tunic of the Eyeball)—यह दृढ स्नायु सूत्रोमेसे बना है। इसके दो विभाग है। श्वेतपटल और शुक्ल मण्डल। इनमे श्वेत पटल नेत्रगोलकके पश्चिम ⅚ हिस्सेको आवृत करता है, और शुक्लमण्डल अग्रिम ⅙ हिस्सेपर आवरण रूपमे रहता है।

शुक्लमण्डल (Cornea) यह कांच सदृश स्वच्छ है। यह श्वेत पटलके आगेकी ओर विभाज्य रूपमे संयोजित है। आपात दृष्टिसे देखनेपर यह कृष्ण या पिङ्गल वर्णका प्रतीत होता है। इसमेसे पीछेकी ओर रहे हुए कृष्ण वर्णके तारामण्डलकी प्रतीति होती है। इस हेतुसे सामान्य जनता इसे भ्रमवश काले वर्णका मानती है।

शुक्लमण्डल और श्वेतपटलके तन्तु परस्पर मिले है। यथार्थमे श्वेत पटल इस शुक्लमण्डलको परिवेष्टित करता है। जिस तरह घडीके ऊपर लगा हुआ काच तीनेके अग्रमे आबद्ध रहता है। उसी तरह शुक्लमण्डल इस पटल मे लगा हुआ है, यह गोलाकार है, और अति सूक्ष्म ५ स्तरोंसे बना है। यह

स्वस्थावस्थामे रक्तप्रणाली विहीन होता है। अत परिवेष्टनसे अपना पोषण ग्रहण करता है।

श्वेतपटल--बाह्यपटल (Sclera-sclerotic coat)—यह पटल घन स्नायुओसे बना है और समग्र नेत्रगोलकको वेष्टन करता है। दृष्टि, नाड़ी, शिरा और धमनीगे इसका पीछेकी ओर भेदन होता है जो कि, दृष्टि नाड़ी आदि तारामण्डलकी ओर गति करती है। इसके भीतरके अशमें मास-पेशिया लगी है। इसी हेतुसे यह कडा रहता है। यह अक्षिगोलकके आभ्यन्तरिक अवयवोका संरक्षण करता है। यह आगेकी अपेक्षा पीछेकी ओर स्थूलतर है।

मध्यपटल (Middle orVasculaı Tunic of the Eyeball) यह पटल बाह्यपटलके अन्तरमे संसक्त है। यह पटल आन्तर पटलको धारण करता है। इसके तीन विभाग है—कनीनिका सहित तारामण्डल, संधान मण्डल (तन्तुसमूह) और कर्बुर वृत्ति (मध्यपटल)।

तारामण्डल (Iris)—यह पतलेमण्डलाकार पेशीसूत्रोमेसे बना है। यह सकोच-विस्फारणशील है। इसके भीतर सूक्ष्म रक्तप्रणालियां अधिक रहती है। इसकी कृष्ण वर्णकी या क्वचित् पिङ्गल वर्णकी प्रतिछाया शुक्लमण्डल पर पडती है। जिससे उसका वर्ण श्याम दिखलाई देता है।

नेत्रके पीछेके ५/६ भागमे मध्यपटल और बाह्यपटल बिल्कुल संलग्न है। परन्तु आगेके १/६ भागमें ये दोनों पृथक् हो जाते हैं। ब्राह्यपटल शुक्लमण्डल के हेतुसे मध्यपटलसे कुछ दूरी पर रहता है। इस दूरीपर रहने वाले मध्य-पटलके भागको ही तारामण्डल संज्ञा दी है।

कनीनिका (Pupil)—तारामण्डलके मध्यमे दैवकृत एक छोटा-सा विवर है, जो फैलता और सिकुडता है, उसे कनीनिका (पुतली) कहते हैं। इसमें तेजो रश्मियां और उज्वल वस्तुओकी किरणे प्रवेश करती है। इस विवरका सकोच-विकास तारामण्डलके गोल इन्द्रधनुषके चक्रोंकी तरह पेशी तन्तुओंके संकोच-विकास द्वारा होता है।

इसे ढक देनेवाली पतली कनीनिकाच्छदनी कला (Membrane Pupillaris) जन्म लेनेवाले अनेक शिशु (सद्योजात पशुओंके बच्चोंमें भी) प्रतीत होती है, जो जन्मके पहिले या पश्चात् स्वयमेव विलीन हो जाती है।

इस तारामण्डलके भीतरकी ओर पूर्वके रहा हुआ हिस्सा तेजोवारिसे पूर्ण है। इसे जलमय रसका पूर्व खण्ड और अग्रिमा जलधानी (Anterior Chamber) संज्ञा दी है। एवं इसके पश्चिमकी ओर दूसरा बडा खण्ड रहता है। जो नेत्रगोलकके ३/४ भागमें व्याप्त है, उसे जलमय रसका पश्चिम खण्ड और पश्चिमा जलधानी (Posterior Chamber) संज्ञा दी है। दोनों जलधानियोंका सम्बन्ध कनीनिका द्वारा होता है।

इसके ऊपरकी ओर शुक्लमण्डल, नीचेकी ओर अग्रिमा जलधानी, पश्चिम भागमे पश्चिमा जलधानी और दृष्टिमणि तथा चारो ओर सन्धानमण्डल रहते है। इस कनीनिकामे दो प्रकारके पेशी सूत्र है। एक कनीनिका संकोचक (Sphicter Pupillae) हैं, जो इसके चारों ओर गोल लगे हुए हैं। दूसरे कनीनिका प्रसारक (Dilator Pupillae) है, जो इसके चारो ओर चक्र नाभिगे अराके समान रहते है।

तन्तुसमूह—सन्धानमण्डल (Ciliary body Corpus Ciliare) यह मण्डलतारा और कर्वुर वृत्तिके मध्यमे रहता है, अर्थात् इस सन्धान मण्डल द्वारा दोनोका सन्धान होता है। इसके तीन विभाग हैं सन्धानवलयिका, सन्धानपेशिका और सन्धानदशिका।

सन्धानवलयिका (Orbiculus Ciliaris)—यह कर्वुर वृत्ति की अग्रिमधाराका बन्धन करता है।

सन्धानपेशिका (Ciliary Muscles)-यह आगेकी ओर बाहरकी परिधि मे लगा हुआ है। इसके पेशीसूत्र शुक्लमण्डलमेसे निकलकर कर्वुर वृत्तिमे मिल जाते है। दूसरे सूत्रसमूह सन्धानमण्डल और सन्धानदशिका को जोड़ता है।

सन्धानदशिका ताराप्रवर्द्धन (Ciliary Processes)— इसके तन्तु सन्धानमण्डलके पश्चिमकी ओर नागकेशरके पुष्पके केशराओके समान कर्वुर वृत्तिकी चारो ओर लगे हुए हैं। इन केशराओंकी संख्या लगभग ७०-८० है। यह तारामण्डलसे पिछले भाग द्वारा पृथक् हो जाता है।

पारदर्शक सान्द्रजल (काचमय रस) नष्ट न हो जाय, इस हेतुसे सन्धान मण्डल और ताराप्रवर्द्धन, ये बाह्य आवरण और मध्य आवरणको पृथक् करते हैं। फिर ताराप्रवर्द्धन सबको सान्द्रजलधराकोष (Hyaloid Membrane) से वियुक्त करता है। इस तरह सान्द्रजल और दृष्टिमणिको भी मध्यपटलके सन्मुख अंशसे पृथक् करता है।

सन्धानमण्डल और बाह्यपटलकी सन्मुख धारामे एक सूक्ष्म प्रणाली या सुरंग रहती है, यह अक्षिगोलककी समग्र परिधिको वेष्टन करके तारा मण्डलमें प्रवेश करती है। इसे तन्तुमय सुरग (Canal of Fontana or Ciliary canal) संज्ञा दी है।,

कर्वुर वृत्ति —मध्यपटल (Choroid Coat) इस वृत्तिका वर्ण कबरा होने से इसे कर्वुर वृत्ति कहते है। यह नेत्रगोलकके भीतर ⅚ भागको आवृत्त करती है। और शुक्ल वृत्तिसे मिल जाती है इन दोनोके बीचमे व्यवधायक (दोनोंको पृथक् करने वाली) और पतली, शिथिल वर्णद्रव्य (Pigment) प्रधान संयोजकला आरम्भित है। जिसे शबलकला (Lamina Fusca) संज्ञा दी है।

इस कर्वुर वृत्तिका निर्माण दो स्तरोंसे होता है। पहिला स्तर बाह्य है, उसका वर्ण कबरा है। उसमें ४ शिरायुक्त शिरा गुल्मिका (Venao

Vorticosae), इतर शिराएँ और धमनी प्रतान (Arterioles) रहते है। द्वितीय स्तर आभ्यन्तर है। इसमे भी शिरा और धमनियोके प्रतान और जालक (केशिका समूह Capillaries) हैं। इसकी स्थूल शिरा और धमनिया बाह्यपटलके मध्यभागका भेदनकर अन्दर बाहर फैल जाती है और उसका पोषण करती है।

इस कर्बुर वृत्तिमे तीसरी और पाचवी शीर्ष नाडीके प्रतान (अनुशाखाएँ) तथा स्वतन्त्र नाडीप्रतान रहते है। तृतीय नाडीप्रतान कनीनिकाका संकोच और स्वतन्त्र नाडीप्रतान कनीनिकाका विस्फारण करता है; एव पञ्चम नाडीप्रतान स्पर्श सज्ञाका बोध कराता है।

आन्तरपटल—नेत्रदर्पण (Retina)—यह नेत्रगोलककी अन्तरतम अति पतली वृत्ति है। यह आगेके ⅙ भागको छोडकर शेष समग्र नेत्रगोलक मे व्याप्त है। यह वृत्ति दर्शनेन्द्रियका प्रधान अग है।

यह आगे की ओर मध्यपटलसे और पीछेकी ओर दृष्टिनाड़ी (Optic Nerves) के साथ लगा है। इसका विस्तार आगेकी ओर संधानमण्डल तक है। यह आन्तरपटल जीवितावस्थामे स्वच्छ और नीललोहित रङ्गका होता है, तथा मृत्युके पश्चात् नेत्रगोलकके दबावका ह्रास हो जानेसे मलिन धूसर रगका हो जाता है।

इस वृत्तिमे दृष्टिनाडियोके तन्तु फैले हुए हैं। यह दृष्टिनाड़ी नेत्रगोलककी अक्षरेखा (Axis) अर्थात् शुक्लमण्डल और आन्तरपटल आदिके मध्य बिन्दुको संयोजन करने वाली रेखाका अनुसरण नही करती। दृष्टिनाड़ीका प्रवेश स्थान दृष्टिनाडी खात (सितबिम्ब-Optic Disc)मे है। जो अणुवीक्षणयत्र द्वारा देखनेपर शुभ्र और उसके चारो ओरका भाग लालसा दिखाई देता है।

इनके अतिरिक्त अक्षरेखाके स्पर्शस्थानके पार्श्वभागमे कुछ नीचे पीत बिम्ब रहता है, जो पूर्वोक्त परीक्षा कालमे प्रतीत नही होता।

इस अन्तर्वृत्तिकी आगेकी ओर फैली हुई धारा जो करपत्राग्र (हथेली) सदृश गोल है, जो कर्बुर वृत्तिकी अग्रधारासे लगी हुई है, उसे दन्तुर धारा-मण्डल (Ora Serreta) संज्ञा दी है। इसके आगे अनुबन्धभूत अति पतली कला, जो ताराप्रवर्द्धनकी पश्चिम आवरणरूपा है, उसे वितानाग्रकला (Pars Ciliaris Retinae) संज्ञा दी है।

इस पटलमे १० स्तर(पर्त) है। इनमेसे नवमी तह दण्डशंकु (Jacob's Membrane or Layer of Roads and cones) की है। इसका सम्बन्ध दृष्टिके साथ अति निकटका है। यह पर्त पीछेसे मोटी और जितना आगे बढे उतनी पतली होती जाती है। दशमी पर्त विविध वर्णसे बनी हुई होनेमे उसे रंजितस्तर(Tapetum Nigrum of Pigmentary Layer) कहते हैं। इस पर्त्तपर विविध वर्णके चित्रोंके प्रतिबिम्ब पड़ते हैं; और क्षण

मात्र रहकर विलयको पाते है। इस कलाको प्राचीन आचार्योंने आलोचक पित्तधरा कला सज्ञा दी है। ये दोनो पर्त इतर आठ पर्त्तोसे आच्छादित है। परन्तु इनमें स्वच्छता होनेसे प्रतिबिम्ब ग्रहणमे प्रतिबन्धक नही होती।

पीतक्षेत्र (Macula lutea or yellow spot)-आन्तरपटलके पीछे ठीक बीचमे एक पीला अण्डाकृति स्थान है, उसे पीतक्षेत्र कहते है। और स्थानोकी अपेक्षा इस क्षेत्रमे देखनेकी शक्ति तीक्ष्णतम है। इसका व्यास लगभग $\frac{1}{20}$ इन्च है। इस क्षेत्रके बीचमे अधिक गहरे रगका केन्द्रस्थान है, जो गड्ढे सदृश प्रतीत होता है। इसे दर्शन केन्द्र अथवा दृष्टि-नियन्त्रणखात (Fovea centralis) सज्ञा दी है। इस खातपर आन्तरपटल अत्यन्त सूक्ष्म होजाता है।

जब किसी वस्तुकी ओर अपनी दृष्टि डालते है, तब गति उत्पन्न होकर, यह स्थान उस पदार्थके सम्मुख आ जाता है। दृष्टिनाडीका सिरा (सित बिम्ब) या दृष्टिनाडीखात (Optic Disc or porus opticus) इस स्थान से ३ मिलीमीटर अर्थात् $\frac{1}{8}$ इञ्च दूर नासिकाकी ओर रहता है। इसका व्यास लगभग १।। मिलीमीटर है। इसे बिम्बाङ्कुरिका (Optic papilla) भी कहते। यह दृष्टिनाडीके मध्यमे रही हुई धमनी और शिराका प्रवेश स्थान है। इस स्थानपर प्रकाशके प्रभावका अभाव है; अर्थात् इस स्थानपर प्रकाशग्राही कोष (Cells) नही है। इस हेतुसे इसे अन्ध बिन्दु (Blind spot) संज्ञा दी है।

इस नेत्रगोलक गर्भमे त्रिविध स्वच्छ वस्तु रहती है—तनु जल (तेजो जल) दृष्टिमणि और सान्द्र जल। इसके आगे बहिर्वृत्तिके अंगभूत शुक्ल-मण्डल रहता है। इन चारोके समुदायको स्वच्छ वस्तु व्यूह (Transparent or Refracting Media) सज्ञा दी है। ये सब रूपवाली वस्तुओं के प्रकाशकी किरणोको ग्रहण करनेमे परस्पर सहायक है। शुक्लमण्डलमे संग्रहकी हुई किरणोका कनीनिका पथसे प्रवेश होता है। फिर दृष्टिमणि द्वारा एकीकरण (Focussing) होता है। पश्चात् ये संगृहीत रश्मियाँ सान्द्रजलका अतिक्रमण करके अन्तरपटलके अन्तिम (दशम) स्तरपर प्रति-बिम्बकी रचना करती है।

नेत्रगोलकमे देखनेपर पहिला शुक्लमण्डल (Cornea) है। दूसरा तनुजल, यह पोषण योग्य धर्म करनेवाला होने से प्रधान है। तीसरा दृष्टि-मणि; चौथा पारदर्शक सान्द्रजल है. इसमे नेत्रगोलकका अधिकांश पूर्ण है। इनके अभावमे गोलककी आकृति नष्ट हो जाती है, और प्रतिबिम्ब ग्रहण भी नही होता।

तनुजल—तेजोजल (Aqueous Humour)—यह एक प्रकारका तरल पदार्थ है। जो दोनों नेत्रोंकी [illegible] (Anterior Cha-

mber) और पश्चिमा जलधानी (Posterior Chamber)में रहता है। यह जल कुछ नमकीन-सा है। इसका परिमाण केवल २–३ रत्ती ही है। यह रक्तरस (Plasma) मेसे बना है। यह तेजोजल दोनो नेत्रोंमे तन्तु प्रवर्द्धन (Ciliary Process) द्वारा पश्चात् कोष्ठमे पहुँचता है। यह अपने स्वरस द्वारा स्वच्छ वस्तुव्यूहका पोषण करता है। यह प्रतिदिन क्षीण होता जाता है, और नूतन उत्पन्न भी होता रहता है। यह आमदनी बाह्य पटल और शुक्लमण्डल सन्धिके मध्यमे रही हुई अग्रिमा रसायनीके मार्ग द्वारा लसीकामेसे होती है। इस जलको प्राचीन आचार्योने तेजोजल संज्ञा दी है।

दृष्टिमणि (Crystalline Lens) – इसे ताल संज्ञा भी दी है। यह दोनो ओरसे उभरा हुआ अर्थात् युगल उन्नतोदर (Biconvex lens) है; परन्तु आगेकी ओरकी अपेक्षा पीछेकी ओरका हिस्सा अधिक उभरा हुआ है। यह तारामण्डलके पीछे और नेत्रगोलकान्तके मध्यमे रहता है। यह सधानमण्डलद्वारा बद्ध है। इसके आगे कनीनिकासहित तारामण्डल है। इस दृष्टिमणि और तारामण्डलके मध्यमे पश्चिम जलधानी है। पीछेकी ओर सान्द्रजलका पतला कलाकोष है। इसके उदरमे दृष्टिमणिके अनुरूप खात है। जिससे दृष्टिमणिका धारण होता है।

स्वस्थावस्थामे यह पूर्ण रूपसे स्वच्छ रहता है। फिर आयुवृद्धि और रोगके हेतुसे धुँधला होता जाता है। इसकी लिङ्गनाश (मोतियाबिन्द Cataract) नामक मुख्य व्याधि है। इस तालके ऊपर एक पतला आवरण चढ़ा हुआ है; उस स्थलीको दृष्टिमणिकोष (Capsule of Lens) कहते हैं। इसके आगे फैले हुए परिविवेष्टन कलाचक्र (Zonula Ciliaris or Zonule of Zinn) के स्नायु है, जो दो स्तरोद्वारा दृष्टिमणि बन्धनी (Suspensory Ligament of the Lens) की रचना करते है।

सान्द्रजल—कांचरस (Vitreous Body)—यह दृष्टिमणिके पीछे स्थित है यह कोष्ठ नेत्रके ⅘ हिस्सेमे स्थित है। यह नेत्रगोलकमे पश्चिमकी ओरसे नेत्रके वर्त्तुलाकारका रक्षण करता है। यह पारदर्शक कलासे बना है, जिसे सान्द्रजलधरा कोष (Hyaloid membrane) कहते है। इसमे पक्षियोके अण्डेमे रहने वाले तरल पदार्थ सदृश चिपचिपा रस-सान्द्रजल रहता है। इस रसमे जल ९८·६ प्रतिशत है। शेष अशमे कुछ नमक और किञ्चित् प्रथिन (Protein) रहता है। इस रसके दबावसे नेत्रके तीनों पटल परस्पर मिले रहते है।

यह कांचरस अन्तर पटलके अङ्कमे स्थित है, और आगेकी ओर अपनी गोदमे रहे हुए छोटेसे खड्डेमे नेत्रदर्पणको धारण करता है। इस खातको दृष्टिमणि खात (Fossa hyaloid of fossa patellar) संज्ञा दी है।

इस सान्द्रजलके मध्यमें दृष्टिमणिके पीछेकी ओर दृष्टिनाड़ी प्रवेश स्थान तक एक पतली प्रणालिका लसीका पूर्ण रहती है। उसे सान्द्रजलान्तरीया प्रपिका (Canalis Hyaloideus) संज्ञा दी है। यह गर्भस्थ शिशुओंकी कनीनिकाके आच्छादनको पोषण करने वाली धमनीका अवशेष रूप है।

सान्द्रजलधरा कला अन्तरपटलकी सीमापर रही हुई कलाको चिपका हुआ है। इसका आगेका हिस्सा स्थूल कलाचक्र रूपसे नेत्रदर्पणकी परिधि मे प्रतीत होता है। इस कलाचक्रकी चारो ओर चक्रनाभिमे अराके सदृश सन्धानदर्शिकाके अंश लगे हुए है, इस कलाचक्रमेसे दो स्तर निकले है। पहिला दृष्टिमणि-कलाकोषकी उभय ओर संलग्न है; तथा सन्धान-पेशिका की सहायतासे दृष्टिमणि बन्धनीकी रचना करता है दूसरा स्तर इसके दृष्टि-मणि खातको आवृत्त करता है।

दृष्टि (Sight. Vision)—बाहरकी ओर दृष्टि डालनेपर प्रकाशकी किरणे शुक्लमण्डलपर पड़ती है। फिर वे नेत्रके भीतर प्रवेशकर तेजोवारि, कनीनिका, दृष्टिमणि और सान्द्रजलमेसे क्रमश अन्तर पटलके अन्तस्तर (रजितस्तर) तक पहुँचती है। फिर इसीपर वस्तुओका प्रतिबिम्ब पडता है। यह प्रतिबिम्ब उलटा होता है, अर्थात् खडे मनुष्यके पैर ऊपर और शिर नीचे होता है। परन्तु यह चित्र मस्तिष्कगत दृष्टिकेन्द्रमे मनद्वारा सीधा ही प्रतीत होता है। कारण मनका इसी तरह ग्रहण करनेका अभ्यास हो गया है। यह चित्र क्षणमात्र रहता है। उस समय प्रतिबिम्ब जितना साफ होता है, उतनी ही वस्तु स्वच्छ दिखाई देती है। इस प्रक्रियाका प्रभाव तत्काल नवम दण्डशङ्कु स्तर द्वारा विलोम क्रमसे होता है। प्रति-बिम्ब परम्परा जब दृष्टिनाडी (Optic Nerves) द्वारा मस्तिष्कमे रहे हुए दृष्टिकेन्द्रमे पहुंचता है, तब वस्तुके वर्ण, आकृति, लम्बाई, चौड़ाई आदि का बोध होता है।

दर्शननाडी-दृष्टिनाडी (Optic Nerves)—दोनो नेत्रोकी दृष्टिनाडी नेत्रके तीनों पटल और सितबिम्बका भेदनकर नेत्रके पीछेकी ओरसे प्रारंभ होकर बृहद् मस्तिष्कमे गमन करती है। इस नाडीमे लगभग ५ लक्ष सूक्ष्म तार उपस्थित है। इस दृष्टिनाडीके सामान्यतः स्थान भेदसे तीन विभाग होते है १ दृष्टिनाड़ी, २ दृष्टिनाडी चतुष्पथ और ३ दृष्टिनाडी मूलिका (दर्शनप्रबंध)।

दोनो नेत्रोकी दृष्टिनाड़ी नेत्रोमेसे निकलकर नासिकाकी ओर होकर पहिले मस्तिष्कके अधोभागमे जतूकास्थि (Sphenoid bone) के ऊपर दृष्टि-नाड़ी परिखा (Optic groove) मे गमन करती है। इस खाईके दोनों ओर एक एक छिद्र है। इन छिद्रोको दृष्टिनाड़ी रन्ध्र (Optic Foramen) संज्ञा दी है। इस खाईमे जहां दोनों नाड़ियोका [illegible] होता है, उसे

दृष्टिनाड़ी योजनिका और दृष्टिनाड़ी चतुष्पथ (Optic chiasma or commissure) संज्ञा दी है। यह स्थान पोषणिका ग्रन्थि (Pituitary Body) के पीछेकी ओर अवस्थित है। फिर यहाँसे यह नाडी दृष्टिनाड़ी मूलिका (Optic tract) नाम धारणकर दोनो ओर विरुद्ध दिशामे होकर वृहद् मस्तिष्कके पश्चात् खण्ड (Occipital lobe) के भीतर रहे हुए दर्शनकेन्द्रों (Vesual centres) मे प्रवेश करती है। इन दोनों केन्द्रोका परस्पर सम्वन्ध रहता है; एवं ये नाडिया गतिक्षेत्र और लघु मस्तिष्कसे भी सम्वन्धित रहती है।

नेत्रश्लैष्मिक कला (Conjuctiva)—दोनो नेत्रोके नेत्रच्छदोके भीतर आवरणभूत पतली श्लैष्मिक कला अवस्थित है। यह प्रतिफलित होकर नेत्रगोलकके आगेके हिस्सेको अर्थात् बाह्यावरणके सन्मुख अंश और शुक्ल-मण्डलको आवृत करती है। इसका कुछ भाग नेत्रपुटके भीतर है। शेष हिस्सा चक्षुमे वाहर प्रतीत होता है।

अग्रिमा जलधानी—जलमय रसका पूर्व खण्ड (Anterior chamber)—यह कोष्ठ शुक्लमण्डल और तारामण्डलके मध्यमे स्थित है। यह तेजोजलसे भरा है।

पश्चिमा जलधानी—जलमय रसका पश्चिम खण्ड (Posterior chamber)—यह कोष्ठ पूर्व खण्डकी अपेक्षा छोटा है। इसमे तेजोजल रहता है। यदि इसमेसे तेजोजलको निकाल दिया जाय, तो इसके अस्तित्वका निर्णय नही हो सकता। यह खण्ड तारामण्डल और दृष्टिमणिके आवरणके मध्य स्तरमे स्थित है।

नेत्रचालनी पेशियां (Oculo Motor Muscles)–दोनो अक्षिगोलकों को चारो और घुमानेके लिये मुख्य मासपेशियाँ ६-६ लगी है। ये पेशियां अक्षिगुहाके पीछेकी ओरसे निकलकर बाह्य पटलमे सम्मिलित हो गई हैं। इनमेसे एक ऊपर, एक नीचे, एक भीतरके कोएकी ओर तथा एक बाहरके कोएकी और लगी हैं। ये चारो ही सरल पेशियाँ हैं। एवं एक ऊपर और एक नीचे मिलकर दो वक्र पेशिया है। इन पेशियोके सकोचसे नेत्र चारो और घूमता रहता है। इनके अतिरिक्त नेत्रोन्मीलनी और नेत्र निमीलनी, दो गौण पेशियां अलग है।

इन अवयवोके अतिरिक्त अश्रु ग्रन्थिया, अश्रु स्थली, अश्रु वाहिनियां शिरा, धमनी, रसायनियां भ्रू, अक्षिपल्लव, उपास्थिया, स्नायुसूत्र, स्पर्श संज्ञा ग्रहण कराने वाली चाक्षुषी नाडी (Ophthaemic Nerves), नेत्रचेष्टनी नाड़ियाँ(Oculo Motor Nerves)और इतर नाड़िया आदि अवस्थित है।

मुख्य नेत्र व्याधियां

(१) दूर दृष्टिमान्द्य (Myopia or Short Sight)—जब नेत्रोके

गोलोंका क्षितिज अक्ष दीर्घ हो जाता है, और आन्तर पटल दृष्टिमणिसे स्वस्थ अवस्थाकी अपेक्षा अधिक दूर हो जाता है, तब दूरकी वस्तु ठीक तरह नही देखनेमे आती। इस हेतुसे दूर दृष्टिमान्द्य दोषकी सम्प्राप्ति होती है। किसी-किसी व्यक्तिकी दृष्टि जन्मसिद्ध निर्बल होती है। ऐसे रोगियोको ऐनकका उपयोग करना पड़ता है।

(२) निकट दृष्टिमान्द्य (Hypermetropia or Hyperopia)—क्वचित् दूर दृष्टिमान्द्यसे विरुद्ध विकृति हो जानेपर निकट दृष्टिमाद्य विकार हो जाता है। यह व्याधि वर्त्तमानमे अनेकोको हो जाती है। इसकी प्राप्ति होनेपर रोगी छोटे अक्षरकी पुस्तक नही पढ सकता एव छोटी छोटी वस्तुओको साफ नही देख सकता।

(३) जराजन्य दृष्टिमांद्य (Presbyopia)-जिस तरह छोटी आयुमे दोष विकृतिसे निकट दृष्टिमान्द्यता हो जाती है, उसी तरह वृद्धावस्थामे दृष्टि-मणिकी विकृतिसे भी दृष्टिमान्द्य हो जाता है।

(४) विषम दृष्टि (Astigmatish)—क्वचित् दृष्टि मणिके दोनो पृष्ठ बराबर उन्नतोदर नही होते। लम्बाक्षकी ओरका पृष्ठ क्षितिजाक्षके पृष्ठकी अपेक्षा अधिक उन्नतोदर हो जाता है। या इसके विपरीत क्षितिजाक्षकी ओरके पृष्ठ लम्बाक्षकी ओरके पृष्ठकी अपेक्षा अधिक उन्नतोदर हो जाता है। इस हेतुसे नेत्रदर्पणपर आलोकरश्मि पड़नेपर कोई कोई अंग अस्पष्ट दिखलाई देता है।

(५) युगल दृष्टि (Spherical Aberration)—क्वचित् सामनेकी या पार्श्व भागकी प्रकाश किरण दृष्टिपटल पर एकत्रित नही हो सकती, तब दो दो पदार्थ प्रतीत होते है।

(६) वर्णव्यभिचारी दृष्टि (Chromatic Aberration) —जिस तरह प्रकाशकी किरण किसी आतशी कांचके भीतरसे आनेपर विविध वर्ण दिखाई देते है, उस तरह किसी कारणसे नेत्रदर्पणमे विकृति होनेसे पदार्थ का रग दूसरा ही (एक या अनेक) प्रतीत होता है।

(७) अर्द्ध दृष्टि (Half Vision or Hemianopsia)—दृष्टि क्षेत्रका कुछ अश नष्ट हो जानेसे दृष्टि दोषवती बन जाती है। [illegible] दृष्टि भी कहते हैं।

अतिरिक्त व्याधिया—

१—वक्रदृष्टि (Strabismus)
२—नक्तान्ध्य (Nyctalopia or night blindness)
३—दिवान्ध्य (Hemeralopia or day blindness)
४—प्रकाशकी असहनता (Photophobia)
५—तारामण्डलका निर्गमन (Prolapes of Iris)

६—अर्म अर्थात् बेल (Pterygium)

७—शुक्लमण्डल प्रदाह (Keratitis)

८—तारामण्डल प्रदाह (Iritis)

९—मध्यपटल प्रदाह (Choroiditis)

१०—लिङ्गनाश अर्थात् मोतियाबिन्द (Cataract)

११—नेत्रमें दबाव वृद्धि अर्थात् अधिमन्थ (Glaucoma)

१२—नेत्र श्लैष्मिककलाप्रदाह (Conjunctivitis)

१३—नेत्र श्लैष्मिककलाका पूयप्रदाह (Purulent Conjunctivitis)

१४—पोंथकी, दानेदार श्लैष्मिककलापूयप्रदाह या रोहे (Granular Conjunctivitis)

१५—जन्मकालमे पूयप्रदाह (Ophthalmia Neunotorum)

१६—अश्रु आशय नाडीव्रण (Lachrymal Fistula)

इनके अतिरिक्त नेत्रके पुट, पक्ष्म आदिमे अजन नामिका (Sty) पक्ष्म कोष (Trichiasis) नेत्रपुटप्रदाह (Blepharitis), नेत्रच्छदका अन्तरावर्त्तन (Entropion), नेत्रच्छदका बहिरावर्त्तन (Ectropion), निमेष अर्थात् नेत्रपुटका आक्षेप (Blepharospasm) आदि आदि, विकारोकी संप्राप्ति होती है ।

जब तक नेत्रमें शुक्लमण्डल, तेजोवारि, कनीनिका, दृष्टिमणि और कांचरस आदि स्वच्छ और स्वस्थ रहते है, तब तक हमे पदार्थ ज्ञान यथोचित होता है । जब इनमेसे किसीमे भी विकृति हो जाती है,तब उतने अंश मे दृष्टि विकृत हो जाती है । इन सबका विशेष विचार नेत्ररोगविज्ञान के भीतर किया गया है ।

(१००) क्षोभोत्पादक ।

उग्रता साधक—इरिटन्ट्स—Irritants

जो द्रव्य त्वचापर क्षोभ उत्पादन कर तथा रक्तसञ्चालनमे उत्तेजना लाकर वेदनाको शमन करे उनको क्षोभोत्पादक संज्ञा दी है, वे सब स्थानिक क्रिया निमित्त प्रयोजित होती हैं, इनमे चार प्रकार है ।

१. त्वक् प्रदाहक (रुबिफेसीएन्टस (Rubefacients) ।

२ स्फोटोत्पादक (वेसिकन्ट्स वेसिक्टोरिज एपिस्पेस्टिक्स Vesicants Vesictories Epispastics) ।

३ पूयोत्पादक (पस्च्युलन्ट्स Pustulants) ।

४. तीव्रदाहक एस्कारटिक्स कास्टिक्स Escharotics Caustics) ।

उक्त चारो प्रकारकी औषधिया क्षोभोत्पादक होनेसे एक ही प्रकारका कार्य करती है । केवल तारतम्य प्रभेद है । क्षीण औषधि भी अधिक देर तक

देह पर लगी रहे, तो प्रबलतर क्रिया प्रकाशित करती है। एवं प्रबल औषधि भी स्वल्प कालतक प्रयोजित होनेपर मृदु कार्य करती है।

(१) त्वक् प्रदाहक औषधियाँ—शोणितोत्क्लेशक इन औषधियोंके प्रयोग से रक्तावेग होकर त्वचा लाल हो जाती है। यह लाली स्वल्प कालस्थायी है, बहुधा कुछ मिनटोंमे ही शमन हो जाती है, क्वचित् कुछ दिनो तक भी रह जाती है।

नौसादर मिश्रित द्रव, कपूर, शराव, राई, सरसो, सोठ, हुलहुल, लाल मिर्च, कालीमिर्च, पीपल, लहशुन, अजवायन, लौंग, दालचीनी, चित्रकमूल, नागरवेलका पान, आकका पान, समुद्रशोषका पान, कायफल, पीलू, जायफलका तैल, रोहिष तैल नीलगिरी तैल, विण्टरग्रीन तेल तार्पिन तैल पिपरमैण्ट तैल विविध वातहर तैल आदि। इन औषधियोकी त्वचा पर मालिश या लेप करनेसे प्रदाहकी उत्पत्ति होती है, जिससे खुजली नष्ट होती है।

शोथरोगमे ऊर्ध्वाभिमुख घर्षण करनेसे बहुत अशमे रस दूर हो जाता है, और त्वचाका खिचाव कम हो जाता है। इस तरह मालिश और घर्षण से लसिकाके सञ्चालनमे वृद्धि होती है और मासपेशियोमेसे त्याज्य पदार्थ (मल) सार्वाङ्गिक रक्तसञ्चालनमे प्रवेशित हो जाता है तथा श्रमाधिक्यजन्य थकान भी दूर हो जाती है।

पीठमे मालिश करनेसे वातवहा नाडियोकी उत्तेजनाका शमन होता और निद्रा आ जाती है।

संधियोके तीव्र प्रदाहका उपशमन होनेपर उत्तेजक तैलकी मालिश करनेसे शिथिलता और विकृति दूर होकर स्वस्थावस्थाकी प्राप्ति होती है।

वातशूलयुक्त स्थानमे राईका लेप लगानेसे प्रदाह होकर शूल नष्ट हो जाता है। वातवहा नाडियोकी निर्बलतामे पीठ पर सरसोके तैलका मर्दन कराया जाता है। यदि वातवाहानाडियोकी उग्रतामे निद्रा न आती हो, तो ग्रीवाके पीछे राईका प्लास्टर लगानेसे यथेष्ट उपकार हो जाता है। यह लेप अति उग्र होनेसे अफीम आदिके विषप्रकोमे मूर्च्छाग्रस्त व्यक्तिको जागरित करनेके लिये भी व्यवहृत होता है।

फुफ्फुसप्रदाह ज्वरकी निवृत्ति होनेपर फुफ्फुसकी दृढ़ता (Consolidation) रह जाय, तो उस भागपर राईका प्लास्टर लगानेसे प्रदाहजनित द्रव पदार्थका शोषण हो जाता है। फुफ्फुसकी दृढ़ता होनेपर फुफ्फुसावरण या हृदयावरणमे रसोत्सृजन होता है, वह भी राईके प्लास्टरसे शोषित हो जाता है। इसी तरह राजयक्ष्माके प्रारम्भिक स्थानो पर इस लेपका प्रयोग करनेसे अच्छा लाभ पहुँच जाता है।

सामान्यत प्रदाहजनक होनेपर रक्तसञ्चालनमे वृद्धि होती है, परन्तु प्रदाह और रक्तसञ्चालन वृद्धि, इनमे पूर्णतामे विभिन्नता है। [illegible]

उपादानके किसी भी तन्तु (Tissue) को क्षति पहुँचने पर वहां प्रदाह होती है और इसी प्रदाह रूप क्षतिके पूरणार्थ रक्तसञ्चालनमे वृद्धि होती है।

किसी स्थान या ग्रन्थमे क्रियाधिक्य होनेपर वहा क्रियाके अनुरूप रक्त सञ्चालनकी भी वृद्धि होती है। ग्रन्थियोके स्राव या विकृति संस्कार होनेके लिये रक्तसञ्चालनकी अधिकता होती है। इस तरह ग्रन्थियोंकी सब सन्धियो के चिरकारी प्रदाह या क्षतमे घर्षण, मर्दन, लेप या फाला उत्पादक प्रयोग करने पर वहां सञ्चालित रक्तके परिमाणमे वृद्धि होकर कार्य सफल होता है।

आशुकारी प्रदाहमे रक्तसञ्चालनमे अत्यधिक वृद्धि हो जाती है, और साथ साथ प्रदाहयुक्त स्थानकी संज्ञावाहिनियोमें अत्यधिक उत्तेजना आ जानेसे अतिशय वेदना उपस्थित होती है। फिर प्रदाहयुक्त स्थानमे रक्तके वेगका ह्रास करानेपर वेदना उपशम हो जाती है। जैसे उँगलीपर काँटा या सुईसे विध जाने अथवा इतर प्रकारका आघात होनेसे उँगलीपर प्रदाह होता है। फिर हाथ नीचा रक्खा जाय, तो रक्तवहानाड़ियोंके आघातके साथ वातवहानाड़ियोमें भी कष्टदायक पीड़ा बढ़ने लगती है; और हाथको ऊँचा रक्खा जाय, तो रक्तदवावमे कमी होकर पीड़ामे भी न्यूनता होने लगती है। इसके अतिरिक्त प्रदाहयुक्त स्थानसे सम्बन्ध वाली बाहुकी धमनी पर दवाव डालने या कपड़ा बाँधनेसे और उँगलीको शीतल जलमे डुबो रखनेसे भी धमनी सकुचित हो जाती है। फिर रक्तका वेग कम होकर लाभ पहुँच जाता है।

इस तरह उष्ण पुल्टिसका प्रयोग करनेपर भी वेदना शमन हो जाती है। इसका तात्पर्य यह है कि, प्रदाहग्रस्त स्थानमे रक्तवाहिनियोके भीतर रक्तसंचालन स्थगित या मन्द हो जाता है; वहापर पुल्टिस बाधनेसे उत्ताप द्वारा कैशिकाएँ प्रसारित हो जाती है, और प्रदाहग्रस्त धमनीमेसे रक्तस्रोत अन्यत्र सचारित हो जाता है। इस तरह गौण या प्रासंगिक रक्तसञ्चालन (Collateral Circulation) क्रियाका प्रारम्भ हो जानेसे वेदनाका ह्रास हो जाता है।

त्वचाके किसी स्थानपर क्षोभोत्पादक औषधि प्रयोग करनेपर उस स्थानकी रक्तवाहिनियां प्रसारित होती हैं। फिर लाली उपस्थित होती है और अन्य स्थानकी रक्तवाहिनियां आकुञ्चित होती हैं। इस कारणसे आभ्यन्तरिक यन्त्रके प्रदाहमे ब्लिस्टर पुल्टिस, सेक आदि उपकारक होते हैं।

यदि प्रदाहयुक्त स्थानके बिल्कुल निकटमे ब्लिस्टर प्रयोग किया जाय, तो रक्तसंग्रहका ह्रास नही होता, परन्तु वृद्धि होती है। जिससे इस प्रयोग द्वारा उपकार नही होता, वलिक अपकार होता है। परन्तु हृदयस्थानके लिये यह नियम नही है। हृदयधर कलाकोषके विकारमे हृदावरणके ऊपर ब्लिस्टर बहुधा निषिद्ध है, किञ्चित दूरी पर ही प्रयोग किया जाता है।

(२) स्फोटोत्पादक औषधियाँ—जिन प्रबल क्षोभोत्पादक औषधियों की क्रिया होनेपर रक्त रस (Plasma) उत्सृष्ट होकर उपत्वक् (Epidermis) के नीचे संगृहीत होता है, और फिर फाला हो जाता है। वे औषधिया स्फोटोत्पादक कहलाती है। यथाहि राईका लेप, राईका तैल, जमालगोटेका तैल, जलकी वाष्प हुलहुलके पत्ते, चित्रकमूलकी छाल आदि।

जीर्णक्षतकी सन्धिमेसे नि सृत रस शोषणार्थ अथवा इसके चारों ओर अधिक कालस्थायी स्थूलता लानेके लिये फाला उत्पादक औषधियोका प्रयोग किया जाता है। तीव्र वातरोगमे प्रदाहयुक्त सन्धिके चारो ओर यह प्रयोग करनेमे पीड़ा और ज्वर दोनोकी निवृत्ति हो जाती हे।

वातवहानाडियोके शूलजनित वेदनास्थानमे इस प्रयोगसे उपकार होता है। पार्श्वदेश या वक्ष.स्थलके वातशूलमे कोई-कोई समय कशेरुकाके किसी स्थान विशेषमे वेदना प्रतीत होती है। उसपर इस औषधिका प्रयोग करनेसे रोगका उपशमन हो जाता है। हृदावरण या फुफ्फुसावरणके प्रदाह मे वक्षपर ब्लिस्टर लगानेसे वेदनाका ह्रास हो जाता हे। अनेक बार गृध्रसीजन्य शूलमे ब्लिस्टर लगानेमे विशेष फल प्राप्त होनेका अनुभव मिला है। एव आमाशयकी उग्रता आजानेपर जब वमनका शमन इतर प्रयोगोंसे नही होता, तब राईका प्लास्टर लगानेसे सत्वर लाभ हो जाता है।

मस्तिष्ककी विविध पीड़ा- भयानक शिरदर्द, मस्तिष्कावरणप्रदाह (Meningitis) और मस्तिष्कमे तरलसचय (Hydrocephalus) आदिमे मस्तिष्कस्थ गोस्तन प्रवर्द्धनक (Mastoid Process) के निम्न प्रदेशपर फाला उठानेसे उपकार होता है। हिस्टीरिया जन्य किसी अङ्गका पक्षाघात होनेपर उसी स्थानपर तथा हिस्टीरियाके हेतुसे होनेवाले स्वर-लोपमे स्वरयन्त्रके ऊपर ब्लिस्टर लगानेमे लाभ पहुँच जाता हे।

(३) पूयोत्पादक औषधिया—ये औषधिया प्रयोगस्थानकी नव त्वचा पर आक्रमण नही करती, परन्तु कुछ-कुछ अन्तरपर उग्रता उत्पन्न कर क्षुद्र-क्षुद्र पूयपिटिकाएँ उत्पन्न करती है, जैसे—जमालगोटेका तैल, भिलावे का तैल, थूहरका दूध आदि।

इस प्रकारकी औषधियोके प्रयोगसे केशिकाओं (Capillaries) की दीवारोंको श्वेताणु (Leukocytes) प्रवेशकर जाते है। फिर वे फालेमे संगृहीत होकर पूयोत्पत्ति करा देते है।

जीर्ण प्रदाहमे दीर्घकाल तक निरन्तर उग्रताको कायम रखनेके लिये पूयोत्पादक प्रयोग किया जाता है। [illegible] जीर्णप्रदाह, चिरकारी कफ-[illegible], [illegible] और [illegible] जमालगोटेके तैलका लेप लगानेसे पूयोत्पत्ति होकर लाभ पहुँच जाता है।

(४) तीव्रदाहक (दारुण) औषधियाँ—ये औषधियाँ प्रयोग स्थानके

समस्त विधानको जलाकर नष्टकर देती हैं। अनेक प्रकारके तेजाब, सज्जी-खार, चूना, तीव्र क्षार, सोमल, नीलाथोथा आदि। त्वचा और श्लैष्मिक कलामे चर्मकील या मासवृद्धि (Polypus) आदिको नष्ट करने तथा अधिक अंकुर और पीडा वाला क्षत होनेपर चूना, यवक्षार, सोमल तीव्रक्षार तेजाब और नीलाथोथा आदि दाहक औषधियोंका प्रयोग किया जाता है। अनेक बार विषपीड़ित स्थान और घातक कीटाणुयुक्त स्थलमे विकारकी वृद्धिको रोकनेके लिये तेजाब या तपाये हुए लोहेसे जलाया जाता है।

इस तरह जीर्ण अपस्मार, जीर्ण शिरदर्द, पागल कुत्तेका दंश, आदि रोगोमे भी इस प्रकारको जलाने वाली औषधियां (क्षारमिश्रित मरहम आदि) लगायी जाती है। स्वेद, पुल्टिस, दम्भ क्रिया (दाग देना), स्फोट (फाला उठाना, ब्लिस्टर प्रयोग और क्षार प्रयोग), ये सब प्रयोग क्षोभोत्पादक है। इनका विवेचन 'चिकित्सातत्वप्रदीप' प्रथम खण्ड पृष्ठ ४८ से ५७ तक और ११७ से १२५ तक किया गया है।

क्षोभोत्पादक प्रयोग हेतु—

(१) समस्त शरीरमे उत्तेजना लाना। ब्लिस्टर लगानेसे प्रयोग स्थानमे प्रदाह होकर सारे शरीरमें उत्तेजना आती है। यथा ज्वर आदि रोगोमे जीवनीय शक्ति अवसन्न होनेपर उसे इस प्रयोगसे उत्तेजित की जाती है।

(२) शोषक शिराओकी क्रिया वृद्धि। ब्लिस्टर लगानेपर शोषक शिराएँ उत्तेजित होकर क्रिया सत्वर करने लगती है। इसलिए विविध प्रदाहजनित संगृहीत रसशोषणार्थ और शोथके रसरक्तको फैला देनेके लिये प्रयोग किया जाता है।

(३) प्रतिक्षोभोत्पादक—इस उद्देश्यसे आभ्यन्तरिक विविध स्थानोंके प्रदाहमे इस प्रयोगका आश्रय लिया जाता है।

(४) दोहन—ब्लिस्टर लगाकर स्फोट होनेपर उसकी त्वचा निकाल लेनेसे क्षतमेसे रस निकलने लगते है, जिससे दोहन (दोष निवारण) की सिद्धि होती है। अनेक प्रकारके आभ्यन्तरिक जीर्ण प्रदाहमे यह विशेष उपकार दर्शाता है।

(५) अन्तर त्वचा वेध (Endermic Method)—इस प्रकारमें पहिले स्फोट उठाकर फिर क्षतमे औषधि लगाई जाती है। इस तरह प्रयोग करनेपर औषधि सत्वर शोषित होकर क्रिया दर्शाती है। जिन औषधियोकी क्रिया अति उग्र हो, उनका प्रयोग इस तरह नही किया जाता। अफीम आदि उद्भिद् औषधियोंके सत्वोका इस तरह व्यवहार किया जाता है। औषधका सूक्ष्म चूर्ण क्षतपर लगाया जाता है, या मलहम रूपसे लेप किया जाता है। वमनके निवारणार्थ उदरकी त्वचापर अफीम

सत्वका इस तरह प्रयोग करनेसे तत्काल फल प्रतीत होता है। जीर्ण आम-वात और वात शूल (Neuralgia) में वेदना स्थानपर इसी तरह अफीम सत्वका प्रयोग किया जाता है।

(६) विविध काल्पनिक वेदना निवारण—हिस्टीरियामे अनेक स्थानों मे काल्पनिक वेदना उपस्थित होती है। ब्लिस्टर लगानेपर स्फोट उत्पन्न होनेपर इनका निवारण होता है।

सूचना—(१) प्रदाहका प्रारम्भ होनेपर तुरन्त या प्रदाहकी उग्रता ह्रास होनेके पहिले ब्लिस्टरकी औषधिका उपयोग नही करना चाहिये।

(२) स्तन, वृषण आदि कोमल स्थानोमे और जिस स्थान पर हड्डी ऊँची उठी हो, वहां पर स्फोट नही उठाना चाहिये।

(३) क्षोभोत्पादक प्रयोगकी औषधि आठ घण्टे बाद रखना निष्फल है। बच्चोके लिए ब्लिस्टर लगानेमे त्वचा लाल हो, तब तक रखना चाहिये। फिर ब्लिस्टर उठा उस स्थान पर गरम पुल्टिस बाँध देनेसे २-३ घण्टेमें फाला हो जाता है। यदि ब्लिस्टर अधिक देर तक रखखा जायगा, तो त्वचा कोमल होनेके हेतुसे अत्यन्त प्रदाह हो जाता है, फिर कभी-कभी त्वचा भी गलकर पक जाती है।

(४) ब्लिस्टरके क्षतको जल्दी सुखानेके लिये स्फोटको कुचल न देवें। यदि कुचल दिया हो, तो भी त्वचाको न निकाल देवे।

(५) स्वरयन्त्रप्रदाहमे ब्लिस्टर न लगावे।

(६) सगर्भावस्थामे स्तन आदि भाग पर ब्लिस्टरका प्रयोग बिल्कुल निषिद्ध है।

(७) रक्तपित्त (Scurvy स्कर्वि और इतर प्रकार) होने पर ब्लिस्टर लगानेसे त्वचा पक जानेकी भीति रहती है।

(८) गृध्रसी और कटित्रिकोण प्रदेशके शूलमे ब्लिस्टर पैरके टखने पर लगानेसे विशेष लाभ होता है।

(१०१) प्रति क्षोभोत्पादक।

प्रत्युग्रतासाधक—प्रतिदाहक-प्रतिक्षोभक-काउन्टर इरिटन्ट्स।

Counter Irritants

जिन उग्रतासाधक औषधियोंकी क्रिया प्रतिफलित हो अर्थात् एक स्थान पर प्रयोजित औषधिका परिणाम इतर सम्बन्ध वाले स्थान पर प्रकाशित हो, ऐसे प्रयोगोको प्रत्युग्रतासाधक कहते हैं। प्रयोग भेदसे इनके ३ प्रकार है।

१ त्वक्प्रदाहक (Rubefacients)

२. स्फोटोत्पादक (Vesicants)

३. दोषाकर्ष (Revulsives or Derivatives)—आक्रान्त स्थानसे रक्तको स्थानान्तरित कराने वाली औषधियां।

इन प्रत्युग्रता प्रयोगोकी क्रिया आभ्यन्तरिक यन्त्रमे वातवहानाड़ियों द्वारा प्रतिफलित होकर और रक्तसञ्चालन मे परिवर्तन कराकर कार्य करती है।

शरीरमे जो अश या यन्त्र साक्षात् सम्बन्धमे त्वचासे संयुक्त हों, उनके रक्तसञ्चालनका ह्रास कराने या प्रदाहका शमन करानेके लिये प्रतिक्षोभोत्पादक प्रयोग किया जाता है। यथा फुफ्फुस खण्डप्रदाह, फुफ्फुसावरण प्रदाह, यकृत्प्रदाह आदि रोगोमे ब्लिस्टर प्रयोग किया जाता है।

जीवित शरीरमे नैसर्गिक नियमानुसार रक्त और वातवहा नाड़ियोके परिमाण और बल निश्चित मात्रामे रहते है। यदि किसी कारणवश किसी स्थान विशेषमे रक्तके परिमाण और वातवहा नाडीकी शक्तिका अधिक सचय हो जाय, तो इतर स्थानके वातवहा नाडियोंकी शक्तिमे ह्रास हो जाता है। इसलिये इतर सब स्थानोमें क्रिया मन्द हो जाती है।

इस नियमानुसार यदि किसी स्थानमे वेदनाके हेतुसे रक्त और वातवहा नाड़ियोकी शक्ति सगृहीत हो जाय, तो उसके निकटस्थ किसी स्थानपर औषध प्रयोग द्वारा रक्त और वातवहा नाडियोकी शक्तिका आकर्षण कर लेनेपर पीड़ित स्थान स्वस्थ होजाता है। मिर्च आदिका लेप और राई आदिके ब्लिस्टर द्वारा आभ्यन्तरिक प्रदाह और पीड़ाके निवारणमे यही हेतु हैं।

क्वचित् इसके विपरीत परिणाम भी देहमे प्रतीत होता है जैसे शीतकालमें देहको सहन हो सके उतनी शीत लगनेपर त्वचामें रहा हुआ रक्त और वातवहानाड़ियोंकी शक्ति आन्तरिक यन्त्र आदिमें प्रवेशकर रक्ताधिक्य और उष्णताकी वृद्धि कराते हैं।

ऊर्ध्व जत्रुगत विकारोमे हाथ या कण्ठपर दम्भ क्रिया करनेसे तीक्ष्ण वेदना शमन हो जाती है। वाम वृषणपर शोथ आनेसे दक्षिण पैरके अंगुष्ठको शिरापर और दक्षिण वृषणपर शोथ आनेपर बाम पैरके अंगुष्ठकी शिरापर तप्त लोहशलाकासे दाग देनेसे लाभ पहुँच जाता है। अर्श रोगमें दाहिने हाथकी अनामिकापर गेंडेके चमडे या अष्ट धातुकी अंगूठी पहनेसे दबाव आकर एवं वस्तुप्रभावसे रोग दमन हो जाता है।

आशुकारी तीव्रप्रदाहमे जब प्रदाहजनित रस आदिका पुनः शोषण रूप उद्देश्य हो, तब यह प्रतिक्षोभोत्पादक प्रयोग व्यवहृत होता है। फुफ्फुसावरणमे सचित तरलका शोषण करानेके लिये बाह्य त्वचापर किया हुआ लेप इस नियमानुसार कार्य करता है परन्तु जब रक्त संगृहीत हो जानेसे रक्तसंग्रहका ह्रास कराके वेदना निवारण कराना इष्ट हो, तब इस प्रतिक्षोभोत्पादक प्रयोगका व्यवहार नही होता।

मस्तिष्क और सुषुम्णास्थित यातायातकारी (Traffic) और रक्तप्रणाली सञ्चालक (Vaso Motor) वातवहा नाड़ीकेन्द्र द्वारा प्रतिफलित

क्रियाके प्रभावसे प्रयोग स्थानके समीप या चर्मके नीचे विकार वृद्धि (Morboid growth)के शोषण होनेमे सहायता मिले, इस उद्देश्यसे इस प्रतिक्षोभक औषधिका प्रयोग किया जाता है। यथा सन्धिस्थानोके गठरोगमे चिपचिपे रससावजन्य श्लाकलाप्रदाह (Synovitis) और फुफ्फुसावरणमे रसोत्सृजन होनेपर यथा स्थान बार बार छोटे छोटे ब्लिस्टर (Flying Blister) और ग्रन्थिके प्रसादनार्थ लेप प्रयोजित किया जाता है। मूत्राशय मे अश्मरी या पित्ताशयके निर्गमनसे उत्पन्न या वातवहा नाडी शूलमे उत्पन्न वेदनाके निवारणार्थ तथा हिस्टिरियामे नाडी केन्द्रकी उग्रता दमनार्थ प्रयोजित होता है।

इस तरह यह प्रयोग बेहोशी, मादक औषधिसे नशा उत्पन्न और आशुकारी अज्ञात कारणजन्य (Idiopathic) ज्वर और प्रदाहिक ज्वरकी अवसन्नावस्थामें केन्द्रसे सम्बन्ध वाली वातनाडियोको उत्तेजित करनेके लिये विशेष फलप्रद है। एव कटित्रिकोण प्रदेशमे शूल (Lumbago) चलने और विसूचिकामे मासपेशियोंका खिचाव (Cramps) होनेपर राई का ब्लिस्टर लगाया जाता है।

क्वचित् रोगस्थानपर क्षोभोत्पादक प्रयोग करके विकारको स्थानान्तरित कराया जाता है। जैसे आमवातमें पैर या पैरोके अंगुष्ठपर राईका लेप लगानेसे विकार इतर स्थानपर चला जाता है। इस तरहके प्रयोगोंको दोषापकर्षण (Revulsives or Derivatives) संज्ञा दी है।

इतर गुणदर्शक विभाग।

उपरोक्त १०१ गुणदर्शक भागोके अतिरिक्त प्रमेहहर, पूयमेहहर (Antigonorrheics), मूत्रस्रावरोधक (Antidiuretics) अश्मरीनाशक (Antilithics-Lithontriptics), फिरंगहर (Antisyphylitics) क्षयहर (Antituberculars), रक्तपित्तनाशक (Antiscorbutics), श्रमनाशक (Antidimics) केशवर्द्धक, केशरञ्जक (Hair dye,-Hair blackeners), केशघ्न (Depilatories), गर्भ स्थापक, गर्भपातक (Abortifacients,) गर्भोत्पादक (Impregnation), संततिनिरोधक (Birth-controllers) आह्लादजनक (Exhilarants), मूर्च्छाहर, कर्णेन्द्रियपर कार्यकर, घ्राणेन्द्रियपर कार्यकर तथा परस्पर विरोधी औषधियां (Antagonists) आदि-आदि विभाग हो सकते हैं।

ऊपर अश्मरीनाशक औषधिया कही है उनमें जो अश्मरीकी उत्पत्तिको रोकती है उनको ऑण्टिलिथिक्स और मूत्राशय आदिमे उत्पन्न शर्करा, सिकता या अश्मरीको पिघलाकर नष्ट करती है, उनको लिथोण्ट्रिप्टिक्स संज्ञा दी है।

मूत्रावरोधके साथ कितनी ही मूत्रसंग्रहणीय यूरिन डिमिनिशर-Urine diminisher) औषधियाँ भी है। उदाहरणार्थ, अफीम, जसदभस्म, तगर, जामुनकी छाल, आमकी छाल, पीपलवृक्षकी छाल, पिलखनकी छाल वेंतकी छाल, गूलरकी छाल, वेलछाल, वेलपत्र, भिलावे, कचनारकी छाल आदि ये सब मूत्रका ह्रास करती है।

विपाक

जाठरेणाग्निना योगाद् यदुदेति रसान्तरम्।
रसानां परिणामान्ते स विपाक इति स्मृतः॥

जठराग्निके सम्बन्धसे खाये हुए अन्नके मधुर आदि रसोका पाक होकर जो रसान्तर (रस विशेष) उत्पन्न होता है, उसे विपाक सज्ञा दी है।

आयुर्वेदके मत अनुसार सेवन किये हुए आहारका पाक द्विविध होता है।

१ अवस्थापाक आहार पाक, २ निष्ठापाक (विपाकधात्वग्नि पाक)। अवस्था पाकको नव्य चिकित्सा शास्त्रकी मर्यादा अनुसार भौतिक और रासायनिक रूपान्तर (Transformation or Physical and Chemical Changes) तथा विपाकको पचनक्रियाके अन्तमे उत्पन्न सत्वरूप रसद्रव (Final Product of digestion)नाम दिया है। यह रस सिरामे प्रविष्ठ होकर रक्तके साथ मिलकर हृदयमे गमन करता है।

अवस्थापाक—खाया हुआ जो अन्न मुखमेसे आगे कण्ठ (ग्रसनिका और अन्ननलिका), आमाशय और पक्वाशयमे गति करता है। वह प्राणवायुके बलसे कोष्ठमें पहुँचता है,उसमें क्लेदक कफ सम्मिलित होता है जिससे उसका संघात नष्ट होता है। मंथन क्रिया द्वारा छोटे कण बन जाते हैं. तथा कफकी स्निग्धताके हेतुसे वह मृदु भी वनता है। यदि योग्य मात्रामे पथ्य आहारका सेवन हुआ हो तो आयुकी वृद्धि करने (शरीर, इन्द्रिय, मन, वुद्धिको पुष्ट बनाने) के लिये उसका उपयोग होता है। पहिले मधुर रसमेसे झाग सदृश मलरूप कफकी उत्पत्ति होती है। फिर आमाशयके भीतर पाक कालमें और अन्त्रमे जानेके समय विदग्धावस्थामें पक्व अपक्व अम्ल होने वाले रससे मलरूपयनकी उत्पत्ति होती है, तथा अन्तमें पक्वाशयमे प्रविष्ट आहारमेसे जठराग्नि शोष्यमाण और पाक होकर जो पिण्डीभावको प्राप्त होता है, उस आहारमेसे उद्भूत कटु रससे मलरूप वातकी उत्पत्ति होती है। इस तरह षड्रसमे आहारसे त्रिविध अवस्था (आम, पच्यमान और पक्वावस्था) पाक होते हैं। धातु और मल, इन दोनोंके स्वरूपमे कुछ अन्तर है। खाये हुए अन्नका परिपाक होनेपर किट्ट और सारभाग पृथक् होता है। उनमें जो सारभाग है, वह रसधातु (इस रसधातुमेंसे पुनः धातु पाक होकर रक्त आदि धातुका निर्माण होता है) और शेष रहा हुआ किट्ट, वह मल है।

विपाक अवस्था पाककी अपेक्षा विशिष्ट पाकको विपाक कहा है। यह

विपाक अवस्था पाक हो जानेके पश्चात् प्रारम्भ होती है ये विपाक महर्षि आत्रेय और श्री वाग्भट्टाचार्यके मत अनुसार त्रिविध है । चरक संहितामे लिखा है कि—

> कटुतिक्तकषायाणां विपाकः प्रायशः कटुः ।
> अम्लोऽम्लं पच्यते स्वादुर्मधुरं लवणास्तथा ॥

चरपरे, कडुवे और कसेले रसका विपाक प्रायः चरपरा, खट्टे रसका प्रायः खट्टा मधुर और लवण रसका प्रायः मधुर विपाक होता है ।

किन्तु कितनी ही औषधियोंके लिये इस नियमका भंग होता है । अलावा संयोग, समय, देश और कृति भेदसे भी विपाकमे परिवर्तन हो जाता है । जैसे कुलथी और शरद ऋतुमे उत्पन्न होने वाले चावल मधुर है परन्तु उनमें से विपाक खट्टा हो जाता हे । हरड कसेली, आवले और अनारदाने खट्टे तथा पीपल और पटोल कडुवा अदरख चरपरी है, परन्तु इन सबका विपाक मधुर होता है । धनिया और बहेडेमे कसैला रस, घीग्वारमे कडुवारस तथा हरी कालीमिर्च, प्याज और लहशुनमे चरपरा रस होनेपर भी इन सबका विपाक मधुर होता है ।

लवणका विपाक मधुर होना चाहिये, किन्तु काला नमकका विपाक कटु होता है । इस तरह तैलका विपाक मधुर नही होता किन्तु कटु हो जाता है ।

मधुर विपाकसे कफ,अम्लसे पित्त और कटुसे वात उत्पन्न होता है, और मधुर विपाकसे वात-पित्तशमन, अम्ल विपाकसे वातकफ शमन, तथा कटु (चरपरे) विपाकसे पित्त-कफ शमन होता है ।

कटुविपाक वीर्यनाशक, मलमूत्रको बाधनेवाला और वातवर्द्धक है । मधुर विपाक मल-मूत्रका त्याग तथा कफ और शुक्रकी वृद्धि कराता है । अम्ल विपाक पित्तकर मल-मूत्रका त्याग कराने वाला और शुक्रनाशक है । इन तीनो विपाकोंमेसे मधुर विपाक गुरु तथा कटु और अम्ल विपाक लघु होते है ।

भगवान् धन्वन्तरि और नागार्जुनके मतमे गुरु, लघु भेदसे विपाक २ प्रकारके है । यह विपाक मधुर आदि षड्रसोंका नही, किन्तु यह महाभूत-मय द्रव्यका होता है । पृथ्वी, जलकी अधिकता होनेपर गुरु तथा अग्नि, वायु और आकाशकी अधिकता होने पर लघु । इन गुरु और लघुको मधुर और कटु संज्ञा भी दी है । ये मधुर और कटु शब्द गौण और पारिभाषिक है । अर्थात् इनका मुख्यार्थ रूप मधुर और कटु रससे तात्पर्य नही है । इस तरह त्रिविध और द्विविध विपाक दोनोंका तात्पर्य समान है, केवल समझानेकी शैलीमे अन्तर है ।

इन दो पक्षोंके अतिरिक्त प्राचीनकालमें रससदृश विपाक, अनियत

विपाक आदि मतान्तर थे। किन्तु वे सब युक्ति और अनुभव दृष्टिमे सदोष होनेसे उनके मतका प्रचार नही हो सका।

त्रिविध विपाकवादीके मत अनुसार कटु विपाकमे विशेषत: शुक्रनाश, मल मूत्रावरोध और वातधातुका निर्माण, ये ३ क्रिया होती हैं। कटु, तिक्त और कषाय, ये तीनो रस उत्तम, मध्यम, अवमभाव होनेसे वायु, मूत्र (शुक्र भी) और मलका त्याग प्राय: दु खपूर्वक होता है। अम्ल विपाकसे शुक्रनाश, मलमूत्र शुद्धि और पित्त धातुकी उत्पत्ति, ये ३ क्रिया, तथा मधुर विपाकसे शुक्रोत्पत्ति, मलमूत्रकी शुद्धि और कफ धातुका निर्माण ये ३ क्रिया होती है। मधुर, लवण और अम्ल, ये तीनों रस उत्तम मध्यम और अधम भावसे स्नेह गुण युक्त होनेसे वायु, मूत्र और मलका त्याग सुखपूर्वक कराते हैं। प्राय कहनेसे अम्लरस प्रधान कपित्थ ग्राही है।

इस त्रिविध विपाक वादीके मत अनुसार दुग्ध आदि मधुर रसवाले द्रव्यका मधुर विपाक कहा है। उसका यह अर्थ नही होता कि, मधुर विपाकवाले द्रव्यसे श्लेष्म धातुकी ही केवल उत्पत्ति होती है तथा पित्त और वातकी नही। यथार्थमे तीनो धातुओंकी उत्पत्ति और पुष्टि होती है। सब द्रव्योमे षड्रस सम्मिलित रहते हैं, इस हेतुसे मधुर विपाकके साथ गौण रूपसे कटु और अम्ल विपाक होते है। इस तरह कटु और अम्ल विपाकके साथ मधुर विपाक भी गौण रूपसे रहता है।

विपाक मे सम्यक् और मिथ्या, दो प्रकार होते है। सम्यक् विपाक होनेपर गुण और मिथ्या विपाकसे दोषोत्पत्ति होती है। सम अग्निसे सम्यक् पाक तथा मंद और तीक्ष्ण अग्निसे मिथ्यापाक (हीनपाक और अतिपाक) होता है। हीनपाकसे आम विकार, तीक्ष्णपाकसे भस्मकविकार तथा समपाकसे धातु साम्यरूप आरोग्य फलकी प्राप्ति होती है। सम्यक् विपाक और मिथ्याविपाकका अर्थ दूसरे प्रकारसे भी टीकाकारोने किया है। द्रावगुणानुरूप निष्ठापाकको सम्यक् विपाक तथा उसके विपरीत होनेपर मिथ्याविपाक कहा है। जैसे चित्रक रसमे और पाकमे कटु है यह सम्यक् विपाक; पिप्पली रसमे कटु होते हुये भी विपाकमें मधुर होती है। सामान्यत सम्यक् विपाक और मिथ्या विपाक उत्पन्न होनेपर गुण और दोषकी उत्पत्ति होती है। सम्यक् विपाकवाले चित्रकका पाक होनेपर अग्निसदीपन आदि गुण तथा कुछ मूत्रावरोध आदि दोष उत्पन्न करता है। मिथ्या विपाकवाली पिप्पलीका विपाक होनेपर शुक्रवर्धन आदि गुण तथा प्रक्लेदजनन आदि दोष उत्पन्न होते हैं।

द्विविध विपाक वादी के मतमें गुरुपाक वातपित्तघ्न और लघु पाक श्लेष्मघ्न है। विपाक सर्वदा परोक्ष है। अत: गुरु पाकका ज्ञान मल-मूत्र त्याग और कफके उत्क्लेश द्वारा तथा लघु पाकका ज्ञान मल मूत्रावरोध

और वातप्रकोप द्वारा होता है।

विपाक परिवर्तन—द्रव्यका परिमाण, सस्कार, सात्म्य, अग्निबल, देश, काल, संयोग और पाक विशेष भेदसे विपाकमे विपरीतपन हो जाता है। जैसे दूध गुरु विपाक वाला होनेपर भी थोडा होनेपर लघुपाक होता है, चावल लघुविपाक होनेपर भी अति खा लेनेपर गुरुपाक होता है। सस्कार गुरुविपाकवाला द्रव्य दीपन संस्कारसे लघुविपाक वाला होता है। सात्म्य दूध जिसे पथ्य हो उसके दूधका विपाक लघुविपाकवाला बनता है। अग्नि बल—तीक्ष्णग्नि होनेपर गुरुविपाकवाले आहार का भी लघुविपाक होता है। देशविशेष—जांगल देशमे गुरुविपाकवाला आहार प्राय लघु विपाक वाला अर्थात् शीघ्र पचन होने योग्य बन जाता है। इससे विपरीत अनूप देशमे लघुविपाकवाला आहार भी देरसे पचता है। काल-ग्रीष्म कालमे गुरु हो वे वर्षा और हेमन्तमे लघु बन जाते है। सयोग विशेष-सोठ मिलाकर गरम किया हुआ दुध लघु विपाक वाला हो जाता है। पाक विशेष जला हुआ या अर्द्धपक्व द्रव्य लघु होनेपर भी देरसे पचन होता है तथा गुरु होनेपर भी सम्यक् पकाया हुआ दूध सत्वर पचता है।

यदि यही विचार नव्य चिकित्साशास्त्रकी भाषामे दिया जाय, तो भोजन करनेपर मुखमे लालारस मिल जाता है। फिर पहिले दुग्धाम्ल (Lactic acid) और पश्चात् आमाशयिकरस (Gastric juice) सम्मिलित होकर पचन क्रिया होती है। उस समय सब आहार खट्टा बन जाता है। फिर अर्धपाचित आहार अन्त्रमे जाता है, उसके साथ यकृत्पित्त, (Bile), आग्नेय (Pancreatic juice) और अन्त्ररस (Succusentericus) मिल जाता हैं। जिससे सब आहार रस रूपान्तरित होकर नमकीनसा बन जाता है। फिर वसाप्रधान द्रव्योका पचन हो जाता है। इस तरह आहार पर त्रिविध क्रिया होनेसे योग्य परिपाक (Assimilation) होता है। [illegible] भाग बनता है, वह शिराये या पयस्विनीमे प्रविष्ट होकर हृदयको और गति करता है, तथा मलभाग मल मूत्रके रूपमे बाहर निकाल दिया जाता है।

नव्यविज्ञानके परीक्षण अनुसार प्रोभिनों (Proteins) मेंसे पाक होकर ॲमिनो अम्ल (Amino acid), कर्बोदित (Carbohydrates) या श्वेतसारप्रधान पदार्थोमेसे द्राक्षशर्करा (Glucose), तथा स्निग्ध [illegible] आदिमेसे कटुरसप्रधान वसाम्ल और ग्लायसेरोल (Fatty acid and glycerol) का निर्माण होता है। इनके ॲमिनो अम्ल [illegible] अनुसार गुरु तथा [illegible] शर्करा, [illegible] विपाकी लघु [illegible]।

आहारका त्रिविधपाक होकर रसधातु बनकर [illegible] भी पांच भूताग्नि और सात धात्वग्नि द्वारा विपाक [illegible] धातुरूप परिवर्तन होता है। [illegible]

चिकित्साशास्त्रमें उसे रासायनिक परिवर्त्तन (Metabolism) कहते हैं।

वीर्य

महर्षि आत्रेयने 'येन कुर्वन्ति तद्वीर्यम्' अर्थात् जिसरस, विपाक, प्रभाव या गुणसे तृप्ति, आनन्द या शमन आदि रूप क्रिया होती है, उस क्रियाके उस रस आदिको वीर्य कहते है। इस वचन रस द्रव्यमे रही हुई कार्यकारिणी शक्ति (क्रिया जनन सामर्थ्य),Potency को वीर्य संज्ञा दी है। ससारमें जो कुछ कार्य होते हैं वे सब वीर्यसे ही होते है। वीर्यके अभावमें कुछ भी क्रिया नही हो सकती। इस प्रकारकी व्याख्या करने वालोको शक्तिरूप वीर्यवादी या बहुवीर्यवादी कहते हैं।

भगवान् धन्वन्तरिजी, वृद्धवाग्भट्ट आदिने उत्कृष्ट शक्तिसम्पन्न गुरु आदि आठ या शीत-उष्ण, इन दो गुणोको ही वीर्य संज्ञा दी है। इस मतवालोंको पारिभाषिक वीर्यवादी या गुणवीर्यवादी कहते है।

अष्टविध वीर्यवादीके मतमे शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष, मृदु, तीक्ष्ण, पिच्छिल और विशद, ये ८ गुण चिरस्थायी हैं, अर्थात् जिस तरह मधुर आदि रस-गुण जठराग्नि संयोग (पाचक पित्तका संमिश्रण) होनेपर अपने स्वभावको छोड़कर या अन्यथा भावको प्राप्त हो जाते हैं, उस तरह ये ८ गुण स्वभाव त्यागी नही होते। ये रस-विपाक और इतर गुणोंका पराभव करके अपनी विशेषता दर्शाते हैं। इसलिये इन अष्टगुणोंको जो वीर्य संज्ञा दी है। वह सार्थक है।

इन अष्टवीर्यमेसे तीक्ष्ण और उष्ण आग्नेय, शीत और पिच्छिल जलप्रधान; स्नेहगुण पृथ्वी और जलकी अधिकतावाला; मृदुगुण जल और आकाशकी अधिकतावाला, रूक्षवायुकी अधिकतावाला; विशदगुण पृथ्वी और वायुकी अधिकतावाला है।

उष्णवीर्यके कर्म—दहन (जलाना) पाचन, मूर्च्छालाना, स्वेदन, वमन, विरेचन तथा वात और कफका शमन करना है। शीत वीर्यके–मुखादेना, जीवन, वृद्धि, चूना (झराना) स्थिर करना, रक्त आदिका प्रसादन (स्वच्छ करना), क्लेद उत्पन्न करना और बेहोश आदिको संज्ञा देना, ये कार्य है। स्निग्धवीर्यके–स्नेहन, बृंहण, तर्पण (तृप्ति, पोषण) वाजीकरण, वयःस्थापन, और वातशमन ये ६ कार्य है। रूक्षवीर्यके–वातवृद्धि, कफनाश, ग्राही, पीडन (व्रण पीड़न), रूक्षतालाना और व्रणका रोपण ये ६ कार्य हैं। विशद वीर्यके–क्लेदशोषण, शुष्कतालाना, व्रणरोपण और कफ शमन ये ४ कार्य है। पिच्छिलवीर्यसे विपरीत गुणवाला है। पिच्छिल वीर्य जलप्रधान है। प्राणधारक, बलप्रद, भग्नसधानकारक, छिन्नअङ्गसंयोजक, कफवर्द्धक और गुरु है। एवं चिकनाहट लाना, पूरण (आमाशय आदि का भरना), बृहण वाजीकरण और पित्तशमन कर्म करता है। मृदुवीर्यके रक्त-

मांसका प्रसादन, स्पर्श करनेमें मुलायम तथा पित्तनाश, ये ३ कर्म हैं। तीक्ष्णवीर्यके ग्राही, शोषण व्रण-विदारण, कफस्रावी और कफनाश, ये ५ कर्म हैं। संक्षेपमें उष्ण और स्निग्ध, वातहर, शीत, मृदु और पिच्छिल, पित्तहर तथा तीक्ष्ण, रूक्ष और विशद श्लेष्महर है। मृदु, शीत और उष्ण स्पर्शद्वारा विदित होनेवाले; पिच्छिल और विशद दृष्टि और स्पर्शसे विदित होनेवाले; स्निग्ध और रूक्षका बोध नेत्रसे होना है तथा तीक्ष्णवीर्यका बोध मुख और नाकमे सुख-दुःखकी प्राप्ति द्वारा होता है।

द्विविध वीर्यवादियोके मतमे चेतना चेतन और व्यक्ताव्यक्त-विश्वमें सब द्रव्य अग्निसोमीय (पाचभौतिक) हैं। इन भूतोंमे दूसरोकी अपेक्षा अग्नि और सोम (जल) बलवत्तर होनेसे सब द्रव्योपर इनका अधिक प्रभाव पड़ता है। एव काल भी उष्ण-शीतभेदसे दो प्रकारका है। अत अग्निप्रधान उष्णवीर्य और सोमप्रधान शीतवीर्य, ये दो ही वीर्य मानना चाहिये।

मधुर आदि षट्‌रस द्रव्योके विपाक और शीतोष्णवीर्यमे क्या भेद है? इस बातको समझानेके लिये चरकसंहिताकार कहते है कि —

रसो निपाते द्रव्याणा विपाक कर्मनिष्ठया।
वीर्यं यावदधीवासान्निपाताच्चोपलभ्यते ॥ (सू० स्था० २६/६८)

द्रव्योके रसोका बोध निपात (जिह्वापर डालने) से, विपाकका ज्ञान कर्मनिष्ठा (अवस्थापाक और निष्ठापाकका ज्ञान मल-मूत्र, डकार, अपचन आदि क्रिया) से, तथा वीर्यका निर्णय अधिवास (शरीरमे अवस्थान पर्यन्त होनेवाली क्रियाओ और निपात द्वारा रसनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय या त्वगेन्द्रिय के सम्बन्धके साथ) होता है। सामान्यत जब द्रव्यका जिह्वाको स्पर्श होता है, तब उसी समय द्रव्यमे रहनेवाले रस और अनुरसका ज्ञान हो जाता है। फिर द्रव्योके परिपाक हो जानेके अनन्तर कफ, पित्त, मल-मूत्र आदिकी उत्पत्ति, डकार आना, अपचन होना-न होना, क्षुधा लगना न लगना, स्फूर्ति या आलस्यकी प्राप्ति होना आदि कर्मोपरसे अनुमान द्वारा विपाकका बोध हो सकता है, तथा पारिणामिक (गुणप्रधान) वीर्यके बोधमे अधिवास और निपात दो साधन हैं।

जैसे आनूपदेशमे रहनेवाले पशु-पक्षियोके मांसमे, मछलियोके मांसमे उष्णवीर्य होनेका अनुमान अधिवास (धातुओमे प्रवेश) तक होनेवाली उनकी क्रियाओपरसे होता है। एवं कितनेक मिर्च, राई, आदि द्रव्योंके वीर्यका बोध निपात और अधिवास, दोनोसे होता है।

सामान्यतः जो द्रव्य रस और विपाकमें मधुर हो उसे शीतवीर्य, रस और विपाकमे अम्ल हो उसे उष्णवीर्य तथा रस और विपाकमे कटु हो उसे भी उष्णवीर्य समझना चाहिये। इस तरह रसोंसे वीर्यका अनुमिति परिचय होता है। किन्तु इस नियममें कितने अपवाद भी हैं। जैसे [illegible]-

वादात्मक द्रव्योके कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते है।

बृहत् पंचमूलमे कषायरस और तिक्त अनुरस होनेपर भी उष्णवीर्य होनेसे वायुको शमन करता है।

कुलथीमे कषायरस और प्याजमे कटुरस होनेपर भी स्निग्धवीर्यके हेतुसे ये वातशमन करते हैं। परन्तु ईखमे मधुर रस होनेपर भी शीतवीर्य होनेसे वह वायुको बढाती है।

पीपलमे कटुरस, आंवलेमे अम्लरस और सैंधानमकमे लवण रस होने-पर भी मृदु और शीतवीर्यके हेतुसे पित्तको शमन करते है। (कटुरस बहुधा अवृष्य माना गया है, किन्तु पीपल और सोठ वृष्य है)।

काकमाची (मकोय) मे तिक्तरस और मछलीमे मधुर रस होनेपर भी उष्णवीर्यके हेतुसे पित्तको बढाते है। मूली कटुरस प्रधान होनेपर भी स्निग्ध वीर्यके हेतुसे कफको बढाती है। कैथ अम्लरस प्रधान और शहद मधुर रसप्रधान होनेपर भी रूक्षवीर्यके हेतुसे कफका शमन करते हैं।

मुलहठी, मधुर और शीतवीर्य होनेसे नेत्रोको हितावह है, एवं लौग, सफेद मिर्च और पीपल चरपरे होनेपर भी शीतवीर्य होनेसे नेत्रोके लिये लाभदायक हैं। परन्तु सोठ उष्णवीर्य होनेसे नेत्रोको हितकर नही है। सोठ विशेषत: कफनाशक और आमपाचक है।

कषायरस प्राय: स्तम्भन और शीतवीर्य माना गया है, किन्तु हरीतकी कसैली होनेपर भी उष्णवीर्य और भेदन है।

वीर्यका सामान्य परिचय देनेके लिये प्राचीन शास्त्रकारोने लिखा है कि, स्नेह और मृदुवीर्य जिस जिस औषधिमे होवे, उसमे प्राय: वमन अथवा विरेचन करानेकी शक्ति होती है। परन्तु दूधके साथ यदि मधुर रस होवे, तो उसमें शरीरको पुष्ट करनेकी शक्ति होती है। कटु रसप्रधान औषधि प्राय: पित्तशामक होती है, परन्तु वह कठोर होवे, तो शरीरको पुष्ट बनाती है। कसैला रसप्रधान औषधि हृदयको प्राय: हानि पहुँचाती है, परन्तु उस गुणयुक्त औषधिमे यदि मधुररस भी होवे,तो वह हृदयको हितकर होती है।

जो रस वातशामक है, उसमे रूक्षता, लघुता और शीतलता हो, तो वह वायुको शान्त नही कर सकेगा। पित्तशामक रसमे तीक्ष्णता, उष्णता और लघुता हो, तो वह पित्तशमन नही कर सकेगा। कफशामक रसमे स्निग्धता, गुरुता और शीतलता हो, तो वह कफशमन नही कर सकेगा, बल्कि वह कफकी वृद्धि ही करायेगा। अत. इन सब कार्योमे वीर्य ही प्रधान माना जाता है।

शक्तिवीर्यवाद और गुणवीर्यवादके अतिरिक्त तीसरा मत नागार्जुन और निमि आदि आचार्योका है। इनके मतमे कर्मलक्षण (फललक्षण) वीर्य है। इस मतमे अनेक प्रकारके औषध द्रव्य (Active Principles) को

वीर्य माना है। छर्दनीय, अनुलोमनीय (विरेचन), उभयता भाग (वमन-विरेचन कराने वाले), प्रशमन, (प्रवृद्ध और प्रकुपित दोषधातु और मलोके साम्यकर), संग्रहण (ग्राही), दीपन, प्राणघ्न (मारक), मदन (मदकर), विदारण (शोथको फोडने वाला), शोथकारक, शोथविलियन, मेधाजनन, आयुवर्द्धक, वृष्य, वय.स्थापन, वर्चस्य (वर्णजनन), रक्षोघ्न (राक्षसोंके नाशक) पुंसवन पुत्रोत्पत्तिकर), सौभाग्यकर (दूसरोके प्रीतिपात्र होनेके लिये रूपवान बनने वाला), विशल्यकर (शरीरमेसे शल्य निकालने वाला), विमोक्षकरण (जंजीर आदि बन्धनसे मुक्तिकर), उन्मादकर, क्लैब्यकर (नपुंसकता लाने वाला), वशीकरण, विद्वेषण (द्वेषोत्पत्ति कराने वाला), प्रवासन (स्थानसे निकालने वाला), आकर्षण, आन्तर्धानिक (अदृश्य करने वाला), पौष्टिक (धन आदिकी प्राप्ति कराने वाला) और राजद्वारिक (राजाको वशीभूत करने वाला) आदि कार्य उस प्रकारके वीर्य द्वारा होते हैं। यह मत आधुनिक विज्ञानके अधिक अनुकूल है। इन विशिष्ट वीर्योंके अस्तित्वके हेतुसे समान रस, गुण, विपाकवाले द्रव्योंकी औषधक्रिया (Pharmalogical action) मे विभिन्नता होती है।

छर्दनीय वीर्य अग्नि और वायुसे उत्पन्न होनेके हेतुसे ऊर्ध्वगमन और गति करानेके स्वभाव वाला होता है, यह मधुरादि सब रसोंका आश्रय करके रहता है। अनुलोमनीय वीर्य पृथ्वी और जलसे उत्पन्न होता है, सब रसोके आश्रित है तथा पृथ्वी प्रधान होनेसे अधोगति कराता है और जला-धिक होनेसे द्रवपना ला देता है। उभयतोभाग वीर्य वायुके कटु तिक्त और कषाय रस तथा पित्तकी उत्पत्ति कराने वाले तीक्ष्ण, उष्ण और लघु गुण इन सबका आश्रित है। यह वीर्य पृथ्वी, जल (ये गुरु) तथा तेजस और वायु (ये लघु) से उत्पन्न होता है।

प्रशमन वीर्य वात, पित्त और कफके अपने अपने रसो और गुणोंसे विपरीत रस गुणोके आश्रयसे रहता है। जैसे मधुर, अम्ल, लवण ये रस तथा गुरु, उष्ण, स्निग्ध और पिच्छिल, ये गुण, इनका आश्रित वीर्य वातका शमन करता है। यह वीर्य पृथ्वी, जल, अग्निसे उत्पन्न होता है।

साग्राहिक वीर्य लवणको छोडकर शेष ५ रस तथा तीक्ष्ण और उष्ण को छोडकर शेष गुणोका आश्रित है तथा पृथ्वी और वायुसे उत्पन्न होता है। दीपनीय पित्तोत्पादक कटु, अम्ल और लवण रस तथा तीक्ष्ण, उष्ण, और लघु गुणका आश्रित है। यह वीर्य आग्नेय और [illegible] है। प्राणघ्न वीर्य शीघ्र, सुषिर, व्यवायी, विकाशी इन गुणो तथा सब रसोंके आश्रित है। एवं यह आग्नेय है। उष्ण, सूक्ष्म, तीक्ष्ण और [illegible] विशद, लघु, व्यवायी, रूक्ष और शीघ्र ९ गुण [illegible] [illegible]। [illegible] ([illegible]) [illegible] पित्तवर्द्धक कटु, अम्ल, लवण ये रस तथा तीक्ष्ण और [illegible] गुणोका

आश्रित है। यह पार्थिव और आग्नेय है।

श्वयथुजनन (शोथत्पादक) वीर्य मधुर और कषायके अतिरिक्त ४ रस तथा तीक्ष्ण, उष्ण और रूक्ष, इन गुणोको आश्रय करके रहता है। यह अग्नि और वायुका विश्लेषणकर ऊर्ध्व उठकर शोथकी उत्पत्ति करता है। विलयन (शोथघ्न) वीर्य सर्व रस तथा शीत, मृदु और पिच्छिल गुण इनका आश्रित है। यह जल और पृथ्वी प्रधान है।

शोधन (वमन, विरेचन, आस्थापन बस्ति) वीर्य किसी एक दोषके लिए व्यवहृत होता है, प्रयुक्त होनेपर इतर दोषोको भी दूर करता है। उदाहर्णार्थ श्लेष्महरणार्थ व्यवहृत वमन पित्तको भी हरता है। पित्तहरणार्थ प्रयुजित विरेचन वात और कफको भी दूर करता है।

साँग्राहिक वीर्य पार्थिव और वायव्य होनेसे पित्त और श्लेष्मका प्रशमन करता है। तीक्ष्ण और उष्णके अतिरिक्त गुण और लवणके अतिरिक्त रस द्वारा पित्तका निग्रह करता है। तथा रौक्ष्य और विशद गुण द्वारा श्लेष्म का निग्रह करता है।

प्राणहनन, मर्दन और प्रदरण, ये वीर्य सब दोषोको प्रकुपित करते हैं। स्वयथुजनन वीर्य वातपित्तका प्रकोप करते हैं। विलयन वीर्य सर्व दोषोका प्रलयन तथा वातशोफका प्रशमन करता है।

मेध्य आदि अनेक वीर्य किन रसो, गुणो और भूतोका आश्रय करते हैं यह निर्णित नही हो सकेगा। कितनेक मन्त्रमय वीर्य है, जो भूत समुदायसे सम्बन्ध रहित होनेसे अचिन्त्य है। इन सबके कर्मफलको देखकर अनुमान हो सकता है।

प्रभाव।

(स्पेशिफिक अँक्शन Specific Action)

रसवीर्य विपाकानां सामान्य पत्र लक्ष्यते।
विशेष: कर्मणाँ चैव प्रभावस्तस्य स स्मृत: ॥

जिस द्रव्यमे रस, वीर्य और विपाक, इनका सामान्य अर्थात् उसके रस का कार्य. उसके विपाकका कार्य तथा उसके वीर्यका कार्य, इन सबके समान जितना कार्य हो, उसकी अपेक्षा जो विशेष काय प्रतीत हो, उसे उस द्रव्य का प्रभाव कहते है, अर्थात् द्रव्योका जो विशिष्ट स्वभाव है, वही प्रभाव है* इस प्रभावको पांच भौतिक सगठन तथा रस, विपाक वीर्यके कार्योंसे अचिन्त्य, अमीमांस्य माना है। उदाहरणार्थ चित्रक रस और विपाकमे

*द्रव्यकी कार्य-कारिणी शक्तिको वीर्य कहा है। इस शक्तिके २ प्रकार है। १. चिन्त्य, २. अचिन्त्य। द्रव्योके पांच भौतिक सगठन, रस, गुण, विपाक द्वारा कर्मके साथ कार्य-कारणरूप सम्बन्धको दर्शासिके, उसे चिन्त्यशक्ति या वीर्यसज्ञा दी है। जो द्रव्योके कार्य-कारणरूप को न दर्शा सके, उसे अचिन्त्य शक्ति या प्रभाव कहा है।

कटु तथा उष्णवीर्य है, उसका कार्य सामान्य है। क्योकि कटुरस, कटु विपाक तथा उष्णवीर्य, इन तीनोका कार्य प्रतीत होता है। इससे अधिक कर्म दृष्टिगोचर नही होता, उसी तरह दन्ती भी रस और विपाकमे कटु तथा उष्ण वीर्य है। इन रस, विपाक और वीर्यके कर्म गुरुहनन, मल मूत्रावरोध, ये सामान्य है, किन्तु दन्तीमे उसके प्रभावके हेतुसे विरेचन कर्म प्रतीत होता है।

विष विषघ्न (विरोधी विषका नाशक) है' जगमविष स्थावरविषको और स्थावरविष जंगमविषको दूर करता है। कारण, ये दोनो विरुद्ध गति-वाले है। जगमविष ऊर्ध्वगति करता है और स्थावर अधोगति। यह गति विपर्यय रूप कार्य उनके प्रभावसे होता है।

कितनेक द्रव्य मैनफल आदि ऊर्ध्वभागहर, कितनेक निवृत आदि अधो-भागहर और कतिपय द्रव्य वमन विरेचन दानो क्रिया करानेवाले है। ये ऊर्ध्वाधोगति प्रभावके हेतुसे होती है।

कुचिला और अफीम, दोनो तिक्त, रूक्ष और उष्णवीर्य होनेपर भी दोनोके प्रभाव परस्पर विपरीत है। कुचिला निद्राहर और उत्तेजक तथा अफीम निद्राप्रद और अवसादक है। महुवेका फूल और मुनक्का, दोनोके रसादि समान होनेपर भी मुनक्का विरेचन कराता है और महुवेका फूल नही कराता। घृत और दुग्ध, दोनोमे समरस रहनेपर भी घृत दीपन है और दूधमे दीपन गुण नही है। गेहूँ और जो, दोनो मधुर और गुरु हैं, किन्तु गेहूँ वातहर और जौ वातकारक है। मछली और दूध, दोनो मधुर और गुरु गुणयुक्त है तथापि मछली उष्णवीर्य और दूध शीतवीर्य है। एव सुवर्ण आदि धातुओसे कार्यकारणका सम्वन्ध न मिलनेपर भी भिन्न भिन्न परिणाम प्रतीत होते है। अत वे प्रभावके हेतुसे ही होते है, ऐसा मानना पडेगा।

लहसुन कटुरस और कटुविपाक द्वारा कफको तथा स्निग्धत्व और गुरुत्व द्वारा वातको जीतता है; किन्तु अपने गुणो द्वारा वात-कफकी उत्पत्ति नही कराता। लहसुनके कटुरस विपाक कफ छेदनमे पर्याप्त है किन्तु वात-करत्वके लिये नही। एवं स्निग्धत्व और गुरुत्व वात जित्वमे [illegible] पर्याप्त है किन्तु श्लेष्मकरत्वके लिये नही।

रक्तशालि परस्पर विरुद्ध गुणवाले वात, पित्त और कफ, इन तीनो दोषोको नाश करता है, किन्तु [illegible] उनकी उत्पत्ति [illegible], यह द्रव्य का प्रभावकर्म है।

शिरीष, हरिद्रा आदि विषको नष्ट करते है। [illegible] आदि विषकी वृद्धि करते है, यह प्रभावकर्म है।

वाजीकर द्रव्योसे शीघ्र [illegible], [illegible] प्रतीत होते है

चन, आमलकीसे वात, पित्त, कफका शमन, शखपुष्पीसे मेधावृद्धि, रसायनोसे आयुवृद्धि आदि कार्य प्रभावसे ही होते है ।

सुवर्ण क्षयके जन्तुओंका नाशक है । पारद और सोमल उपदंशके जन्तुओंको मारते है । गन्धक त्वचामे उत्पन्न होनेवाले जन्तुओको नष्ट करती है । क्विनाइन मलेरियाके जन्तुओको नाश करता है । इन सब कार्योमे कार्य कारण सम्वन्ध नही मिल सकता । इसलिये प्रभावसे ही ये सब कार्य होते हैं । इस तरह प्राचीन आचार्योने प्रभावको अचिन्त्य कहा है ।

औषधियोमे स्वभाविक, सयोगजन्य और प्रेरित, इन तीन प्रकारकी प्राभाविक शक्तिका परिचय होता है ।

स्वाभाविक शक्ति उसे कहते हैं कि, औषधियोमे रस सम प्रकारके होने पर भी एक औषधि दूसरीसे विशेष प्रभाव दिखाती है । एक अथवा अधिक औषधियोके संयोगसे ज्ञानकी वृद्धि होती है, वह सयोगजन्य शक्ति है । जैसे विषके संयोगसे पारद वुभुक्षित (स्वर्णका ग्रास करनेकी शक्ति वाला) होता है । एवं हरिद्रा चूनेके सयोगसे रक्तवर्णकी उत्पत्ति होती है । प्रेरित शक्ति मन्त्र,तन्त्र,यन्त्र,विधि,काल,देश,योग अथवा मनोबल द्वारा उत्पन्न या प्रेरित की जाती है । जैसे गायत्री आदि मन्त्रोसे अभिमन्त्रित जल, दूध, फल, फूल, मिश्री अथवा कोई इतर औषधि अभिमन्त्रित करके खिलानेसे तत्काल रोग दूर हो जाता है ।

शास्त्रकथित विधिसे निश्चित समयपर लाई हुई सहदेईकी जड शिरपर वांधनेसे ज्वर चला जाता है। सत्यानाशी, अपामार्ग, काकजंघा, ईखकी उत्तर दिशाकी जड़ अथवा ताडकी उत्तर दिशाकी जड़ विधिपूर्वक लाकर स्त्रीकी कमरपर वाँधनेसे तत्काल प्रसव सुखपूर्वक हो जाता है। अपामार्ग (ओंगा) के पत्ते (शाखा सहित) कपडेमे वांधकर गौ आदि पशुओके पुच्छके साथ स्त्रियोकी कमरपर डोरीसे इस तरह बांधे की औषधि योनि पर लटकती रहे, ऐसा करनेपर उसी समय प्रसव हो जाता है । ऊँटकंटाराकी जड़ विधि पूर्वक लाकर शिरपर वाँधनेसे भी प्रसव सुखपूर्वक होता है । ये सब विधि द्वारा उत्पन्न प्राभाविक शक्तिके उदाहरण है ।

काचरा (सेंद) का फल दिवालीके पहिले पककर गिर जाय, तो कोई मीठा और कडुवा भी रहता है, परन्तु दिवालीके पीछे जो पकते है, वे सब मीठे ही रहते है, यह काल प्रभाव है ।

हिमालयकी शिलाजीत और मेवाडके पहाडोमे निकलने वाली शिलाजीतके गुणमे महद् अन्तर है । वगाल और ब्रह्मदेशके चावलके गुणमे भी प्रभेद है । ये सव देश प्रभावके उदाहरण हैं। हीरा, माणिक्य, पन्ना नीलम, पुखराज, मोती, विद्रुम, चन्द्रकान्त आदि मणि, मन्त्र और दिव्य औषधियोंको धारण करने पर नाना प्रकारके कार्य लक्ष्मी और कीर्तिकी प्राप्ति वशी-

करण, दीर्घसुखकी प्राप्ति, ग्रहपीडा शान्ति, सन्तानोत्पत्ति, राक्षस आदिसे रक्षण समान प्राप्ति, शल्योंका आकर्षण आदिकी सिद्धी होती है। अगद दर्शन आदिसे विषका नाश होता है।

मन्त्र प्रभाव द्वारा भी कार्य सिद्धि होती है। जैसे योगवासिष्ठ महारामायणमें उत्पत्ति प्रकरणके ७० वे सर्गमे वसिष्ठ भगवान् विसूचिका शमनार्थ विसूचिकाको कर्कटी नामकी राक्षसीकी उपमा देकर कहते है कि —

> हिमाद्रेरुत्तरे पार्श्वे कर्कटी नाम राक्षसी।
> विसूचिकाभिधाना सा नाम्नाप्यन्यायबाधिका॥

इस विसूविकाके नाशके लिये निम्न प्रयोग दर्शाया है।

'ॐ ह्रीं ह्रां री रॉ विष्णुशक्त्ये नम.।'

'ॐ नमो भगवती विष्णुशक्तिमेना ॐ हरहर नयनय पचपच मथ मथ उत्सादय दूरे कुरु स्वाहा हिमवन्त गच्छ जीव स स. स. चन्द्रमण्डल गतोऽसि स्वाहा।

इस मन्त्रको पत्र पर लिख बाये हाथसे ग्रहण कर उसी हाथसे रोगी पर मार्जन करे। पहिले भावना करे, कि महाशक्तिके स्वाधीन रही हुई रोग शक्ति स्वस्थान हिमालयकी ओर प्रयाण करे। फिर रोगीके प्रति कहे, कि पूर्वकाल के दुष्ट कर्मसे उत्पन्न इस विसूचिका रोगसे अभिभूत होकर चाहे मृत्युसे भी ग्रसित हुआ हो, तो भी मेरी भावना द्वारा इस प्रबल मन्त्रकी सामर्थ्यसे जीवन-अमृत पूर्ण चन्द्रमण्डलको तू प्राप्त हुआ है। जैसे प्रदीप्त अग्निमें आहुती डाली जाय, इस तरह तुझे (रोगी को) पूर्णचन्द्रमण्डलमें स्थापित करता हूँ, अर्थात् चन्द्रमण्डलस्थ अमृत द्वारा तेरी जीवनीय शक्ति पूर्ववत सबल भावको प्राप्त हो जावे।

इस तरह मेस्मेरेजम तथा हिप्नाइजम करनेवाले अफीम जैसी कड़वी जहरी वस्तु दूसरोंको मिश्री कहकर खिला देते हैं, तब खानेवालोंको स्वाद मिश्रीका ही आता है, और विपाक भी मिश्रीका ही होता है, यह मनोबल अथवा योगबल द्वारा प्रेरित प्रभाव है।

इस तरह और भी सहस्रो उदाहरण दे सकते हैं। संक्षेपमें भगवान् आत्रेय कहते हैं कि 'प्रभावोऽचिन्त्य उच्यते' अर्थात् प्रभाव अचिन्त्य है। मानव बुद्धि और युक्तिसे उसकी सिद्धि नहीं हो सकती। जैसे जमालगोटा विरेचक है। वह विरेचक क्रिया क्यों कराता है। यदि नव्यचिकित्सक वर्ग जवाब देवें कि, यह मलको पुरःसरण [illegible] बढ़ाकर मलको बाहर, फेकनेकी क्रिया करता है, इसलिये वह रेचक है तो फिर प्रश्न उपस्थित होता है कि, यह पुरःसरण क्रिया और [illegible] की वृद्धि क्यों कराता है? जमालगोटाके समान स्वादवाले दूसरे द्रव्यमें यह गुण क्यों नहीं है? सुवर्ण द्रव्यके कीटाणुओंको क्यों मारता है? और सोना आदि धातुओंसे

यह कार्य क्यो नही होता ? इन प्रश्नोका सतोपप्रद उत्तर नही मिलता। इस हेतुसे अन्तमे कहना पड़ता है कि, यह उनका प्रभाव (कर्म विशेष) ही है, रस, गुण वीर्य, विपाक और प्रभावोमेसे कार्य करनेका गुण किसमें है। इस सम्बन्धमे भगवान आत्रेय कहते है कि—

किञ्चिद् रसेन कुरुते कर्म वीर्येण चापरम्।
द्रव्यं गुणेन पाकेन प्रभावेण च किञ्चन ॥

कतिपय द्रव्य रस द्वारा कितने ही वीर्य द्वारा, कुछ गुणों द्वारा, कोई विपाक द्वारा और कतिपय प्रभाव द्वारा कार्य करते है, अर्थात् द्रव्यभेदसे किसीमे रसका, किसीमे गुणका, किसीमे विपाकका और किसीमे प्रभावका प्राधान्य रहता है।

रस, वीर्य, विपाक और प्रभाव, इनमें जब बलकी समानता हो, तब रसको विपाक; रस और विपाकको वीर्य; तथा रस, विपाक और वीर्यको प्रभाव हटा देता है। जहाँपर जो बलवान् हो वही कार्य करेगा। परन्तु समबल होनेपर उक्त क्रम रहेगा। यथा शहदमें रस मधुर और विपाकमे कटु है; अत. मधुर रसका कार्य कफवृद्धि नही होता; बल्कि कटु विपाकके हेतुसे कफका नाश होता है। इस दृष्टान्तमे विपाकने रसको परास्त किया है।

आनूप मासके रस और विपाक मधुर होनेपर भी वह पित्तको शमन नहीं कर सकते। बल्कि उष्णवीर्यके हेतुसे पित्तकी वृद्धि करते हैं। इस दृष्टान्तमे वीर्यने रस और विपाकको दबा दिया है।

पुरानी अंगूर आदिकी देशी शराब रस और विपाकमे अम्ल है, तथा वीर्यमें उष्ण है। फिर भी स्तन्यवर्द्धक है। यह कार्य प्रभावसे हुआ है। इस उदाहरणमें प्रभावने रस, विपाक और वीर्य, तीनोंको हरा दिया है।

अष्टांगहृदयकारने पदार्थोकी रचना दृष्टिसे २ विभाग दर्शाये है। १. समान प्रत्ययारब्ध, २ विचित्र प्रत्ययारब्ध। जिन पदार्थोकी रचना करनेवाले पंचभूतात्मक और उनके रस, वीर्य, विपाकके आरम्भके पंचभूतात्मक द्रव्य सम प्रकारके उत्कर्ष और अपकर्षसे सगठित हुए हों, उनको समान प्रत्ययारब्ध तथा जिनकी रचना करनेवाले पचभूतात्मक द्रव्य और उनके रस, वीर्य, विपाकके आरम्भक पंचभूतात्मक द्रव्य विषम प्रकारके हों, उनको विचित्र प्रत्ययारब्ध संज्ञा दी है।

उदाहरणार्थ दूध, गेहूं, सूअरका मांस आदि रस वीर्य, और विपाक एक दूसरेके अनुकूल हैं। ये समान प्रत्ययारब्ध होनेसे इनके समग्र कर्म केवल रसोपदेशसे दर्शा सकते है, इसके विपरीत मत्स्य, जो, सिंहका मांस आदिके रस, वीर्य, विपाक एक दूसरेके प्रतिकूल है। वे विचित्र प्रत्ययारब्ध होनेसे इनके कर्म, रस, वीर्य और विपाककी अपेक्षा भिन्न प्रकारके होते हैं। अतः उनका केवल रसोपदेश नही दर्शाया। शास्त्रमें उनका स्वतन्त्र

वर्णन किया है ।

गेहूँ और जौ, दोनों मधुररसवाले और गुरु है । इनमें गेहूँ समान प्रत्ययारब्ध होनेसे रस, वीर्य विपाकके अनुरूप वातशमन करता है, किन्तु जौ विचित्र प्रत्ययारब्ध होनेसे अपने गुणके अनुरूप वातवर्द्धन करता है ।

मत्स्य और दूध दोनो मधुर रसवाले है, इनमें दूध समान प्रत्ययारब्ध होनेसे रसके अनुरूप ही वीर्य और कर्म है; किन्तु मत्स्य विचित्र प्रत्ययारब्ध होनेसे रसके विपरीत उष्णवीर्य युक्त है एव कर्म भी इससे भिन्न (पित्तकारक) है ।

सिंह और सूअर, दोनोंके मांस मधुर और गुरु है । इनमे सूअर समान प्रत्ययारब्ध होनेसे रसके अनुरूप मधुर विपाकवाला है । अत. इसके कर्म रस विपाकके अनुसार मधुर होते है, किन्तु सिंहका मांस विचित्र प्रत्ययारब्ध होनेसे उसका विपाक कटु होता है तथा कर्म भी विपाकके अनुसार पित्तकारक होता है ।

घी शीतवीर्य होनेपर भी जठराग्निको प्रदीप्त करता है । वसा उष्णवीर्य होनेपर भी जठराग्निको मंद करती है मूंग कटु विपाकवाला होनेपर भी भी पित्तशामक और उडद मधुर विपाकवाला होनेपर भी पित्तवर्द्धक है । फाणित (गुडकी राब) स्निग्ध, उष्ण गुरु होनेपर वातकारक है मधुर दही गुरु होनेपर अग्निदीपक है, किन्तु कबूतर जठराग्निका दीपन नही करता। कैथ और अनार अम्ल रसवाले होनेपर भी ग्राही हैं; किन्तु आँवले नहीं । चायके फूल कषाय और शीतवीर्य होनेसे ग्राही है, किन्तु हरीनकी नही । उक्त उदाहरणोमे घी, वसा, मूंग, उडद, फाणित, दही, कैथ, अनार और हरड, ये सब विचित्र प्रत्ययारब्ध है ।

रसनेन्द्रिय

यह एक ज्ञानेन्द्रिय है । इस इन्द्रिय द्वारा मधुर, अम्ल आदि रसोंका बोध होता है । इस हेतुसे इसे रसनेन्द्रिय (The Organ of Taste) संज्ञा दी है । इस इन्द्रियका बाह्य अधिष्ठान स्वादांकुरको धारण करनेवाली रसना (जिह्वा) है । आभ्यन्तर अधिष्ठान उपधानपिण्डिका नामक स्वादकेन्द्र (Taste Centre) मस्तिष्कके अन्तर्गत है ।

यह रसना (जिह्वा) मांसपेशियोंसे बनी है । इसपर पतली श्लैष्मिक कलाका आच्छादन है । इस कलापर छोटी-छोटी पिडिका सदृश अनेक स्वादांकुर (Tastebuds) अवस्थित हैं । इसके मूलप्रदेशमें कण्ठिकास्थि और सेवनीके साथ संलग्न है । पीछेकी ओर मध्य रेखामें उपजिह्विकाके साथ और सब ओर पूर्वागलतोरणिकाके साथ संयोजित है ।

जिह्वा स्थूल दृष्टिसे मांसपेशीमय प्रतीत होती है; परन्तु सूक्ष्म दृष्टिसे निरीक्षण करनेपर इसमें दो विभाग प्रतीत होते हैं । दोनों विभागोंका

सयोग मध्यरेखामे एक स्नायु सूत्रमयी सेवनी (Fibrous partition) द्वारा होता है। यह जिह्वा छोटी मोटी ९ मासपेशिया मिलकर बनी है। इन मासपेशियोंके हेतुसे लम्बी छोटी और ऊँची-नीची होती है। उसकी आकृतिमे होनेवाले सूक्ष्मतम परिवर्तनोके हेतुसे विभिन्न शब्दोच्चारण हो सकते है।

यह जिह्वा स्वादग्रहण, चर्वणक्रिया, ग्रसनक्रिया और भाषणके साधन रूप यन्त्र है। स्वस्थावस्थामे इसका अग्रभाग पतला और नोकीला तथा मूल प्रदेश मोटा और चौडा होता है। इसका रग गुलाबी सा होता है। रक्तहीनता या पाण्डुता आनेपर रग फीका हो जाता है। अपचन होनेपर इसपर मैलकी तह आ जाती है। आमाशय रसमे तीव्रता होनेपर इसपर क्षत हो जाते है तथा चरपरे पदार्थ या क्षार आदिके सेवन या स्पर्शसे जिह्वा फट जाती है।

इस जिह्वाके दो तल है—ऊर्ध्वतल और अधस्तल। इसमे अनेक स्वादाकुर, लाला ग्रन्थिया, धमनी, शिरा, मांसपेशियाँ, रसायनिया, लसीका ग्रन्थिया आदि अवस्थित है।

ऊर्ध्वतल—यह किञ्चित स्फीतोदर है। इसे रसना पृष्ठ (Dorsum of Tongue) कहते है। यह ऊपरसे मुक्त है। इस तलपर अनेक स्वादाकुर लगे है। इस हेतुसे यह खुरदुरा भासता है। इन अकुरोके मूलमे रसग्राही नाडीके सूक्ष्म तन्तु लगे है। इस तलके मध्यमें एक विवर-सा खात है, उसे अन्धविवर (Foramen Caecum) कहते हैं। इसके पश्चिममे अधिजिह्वाकाके साथ संयोग कराने वाली स्नायुमय प्रबन्धिनी स्थित है।

अधस्तल —(Inferior Surface) यह तल चिकना है। इसका वर्ण कुछ बैंजनी-सा है। इसकी मध्य पक्तिमें पतली त्रिकोण कलामयी सेवनी (Frenulumhlingua) अवस्थित है। जो रसनातलके पश्चिम अर्द्धभागको तलभागसे सयोजित करती है। इस तलमे स्वादाकुर न होनेसे यह चिकना है। इसके मूलमे दोनों ओर हन्वधरिया और जिह्वाधरिया नामक लाला ग्रन्थिया हैं। सेवनीके दोनो पार्श्वमें रासनी धमनी और रासनी शिरा है, जो श्लैष्मिक कलाके भीतर सुस्पष्ट प्रतीत होती है। इस स्थानमे श्लैष्मिक कलाकी पर्त मजरी या झालर सदृश बन गई है, उसे कला मंजरिका (Plica Fimbriate) संज्ञा दी है।

स्वादांकुर—(Lingual Papillae) मुखमें छोटे बडे असंख्य स्वादांकुर रहते है। ये स्वादांकुर जिह्वाके ऊर्ध्वतल श्लैष्मिक कलामे सर्वत्र दृष्टिगोचर होते है। इनके अतिरिक्त कुछ कोमल तालु, ओष्ठ और गालमें भी रहे है। ये अंकुर सौत्रिक तन्तु, नाड़ी सूत्र और कैशिकाओके सम्मिलनसे बनते हैं।

सब स्वादाँकुरोंके मूलमे सूक्ष्मा रसग्राही नाड़ी प्रतान सम्बन्ध हैं । जो मस्तिष्कमे रसज्ञानको पहुँचाती है । इसके अतिरिक्त रसनाके अग्रभागमें कुछ स्पर्शांकुरिकाएँ और श्लैष्मिक कलामे कुछ श्लेष्मस्राव करने वाली ग्रन्थिया भी है, जो जल सदृश पतला प्रवाही बोधक कफका सतत स्राव करती रहती है । इसी हेतुसे जिह्वा सर्वदा आर्द्र रहती है ।

स्वादाकुरोके मुख्य समूह – १. द्वीपाकार, २ शिलीन्ध्राकार और ३ कूर्च्चाकार ।

१. द्वीपाकार स्वादाकुर (Papillae Vallatae or Circumvallate Papillae)--ये दाने स्थूल है । इनका व्यास १ से २ किलोमीटर तक होता है । जिस तरह किलेके चारो ओर खाई रहती है, उस तरह इन दानोके चारो ओर खात है । इस हेतुसे इनकी आकृति परिखावेष्टित दुर्ग सदृश होनेसे 'हमारे शरीरकी रचनाकार' ने इनको खातवेष्टिताकुर संज्ञा दी है । ये दाने जिह्वाके पीछेकी और शेष ⅓ भागमे अवस्थित हैं । इन अंकुरोकी संख्या ८ से १२ है । ये दाने पीछेकी ओर एक दूसरेसे मिले हैं । इन दानोंके समूहकी पक्तिकी आकृति 'Λ' सदृश बन गई है ।

२ शिलीन्ध्राकार स्वादाकुर (Fungiform Papillae)—इन दोनो की आकृति लगभग छत्रांकके समान गोलाकार, ऊर्ध्व भागमे फैली हुई और नीचे संकुचित होती है । इस हेतुसे 'हमारे शरीरकी रचनाकार' ने इसे छत्रिकाकुर सज्ञा दी है । इसका रग अत्यन्त लाल (Deep red colour) है । ये बहुधा रसनाग्र और पार्श्व धाराओमे अवस्थित हैं । इनको डाक्टरीमे पपिल्ला लेण्टिक्युलर्स (Papillae Lenticulares) भी कहते है ।

(३) कूर्च्चाकार (Filiform Papillae)—ये दाने अति सूक्ष्म है । इनकी आकृति शंकुसदृश (Conical) या बेलनाकार (Cylindrical) लिखी है । "प्रत्यक्ष शरीरकार" ने तृण कूर्च्चकी समानता दर्शाई है, ये दाने प्राय· जिह्वाके ⅔ भागमे देखनेमे आते हैं । विशेषत ये समानान्तर पक्तियोमे होते है । इनको डाक्टरीमें पपिल्ला कोनिकल (Papillae Conical) भी कहते है । इनमें स्वादकी परीक्षा शक्ति कम होती है ।

इन त्रिविध अंकुरोंके अतिरिक्त सामान्य अकुर (The Papillae Simplics) भी हैं । जो जिह्वाकी श्लैष्मिक कलापर सर्वत्र फैले हुए है, ये सब अणुवीक्षण यन्त्रद्वारा त्वचाके ऊपर उठे हुए मालूम देते है । प्रत्येक के साथ कैशिका छिद्र मिला है, और ये सब श्लैष्मिक कला (Epithelium) से आच्छादित हैं ।

स्वादकोरक (Taste buds or Taste bulds)—द्वीपाकार स्वादा-

कुरके खारकी दीवारोमे छोटे-छोटे कोषसमूह दबे हुए हैं। इनको स्वादकोरक कहते है। प्रत्येक स्वादांकुरमे लगभग १००-१५० स्वादकोरक होते है। इनकी आकृति द्रोणपुष्पीकी कली या प्याज सदृश दिखाई देती है। कुछ स्वादकोरक कोमल तालुके नीचेके पृष्ठ और स्वर यन्त्रके आवरणके पीछेकी ओर भी रहते है। इन स्वादकोरकोमे एक छिद्र स्वादरन्ध्र (Gustatory pore) रहा है। इन स्वादकोरकोंमे दो प्रकार है—स्वादसरक्षक कोष और सहाय कोष।

स्वादसंरक्षक कोष (Gustatory Cells) बीचमे मोटे और दोनों सिरे पर पतले होते है। ऊपरके सिरेसे एक बालके सदृश पतला तन्तु निकलता है, वह स्वादरन्ध्रमे प्रवेश करता है। दूसरे नीचेके सिरेसे जो तार निकलता है, वह रसना नाड़ीके तन्तुमे मिल जाता है। ये कोष विशेषत: स्वादकोरक के केन्द्रमे रहते हैं। इनके चारों ओर तथा कुछ इनके बीचमें भी इतर कोष होते हैं। ये सब इन कोषोके सहायक कोष है।

रसादान प्रकार—परमात्माने जिह्वाकी रसग्रहण क्रियामे एक प्रकारकी विलक्षणता रक्खी है। वह यह है कि, जब तक बोधक श्लेष्मा, लालारस या जल आदि द्वारा रसवत् वस्तु द्रवीभूत न हो जाय, तब तक उस वस्तुके स्वादका बोध नही हो सकता। द्रवीभूत होने पर ही वह स्वादकोरकोके अग्रभागको उत्तेजित करता है। फिर अग्रभागमे रहे हुए नाड़ी प्रतानों द्वारा रसबोधको मस्तिष्क केन्द्रमें पहुँचाया जाता है।

विशेषज्ञोंके मतानुसार रस और गन्ध पृथक् होने पर भी अति पृथक् भूत नही हैं। रस और गन्ध, इन दोनोमे घनिष्ठ सम्बन्ध परस्पर है। रस और गन्धका नियमपूर्वक साहचर्य है। एवं मस्तिष्कमे रसकेन्द्र उपधानपिण्डका (Taste centre) ओर गन्धकेन्द्र अंकुशकर्णिका (Olfactory centre) उभय सम्मिलित हैं।

यदि जिह्वाको अच्छी तरह पोंछ कर सुखा डाले, तो किसी भी वस्तुके स्वादका पता नही चल सकता। सन्तरे आदि फलके टुकडे खाने पर मनमोहक स्वादका जो परिचय मिलता है, वह केवल मधुर अम्ल कह कर नही समझाया जा सकता। इसके स्वादके साथ सुगन्ध भी मिश्रित है। जो तालु मे होकर नाकके भीतर जाकर घ्राणेन्द्रियको उत्तेजित करती है और मस्तिष्कमे रहे हुए अकुशर्कणिकामे पहुँच कर प्रसन्नताका बोध कराती है।

षट्रस—आयुर्वेदकी मान्यतानुसार रस ६ हैं। मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त और कषाय। किन्तु नव्य विज्ञानवादने मधुर, अम्ल, लवण, और तिक्त, इन चार रसोको ही स्वादांकुर ग्राही माना है। उनके मत अनुसार कटु (चरपरा) और कषाय रस स्पर्शसंज्ञा उत्तेजक अर्थात् त्वगेन्द्रियके विषय हैं।

रसनामें पृथक्-पृथक् रसकी रसग्राहिका पृथक् पृथक् स्थान पर है। मधुर रसका ग्रहण रसनाग्रमे, तथा तिक्त (कडुवा) रस रसनामूलमे (कण्ठकी ओर) विशेषत. द्वीपाकार स्वादांकुरोमे होता है। अम्लरस रसनाके दोनो पार्श्वोमे और लवण रसकी ग्राहिका रसनाग्रमे मधुर रसके साथ अवस्थित है। जिह्वाके किसी किसी भागमे स्वादकोरक नही है। अत उन स्थानोंसे स्वादका बोध नही हो सकेगा।

जो कटु और कषाय रस है, वे स्पर्श मात्र है। ऐसा नव्य विज्ञानका कथन है यह सम्यक् नही है। कटु रसग्राहिका रसनाग्र और रसनाके दोनो पार्श्व भागमे स्फुटतम रूपसे प्रतीत होती है। कषाय रसग्राहीका रसनामूल और पार्श्वमे स्थित है।

यदि इन दोनो रसोको स्पर्श मात्रत्व मान ले, तो स्थान भेदसे रस ग्राहिकाका भेद नही होना चाहिये। अत. रस ६ प्रकारके है, प्राचीन सिद्धान्त ही सम्यक है।

रस ग्रन्थियाँ (Lingual Lymph Glands)—जिह्वा के मूल मे जिह्वाकण्ठिका पेशी (Hypoglossus Muscle) और चिबुककण्ठिका पेशियों (Geneoglossi Muscles) के बीच दो तीन छोटी रस ग्रन्थिया अवस्थित है। इनमे जिह्वाकेमूल भागकी कतिपय रसायनियाँ प्रवेश करती है।

जिह्वामूलिनी नाडी (Hypoglossal Nerves) इस नाडी की एक नीचे जानेवाली शाखा जिह्वामे प्रवेश करती है। यह नाडी शाखा कण्ठकी प्रावरणीके एक हिस्से रूप मातृका कंचुक (Carotid Sheath)के आगे होकर निकलती है। इस जिह्वामूलिनी शाखाके शाखापाश (Ansa Hypoglossi) मेसे प्रचेतनी नाडी प्रशाखा रूपमे निकलती है।

जिह्वाधरीया ग्रन्थि (Sublingual glands)—ये ग्रन्थिया प्रियंगु के फल जितनी बडी होती है। मुखतलमे जिह्वा सेवनीके पार्श्व भागमे निम्न हनुपर रहे हुए खातमे दोनो ओर एक एक ग्रन्थि रहती है। ये श्लैष्मिक कलासे आवृत्त हैं। इनमे १० (क्वचित् २० तक) छोटे छोटे स्रोत होते है। इनमेसे कितने ही हन्वधरीया ग्रन्थिके स्रोतके साथमे संलग्न हैं और कितने ही जिह्वा सेवनी की दोनो ओर स्वतन्त्र रूपसे खुलते हैं।

अनुजिह्विका धमनी (Lingual Artary) —यह धमनी जिह्वाको रक्त पहुँचाता है। इस धमनीकी उत्पत्ति बहिर्मातृका धमनी (Ext Carotid Art) मेसे हुई है। यह टेढी होकर ऊर्ध्व और मध्य [illegible] और कण्ठिकास्थिके निम्न भाग तक गति करती है। पुन: मुडकर नीचे आती है, और जिह्वाके नीचेकी ओर बिल्कुल अग्रभाग तक फैल जाती है। वहापर यह गम्भीर जिह्विका धमनी (Arteria Profunda Lingual) कहलाती है। यथार्थमें इस अनुजिह्विका धमनीकी ४ प्रशाखाएं है।

डाक्टरी मतानुसार गुण विचार।

डाक्टरी मतमे औषधियोके रस परसे गुण और परिणाम सम्बन्धी अनुमान और गुणनिर्णय निम्नानुसार नियमोंको लक्ष्यमे रखकर किये जाते हैं-

(१) सामान्य रूपसे औषधिके गुणका निर्णय-वर्ण, स्वाद, गंध आदि परसे हो सकता है। तीव्र गन्धयुक्त द्रव्य बहुधा आग्नेय, उत्तेजक, वातहर और वमननिवारक होते है। मधुर द्रव्य बहुधा स्निग्ध होते हैं। कडुवे द्रव्य बहुधा बलवर्द्धक आमाशय पौष्टिक होते है तथा दुर्गन्धयुक्त द्रव्य बहुधा आक्षेपनिवारक होते है।

(२) रासायनिक तत्वोंकी सादृशयता परसे औषधियोकी क्रियाकी समानताका बोध हो जाता है। समान गुण धर्म होने पर अभाव कालमे एकके बदले दूसरी औषधि प्रतिनिधि रूपसे ली जाती है। इसी नियमानुसार खनिज अम्ल और उद्भिद् अम्लका परस्पर एक दूसरेके स्थानपर व्यवहार किया जाता है।

(३) समान जातिकी वनौषधिका फल प्रायः एक समान रहता है, और जातिभेद होनेपर गुणमे अन्तर हो जाता है।

मल्वेसी (Malvaceae) जातिकी बला चतुष्टय, जपाकुसुम, भिण्डीके बीज, पारसपीपलकी छाल, कपासके बीज (बिनौले), सेमलकी मूल आदि औषधियां प्रायः स्निग्ध है।

जेन्सियेनेसी (Gentianaceae) जातिका चिरायता और नागजिह्वा (कडुवीनाई-गुजराती) आदि औषधिया प्रायः बलकारक (आमाशय पौष्टिक) है।

कन्वलव्युलेसी (Convolvulaceae) जातिकी निशोथ, कालादाना, अमरबेल और प्रसारणी मूल आदि औषधियां विरेचक हैं।

सॉलेनेसी (Solanaceae) जातिकी औषधियां—धतूरा, खुरासानी अजवायन कटकारी, काकमाची, असगन्ध, (Withania Somnifera) की जड़, सूचीबूटी (Belladonna), काकनुज, तमाखू आदि जनन माने गये हैं।

पिपरेसी (Piperaceae) वर्गकी औषधियां—पीपल, ताम्बूल, (नागरवेल), कालीमिर्च, शीतलमिर्च आदि उत्तेजक है।

इस तरह समानता आनेपर भी कितने ही स्थलोंमें इन जातियोंसे सम्बन्ध होनेपर भी फलमे सादृश्यता बहुत कम देखी जाती है; और क्वचित् किसी किसी औषधिकी क्रिया बिल्कुल विपरीत प्रतीत होती है। इसके विपरीत पृथक जातिकी औषधियोंके गुणोंमें भी क्वचित् सादृश्यता हो जाती है।

जैसे कन्वलव्युलेसी जातिकी शंखपुष्पी, वृद्धदारु और आखुपर्णी (मूषा-

कानी) आदि कितनी ही उपश्रेणीकी औषधियोमे विरेचन गुण प्रारम्भमे दृष्टिगोचर नही होता। सॉलेनेसी जातिकी औषधियोमे लालमिर्च केवल उत्तेजक है, इसमे मोहजनन गुण बिल्कुल नही है।

अम्बेलिफेरी (Umbelliferea c) जातिके जीरा, अजवायन, अजमोद आदि माइरिस्टिकेई (Myristiceae) जातिके जायफल आदि, सिटामिनेई (Scitamineae) जातिके अदरख, कुलिजन, इलायची आदि और मायर्टेसी (Myrtaceae) वर्गके लौग, अमरूद, जामुन, समुद्रफल आदि भिन्न भिन्न जातिकी अनेक औषधियोकी क्रियाओके भीतर अनेकांशमे समानता प्रतीत होती है। एवं जेन्सियेनेसी (Gentianaceae) सिमेरुबेई (Simarubeae) वर्गके महानिम्ब आदि रेनन्क्युलेसी (Renunculaceae) वर्गके कलौजी, अतीस, त्रायमाण आदि और मेनिस्पर्मेसी (Menispermaceae) वर्गके गिलोय, पाठा आदि ये सब विभिन्न जातिकी औषधियां होनेपर भी बहुधा समान गुणवाली अर्थात् कडुवी और बलवर्द्धक है।

(४) अनेक बार पशु आदि जीवोके ऊपर औषधियोकी परीक्षा करके गुण निर्णय किया जाता है; परन्तु बहुत सी औषधियोका गुण इस तरह निर्णीत नही हो सकता। जैसे खुरासानी अजवायन (हाइयोसाइमास) का पान गौ, भैंस आदिको किसी भी प्रकारका अपकार नही करता, किन्तु सूक्ष्म मात्रामे मानव देहपर मोहजनन और अधिक मात्रामे प्रकोप दर्शाती है।

(५) मनुष्य देहपर औषधिद्वारा फल निर्णय करना, यही सर्वश्रेष्ठ उपाय है।

औषध परिणाम।

वैज्ञानिक दृष्टिसे विचार करनेपर औषधियोका देहपर जो परिणाम होता है, उसके साक्षात् और परम्परागत भेदसे दो प्रकार है। जैसे कोई औषधि देहमे प्रवेश करके तत्काल फल प्रदर्शित करे, उसे साक्षात परिणाम, और साक्षात् क्रिया प्रकाशित होनेके पश्चात् उसी हेतुसे जो परिवर्तन होता है, उसे परम्परागत परिणाम कहते हैं। जैसे शरीरके किसी भागपर राईका लेप लगानेसे उस स्थानपर लाली आकर दाह होने लगता है यह साक्षात् परिणाम तथा इस लेपके प्रभावसे समस्त देहमे उष्णता और उत्तेजना उपस्थित होती है वह परम्परागत परिणाम कहलाता है।

इतर प्रकारसे औषधियोके स्थानिक परिणाम और दूरवर्ती परिणाम ये दो विभाग होते है। औषधिका किसी स्थानपर प्रयोग होनेसे उस स्थान पर क्रिया या फल प्रदर्शित हो, उसे स्थानिक परिणाम, और अन्य स्थानपर परिणाम उत्पन्न हो, उसे दूरवर्ती कहते है। जैसे [illegible] किसी स्थानपर लगानेसे उस स्थानपर [illegible] आ जाती है, और [illegible] भी हो जाता है। एवं [illegible] [illegible] वहां नाड़ियोंमे उत्तेजना आ जाती है, [illegible]

हैं। फिर इस उग्रताके हेतुसे हृदय, रक्तवाहिनियो और वातवाहिनियोके ऊपर परिणामकी प्राप्ति होती है; अर्थात् हृदयगति स्थगित हो जाती है, रक्तसंचालन क्रिया मन्द होती है और इतर स्थानकी वातवाहिनियोमें खिचाव होकर मृत्यु हो जाती है, ये सब दूरवर्त्ती क्रिया कहलाती है। इन स्थानिक ओर दूरवर्त्ती परिणामोंका अन्तर्भाव भी साक्षात् और परम्परागत परिणामोमें हो जाता है।

साक्षात् परिणाम।

(डायरेक्ट चैन्जेज—Direct changes)

साक्षात् परिणामके ३ विभाग है। भौतिक (Physical) रासायनिक (Chemical) और जीवनीय (Vital)। इन विविध विभागोंके नियमानुसार औषधिया जीवित शरीरपर अपना परिणाम दर्शाती हैं।

भौतिक परिणाम

(फिजिकल चैन्जेज Physical Changes)

भौतिक रूपान्तर होनेपर वस्तुकी वर्ण, रूप और अवस्थाका परिवर्तन हो जाता है, तथापि द्रव्यके रचनात्मक पाच भौतिक सगठनो (Composition) के भीतर स्थिर (Permanent) परिवर्तन नही होता। जैसे घीको तपानेपर वर्ण, रूप और अवस्था, ये कुछ समयके लिये (Temporary) बदल गये, किन्तु घीपना कायम रहता है। इस भौतिक परिणाम के नियमके सम्बन्धमे भगवान् आत्रेयने कहा है कि—

> सर्वदा सर्वभावाना सामान्य वृद्धिकारणम्।
> ह्रासहेतुर्विशेषश्च प्रवृत्तिरुभयस्य तु॥
> सामान्यमेकत्वकरं विशेषस्तु पृथक्त्वकृत्।
> तुल्यार्थता हि सामान्य विशेपस्तु विपर्ययः॥

समान गुणधर्म युक्त द्रव्यसे समान गुणधर्मयुक्त द्रव्यकी वृद्धि होती है। इस संसारव्यापी अविचल नियमानुसार ओपधियोमे भी समान जातिके समान गुणोके द्रव्यसे देहमे स्थित उन जातिके द्रव्यको ही परिपोषण मिलता है। एव समान द्रव्य समान द्रव्यकी ओर आकर्षित होकर मिश्रित भी हो जाता है। जैसे लोहभस्मके सेवन करनेपर वह रक्तस्थ लोह तत्वके साथ मिश्रित हो जाती है। चूना या क्षारका सेवन करनेपर वे अस्थियोकी ओर आकर्षित हो जाते है। चरपरे द्रव्य--चित्रकमूल, पीपल, मिर्च आदि आमाशय या यकृत्को पित्तनि.सरण वृद्धि अर्थ सहायता पहुँचाते है, मांस और इतर मधुर गुणयुक्त गुरु द्रव्य मास तत्त्वकी ओर आकर्षित होकर बृंहण गुणकी प्राप्ति कराते हैं। उत्तेजक पदार्थ वातवाहिनियाँ, वातनाड़ियोकी अन्तिम शिराएँ, वातवहानाड़ियोके केन्द्रस्थान और रक्तवाहक यन्त्रमे पहुँचकर उत्तेजनामे वृद्धि कराते है। सक्षेपमे द्रव्य, गुण और कर्म

तीनों अपने-अपने समान स्वभाव वालोंके साथ मिलकर स्वशक्ति अनुसार द्रव्य, गुण, कर्ममे वृद्धि कराते हैं।

विशेष अर्थात् विषम द्रव्य, विषम गुण, विषम कर्मके सम्बन्धसे न्यूनाताकी प्राप्ति होती है। विरोधियोके परस्पर युद्ध या प्रत्याकर्षण होनेसे शक्ति- (तत्त्व) का ह्रास या मल दोषको न्यूनता हो जाती है। इस नियमानुसार चिरायता आदि औषधियाँ शोषित होकर शारीरिक उत्तापका ह्रास कराती है। एव अवसादक पदार्थ वातवाहिनियो द्वारा विविध यन्त्रों की उत्तेजनाका ह्रास कराते है; अर्थात् शामक असर पहुँचाते है। इस तरह सम विषम गुणोवाली औषधियोका कार्य चिकित्साकालमे सर्वथा प्रत्यक्ष होता रहता है।

उपर्युक्त नियमानुसार समस्त सम विषम ओषधियाँ रस द्वारा रक्तमे प्रवेशित होकर अपनी-अपनी शक्ति अनुसार परिणाम (क्रिया अथवा फल) की प्राप्ति कराती है।

डाक्टरी मतमे औषधि क्रिया देहमे भौतिक नियमके अनुरूप तीन प्रकारसे होती है—१ शोषण; २. आवरण; ३. तरलकरण। इन तीनों प्रकारकी क्रिया द्वारा औषधियोके गुण-दोपरूप परिणामकी प्राप्ति होती है। जब तक औपधि इन त्रिविध नियमोमेसे किसी एकके अनुकूल नही बन सकती, तब तक अपना परिणाम नही दर्शा सकती।

(१) शोषण क्रिया (Absorbents)—जो औपधि मुख द्वारा सेवन की जाती है, उनमेसे अनेकोका शोपण मुखमेसे, कितनी ही का आमाशयमेसे तथा अनेकोका अन्त्रमेसे होता है। कितनी ही औषधियाँ यकृत्, वृक्क आदि अवयवोमे संगृहीत होती है। व्यवायी, विकासी और विशद द्रव्य पाक होनेके पहिले आमाशयमेसे शोषण हो जाता है। यह शोषण क्रिया उन औषधियोकी होती है, जो रक्तमे मिश्रित हो जाती है। परन्तु यह शोषण क्रिया औषध द्रव्य और रक्तकी गाढता और तरलताके ऊपर विशेष निर्भर है। जैसे यवक्षार आदि लवण द्रव्यको थोडे जलमे मिलाकर सेवन करानेसे (वह द्रव रक्तकी अपेक्षा गाढा होनेसे) अन्तर्वहन और वहिर्वहन रूप नियमानुसार रक्तमेसे जलीय अंशका आकर्षण कर विरेचन करानेका प्रयत्न करता है। परन्तु जलको अधिक परिमाणमे मिश्रितकर सेवन कराने पर (रक्तकी अपेक्षा तरलता अधिक हो जानेसे) वह रक्तमे शोषित होकर मूत्रविरेचन कराता है।

शोषण क्रिया शरीरमे सर्वत्र यथा नियम होती रहती है, किन्तु जिस स्थानका आच्छादन अति कोमल और सूक्ष्म होता है, उस स्थानमे शोषण क्रिया इतर स्थानकी अपेक्षा सहज और शीघ्र होती रहती है। इस नियमानुसार फुफ्फुसावरणमे इतर स्थानोकी अपेक्षा शोषण शक्ति अधिक रहती

है। आमाशय और अन्त्रकी श्लैष्मिककला फुफ्फुसावरणकी कलाकी अपेक्षा स्थूल होनेसे न्यून शोषक है, और बाह्य त्वचा स्थूलतम होनेसे अति न्यून शोषक है।

मुखसे सेवनकी हुई औषधिमें लालास्राव, आमाशय रस, पित्त आदि मिल जानेसे उसका शोषण देरसे होता है और सबका रक्तमे शोषण प्रायः नही होता। किन्तु शिरामे अन्तःक्षेपण करनेपर सब औषधिका तत्काल रक्तमे मिश्रण होजाता है। यदि अन्तःक्षेपण त्वचा या मांसपेशीमे किया जाय, तो शिराकी अपेक्षा किञ्चित् अधिक, फिर भी जल्दी शोषण हो जाता है। इनके अतिरिक्त त्वचा, नासिका, नेत्र, गुदा, मूत्रेन्द्रिय आदि मार्गोसे प्रयोजित औषधियाँ भी शोषित हो जाती है।

इस शोषण क्रियामे अनेक कारणोसे न्यूनाधिकता भी हो जाती है। जैसे समस्त शिराएँ रक्तसे परिपूर्ण होनेपर शोषण क्रियामे प्रतिबन्ध होता है और विद्युत शक्ति (Electricity) उत्तेजित होने या प्रबल बननेपर शोषण क्रिया सत्वर हो जाती है। उदर भरा हो, तो मुखसे सेवन की हुई औषधिका शोषण देरसे होता है, खाली पेट हो तो जल्दी शोषण होता है।

यह शोषण क्रिया अन्तर्वहन और बहिर्वहन (Endosmosis and exosmosis) के नियमाधीन है। यदि किसी कपड़ेके दोनो ओर दो प्रकारके तरल पदार्थ रक्खे जायँ, तो उन दोनोका मिश्रण करनेपर सरलता से मिश्रण हो जाता है। परन्तु उन दोनो तरल पदार्थोमे यदि गाढत्वका तारतम्य हो, तो जब तक व्यवधायक वस्त्रमेसे तरल द्रव्य प्रवाहित होकर समान गाढत्वको प्राप्त न हो जाय, तब तक दोनों ओरके द्रव परस्पर आकृष्ट होकर मिश्रित होते रहते हैं। इस स्थानपर पाठकोंको लक्ष्य देना चाहिये कि, दोनोके आकर्षणमे समानता नही है। यह नियम है कि, तरल पदार्थ गाढे पदार्थको आकर्षित करे, इसकी अपेक्षा गाढ़ा पदार्थ तरल पदार्थको अधिकतर आकर्षण करता रहता है। इसी नियमानुसार औषधिके शोषण रूप परिणाममे क्रिया होती है। फिर औषधसत्व रक्तस्रोतोमे संचालित होकर यथास्थान अपना-अपना प्रभाव दर्शाता है।

भौतिक परिणामके नियम—

(अ) जब कोई औषधि शरीरके एक देशमे प्रयोजित होकर स्थानान्तरमे प्रभाव दर्शाती है, तब जाना जाता है कि, औषधके परिणामका ह्रास हुआ है। शिरा आदि द्वारा दूषित होनेके अतिरिक्त इसका इतर कोई कारण नही है।

(आ) अनेक औषधि द्रव्यके गन्ध, स्वाद और वर्ण आदि निःश्वास, प्रस्वेद और मूत्र आदि शरीरस्थ रसोके भीतर प्रकाशित होते है, जैसे शराब, लहशुन और प्याजकी गन्ध निःश्वासमे, रेवन्दचीनीका वर्ण मूत्रमे,

और मंजिष्ठाका वर्ण अस्थिमें प्रतीत होता है ।

(इ) एक व्यक्तिके औषधि सेवन करनेपर उसके शरीरका रसरक्त आदिके प्रवेश द्वारा दूसरोंके प्रति उसी औषधिके फलकी प्राप्ति हो जाती है । जैसे माता द्वारा उसके स्तनपायी शिशुके शरीर औषधिका गुण व्यक्त हो जाता है । मछली साँपको खा जाय, और सर्पके विषका पूर्णांशमे रूपान्तर हो जानेके पहिले उस मछलीका मास किसी मनुष्यके खानेमे आ जाय, तो सर्पविषका असर मनुष्यपर हो जाता है ।

ग्रामशूकर (वराह) आदि पशु कृमि या कीटाणु मिश्रित विष्ठा खा लेते हैं, फिर उन कीटाणुओका पूर्णांशमे पचन हो जानेके पहिले उस सूअरका मांस मनुष्यके खानेमे आ जानेसे अनेक खाने वालोको उदरकृमि (Taenia Solium) आदि रोगोकी सम्प्राप्ति हो जाती है ।

बीमार जीवोके मांसभक्षणसे अनेक लोगोको व्याधियाँ हो जाती है । ग्रन्थिज्वर (Plague) से पीडित चूहोंको खा लेनेसे अनेक बिल्लियोकी भी मृत्यु हो गई है ।

(ई) देहके किसी स्थानमे औषध प्रयोग करनेपर उस स्थानसे उद्‌भूत रक्तवहा नाड़ियो (हृदयकी ओर रक्तवहन कराने वाली शिराओ) के समुदायपर बन्धन बाँध देनेसे दूर स्थानपर औषधिके गुणका प्रतिरोध हो जाता है । इसी नियमानुसार सर्पविष आदिके घातक गुणको रोकनेके लिये रक्तवाहिनियोको डोरी या वस्त्र आदिसे दृढ बाँध दिया जाता है ।

(उ) शिराओमे औषधिको प्रविष्ट करानेपर उसका परिणाम तत्काल प्रकाशित होता है । जैसे वमन औषधिका इञ्जेक्शन द्वारा शिरामे प्रवेश करानेपर वान्ति होने लगती है, और विरेचन औषधिके प्रयोगसे विरेचन होने लगते है । इस प्रभावका बोध औषध सेवनके पश्चात् भौतिक परीक्षा या देहस्थ रस और विविध यन्त्रोकी रासायनिक परीक्षा करनेपर हो जाता है ।

(२) आवरण क्रिया (Covering)—जिस स्थानपर औषधिका लेप आदि आवरण लगाया जाता है, वह स्थान दूसरे द्रव्योके घर्षण और इतर रासायनिक परिणामसे सुरक्षित रहता है । इस नियमानुसार व्रण-विद्रधि आदिपर मलहम, लेप आदिकी पट्टी लगायी जाती है ।

(३) प्रवाहीकरण (Dilution)—यथेष्ठ परिमाणमे जलपान और पतला भोजन करनेपर आमाशयस्थ अम्ल और उष्ण रसका प्रवाहीकरण होता है, अर्थात् पतलापन साधित होता है । फिर उग्रताका शमन होता है तथा पिये हुए जलका रक्तमे शोषण होनेसे पेशाब आदिमे तरलता सपादित होकर विष, क्षार और तीक्ष्णता आदि दूर हो जाते है ।

आमाशयमे अम्ल और उग्र रसका सचय होनेपर आवश्यक जलपान

करनेसे उसका शमन हो जाता है। यदि आमाशयमे अत्यधिक उग्रता या विकृति आ गई हो, तो अधिक जलपान करा वमन करानेसे दोष सरलता-पूर्वक बाहर निकल जाता है।

रक्तमें अधिक गाढापन और उष्णता हो गई हो, तो वे भी रक्तमे जल का शोषण हो जानेसे दूर हो जाती है। इस तरह रसकी न्यूनता भी जल-पानसे दूर हो जाती है।

आयुर्वेदमे रोगभेदसे जलपान विधिमे भेद करनेको लिखा है। कतिपय रोगोंमे गरम किया हुआ जल पिलाया जाता है, तथा कतिपय रोगोंमे ताजा शीतल जल हितकारी माना गया है। क्वचित् जलमें शक्कर या इतर औषधि मिलाई जाती है। क्वचित् जल कुछ कम परिमाणमें पिलाया जाता है। इस सम्बन्धके नियम 'रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रह' के आवश्यक सूचनाके न० १४७ से १५४ तक दिये है।

जलपान करने पर वह आमाशयमे शोषित होकर रक्तमे प्रवेश करता है। फिर रक्तमे तरलाधिक्य और शीतलताकी प्राप्ति होती है। इस हेतुसे विसूचिका आदि रोगोमे रक्त जब गाढ़ा हो जाता है या ज्वर प्रदाह आदिमें रक्त जब उष्ण हो जाता है, तब रक्तके तरलाधिक्य होने पर रक्त विकृति कम होती है। फिर रक्तमेमे प्रस्वेद ग्रन्थियाँ और वृक्कोको योग्य रक्तरस मिल जानेसे विकृतिको शमन करनेके लिए क्रिया होने लगती है।

रसायनिक परिणाम

(केमिकल चैन्जेज Chemical Changes)

रासायनिक परिवर्तन होनेपर वस्तुके गुण, रूप, और स्थिति सब बदल जाती है और जिसके रूप, गुण बिल्कुल भिन्न हो, ऐसी वस्तु बन जाती है। उदाहरणार्थ जसदको गन्धकके तेजाबमें डालने पर गेस निकल जाति है और शेष द्रव्य तेजाबमे घुल जाता है। उसे सुखालेने पर जसदके स्थान पर एक श्वेत चूर्ण मिलता है। जो जसदके रूप, गुणसे बिल्कुल भिन्न है। पारद, गन्धक और फिटकरी आदि मिलाकर कूपीपक्व रसायन बनानेपर पारद आदि द्रव्योसे भिन्न रूप, गुणवाला रसकपूर बन जाता है। हल्दी और क्षारका रासायनिक संयोजन होनेपर लाल रगका कुकुम बन जाता है। २ भाग हाइड्रोजन और १ भाग ऑक्सिजन मिलनेपर भिन्न गुण, रूपवाला जल तैयार होता है। पीपरमेण्टके फूल और कपूर मिलनेपर एक प्रकारकी प्रवाही औषधि बन जाती है।

कितनेही द्रव्योके परमाणु शारीरिक तन्तु और घटकोके जीवनरसके रासायनिक मिश्रण पर क्रिया करते है और वे उसके साथ रासायनिक विधिसे मिल जाते हैं। परिणाममे उन द्रव्योके विभिन्न गुणोका परिचय मिलता है। इन द्रव्योकी क्रिया किस प्रकारसे प्रकाशित होती है, यह पूर्णांश

में निर्णय करना अति कठिन है। इस शारीरिक व्यापारपर मनका प्रभाव भी पड़ता है। मनकी प्रसन्नता होनेपर या श्रद्धासे औषधिका लाभ मान लेनेपर लाभ होता जाता है। इसके विपरीत, शोक, अश्रद्धा, क्रोध आदिसे लाभदायक औषधिका सेवन व्यर्थ हो जाता है और विपरीत मानस क्रिया द्वारा हानि पहुँच जाती है परिणाममें हितकर औषधि भी हानिकर मानने की भूल हो जाती है।

रासायनिक नियमानुरूप मधुर और लवण रस द्वारा अम्लताका नाश, मधुर रससे दाह शमन, अम्लरस द्वारा क्षारत्व गुणका लोप, और जठराग्नि द्वारा विविध औषधियोके गुणका सहार होना आदि आदि परिणाम शरीरमे सर्वदा होता रहता है। इस रासायनिक परिणामका बोध आयुर्वेदने औध-धियोंके गुण, वीर्य, विपाकसे समझाया है।

जीवनीय परिणाम।

(वाइटल चेञ्जेज Vital Changes)

औषधिका परिणाम मुख्यत. इसी नियमानुसार मिलता रहता है। कारण, औषधियोकी क्रिया बहुधा जीवन पर ही निर्भर है। यद्यपि भौतिक नियमानुसार औषधि देहमे शोषित हो जाय, तथापि इसके पश्चात् किस विशेप यन्त्र पर फलकी प्राप्ति होगी। यह बात भौतिक नियमके अधीन नही है। जैसे तार्पिन तैलका सेवन करने पर भौतिक नियमानुरूप शोषण होकर रक्तमें मिश्रित हो जाता है, और इतर सब यन्त्रोका परित्याग कर केवल वृक्क स्थानोके ऊपर विशेप फल दर्शाता है, यह परिणाम सज व देह के नियमसे ही साधित होता है। यह क्रिया मृत शरीरमे प्रतीत नही होती।

अफीम द्वारा चेतना हरण, राई आदिके ब्लिस्टर द्वारा फाला होन। ऊन की काली राखके सेवनसे गर्भाशयके रक्तस्रावका निरोध, कपासमूलत्वक् द्वारा गर्भाशयसकोच, वृहती फलके सेवनसे शुक्र विरेचन, कुचिलासे वातवहा नाड़ियोकी उत्तेजना, ताम्र, भस्मसे पित्तका अधिक स्राव, वंग भस्मसे शुक्राशयकी दृढता, तृणकांतमणि (कहेरबा) से किसी स्थानमेसे होनेवाले रक्तस्रावका रोध, और मस्तिष्कमे उत्पन्न कृमियोका नासिका द्वारा पतन आदि आदि परिणाम जीवित देहमे ही प्रतीत होते है।

त्रिधि भेदसेव्य परिणामभेद-औषध परिणामके सम्बन्धसे विशेप विचार करने पर विदित होता है कि, औषध प्रयोगमे विधिभेद होने पर यान्त्रिक क्रिया और लक्षणोमे भेद हो जाता है। जैसे कुचिलाको क्षतके ऊपर लगाया जाय, तो बिना आक्षेप घातक फलकी प्राप्ति कराता है। कुचिलासे सचालन क्रिया करने वाली वातवहा नाडियोका पक्षाघात होता है। फिर इसी हेतु से शरीरकी सब मासपेशियोके बलका हरण होकर वे अवसन्न हो जाती है।

कुचिलाका यदि अधिक मात्रामे मुख द्वारा सेवन किया जाय, तो मूत्र-

पिण्डकी क्रियाका अवरोध होता है, और मरणके पहिले तीव्र आक्षेप आने लगता है। यह तीव्र आक्षेप कुचिलाका साक्षात् कार्य नहीं है, परन्तु परम्परा परिणाम है। कुचिलाके विषसे प्रारम्भमे चेष्टावहा नाड़ियाँ दूषित होती है तथा श्वासोच्छ्वास क्रिया करानेवाली महाप्राचीरा और उदरदण्डिका आदि मासपेशियां पक्षाघातसे ग्रसित हो जाती हैं, इस हेतुसे श्वासोच्छ्वासमे व्याघात होकर रक्तको सशोधन क्रिया मन्द या बन्द हो जाती हैं, फिर शरीरका सब रक्त अशुद्ध हो जाता है और वही रक्त देहमे सचालित होकर वातवहा नाडियोंके केन्द्र स्थानमे गमन करता है परिणाममें वहा उग्रताकी उत्पत्ति होकर द्रुत आक्षेप उपस्थित होता है।

कुचिलाके बाह्य प्रयोग और आन्तर प्रयोग, उभय प्रकारमे अवसादक गुणकी स्पष्ट प्रतीति होती है। दोनोमे श्वासोच्छ्वास क्रिया करने वाली पेशियाँ और दोनो शाखाओंकी मांसपेशियोसे सम्बन्ध वाली चेष्टावहा नाडियाँ, सब अवसन्न हो जाती हैं। फिर दोनो प्रकारोके प्रयोगोसे श्वासावरोध होकर मृत्यु हो जाती है। तथापि मुख द्वारा ग्रहण करनेपर शाखाद्वयकी माँसपेशियोकी चेष्टावहा नाड़ियोमे अवसन्नता कुछ अंशमे ही आती है, विशेष रूपसे नही; और वातवहा नाड़ियोके केन्द्रस्थानमे मलिन रक्त संचालन रूप विशेष हानि होनेपर उग्रता आकर तीव्र आक्षेप उपस्थित हो जाता है। वाह्यप्रयोगमे शाखाद्वयकी माँसपेशिया पूर्णरूपसे अवसन्न हो जाती है; किन्तु वात केन्द्रमे उग्रता नही आती और तीव्र आक्षेपकी प्राप्ति भी नहीं होती। इस तरह दोनों प्रकारोमे क्रिया और परिणाममे कुछ-कुछ अन्तर हो जाता है।

यहां जो परिणामनिर्णय दर्शाया है, उसका अनुमान या निर्णय कुछ अशमे ही होता है, पूर्णाशमें नही। कारण, कतिपय शारीरिक क्रिया अपर क्रियाका परिवर्तन कराती है और वह द्वितीय क्रिया प्रथम क्रियापर प्रतिक्रिया दर्शाती है। इस हेतुसे किसी यन्त्रपर किस औषधिकी क्रिया किस तरह और कितने अंशमे होती है औषध द्रव्य साक्षत् सम्बन्धसे यान्त्रिक क्रियाको कहाँ तक परिवर्त्तित कराती है और कहा तक औषध द्रव्यकी क्रिया परम्परा प्रकाशित करती है? इत्यादि बातोका पूर्ण रूपसे निर्णय करना दु:साध्य माना गया है।

परम्परागत परिणाम।

(इण्डायरेक्ट चेञ्जेस Indirect Changes)

परम्परागत परिणाम साक्षात् क्रिया होनेपर नैसर्गिक नियमानुसार मिलता रहता है। इस परम्परागत परिणामकी प्राप्ति समय, स्थान, शक्ति, अनुकूलता, प्रतिकूलता, साधन, रोगभेद, व्यसनभेद, आयुभेद आदि कारणो से पृथक् पृथक् रूपमे मिलती है। इसके लिये निम्नानुसार अनेक नियम

बनाये गये है ।

(१) उत्तेजनाके पश्चात् क्षीणता -किसी भी शारीरिक यन्त्रकी क्रिया में उत्तेजना आ जानेके पश्चात् शक्तिका ह्रास होनेपर क्षीणता—निस्तेजता की प्राप्ति होती है । इस नियमके अनुसार शराबीको शराब पीनेसे उत्तेजना होकर फिर अवसन्नताकी प्राप्ति होती है ।

(२) क्षीणताके पश्चात उत्तेजना—जीवनीय शक्तिको हानि न पहुँचे यदि इस तरह देहस्थ क्रियाको शिथिल किया जाय, तो थोड़े समयमें ही उस क्षीणताका अंत होकर उत्तेजनाकी सम्प्राप्ति होती है । जैसे बलवान् व्यक्तिको शीतकालमे शीतल जलसे स्नान करनेके किञ्चित् कालके पश्चात् प्रतिफलित क्रिया (Reaction) रूप शरीरमे उष्णताकी प्राप्ति होती है । एव इसी नियमानुसार परिश्रमके पश्चात् सुनिद्रा मिलजानेसे शारीरिक स्फूर्ति आ जाती है ।

(३) एक यन्त्रका इतर यन्त्रपर परिणाम—शरीरके भीतर किसी एक प्रधान क्रिया द्वारा एक या एकाधिक मुख्य यन्त्रोकी क्रियामे विलक्षणता आने लगती है । जैसे शराब और अफीम आदिका सेवन अधिक परिमाणमें होनेपर मस्तिष्कमें रक्ताधिक्य होता है । फिर उस क्रियाका ह्रास होनेपर श्वासोच्छ्वास, रक्तसंचालन और दर्शन, श्रवण आदि शारीरक क्रियाएँ अवसन्न हो जाती है । इस स्थानपर औषधिकी साक्षात् क्रिया (मस्तिष्कमें रक्ताधिक्य) होकर परम्परागत परिणाम रूप साघातिक अवसन्नताकी प्राप्ति होती है ।

इसके अतिरिक्त किसी औषधि द्वारा वातवहा केन्द्रका अवसादन होनेपर भी सारा शरीर अवसन्न हो जाता है । वह भी परम्परागत परिणाम है । शस्त्रचिकित्सक शस्त्रचिकित्सार्थ रोगीको मूर्च्छा (Shock)की प्राप्ति कराते हैं, वह भी इसी नियमाधीन है ।

(४) संवेदनाजन्य परिणाम—अनेक औषधियो द्वारा किसी एक स्थान की वातवहा नाडिया उत्तेजित होती है । फिर वे स्थानान्तरमें परिणामकी प्राप्ति कराती है । जैसे गर्भावस्थामे स्तनोपर ब्लिस्टर लगानेसे उत्तेजना गर्भाशयमे प्रवेशकर गर्भ ात करानेका प्रयत्न कराती है ।

क्वचित् इसके विरुद्ध प्रक्रिया द्वारा कार्यसिद्धि होती है । यथा संन्यास रोगमे विरेचन देनेसे अन्त्रकी वातवहा नाडियाँ उत्तेजित होकर विष और रक्तरसको बाहर निकालती है । परिणाममे मस्तिष्कमेसे रक्तदबाव और रक्तमेसे विषका ह्रास हो जाता है ।

सूर्यावर्त्त (Hemicrania) में प्रात काल दूध-जलेबी खिला देनेसे आमाशयमें उत्तेजना उत्पन्न होती है । फिर मस्तिष्कस्थ उत्तेजनाकी उत्पत्ति नहीं होती ।

(५) प्रतिक्षोभज परिणाम (Counter Irritation) किसी स्थान विशेषमे औषधि प्रयोग द्वारा उग्रता उत्पन्न करा स्थानान्तरके विकारको शमन कराया जाता है। इसका विशेष विचार पहिले प्रतिक्षोभ साधक गुण नं० १०१ के विवेचनमें किया गया है।

(६) रोगनिवारण शक्तिजन्य परिणाम – देहमे किसी भी प्रकारकी हानि होनेपर उसे रोगनिवारण शक्ति अपने बलानुसार न्यूनाधिक कालमे पूर्ण करती है। कितनेक प्रबल रोगोमे कभी कभी औषधि द्वारा नूतन रोग उपस्थित करानेपर रोगनिवारण शक्ति उत्तेजित होकर पूर्व रोगका प्रतिकार करती है। यथा व्रण आदि रोगोमे दाहक औषधि द्वारा प्रदाह कराने पर उन रोगोका नाश हो जाता है। इसे आयुर्वेदमे व्याधि विपरीतार्थकारी किया कहा है।

(७) कारण नाशसे रोगशमन—अपचन होनेपर आमाशयमे दूषित रस संचित होकर शिरदर्द होता है, तब वमन औषधि देनेसे हेतु नष्ट होकर रोग दूर हो जाता है। एव कोष्ठबद्धताके हेतुसे शिरदर्द होनेपर उदरशुद्धि करानेसे मस्तिष्ककी वेदना निवृत्त हो जाती है, इसे आयुर्वेदने हेतुविपरीत चिकित्सा कहा है।

व्याधि प्रतिकार।

जो औषधियाँ सेवन की जाती है या अन्त क्षेपण रूपसे प्रवेश करायी जाती हैं अथवा सहायक क्रिया उपयोगमे ली जाती है. वे सब अपने गुण या शक्ति अनुसार नैसर्गिक नियमानुकूल बनकर रोग प्रतिकार करती है। औषधिके गुणभेदाअनुसार शारीरिक परिणाममें विभिन्नता प्रतीत होती है।

औषधि देहमे प्रविष्ट होनेपर सामान्यत. उसे शोषण, प्रसर, संग्रह तथा नि.सरण, इन अवस्थाओंकी प्राप्ति होती है। मुखसे सेवन की हुई औषधि रसवाहिनियो द्वारा शोषित होकर परम्परागत तथा अन्त क्षेपित औषधि साक्षात् रक्तमे मिल जाती है। फिर देहमे सर्वत्र फैलकर लसीकासे क्लिन्न घटकोंके संपर्कमें आती है। अनेक औषधि लसीकामे ही रह जाती हैं; कितनी ही लसीका और घटकोकी दीवारका भेदनकर भीतर प्रविष्ट हो जाती है। इनमेसे सबल औषधिया घटकोके जीवन द्रव (Protoplasm) पर अपनी क्रिया प्रकाशित करती हैं (जैसे-शराब आदि) और बहुत सी घटकोंके इतर भागपर कार्य करती है।

अनेक औषधियां—मद्य, कुचिला, डिजिटेलिस आदि यकृत् आदि अवयवोमे संग्रहीत होती हैं, वे इनपर क्रिया करती हैं या कुछ समय तक निष्क्रिय पड़ी रहती हैं। कितनी ही शराब, लहसुन आदि औषधिका निःसरण त्वचाके छिद्रोंमेसे स्वेदके साथ और नासिका मार्गसे निःश्वासके साथ होता है। कितनी ही मलमूत्रके साथ निकलती हैं। इनमेसे कोई जल्दी

बाहर निकलती है और कोई देरसे ।

शारीरिक यन्त्रोके प्रभाव और रासायनिक प्रभाव द्वारा अर्थात् रस आदि धातुओकी औषधि पर विशेष क्रिया होकर विविध परिणामोंकी प्राप्ति होती है। इन परिणामोमे निम्नानुसार १२ प्रकार होते हैं:—

(१) अपतर्पण, (२) सतर्पण, (३) संशोधन, (४) प्रवाहीकरण (५) उत्तेजना, (६) अवसादन, (७) प्रत्युग्रता, (८) दमन, (९) परिवर्त्तन, (१०) कारणप्रतिकार, (११) रासायनिक प्रभाव, और (१२) यान्त्रिक प्रभाव।

(१) अपतर्पण (Depletion)–अर्थात् देहमेसे रक्त परिमाणका ह्रास कराना। इसके दो प्रकार है-साक्षात् (Direct Depletion) और परम्परागत (Indirect Depletion) । व्यापक अथवा स्थानिक रक्त का स्राव कराकर और वमन-विरेचन आदि द्वारा रसको अधिक निकलवा-कर रक्त परिमाण घटाया जाता है, उसे साक्षात् अपतर्पण कहते हैं। उप-वास द्वारा या पौष्टिक आहारका त्याग करा रक्तोत्पत्ति कम कराई जाती है. उसे परम्परागत अपतर्पण कहते है।

इस अपतर्पण प्रभावकी प्राप्तिके लिये आयुर्वेदमे अपतर्पण (लघन) चिकित्सा कही है। इसके शोधन और शमन दो भेद हैं। इसकी आयुर्वैदिक विधि, अधिकारी, फल आदिका विवेचन 'चिकित्सातत्वप्रदीप' प्रथम खण्ड के पृष्ठ ३६ से ३७ तक किया गया है।

इस अपतर्पण क्रिया द्वारा रक्ताधिक्यका ह्रास, दाहशमन और आम, भेद आदि दोषोका शोषण होता है। इनमेसे रक्ताधिक्यका ह्रास और दाह-शमन, ये रक्तस्रावरूप साक्षात् अपतर्पण द्वारा सत्वर सफल होते है, और आम, मेद आदिके शोषणार्थ स्वेदन, वमन, विरेचन, रक्तस्राव, उपवास, पौष्टिक आहारका त्याग आदि साधन लाभदायक होते है।

अपतर्पणसे रक्तकी मात्रा न्यून होनेपर शारीरिक समस्त क्रिया आहा-रपचन, रक्तसंचालन, श्वासोच्छ्वास, रक्तस्राव, परिपोषण और शारीरिक उत्ताप इत्यादिमे न्यूनता हो जाती है, एवं समस्त मासपेशियोमे क्षीणता, स्पर्शज्ञानमे न्यूनता, मानसिक भावना और बुद्धिवृत्तिमे हीनता (उत्साह भंग और विचार शक्तिसे यथोचित कार्य न होना) आदि परिणामोंकी प्राप्ति भी होती है। क्वचित् अधिक रक्तस्राव होनेपर मूर्च्छा होकर मृत्यु भी हो जाती है। अत. रक्तस्राव विचारपूर्वक कराना चाहिये।

इस तरह अपतर्पण द्वारा उपर्युक्त सब क्रियाओमे शिथिलता आ जाती है। परन्तु रक्त परिमाणमें न्यूनता होनेपर सब शिराओंकी शोषण क्रिया बढ़ जाती है। देहकी समता स्थिर रखनेके लिये शिराएँ देहमेंसे चारों ओर से जलीय अंशका शोषण बलपूर्वक करने लगती है। अतः रक्तका परिमाण

सत्वर पूर्ण हो जाता है; परन्तु इतर कार्योंमें जो शिथिलता आगई है, वह शनैः-शनैः ही दूर होती है।

(२) संतर्पण--बृंहण (Repletion)-इस बृंहण गुणका फलरक्त, मांस आदिकी वृद्धि कराता है। जब अधिक दुर्बलता या रक्तहीनता आदि की प्राप्ति हुई हो, तब इस बृंहण साधनका उपयोग होता है। देहमे रक्त, मांस आदिकी वृद्धि करानेके लिये पौष्टिक औषधियां, बलवर्द्धक आहार, विशुद्ध वायुका सेवन, आवश्यक व्यायाम और आवश्यक विश्रान्ति आदि संतर्पण साधन माने जाते हैं।

आयुर्वेदमे बृंहणचिकित्सा कही है। इसके विधि, अधिकारी फल आदि का विवेचन 'चिकित्सातत्वप्रदीप'प्रथम खण्डके द्रव्याद्रव्य चिकित्साके अन्तर्गत पृष्ठ ३५ से ३९ तक किया गया है।

(३) संशोधन (Elimination)—देहमें अनेक वस्तु त्याग करने योग्य बन जाती है; इनमेसे अनेकोंका रक्तमे शोषण हो जाता है। फिर वे वृक्क आदि संशोधक यन्त्रोकी क्रिया द्वारा मूत्र और प्रस्वेद आदि रूपसे देहमेसे बाहर निकल जाती है। इस तरह नैसर्गिक शक्ति रक्तको शुद्ध रखने के लिये निरन्तर प्रयत्न करती रहती है।

जब किसी कारणवश संशोधक यन्त्र अपना-अपना कार्य यथोचित न कर सके, तब त्याज्य वस्तु देहमे संगृहीत होने लगती है। फिर ज्वरोत्पत्ति, चर्मरोग, रक्तविकार, कुष्ठ आदि अनेक रोगोंकी संप्राप्ति होती है। इस हेतु से दोषसंचय होनेपर संशोधक यन्त्रोंकी क्रियाकी वृद्धि करा दोषको बाहर निकाल दिया जाता है; अथवा रोगोत्पत्ति हो जानेपर संशोधन यन्त्रोंकी क्रिया द्वारा रोगका शमन कराया जाता है।

अनेक बार किसी भी प्रकारके विष—सोमल, रसकर्पूर, नाग (शीशा) ताम्र आदि धातु, सर्प, वृश्चिक, लूता (मकडी), चूहे आदि जीवोंका विष, सूक्ष्म कीटाणु, चाय, तमाखू, गांजा, कोकीन, अफीम, धतूरा आदिका देहमें प्रवेश हो जानेपर संशोधक यन्त्रोकी क्रियाको बढानेके लिये औषधि दी जाती है। ऐसे प्रसंगोपर पहिले विष द्रवीभूत होकर रक्तमें शोषित हो जाता है। फिर उसे संशोधक यन्त्र बाहर निकाल डालते हैं।

आयुर्वेदने स्वेदन, वमन, विरेचन आदि अनेक कर्म संशोधन निमित्त कहे हैं। इनका संक्षिप्त विचार 'चिकित्सातत्वप्रदीप' के उपोद्घात प्रकरण पृष्ठ २८ से ३६ तकमे किया है, और विशेष विचार शरीर शुद्धि प्रकरणमे पृष्ठ ४२ से १३४ तक दर्शाया है।

(४) प्रवाहीकरण (Dilution)—अधिक मात्रामे पतला भोजन या जल आदिके सेवन द्वारा इस प्रवाहीकरण (पतलापन) की संप्राप्ति होती है। इसका विशेष विचार पहिले पृष्ठ २९६ में किया गया है।

(५) उत्तेजना (Stimulation)—शरीरस्थ एक या एकाधिक क्रिया के वेगकी वृद्धि होनेपर उत्तेजना कहलाती है। इसके स्थिर और अस्थिर भेदसे तथा व्यापक ओर स्थानिक भेदसे दो-दो प्रकार है। जिसका परिणाम स्थिर रहे वह स्थिर उत्तेजना। जिसका फल अल्पक्षण पर्यन्त रहे, वह अस्थिर या अस्थायी उत्तेजना; जो परिणाम सम्पूर्ण देहपर हो, वह व्यापक उत्तेजना, और जो फल किसी यन्त्र विशेषपर प्रतीत हो, वह स्थानिक उत्तेजना कहलाती है। इस उत्तेजनाके प्रभावका विवेचन पहिले औषध गुण विचारके उत्तेजक गुणके साथ किया गया है।

(६) अवसादन (Sedation or Depression)--शारीरिक एक या अधिक जीवन क्रियाके ह्रासको अवसादन कहते है। इस अवसादनके दो प्रकार है—व्यापक और स्थानिक।

जब समस्त देह अवसादित, शिथिल या शान्त हो जाय, तब व्यापक अवसादन; और जब किसी यन्त्र या स्थान विशेषमे अवसन्नता आ जाय, तव स्थानिक अवसादन कहलाता है। इस अवसादन गुणकी प्राप्ति क्लोरोफार्म, यवक्षार, अफीम, तार्पिन तैल, बर्फ आदि औषधियोंद्वारा होती है। इसका विस्तृत विरेचन औषध गुण विचारके नं० ७४ अवसादक (शामक) गुणके साथ किया गया है।

(७) प्रतिक्षोभ (Counter Irritation)—प्रतिक्षोभोत्पादक औषधि द्वारा एक स्थानमे उग्रता उत्पन्न करा स्थानान्तरकी उग्रताका शमन कराना। जैसे यकृत्में दाह होनेपर उदरपर राईका ब्लिस्टर लगाना; संन्यास रोगमे तीव्र विरेचन देना इत्यादि। इसका विवेचन इस ग्रन्थमे पहिले औषध गुण विचारके नं० १०१ मे किया गया है।

(८) दमन (Supercession)—एक नूतन विकारकी प्राप्ति करा पहिलेके रोगको दूर करना। जैसे गन्धाबिरोजा या शीतलमिर्चके प्रयोग द्वारा मूत्रप्रसेक नलिकामे उग्रता उत्पन्न करा पूयमेहका निवारण करना।

(९) रसायन (Alteration)—परिवर्तन अर्थात् शारीरिक दूष्योंका क्रमशः औषधि द्वारा परिवर्तन करा रोगको नष्ट करना। जैसे रसकपूर, सोमल आदि औषधियों द्वारा जीर्ण उपदंशजनित विकृत धातुओका निबारण कराकर स्वास्थ्यकी प्राप्ति करायी जाती है। यह परिवर्तन जीर्ण रोगोमे और निर्बलतामें ही कराया जाता है औषधि गुण दृष्टिसे विशेष विस्तृत विवेचन पहिले नं०२६ रसायन गुण विवेचनके साथ किया गया है।

(१०) कारण प्रतिकार (Anticausation)—मूल रोगका विनाश कर उससे उत्पन्न उपद्रवात्मक रोगोंको नष्ट करना। जैसे कृमिनाशक औषधि द्वारा कृमि प्रकोपसे उत्पन्न ज्वर, पाण्डु, उदरपीड़ा, अग्निमान्द्य, अरुचि, कण्डु आदिका नाश कराया जाता है।

(११) रासायनिक प्रभाव (Chemical Influence)—अर्थात् शारीरिक रस आदिके साथ विरोधी पदार्थका संयोग कराकर लाभ पहुँचाना। संयोग करानेमे तीन उद्देश्य है १. कीटाणुनाश, २ शारीरिक रस आदि धातुके गुणका परिवर्तन, ३. रक्तमे या कृमिके इतर उपादानमे रोगशामक क्रिया या रसकी उत्पत्ति कराना।

जैसे रक्तमें विषम ज्वरके कीटाणुकी वृद्धि होनेपर कीटाणु नाशार्थ सप्तपर्णका सत्व या क्विनाइनका सेवन कराया जाता है।

आमाशयमे अम्लता प्रधान रसकी वृद्धि होनेपर अम्ल रस विरोधी शंख वराटिका, शुक्ति, सज्जीखार आदिका सेवन, क्षारीय रसकी वृद्धि (यकृत्के पित्तस्राव अधिक) होनेपर अम्लविपाक युक्त औषधि और भोजन का सेवन तथा अत्यधिक रसवृद्धि हो, तो विरेचन आदिसे संशोधन कराया जाता है। राईके लेप आदि दाहक औषधि द्वारा फाला उठा या क्षत करा दोषको आकर्षित कर लिया जाता है।

आयुर्वेदकी दृष्टिसे इस रासायनिक प्रभावका वर्णन पहिले षटरस गुण-दोष विचारके साथ किया गया है।

(१२) यान्त्रिक प्रभाव (Mechanical Influence)—अर्थात् देह रूप यन्त्रकी क्रिया द्वारा रोगको दूर करना, इसके विकार भेदसे ५ विभाग होते हैं।

(अ) संस्थिति (Position)–जैसे मस्तिष्कमें रक्तवृद्धिजन्य प्रदाह होनेपर मस्तिष्कको ऊँचे सिरहानेपर रखवाकर आराम करानेसे मस्तिष्कमें रक्तसञ्चालनका वेग शान्त हो जाता है। यह मध्याकर्षण क्रिया द्वारा सम्पादित होता है।

(आ) संपीड़न (Compression)–शिरा-धमनी आदिको दबा रक्तसञ्चालन क्रियाका निग्रह करा रोगको दूर करना। जैसे धमन्यर्बुद (Aneurysm) होनेपर उस धमनीके ऊर्ध्व भागमें बन्धन द्वारा दबाव डालकर रक्तस्रावको रोकनेसे रोगका निवारण हो जाता है।

(इ) प्रसारण (Distention)–मल आदि दोषको दूर करनेके लिये औषधि आदिका प्रवेश करा दोषको फैला देना। जैसे अन्त्रके निम्न भागको क्रियाकी उत्तेजनाके निमित्त वस्ति या पिचकारीका उपयोग करने से दोष बिखर जाता है। वस्तिमें अनेक प्रकार हैं। इनके विधि, अधिकारी, फल आदिका वर्णन 'चिकित्सातत्त्वप्रदीप' प्रथम खण्ड पृष्ठ ६९ से ८८ तक किया है।

(ई) घर्षण (Friction)–यह घर्षण (मर्दन) क्रिया बहुधा त्वचा की क्रियाके उत्तेजनार्थ व्यवहारमें लाई जाती है। इस घर्षणका वर्णन आयुर्वेदिक दृष्टिसे 'चिकित्सातत्त्वप्रदीप' प्रथम खण्ड पृष्ठ १२६ में तैलाभ्यंग

रूपसे तथा पृष्ठ १३३ में उद्वर्त्तन रूपसे किया गया है ।

(उ) आच्छादन (Coveiing)–जैसे व्रण आदिपर मलहम आदि का प्रयोग ।

इनके अतिरिक्त मानसिक प्रसन्नता व्याधिनिग्रहमें सहायक होती है; तथा विना औषध सेवन केवल मानसिक संकल्प, प्रेरणा अथवा आशीर्वाद द्वारा रोगीको तत्काल या शनैः शनैः लाभ पहुँचाया जाता है । परन्तु यह कार्य बलवान् मनोबल वालोसे ही होता है ।

चिकित्सा विधान

याभिः क्रियाभिर्जायन्ते शरीरे धातव समाः ।
सा चिकित्सा विकाराणां कर्म तद्भिपजा स्मृतम् ।।

मिथ्या आहार-विहारसे शरीरमें रहे हुए वात, पित्त और कफ, इन धातुओमे उत्पन्न हुई विकृति जिन क्रियाओ द्वारा दूर होकर धातु साम्यकी प्राप्ति हो, वह चिकित्सा कहलाती है, और चिकित्सकोका वही कर्म माना गया है । इस चिकित्साके दोषप्रत्यनीक और व्याधिप्रत्यनीक, ये दो विभाग होते हैं ।

(१) दोषप्रत्यनीक चिकित्सा –प्रत्यनीक अर्थात् विरुद्ध । वात आदि दूषित धातुओके न्यूनाधिक लक्षणोपरसे विचारकर दूषित धातुओंको सम स्थितिमे लाने वाली औषधियोके उपचार और क्रियाओको दोषप्रत्यनीक चिकित्सा कहते है । इस चिकित्सामे रोगोके वाह्य लक्षणोपर विशेष लक्ष्य नही दिया जाता । केवल जिस दोपविकृतिसे रोगोत्पत्ति हुई है, उस मूल हेतुके विरुद्ध चिकित्सा करनेसे दोष सन्तानका विच्छेद होता है । जैसे किसी रोगमे वात धातुकी विकृति हुई हो, तो प्रथम यह निश्चय करना चाहिये कि, रुक्षता, शीतलता, चलत्वादि गुणोमेसे किस गुणकी वृद्धि या ह्रास होनेसे विकृति हुई है ? इस बातको जानकर दोषके गुण विरोधी औषधि और आहार-विहार आदि क्रियाओ द्वारा धातुओको सम अवस्थामें स्थापित करनेसे दोष सन्तान प्रवाह बन्द हो जाता है । इस चिकित्साको श्रेष्ठ कहा गया है । चिरकारी अर्थात् मन्दगति वाले रोगोमे और जीर्ण रोगोमे इस चिकित्साको विशेप हितकर माना जाता है ।

(२) व्याधिप्रत्यनीक चिकित्सा—रोगके विरुद्ध उपायोकी योजना करनेको व्याधिप्रत्यनीक चिकित्सा कहते है । जैसे अतिसार शमनार्थ व्याधिविपरीत स्तम्भक औषधि देना । इस चिकित्सामे दोष-दूष्य विवेक नही होता । जिससे अनेक समय बाहर निकालने योग्य विषका भी अवरोध हो जानेसे (जैसे अतिसारका आमावस्थामे ही शमन हो जानेसे) उस दूपित द्रव्यका शरीरके अन्य भागोमे प्रवेश होकर कालान्तरमे पुन उसी व्याधि की अथवा अन्य किसी व्याधिकी उत्पत्ति हो जाती है । यह दोष इस

चिकित्सामें रहता है। फिर भी सत्वर मारक विसूचिका, मूर्च्छा आदि रोगोमें दोष-दूष्य विवेकको छोड़कर शीघ्र व्याधिप्रत्यनीक चिकित्सा ही की जाती है।

आयुर्वेदमें इन दोनों प्रकारोंकी चिकित्सामे दोषप्रत्यनीक चिकित्साको विशेष हितकर होनेसे श्रेष्ठ और व्याधिप्रत्यनीक चिकित्साको कनिष्ठ माना है। इस दोषप्रत्यनीक चिकित्सामे रोगके नाम अथवा रोगकी संख्याके बोधको महत्व नही दिया जाता; परन्तु रोगके दोप-दूष्य और स्थाना-आदिके ज्ञानको ही आवश्यक माना है। किस प्रकारसे कौन दोष दूषित हुआ; किस दोपका किन-किन दूष्योसे संयोग हुआ और कौन-कौन स्थान दूषित हुए इन बातोके निश्चयको ही प्राधान्य दिया जाता है। कारण, इनका सम्यक् बोध होनेपर ही चिकित्सा निर्भयतापूर्वक हो सकती है।

परन्तु चिकित्सा करनेके पहिले दूष्य-देश, बल, काल, प्रकृति, आयु, आहार आदिका विचार करना पड़ता है। इन सब बातोका वर्णन 'चिकित्सातत्वप्रदीप' प्रथम खण्डके उपोद्घात प्रकरणमे पृष्ठ २३ से ३४ तक किया गया है।

डाक्टरी मतमे व्याधि प्रतिकारार्थ जिन औषध प्रयोगोंका उपयोग किया जाता है, उन औषध प्रयोगोंमें दो प्रकार हैं। परीक्षा सिद्ध (Empirical) और यौक्तिक (Rational)।

परीक्षा सिद्ध प्रयोग—औषधिकी क्रियाको न जानते हुए रोग विशेषपर लाभ पहुँचावे ऐसी औषधियोको परीक्षासिद्ध प्रयोग कहते है। जैसे बिना विचार किये नये उपदंश रोगपर पारद भस्म, जलोदरके रोगीको विरेचनके साथ ऊँटनीका दूध और राजयक्ष्मा रोगीको सुवर्ण कल्प आदि औषधिया दी जाती है। ये सब परीक्षासिद्ध प्रयोग कहलाते हैं। इस चिकित्साको आयुर्वेदने व्याधिप्रत्यनीक चिकित्सा सज्ञा दी है। ये औषधियां किस नियमानुसार कार्य करती हैं, या इन औषधियोकी क्रिया किस तरह होती है, इस सम्बन्धमें मतभेद है; तथापि इन औषधियोका परिणाम निश्चित है। ऐसे ही वक्षःशूल (Anginm Pectoris) रोगमे जब हृदयमे सातिशय वेदना होती हो; स्फिग्मोग्राफ यन्त्रसे नाडीकी चालको अंकित करानेपर हृतपिण्ड और सब धमनीमे खिचाव (संहिता-Lension) इतना अधिक हो कि, हृदय हृदयखण्डके भीतरमे संचित रक्तको बाहर निकालनेसे असमर्थ प्रतीत होता हो; तब समीरपन्नग अथवा अभ्रक प्राधान्य लक्ष्मीविलास रसका प्रयोग करनेसे धमनीका प्रसारण और हृदयके आकुचन प्रसारणकी नियमितता होकर रक्तका खिचाव कम हो जाता है। इस तरह डाक्टरीमे इस विकारपर तत्काल लाभ पहुँचानेके लिये अमिल नाइट्रास (Amyl Nitris) सुघाते हैं।

यौक्तिक प्रयोग—रोगके निदान और अवस्थाको जानकर उस अवस्था

का शमन करने या विकार (मलदोष) का प्रतिकार करनेके लिये औषधि विशेषके गुणोंको जानकर कुछ औषधियोंका मिश्रणकर या पहिलेसे मिश्रित हुई जो औषधि दी जाती है, उसे योक्तिक प्रयोग कहते है। इस चिकित्सा का अन्तर्भाव आयुर्वेदकी दोष-प्रत्यनीक चिकित्सामे होता है।

जैसे प्रवाहिका रोगमे जब शूल, गुदामे दाह और रक्तमिश्रित पक्व मल निकलता हो, तब अफीममिश्रित शंखोदर रस या जातिफलादि वटी देनेसे शामक असर पहुँचकर सत्वर रोग बल घट जाता है। विदग्धाजीर्णसे उदरमे अति भारीपन, वायुका अवरोध, आफरा, उदरशूल व्याकुलता आदि लक्षण होनेपर शखवटी देनेसे दूषित रसका रूपान्तर होकर तत्काल लाभ पहुँच जाता है। सान्निपातिक अवस्थामे जब हृदय क्रिया अतिमन्द हो जाने से तन्द्रा या बेहोशी हो गई हो, तब कस्तूरी और अभ्रकभस्ममिश्रित पूर्ण चन्द्रोदय रस देनेसे तुरन्त हृदयक्रिया उत्तेजित होकर तन्द्रा और निर्बलता दूर हो जाती है तथा मानसिक प्रसन्नताकी प्राप्ति होती है। किन्तु यह औषधि मस्तिष्कमें रक्तसंग्रह और पित्तप्रकोपावस्थामे नही दी जाती। ऐसी अवस्थामे मुक्तापिष्टी और सूतशेखर जैसी शामक औषधि ही दी जाती है। इस सम्बन्धका विशेष विचार 'चिकित्सातत्वप्रदीप' और रसतन्त्रसार व सिद्ध प्रयोग संग्रहमे किया है, अत यहां नहीं किया गया।

॥ समाप्त ॥

अनार, सेव, सन्तरा, द्राक्षा आदि फलोंके रस से निर्मित

कृष्णगोपाल का—

फलासव

पाचनक्रिया को सम्यक् बनाकर शारीरिक शिथिलाता अनिद्रा, मस्तिष्कस्थ उष्णता, पैतिक दोष आदि व्याधियां दूर कर बल प्रदान करता है।

मात्रा—१५ से २० मि० ली० बराबर पानी मिलाकर भोजन के वाद सेवन करे।

निर्माता—

कृष्णगोपाल आयुर्वेद भवन (धर्मार्थ ट्रस्ट)

पो, कालेड़ा कृष्णगोपाल (जिला-अजमेर राजस्थान)